आगमों में तीर्थंकर चरित्र

लेखक—

प्रिय सुशिष्य प्रवर्तक मुनि श्री उदयचन्द्रजी म.

" जैन सिद्धान्ताचार्य "

सम्पादक—

पं. रूपेन्द्रकुमार पगारिया, अहमदाबाद

प्रकाशक—

श्री दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय ब्यावर

मूल्य

१२) बारह रुपया

वीर सं. २४९९

सं. २०३०

लेखक का वक्तव्य

जैन तत्व ज्ञान के अनुसार यह अनादि अनन्त कालचक्र दो भागों में विभक्त है जिन्हें उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल कहा जाता है। प्रकृति के नियमानुसार एक समय ऐसा आता है जब भूमि के रस-कस में तथा प्राणियों के आयु, बल अवगाहना आदि में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है ऐसे समय को उत्सर्पिणी काल कहा जाता है। जिस समय में भूमि के रस-कस में और प्राणियों के आयु, बल आदि में उत्तरोत्तर ह्रास होता जाता है वह समय अवसर्पिणी काल कहा जाता है। यह दोनों मिल कर एक काल-चक्र होता है। यह कालचक्र निरन्तर गतिमान रहता है।

इस भरत क्षेत्र में प्रत्येक उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल में चौवीस तीर्थंकर होते हैं जो धर्म-तीर्थ की स्थापना करते हैं। संसार के जीवों को शाश्वत कल्याण का मार्ग बताने वाले ये तीर्थंकर जैनों के परम आराध्य देव हैं। ये नरेन्द्र-सुरेन्द्र-पूजनीय देवाधिदेव हैं। ये तीर्थंकर परमात्मा आत्मा के सर्वोत्कृष्ट प्रकर्ष के प्रतीक हैं। आत्मा अपने पुरुषार्थ द्वारा परमात्मा बन सकता है, इसके ज्वलंत उदा-हरण ये तीर्थंकर देव हैं। वर्तमान अवसर्पिणी काल में जो चौवीस तीर्थंकर भगवान् हुए हैं उनका वर्णन जैनागमों में उपलब्ध है।

रतलाम में विराजित वयोवृद्ध प्रज्ञास्थविर ज्योतिर्विद मालवरत्न श्री **कस्तूरचन्दजी** म. के समीप समवायांग सूत्र की वाचना लेते हुए उसमें आये हुए तीर्थंकर भगवंतों के विविध विषय के उल्लेखों से मुझे यह प्रेरणा प्राप्त हुई कि तीर्थंकर भगवंतों के जीवन सम्बन्धी जो जो उल्लेख अलग २ आगमों में उपलब्ध हैं उन्हें एकत्र कर उनके जीवन की रूपरेखा को व्यवस्थित रूप दिया जाय। इसी प्रेरणा का फल प्रस्तुत प्रकाशन है।

आचारांग, समवायांग, ठाणांग, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आवश्यक चूर्णि आदि आगम ग्रन्थों में से इसकी सामग्री संकलित की गई है। मेरे स्व. पूज्य गुरुदेव उपाध्याय श्री **प्यारचन्दजी** महाराज सा. तथा वयोवृद्ध मालवरत्न श्री **कस्तूरचन्दजी** महाराज सा. की कृपा से जो कुछ साहित्यिक सेवा बन पड़ी है, वह पाठकों के समक्ष है। तीर्थंकर भगवंतों के जीवन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने लिए यह प्रकाशन लाभकारी सिद्ध होगा, ऐसा पूर्ण विश्वास है।

मेरे इस लेखनकार्य में सिद्धान्त विशारद श्री **गणेश मुनिजी** म. और तपस्वी श्री **पन्नालालजी** म. का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जो सहयोग प्राप्त हुआ है, उसका उल्लेख किये बिना नहीं रह सकता। मैं हृदय से इनका आभारी हूं। मैं उन समस्त विद्वानों और प्रकाशन संस्थाओं का भी हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिनके ग्रन्थों से इस रचना में सहयोग लिया गया है। पं. रूपेन्द्रकुमारजी पगारिया ने ग्रन्थ का सम्पादन किया है अतः उनका सहयोग नहीं भुलाया जा सकता। श्री दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय ब्यावर के अध्यक्ष तथा मंत्री महोदय भी धन्यवाद के पात्र है जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन की व्यवस्था की है।

तीर्थंकर देवों के चरणों में मेरी यही विनम्र श्रद्धांजलि समर्पित है।

—उदयमुनि

'जैन सिद्धान्ताचार्य'

॥ श्री ॥

अग्रिम ग्राहको की सूची:—

		प्रतियाँ
३००)	श्रीमान पन्नालालजी राजमलजी कनकमलजी आदि श्रीसंघ बिरमावल	३०
२५०)	श्री वर्द्धमान स्था. जैन श्रावक संघ जावरा	२५
२५०)	श्री वर्द्धमान स्था. जैन श्रावक संघ मन्दसौर	२५
२००)	श्री वर्द्धमान स्था. जैन श्रावक संघ हिंगनघाट विदुषी महासती श्री बालकुवरजी म. की यादगार में	२०
१०१)	श्री संघ झालरापाटन—हस्ते सूरजमलजी विदुषी म. सती श्री नानकुंवरजी की कृपा से	१०
१००)	श्री संघ ताल हस्ते—हजारीमलजी ताल (जावरा)	१०
१००)	श्रीमान मांगीलालजी मड़ावदा की धर्म पत्नी सम्पतबाई	१०
१००)	श्रीमान गजराजजी शान्तिलालजी मद्रास	१०
१००)	श्रीमान गुलाबचन्दजी भंवरलालजी सकलेचा बैंगलोर	१०
१००)	श्रीमान प्यारचन्दजी रांका सैलाना	१०
१००)	श्रीमान भोगीलालजी केशवजी बम्बई	१०
१००)	श्रीमान शिवराजजी रामचन्दजी कर्नाटक गंडई	१०
५०)	श्रीमान चांदमलजी सुजानमलजी चाणोदिया रतलाम	५
५०)	श्रीमान गुलाबचन्दजी तेजमलजी भन्डारी रतलाम	५
५०)	श्रीमान रखबाजी प्यारचन्दजी हस्ते—चांदमलजी डांगी	५
५०)	श्रीमान शान्तिलालजी गांधी के मातेश्वरी रतनबाई की दीक्षा के उपलक्ष में	५
२००१)		

विषय-सूची

विषय-सूची

लेखक का जीवन-परिचय

'आगमों तीर्थंकर चरित्र' के लेखक प्रियसुशिष्य मुनि श्री उदयचन्द्रजी महाराज साहब "साहित्य-प्रेमी ज्ञान पिपासु, त्याग वैराग्यपूर्ण भावनाओं के अनुगामी, शान्त-प्रकृति वाले और उत्साही मुनिराज हैं।"

आपका जन्म-स्थान "झिरमावल" नामक गांव है, जो कि मालवा-प्रान्त के रतलाम जिले के अन्तर्गत है। आपके पूज्य पिताश्रीजी का शुभ नाम "श्री पन्नालालजी" है और पूज्य माताश्रीजी का शुभ नाम 'श्रीं नाथीबाई' है। आपके दो भाई हैं; जिनमें से बड़े भाई का नाम श्री राजमलजी है और छोटे भाई का नाम 'श्री कनकमलजी' है। आपके दो बहिनें भी हैं, जो कि आपसे छोटी हैं। एक का नाम सुश्री मनराबाई है। जिनका विवाह श्री मांगीलालजी मडावदा से हुआ। और दूसरी का नाम सुश्री विमलाबाई जिसका विवाह श्री अभय कुमारजी पावेचा रतलाम के साथ हुवा है। आपका परिवार यों सम्पन्न, सुखी और विशाल है।

आपका जन्म विक्रमीय सवत् १९८५ के आषाढ़ कृष्णा दशमी बुधवार तदनुसार तारीख ११ जून १९२८ को हुआ था। आपका सांसारिक नाम श्री गेंदालालजी था। आप बाल्यावस्था में भी धर्म प्रेमी एवं त्याग वैराग्य के अनुरागी थे। इन्हीं त्याग-वैराग्यपूर्ण विचारों से प्रेरित होकर आपने अपने पिताश्रीजी को यह स्पष्ट रूप से निवेदन कर दिया था कि — "आप मेरी सगाई नहीं करें, मैं विवाह नहीं करूंगा। आप मेरे इन विचारों को सत्य तथा दृढ़ मानें कि मैं तो जैन-साधु ही बनूंगा। भगवान महावीर स्वामी का सच्चा अनुयायी बनकर आत्मकल्याण के लिए निर्ग्रन्थ अणगार बनना ही मेरे जीवन का एक मात्र ध्येय है।

परम हर्ष की बात है कि आप इसी ध्येय पर अटल और अविचल रहे तथा विवाह के बन्धन से दूर ही रहे। यों आप बाल-ब्रह्मचारी के रूप में ही 'निर्ग्रन्थ-अणगार, साधु मुनिराज" बने।

संवत् २००८ वैशाख शुक्ला की अक्षय तृतीया के शुभमुहूर्त में प्रातः स्मरणीय उपाध्याय श्री १००८ श्री प्यारचन्दजी महाराज साहब की सेवा में बिरमावल गांव में भगवती जैन दीक्षा अंगीकार करके उपाध्याय श्री जी के अन्तेवासी शिष्य बने।

उपाध्यायजी महाराज साहब का आपके ऊपर बड़ा प्रेम था और उपाध्यायजी महाराज साहब इन्हीं वात्सल्य भावनाओं के कारण से आपसे आवश्यक मामलों पर सलाह-मशविरा भी किया करते थे। इससे आपकी बुद्धिमत्ता का तथा दीर्घदृष्टि का पता चल सकता है।

आपकी साहित्य के प्रति भी परम जागरूकता है। और इसी जागरूकता के फलस्वरूप निम्नोक्त ग्रन्थ भी निर्मित हो सके हैं :—

१. प्राकृत-व्याकरण (प्रियोदय हिन्दी व्याख्या सहित) प्रथम और द्वितीय भाग।
२. प्रियोदय निबन्ध माला (प्रथम तथा द्वितीय भाग)
३. आचारांग-चिंतन (हिन्दी टीका सहित)
४. सूत्र-पाठ (हिन्दी टीका सहित)
५. उपाध्यायजी महाराज साहब का जीवन-चरित्र और जीवन आदि।
६. आपकी 'प्रियोदय निबन्धमाला" पुस्तक का गुजराती रूपान्तर भी प्रकाशित हुआ है।
७. प्रियोदय जैन-स्तुति
८. प्रियोदय दृष्टान्त माला (प्रथम भाग)
९. प्रियोदय चन्द्रिका
१०. आगमो में तीर्थंकर चरित्र।

मुनि श्री जी गृहस्थ-अवस्था में भी तथा व्यापारिक काम-काज में न्याय प्रेमी, दयावान् एवं विवेकी रहे है। जैसा कि बिरमावल के और उनके आस पास के गांवों के गरीब किसान लोगों ने मेरे सामने आपके सम्बन्ध में आप की ईमानदारी का और नेक नीयत का वर्णन किया है।

मुनि श्री जी अपनी सभी प्रकार की साधु-क्रियाओं की साधना करते हुए साहित्य-अध्यवसाय में ही दिन-रात तल्लीन रहते हैं और इस प्रकार साहित्य-आराधना के साथ साथ साहित्य-रचना भी किया करते हैं।

अपनी आत्म-साधना में संलग्न होकर "ज्ञान-दर्शन चारित्र" की ओर ही आपका परम लक्ष्य संनिहित है। ऐसे मुनिराज द्वारा लिखित 'आगमो में तीर्थंकर चरित्र' में आपका यह जीवन-परिचय दिया जाना पाठक-वर्ग को अवश्यमेव रुचिकर प्रतीत होगा, ऐसी आशा है।

संवत् २०२० में अजमेर में हुए अधिकारी मुनिवर सम्मेलन में निर्मित इतिहास-समिति के सदस्य के रूप में आपका भी चुनाव किया गया है।

जैन-समाज को महाराज साहब से अच्छी आशाएं हैं, विश्वास है कि वे अवश्यमेव सफल होंगी, इति शुभम्।

विनीत —

रतनलाल संघवी

आगमों में तीर्थंकर चरित्र

आदीश्वरं मौनधरं जिनेन्द्रं ।
नाभेःसुतं सौख्यकरं मुनीन्द्रम् ॥
वन्दे तु देवं वृषभं पवित्रम् ।
तीर्थंकरम् पारकरं जनानाम् ॥

जनों को पार करनेवाले जो तीर्थंकर हैं उन मौनधारी नाभिपुत्र सौख्यकर पवित्र ऋषभ मुनीन्द्र जिनेन्द्रदेव आदीश्वर भगवान को प्रणाम करता हूँ ।

भगवान् ऋषभदेव

जैन संस्कृति भारत की नहीं विश्व की एक मौलिक संस्कृति है। इस संस्कृति के बीज वर्तमान इतिहास की परिधि से बहुत परे प्राचीनतम भारत की मूल संस्कृति में हैं। सिन्धु उपत्यका की खुदाई से प्राप्त होने वाली सामग्री से इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि आर्यो के भारत में आगमन के पूर्व भी यहाँ एक विशिष्ट सभ्यता प्रचलित थी। इससे यह अनुमान मिथ्या सिद्ध हो जाता है कि भारत में आदि सभ्यता का दर्शन वेदकाल से ही होता है। आर्यों के आने के पहले प्राग्वैदिक संस्कृति के ज्ञान के लिए भी विद्वानों को साधन उपलब्ध हो गये हैं। उनसे यह सिद्ध होता है कि उस समय में सर्वोपरि भारत में एक प्राचीन सभ्य दार्शनिक और विशेषतया नैतिक सदाचार व कठिन तपश्चर्या वाला श्रमण धर्म–जैन धर्म भी विद्यमान था।

प्राचीन काल से भारत वर्ष में दो प्रकार की विचारधाराएँ चली आ रही है। इन विचार धाराओं को 'समण' और 'ब्राह्मण' शब्दों से प्रकट किया जाता है। 'समण' प्राकृत का शब्द है। इसके संस्कृत रूप 'श्रमण' 'समन' और शमन होते हैं। 'श्रमण' शब्द इस बात को प्रकट करता है कि व्यक्ति अपना विकास अपने ही श्रम से कर सकता है। विकास–पतन, सुख–दुःख, हानि–लाभ और उत्कर्ष–अपकर्ष के लिये व्यक्ति स्वयं उत्तरदायी है–"अप्पा कत्ता विकत्ताय दुहाण य सुहाण य" कोई दूसरा व्यक्ति उसका उद्धार या अपकार नहीं कर सकता। इस तरह आत्मा की शक्ति पर ही अवलम्बित रह कर पुरुषार्थ की प्रेरणा देने वाली संस्कृति श्रमण संस्कृति कही जाती है। 'समन' शब्द का अर्थ है, समान भाव रखने वाला। जो संस्कृति सब प्राणियों को आत्मवत् समझने की शिक्षा देती है, जो सब आत्माओं को समान अधिकार देती है, जिसमें वर्गगत या जातपांति गत भेद के लिये कोई स्थान नहीं है। वह 'समन' संस्कृति है। 'शमन' का अर्थ है, अपनी वृत्तियों को शांत रखना। इस तरह व्यक्ति तथा समाज का कल्याण श्रम सम और शम रूप तीन तत्वों पर अवलम्बित है। इन तीनों को सूचित करने वाली विशेषता 'श्रमण संस्कृति' के नाम से पहचानी

जाती है। इस महान संस्कृति के आद्य प्रवर्तक थे भगवान् ऋषभदेव ! ये मानव जाति के सर्व प्रथम उद्धारक थे। ये न केवल जैन धर्म की बल्कि विश्वविभूति थे। ये मानव जाति के आदि गुरु एवं आदि उपदेशक थे। सारा विश्व इनका ऋणी है।

भगवान् ऋषभदेव केवल जैनों के ही भगवान् थे, ऐसा नहीं। किन्तु जैनेतर ग्रन्थों में भी इस महामानव को आदर की दृष्टि से देखा है। आइये ! भगवान् ऋषभ के विषय में जैनेतर ग्रन्थ क्या कहते है–

(१) अठारह पुराण 'महर्षि व्यास' के द्वारा रचित माने जाते हैं। इनके द्वारा रचित 'शिवपुराण' में भगवान् ऋषभदेव का उल्लेख इस प्रकार से किया गया है–

कैलासे पर्वते रम्ये, वृषभोऽयं जिनेश्वरः।
चकार स्वावतारं च, सवज्ञः सर्वगः शिवः॥

अर्थात्–केवलज्ञान द्वारा सर्व व्यापी, कल्याणस्वरूप, सर्वज्ञानी जिनेश्वर ऋषभदेव सुन्दर कैलास पर्वत पर उतरे।

ब्रह्माण्ड पुराण में इस प्रकार लिखा है–

नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं, मरुदेव्यां मनोहरम्।
रिषभं क्षत्रियज्येष्टं सर्वं क्षत्रस्य पूर्वजम्॥
रिषभात् भरतो जज्ञे, वीरः पुत्र शताग्रजो-।
अभिषिञ्चय भरतं राज्ये, महाप्रव्रज्यामास्थितः॥

'इह हि इक्ष्वाकुकुल वंशोद्भवेन नाभिसुतेन मरुदेव्याः नन्दनेन महादेवेन रिषभेण दश प्रकारो धर्मः स्वयमेवाचीर्णः केवलज्ञानलाभाच्च प्रवर्तितः''।

अर्थात्–नाभिराजा और मरुदेवी रानी से मनोहर क्षत्रियवंश का पूर्वज 'रिषभ' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ऋषभदेव के सौ पुत्रों में सबसे बड़ा पुत्र शूरवीर भरत हुआ। ऋषभदेव भरत को राज्यारूढ़ करके प्रव्रजित हो गये। इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न नाभिराजा और मरुदेवी के पुत्र ऋषभ ने क्षमा-मार्दव आदि दस प्रकार का धर्म स्वयं धारण किया और केवल ज्ञान पाकर उसका प्रचार किया।

स्कन्द पुराण में भी लिखा है–

आदित्यप्रमुखाः सर्वे, बद्धाञ्जलय ईहशम् ।
ध्यायन्ति भावतो नित्यं, यदंघ्रियुग नीरजम् ॥
परमात्मानमात्मानं, लसत्केवलनिर्मलम् ।
निरञ्जननिराकारं, रिषभन्तु महारिषिम् ॥

भावार्थ--ऋषभदेव परमात्मा, केवलज्ञानी, निरंजन, निराकार और महर्षि हैं। ऐसे ऋषभदेव के चरण युगल का आदित्य आदि सुर-नर भावपूर्वक अंजलि जोड़कर ध्यान करते हैं।

(२) मनुस्मृति में मनु ने कहा है

मरुदेवी च नाभिश्च, भरते कुलसत्तमाः ।
अष्टमो मरुदेव्यां तु, नाभेजति उरुक्रमः ॥
दर्शयन् वर्त्म वीराणां, सुरासुरनमस्कृतः ।
नीतित्रितयकर्ता यो, युगादौ प्रथमो जिनः ॥

भावार्थ—इस भारतवर्ष में नाभिराय नाम के कुलकर हुए। उन नाभिराय के मरु देवी के उदर से मोक्ष मार्ग को दिखाने वाले सुर–असुर द्वारा पूजित तीन नीतियों के विधाता प्रथम जिनेश्वर अर्थात् ऋषभदेव सत युग के प्रारम्भ में हुए।

'ऋषभ' शब्द के सम्बन्ध में शंका को स्थान ही नहीं है। वाचस्पति कोष में 'ऋषभदेव का अर्थ जिनदेव' किया है और शब्दार्थ चिन्तामणि में 'भगवदवतारभेदे आदि जिने' अर्थात् भगवान का अवतार और प्रथम जिनेश्वर किया गया है।

इसके अतिरिक्त 'भागवतपुराण' के पांचवे स्कन्ध के चौथे, पांचवे और छठे अध्याय में प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव को आठवां अवतार बतलाकर उनका विस्तृत वर्णन किया है। भागवत पुराण में यह लिखा है कि सृष्टि की आदि में ब्रह्म ने स्वयम्भू, मनु और सत्यरूपा को उत्पन्न किया। ऋषभदेव इनकी पांचवीं पीढ़ी में उत्पन्न हुए। इन्हीं ऋषभदेव ने जैन धर्म का प्रचार किया। इस पर से यदि हम यह अनुमान करें कि प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव मानव जाति के आदि गुरु थे, तो हमारा विश्वास है कि इस कथन में कोई अत्युक्ति न होगी।

(३) दुनियां के अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि आधुनिक उपलब्ध समस्त ग्रन्थों में वेद सब से प्राचीन हैं। उन प्राचीन वेद ग्रन्थों में भी भगवान ऋषभदेव का ससम्मान उल्लेख किया है। ऋग्वेद में कहा है–

आदित्या त्वमसि आदित्यसद् आसीद, अस्त आद्या वृपभोतरीक्ष जमिमीते वारिमाणम्। पृथिव्याः आसीत् विश्वा भुवनानि समाडिवश्वे तानि वरुणस्सव्रतानि।

अर्थ-तू अखण्ड पृथ्वी मण्डल का सार त्वचा स्वरूप है। पृथ्वीतल का भूषण है। दिव्य ज्ञान के द्वारा आकाश को नापता है ऐसे हैं वृषभनाथ सम्राट् ! इस संसार में जगरक्षक व्रतों का प्रचार करो।

ॐ नमो अर्हतो वृपभो ॐ ऋषभं पवित्रं पुरु हुत मध्वरं यज्ञेषु नग्नं परमं माहसं स्तुतं वारं शत्रु जयन्तं पशुरिन्द्र माहु रिति स्वाहा।

इत्यादि बहुत से वेद मंत्रों में भी भगवान ऋषभदेव का उल्लेख है।

इससे सिद्ध होता है कि भगवान ऋषभदेव केवल जैनों के भगवान नहीं थे अपितु विश्व मान्य महामानव थे। इस महामानव ने भोगभूमि में पले हुए लोगों को कर्म की शिक्षा दी। उन्होंने पुरुषार्थ का पाठ सिखाया। स्त्रियों और पुरुषों को चौंसठ और बहत्तर कलाओं का शिक्षण दिया। अक्षर ज्ञान और लिपि-विज्ञान की शिक्षा दी। असि, मसि, और कृषि के शिक्षण द्वारा उन्होंने मानवजाति को उन महान् सङ्कट से उबार लिया। जनता की आवश्यकताएँ अब उसके पुरुषार्थ द्वारा पूर्ण होने लगी। इससे जनता ने सुख शांति का अनुभव किया। इस रूप में भगवान ऋषभदेव मानवजाति के त्राता हैं, संरक्षक हैं, आदि गुरु हैं और सर्व प्रथम उपदेष्टा है। इसीलिए वे 'आदिनाथ' कहलाते हैं।

भगवान ऋषभदेव के चरित्र प्राचीनतम जैन आगम जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, समवायांग सूत्र कल्प सूत्र, आवश्यक निर्युक्ति, विशेषावश्यक भाष्य आवश्यक चूर्णि, आवश्यक हारिभद्रीय, आवश्यक मलयगिरि में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने भी अपने त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र में विशद रूप से भगवान ऋषभदेव का चरित्र आलेखित किया है। इन समस्त ग्रन्थों को सामने रखकर यह आदिनाथ चरित्र तैयार किया है।

भगवान ऋषभदेव के तेरह भवों का वर्णन आवश्यक चूर्णि व आवश्यक हारिभद्रीय एवं आवश्यक निर्युक्ति में इस प्रकार उपलब्ध है—

धनसत्थवाहघोसण जइगमण अडविवास ठाणं च।
वहुवोलीणेवासे चिंता घयदान मासि तया॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० १७१

अर्थ—धन्य सार्थवाह की घोषणा, साथ में यति का गमन, वर्षाकाल में अटवि में निवास, वर्षाकाल की समाप्ति के समय धन्य की चिन्ता, मुनि को घृत का दान व सम्यक्त्व की प्राप्ति।

इसकी कथा इस प्रकार है—

तेणं कालेणं तेणं समएणं अवरविदेहवासे धणो नाम सत्थवाहो होत्था। सो खितिपतिट्ठिआओ नयराओ वसन्तपुरं पट्ठिओ वणिज्जेणं घोसणयं कारेइ—'जो मए सद्धिं जाइ तस्साह सुदं तं वहामिति तं जहा—खाणेण वा पाणेण वा वत्थेण वा पत्तेण वा ओसहेण वा भेसज्जेण वा अएणेण वा केणइ जो जेण विसूरइत्ति तं च सोऊण—वहवे तडियकप्पडियादओ पयट्टंति विभासा जाव तेण समं गच्छो साहूण संपट्ठितो, को पुण कालो? चरमनिदाघो, सो य सत्थो जाहे अडविमज्झे संपत्तो ताहे वासरतो जाओ। ताहे सो सत्थवाहो अइदुग्गमा पंथत्तिकाउं तत्थेव सत्थनिवेसं काउं वासावासं ठितो, तंमि य ठिते सव्वो सत्थो ठितो। जाहे य तेसिं सत्थिल्लियाणं भोयणं णिट्ठियं ताहे कंदमूलफलानि समुद्दिसिमारद्धा तत्थ साहुणो दुक्खिया जदि कहवि अहापवत्ताणि लभंति ताहे गेण्हंति। एवं काले वच्चंते थोवावसेसे वासारते ताहे तस्स धणस्स चिंता जाता — को एत्थ सत्थे दुक्खिओत्ति? ताहे सरिअं जहा मए समं साहुणो आगया। तेसिं च कंदाइं न कप्पंति। ते दुक्खिता तवस्सिणो, कल्लं देमित्ति पभाए निमंतिता भणन्ति — जं परं अम्ह कप्पिअं होज्जा तं गेण्हेज्जामो। किं पुण तुब्भं कप्पति? जं अकयमकारियं भिक्खामेत्तं। जं वा सिणेहादि, तो तेण साहूण घयं फासुयं विउलं दाणं दिएणं। सो य अहाउयं पालेत्ता कालमासे कालं किच्चा तेण दाणफलेण उत्तरकुराए मणूसो जाओ।

—आवश्यक हारिभद्रीय

भावार्थ—उस काल और उस समय में अपर विदेह वर्ष में 'धन्य' नाम का सार्थवाह रहता था। उसने क्षितिप्रतिष्ठित नगर से वसन्तपुर व्यापारार्थ जाने के लिये यह घोषणा करवाई कि—'जो कोई मेरे साथ व्यापारार्थ चलना चाहे, मैं उसे सब प्रकार की सहायता दूँगा। खान, पान, वस्त्र पात्र औषध और भैषज्य या अन्य कोई भी वस्तु की जिस किसी को आवश्यकता होगी उन सब की मैं पूर्ति करूँगा।' इस घोषणा से बहुत से वस्त्रादि का व्यापार करने वाले लोग धन्ना सार्थवाह के साथ चलने को तय्यार हो गये। धन्ना सार्थवाह ने अपने साथियों के साथ वसन्तपुर के लिए प्रस्थान कर दिया। उनके साथ कुछ मुनि भी हो गये। जिस समय धन्य सार्थवाह ने प्रस्थान किया था, वह गर्मी की ऋतु का अन्तिम काल था। जब सार्थवाह ने अटवी में प्रवेश किया, तब वर्षाकाल प्रारम्भ हो चुका था। वर्षा के कारण मार्ग अति दुर्गम हो गया। 'तब धन्य सार्थवाह' ने उसी अटवी में

अपना पड़ाव डाल दिया। सार्थवाह के साथ अन्य लोगों ने अपना पड़ाव वहीं डाल दिया वर्षाकाल में जब सार्थवाह के काफिले के पास की खाद्य सामग्री समाप्त हो गई, तब वे लोग कंद, मूल, फल खाकर अपना समय बिताने लगे। इस कारण साथ के मुनि बड़े दुःखी थे। काफिले से जब कभी निर्दोष आहर प्राप्त होता, वे उसे ग्रहण कर अपने संयम की परिपालना करते थे। इस प्रकार काल व्यतीत करते हुए जब वर्षाकाल का कुछ भाग शेष रहा, तब एक समय सेठ के मन में विचार आया कि "मेरे दल में सब से दुःखी कौन है ? यह सोचते-सोचते उसे साथ में आने वाले मुनियों का ध्यान आया। उसने अपने आपको कहा— मेरे साथ आने वाले मुनियों को तो कंद, मूल, फल लेना नहीं कल्पता। वे तपस्वी ही मेरे काफिले में सब से अधिक दुखी हैं। अतः मैं कल प्रातःकाल ही उन्हें आहार दूंगा।' प्रातः वह मुनि के पास जाकर बोला—"आप मेरे घर आहार ग्रहण करे " "मुनियों ने कहा—हम हमारे कल्प के अनुसार तुम्हारे यहाँ आहार ग्रहण करेंगे।" सार्थवाह ने सप्रश्न कहा—"आपका कल्प क्या है ? मुनियों ने समाधान की भाषा में कहा—कृत, कारित और अनुमोदित आहार हम नहीं लेते। किन्तु भिक्षा चर्या से जो निर्दोष आहार मिलता है, वही ग्रहण करते है।" किसी समय मुनि सार्थवाह के निवास स्थान पर पधारे। उस अवसर पर धन्य सार्थवाह ने निर्दोष और विपुल मात्रा में घी मुनियों को वहराया और पुण्य प्रकृति का बन्ध किया। वह धन्य सार्थवाह आयु की समाप्ति पर काल करके उस दान के फल से उत्तरकुरु क्षेत्र में तीन पल्योपम की आयु वाला युगलिया हुआ।

आग के भवों को बताने वाली गाथा इस प्रकार है—

> उत्तरकुरु सोहम्मे महा विदेहे महब्बलो राया।
> ईसाणे ललियंगो महाविदेहे वइरजंघो ॥ १ ॥

उत्तरकुरु में जन्म, वहां से सौधर्मकल्प में देवत्व, महाविदेह क्षेत्र में महाबल राजा, ईशान देव लोक में ललितांगदेव और महाविदेह क्षेत्र में वज्रजंघ हुआ।

जिनका वर्णन इस प्रकार है—

तओ आउक्खएणं सोहम्मे कप्पे देवो उववण्णो, ततो चइऊण इहेव जंबूदीवे अवरविदेहे गंधिलावती विजए वेयड्ढपव्वए गंधारजणवए गन्धसमिद्धे विज्जाहरणगरे अतिबलरण्णो नत्ता सयबलराइणो पुत्तो महाबलो नाम राया जाओ, तत्थ सुबुद्धिणा अमच्चेणं सावएण पिअवयस्सेण

णाडयपेक्खा अक्खित्तमणो संबोहिओ मासावसेसाऊ बावीसदिणे भत्तपच्चक्खाणं काउं मरिऊण ईसाणकप्पे सिरिप्पभे विमाणे ललियंगओ नाम देवो जाओ ततो चइऊण इहेव जम्बूदीवे दीवे पुक्खलावइविजए लोहग्गलणगरसामी वइरजंघो नाम राजा जाओ। तत्थ सभारिओ पच्छिमे वए पव्वयामित्ति चिंततो पुत्तेण वासघरे जोगधूव धूविए मारिओ। मरिऊण उत्तरकुराए सभारिओ मिहुणगो जाओ।

युगलिये का आयुष्य पूर्णकर धन्ना सेठ का जीव सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से चवकर धन्यसार्थवाह का जीव इसी जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह क्षेत्र के गन्धिलावती विजय में वैताढ्य पर्वत के गान्धारजनपद में गन्ध समृद्ध नामक विद्याधर नगर में अतिबल नाम के राजा का पौत्र एवं शतबल नाम के राजा का पुत्र महाबल नाम का राजा हुआ। उसका प्रियवयस्क सुबुद्धि नामक अमात्य पुत्र था। वह श्रावक था। उसने नाटक के अवसर महाबल को प्रतिबोधित किया। अपनी आयु का एक महीना अवशेष जानकर बाईस दिन का अनशन ग्रहण कर देह का त्याग किया और मरकर श्री प्रभ विमान में ललितांग नामक देव हुआ।

वहाँ से चवकर धन्यसार्थवाह का जीव इसी जम्बूद्वीप में लोहार्गलनगर का स्वामी वज्रजंघ नाम का राजा हुआ 'प्रातःकाल पुत्र को राज्य देकर दीक्षा अंगीकार कर लेंगे' – ऐसा विचार कर राजा और रानी अपने वासगृह में सो गये। राजदम्पति को सोये हुए जानकर राजपुत्र ने विष-मिश्रित धूआँ छोड़ दिया। जिससे राजा और रानी दोनों एक साथ मर गए। वे दोनों पति-पत्नी मर कर उत्तरकुरु क्षेत्र में युगलिये हुए।

उत्तरकुरु सोहम्मे महाविदेहे तेगिच्छियस्स तत्थ सुओ।
रायसुय सेट्ठिमच्चासत्थवाहसुया वयंसा से ॥ १७२ ॥
विज्जसुअस्स य गेहे किमिकुट्ठोवद्दुअं जइं दट्ठुं।
बिंति य ते विज्जसुयं करेहि एअस्स तेगिच्छं ॥ १७३ ॥
तिल्लं तेगिच्छसुओ कंबलगं चंदणं च वाणियओ।
दाउं अभिणिक्खंतो तेणेव भवेण अंत गडो ॥ १७४ ॥
साहुं तिगिच्छिऊणं सामण्णं देवलोगगमणं च।
पुण्डरगिणिए उ चुया तओ सुया वइरसेणस्स ॥ १७५ ॥

महाविदेह क्षेत्र में वैद्यपुत्र हुआ। वहाँ उसके राजपुत्र, श्रेष्ठिपुत्र, अमात्यपुत्र और सार्थवाह पुत्र मित्र थे। वे मित्र एक बार वैद्यपुत्र के घर वार्तालाप कर रहे थे। उस समय आहार के लिए पधारे हुए कृमि-कुष्टरोग से युक्त मुनि को देखकर उन मित्रों ने वैद्यपुत्र से कहा—"वैद्यपुत्र! तुम इस मुनि की चिकित्सा करो।" उत्तर में वैद्यपुत्र बोला—"इनकी चिकित्सा के लिए मेरे पास तैल है" तब मित्रों ने चन्दन और कम्बल एक वणिक से प्राप्त किया। वणिक ने चन्दन और कम्बल देकर मुनि के समीप प्रव्रज्या ग्रहण की और उसी भव में कर्मों का अंत किया। उन मित्रों ने साधु की चिकित्सा कर प्रवज्या ग्रहण की और देवलोक गमन किया। देवलोक से चवकर वे पुण्डरकिणी के राजा वज्रसेन के पुत्र हुए।

इसका कथांश इस प्रकार है—

ततो चइऊण महाविदेहे वासे खिइपइट्ठिए णगरे वेज्जपुत्तो आयाओ। जद्दिवसं च जातो तद्दिवसमेगाहजातका से इमे चत्तारि वयंसगा तं जहा—रायपुत्तो सेट्ठिपुत्तो अमच्चपुत्तो सत्थवाह-पुत्तोत्ति। संवड्ढिया ते अण्णया कयाइ तस्स वेज्जस्स घरे एगओ सव्वे सन्निसण्णा अच्छंति। तत्थ साहू महप्पा सो किमिकुट्ठेण गहिओ अइगतो भिक्खस्स। तेहिं सप्पणयं सहासं सो भण्णति—तुब्भेहिं नाम सव्वोलोगो खायव्वो तुब्भेहिं तवस्सिस्स वा अणाहस्स वा किरिया कायव्वा सो भणति—करेज्जामि किं पुण? ममोसहाणि णत्थि। ते भणंति—अम्हे मोल्लं देमो। किं ओसहं जाइज्जउ? सो भणति कंबलरयणं गोसीसचंदणं च। तइयं सहस्सपागं तिल्लं तं मम अत्थि। ताहे मग्गिउं पवत्ता। आगमियं च णेहिं जहा—अमुगस्स वाणियगस्स अत्थि दोन्नि एयाणि। ते गया तस्ससगासं दो लक्खाणि घेत्तु, वाणिअओ संभंतो भणति- किं देमि? ते भणंति—कंबलरयणं गोसीसचंदणं च देहि। तेण भण्णति- किं एतेहिं कज्जं? भणंति—साहुस्स किरिया कायव्वा तेण भणितं— अलाहि मम मोल्लेणं इहरहा एव गेण्हह। करेह किरियं। ममवि धम्मो होउत्ति। सो वाणियगो चिंतेइ—जइ ताव एतेसिं बालाणं एरिसा सद्धा धम्म-स्सुवरिं। ममनाम मंदपुण्णस्स इहलोगपडिबद्धस्स नत्थि। सो संवेगमावण्णो तहारूवाणं थेराणं अंतिए पव्वइओ सिद्धो।

इमेवि घेत्तूण ताणि ओसहाणि गता तस्स साहुणो पासं जत्थ सो उज्जाणे पडिमं ठिओ। ते तं पडिमं ठिअं वंदिऊण अणुण्णवेंति अणुजाणह भगवं। अम्हे तुम्हं धम्मविग्घं काउं उवट्ठिआ। ताहे तेण तेल्लेण सो साहू अब्भंगिओ। तं च तिल्लं रोमकूवेहिं सव्वं अइगतं तम्मि

य अइगए किमिओ सव्वे संखुद्धा। तेहिं चलंतेहिं तस्स साहुणो अतीव वेयणा पाउब्भूया। ताहे ते निग्गते दट्ठूण कंबलरयणेण सो पाउओ साहू। तं चेव तेल्लं उण्हवीरियं। किमिया तत्थ लग्गा। ताहे पुव्वाणीय गोकडेवरे पप्फोडेंति। ते सव्वे पडिया ताहे सो साहू चंदणेण लित्तो। ततो समासत्थो। एवेक्कसिं दो तिण्णिवारे अब्भंगेऊण सो साहू तेहिं नीरोगो कओ। पढमं मक्खिज्जति। पच्छा आलिपति गोसीसचंदणेण पुणो मक्खिज्जइ। एवेताए परिवाडिए पढमब्भंगे तयागया णिग्गया बिइयाए मंसगया तइयाए अट्ठिगया बेंदिया णिग्गया। ततो संरोहणीए ओसहीए कणगवण्णो जाओ। ताहे खामित्ता पडिगता। ते पच्छा साहूजाता। अहाउयं पालइत्ता तम्मूलागं पंचवि जणा अच्चुए उववण्णा। ततो चइऊण इहेव जंबूदीवे पुव्वविदेहे पुक्खलावइविजए पुण्डरगिणीए नयरीए वेरसेणस्स रण्णो धारिणीए देवीए उयरे पढमो वइरनाभो नाम पुत्तो जाओ। जों से वेज्जपुत्तो चक्कवट्टी आगतो। अवसेसा कमेण बाहु सुबाहु पीढ महापीढत्ति। वइरसेणो पव्वइओ। सो य तित्थंकरो जाओ। इयरेवि संवड्ढिया पंचलक्खणे भोए भुंजंति। जद्दिवसं वइरसेणस्स केवलनाणं उप्पण्णं तद्दिवसं वइर णाभस्स चक्करयणं समुप्पण्णं। वइरो चक्की जाओ। तेणं साहुवेयावच्चेणं चक्कवट्टी भोया उदिण्णा। अवसेसा चत्तारि मंडलिया रायाणो। तत्थ वइरणाभचक्कवट्टिस्स चउरासीति पुव्वलक्खा सव्वाउगं तत्थकुमारो तीसं मंडलिओ सोलस चउव्वीस महाराया चोद्दस सामण्णपरिआओ। एवं चउरासीइ सव्वाउयं। भोगे भुंजंता विहरंति। इओ य तित्थयर समोसरणं। सो पिउपायमूले चउहिवि सहोदरेहिं सहिओ पव्वइओ। तत्थ वइरणाभेणं चउद्दस्स पुव्वा अहिज्जिया। सेसा एक्कारसंगवी चउरो। तत्थ बाहू तेसिं वेयावच्चं करेति। जो सुबाहु सो साहुणो वीसामेति एवं ते करेंते वइरणाभो भगवं अणुवूहइ-अहो सुलद्धं जम्म जीविअ फलं जं साहूणं वेयावच्चं कीरइ। परिसंता वा साहुणो वीसामिज्जंति। एवं पसंसइ एवं पसंसिज्जंतेसु तेसु तेसिं दोण्हं पच्छिमाणं अप्पत्तिअं भवइ। अम्हे सज्झायंता न पसंसिज्जामो। जो करेइ सो सो पसंसिज्जइ। सव्वो (च्चो) लोगववहारोत्ति। वइरणाभेणं य विसुद्धपरिणामेण तित्थगरणामगोत्तं कम्मं बद्धं ति॥

गाथाः—पढमित्थ वइरणाभो बाहु सुबाहू य पीढमहपीढे।
तेसिं पिआ तित्थयरो णिक्खन्ता तेऽवि तत्थेव॥ १७६॥
पढमो चउद्दसपुव्वी सेसा इक्कासंगविउ चउरो।
बीओ वेयावच्चं किइकम्मं तइओ कासी॥ १७७॥

भोगफलं बाहुबलं पसंसणा जिट्ठ इयर अचियत्तं ।
पढमो तित्थयरत्तं वीसहि ठाणेहि कासी य ॥ १७८ ॥

अर्थ-सौधर्म देवलोक से चवकर धन्यसार्थवाह का जीव महाविदेह क्षेत्र में क्षितिप्रतिष्ठित नाम के नगर में वैद्य के पुत्र रूप में जन्मा। जिस दिन वैद्यपुत्र का जन्म हुआ उसी दिन चार बालकों ने नगर में जन्म ग्रहण किया। उनमें एक राजपुत्र, दूसरा श्रेष्ठीपुत्र, तीसरा अमात्यपुत्र और चौथा सार्थवाहपुत्र था। चारों बालक वैद्यपुत्र के मित्र थे। वे साथ साथ ही संवर्द्धित हुए। अन्यदा किसी समय वे मित्र वैद्यपुत्र के घर एक साथ बैठे हुए थे। उस समय एक महान् साधु जो कृमि-कुष्ट रोग से ग्रसित थे, वे आहार के लिए वैद्यपुत्र के घर पधारे। उन रोग ग्रस्त मुनि को देखकर मित्रों ने वैद्यपुत्र से कहा-"मित्र प्रवर! क्या तुम लोगों से लेना ही जानते हो! तुम्हें तपस्वी की या अनाथ व्यक्ति की भी अवश्य चिकित्सा करनी चाहिए।" वैद्यपुत्र बोला-"मैं अवश्य चिकित्सा करूंगा किन्तु मेरे पास वह औषधि नहीं है।" तब वे मित्र बोले-"हम औषधि का मूल्य देंगे। बताइए-किस औषधि की आवश्यकता है।" उत्तर में वैद्यपुत्र बोला-"मुनि की चिकित्सा में रत्न कम्बल, गोशीर्ष-चन्दन व सहस्त्रपाक तैल की अपेक्षा रहेगी। सहस्त्रपाक तैल मेरे पास है। शेष दो चीजें मेरे पास नहीं हैं।" "ये दो चीजें हम लाकर देंगे" ऐसा कहकर वे मित्र बाजार में आकर उन चीजों की खोज करने लगे। खोज करते हुए उन्हें पता लगा कि अमुक वणिक के यहां ये दो चीजें हैं। वे दो लाख रुपये लेकर उस दुकानदार की दुकान पर गये वणिक उन मित्रों को अपनी दुकान पर आया देख बोला-"आपको मैं क्या दूँ?" उत्तर में मित्रों ने कहा-"हमें गोशीर्षचन्दन और रत्नकम्बल दो।" वणिक ने कहा-"आप इन चीजों को क्या करेंगे।" उत्तर में मित्रों ने कहा-"इन चीजों से हम साधु की चिकित्सा करेंगे।" वणिक बोला-"यदि ऐसा ही है, तो मुझे इन चीजों की कीमत नहीं चाहिए। आप इन्हें लेजाइए और मुनि की चिकित्सा करिये। ऐसे शुभ कार्य से मुझे भी धर्म की प्राप्ति होगी।" वह वृद्ध मन में सोचने लगा-ये बालक होकर के भी धर्म के प्रति इतनी आस्था रखते हैं, तो मुझ जैसे जरा-जर्जरित को क्यों नहीं धर्म का आचरण करना चाहिए? ऐसा सोचकर उसने तथारूप स्थविर के पास दीक्षा ग्रहण की और कर्मों का अन्त किया।

औषधि की सामग्री लेकर वे मित्र वैद्यपुत्र के साथ उद्यान में गये। जहाँ वे मुनिराज ध्यान कर रहे थे। उन कायोत्सर्गरत मुनिको नमस्कार करके बोले-"हे भगवान्! आज चिकित्सा कार्य से हम आपके धर्म कार्य में विघ्न करेंगे। आप एतद् विषयक आज्ञा देकर हम पर अनुग्रह कीजिए।"

ऐसा कहकर उन्होंने सहस्त्रपाक तैल से मुनि के शरीर पर मालिश की। वह तैल उनकी नस-नस में फैल गया। तैल से व्याकुल हुए कृमि मुनि के शरीर से निकलने लगे। कीड़ों के शरीर से निकलने के कारण मुनि को अत्यन्त वेदना होने लगी। कीड़ों को निकलते देख वैद्यपुत्र ने मुनि को रत्नकम्बल से आच्छादित कर दिया। तैल अत्यन्त उष्ण था और कम्बल शीतल। कम्बल की शीतलता के कारण सारे कीड़े उसमें चिपक गये। उसके बाद कीड़ों से युक्त रत्नकम्बल को मृत गाय की लाश पर रख दिया। जिससे वे तमाम कीड़े बिना मरे मृत गाय की लाश में आ गये। इसके बाद वैद्यपुत्र ने मुनि के शरीर पर गोशीर्ष चन्दन का लेप कर मुनि को आश्वस्त किया। इसी क्रम से उसने दो-तीन बार तैल का मर्दन कर मुनि को नीरोग किया। प्रथम जिस तरह तैल मालिश कर रत्नकम्बल को ओढाया और गोशीर्षचन्दन का लेप किया उसी प्रकार की तीन बार प्रक्रिया की। इस प्रक्रिया से पहले चमड़ के भीतर के कीड़े निकले। दूसरी बार की मालिश से मांस के भीतर के बहुतसे कीड़े निकल पड़े। तीसरी बार के तैल मर्दन से हड्डियों के भीतर के कीड़े निकल पड़े। उन कीड़ों को बिना कष्ट दिये मृत गाय कलेवर में डाल दिये। इस प्रकार जब मुनि का शरीर कीटाणुओं से रहित हो गया। तब उसने उनके शरीर पर संरोहणी नामकी औषधि लगाई, जिससे उनका शरीर कंचन वर्णी हो गया। इस प्रकार की चिकित्सा कर अन्त में उन मित्रों ने मुनि से क्षमा मांगी और अपने स्थान पर चले आये। पश्चात् कुछ समय के बाद उन पांचों मित्रों ने दीक्षा ग्रहण की और मृत्यु के पश्चात् वे पांचों मित्र अच्युत देवलोक में उत्पन्न हुए।

वहां से चवकर वे इसी जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह के पुष्कलावतीविजय की राजधानी पुण्डरिगिणी नगरी में वज्रसेन राजा की रानी धारिणी के उदर में पुत्र रूप से उत्पन्न हुए। उन में प्रथम वैद्य पुत्र वज्रनाभ के नाम से चक्रवर्ती हुआ। शेष मित्र क्रमश: बाहु, सुबाहु, पीठ और महापीठ के नाम से हुए। राजा वज्रसेन ने दीक्षा ग्रहण की और वे तीर्थङ्कर बने। सभी बालक पांच प्रकार के भोग भोगते हुए बढ़ने लगे। जिस दिन वज्रसेन तीर्थङ्कर को केवल ज्ञान हुआ, उसी दिन वज्रनाभ की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। वज्रनाभ चक्रवर्ती हुआ। उसने पूर्व जन्म के मुनि की वैयावृत्य के फलस्वरुप चक्रवर्ती के भोग प्राप्त किये। शेष चारों ने मांडलिक पद प्राप्त किया। वज्रनाभ चक्रवर्ती की ८४ लाख पूर्व की सर्वायु थी। जिसमें तीस लाख पूर्व तक कुमार अवस्था में, सोलह लाख पूर्व मांडलिक अवस्था में, २४ लाख पूर्व चक्रवर्ती पद में और १४ लाख पूर्व श्रमण अवस्था में रहे। इस प्रकार उनकी आयु ८४ लाख पूर्व की थी।

एक बार तीर्थङ्कर वज्रसेन का समवसरण रचा। वज्रनाभ चक्रवर्ती ने अपने पिता के समीप चार सहोदर भाइयों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रव्रज्या लेकर वज्रनाभ मुनि ने चौदहपूर्व का ज्ञान प्राप्त किया। शेष चार मुनियों ने ग्यारह अंग सूत्रों का अध्ययन किया। इन मुनियों में 'बाहू' नाम के जो मुनि थे, वे साधुओं की बड़ी वैयावृत्य करते थे। सुबाहु मुनि परिश्रान्त मुनियों को विश्राम देते थे। इन दोनों मुनियों की सेवा परायणता की वज्रनाभ मुनि बड़ी प्रशंसा करते थे। इनकी प्रशंसा को सुनकर स्वाध्याय ध्यानरत पीठ और महापीठ मुनि के मन में ईर्ष्या-भाव उत्पन्न होने लगा। वे मन ही मन सोचने लगे—"जो उपकार करने वाले हैं, उन्हीं की यहां प्रशंसा होती है। हम दोनों आगम शास्त्र का अध्ययन और ध्यान में लगे रहने से दूसरों का कुछ भी उपकार नहीं कर सके। इस लिए हमारी कौन प्रशंसा करेगा? अथवा सब लोग अपने काम करने वाले को ही ग्रहण करते हैं।" इस प्रकार कपटपूर्ण विचार के फलस्वरूप दोनों ने स्त्री नाम कर्म का उपार्जन किया। बाहू मुनि ने वैयावृत्य से चक्रवर्ती पद का उपार्जन किया। विश्रामण से सुबाहू ने महान् बल प्राप्त करने का कर्म उपार्जित किया। वज्रनाभ मुनि ने बीस स्थानों की विशुद्ध भाव से आराधन कर तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया। इस प्रकार पांचों मुनिराज यशायु को पालकर आयु की समाप्ति पर वे सर्वार्थ सिद्ध विमान में तेतीस सागरोपम की स्थितिवाले अहमिन्द्र देव बने।

हेमचन्द्राचार्य कृत 'त्रिषष्ठी शलाका पुरुष चरित्र' में भगवान ऋषभदेव के तेरह भवों का विस्तृत व रोचक वर्णन किया गया है। जो पाठकों की जानकारी के लिए यहां प्रस्तुत किया जारहा है।

भगवान् ऋषभदेव का प्रथम भव

"जम्बूद्वीप" के पश्चिम महाविदेह में "क्षितिप्रतिष्ठित" नाम का समृद्ध एवं रमणीय नगर था। वहां प्रसन्नचन्द्र[1] नाम का प्रतापी राजा राज्य करता था। वह अपनी महद् ऋद्धियों के कारण इन्द्र की तरह शोभायमान था। वह प्रजा का पुत्र की तरह पालन करता था। उसके राज्य में अपराधियों को उचित दण्ड मिलता था और गुणियों की विशेष पूजा होती थी। उसमें रहने वाले नागरिक अत्यन्त उदार और धर्मप्रेमी थे। लोग बड़े सुखी तन्दुरुस्त व मानवीय गुणों से समृद्ध थे।

उसी नगर में 'धन्य' नाम का श्रेष्ठि रहता था। वह कुबेर से भी अधिक ऋद्धि सम्पन्न था। वह परमदानी और उदार प्रकृति का था। जिस प्रकार अनेक नदियां समुद्र के आश्रित रहती

[1] कल्पसूत्र के अनुसार राजा का नाम "प्रियङ्कर" था।

है उसी प्रकार उस श्रेष्ठी के घर अनेक निराश्रित आश्रय पा रहे थे। वह अपनी सम्पत्ति को परोपकार में ही खर्च करता था। वह सदाचारी और धर्मपरायण था। उसका व्यवसाय दूर-दूर के देशों में था।

एक समय उसने किराणा लेकर वसन्तपुर जाने का निश्चय किया। उसने इसके लिए सारे नगर में उद्घोषणा करवाई कि "धन्य सार्थवाह व्यापार के लिए 'वसन्तपुर' जाने वाले हैं। जिस किसी को वसन्तपुर चलना हो, वह चले। जिस के पास चढ़ने को सवारी नहीं होगी, वे उसे सवारी देंगे। जिसके पास अन्न, वस्त्र तथा व्यापार के लिए धन नहीं है, उसे वे अन्न, वस्त्र तथा व्यापारार्थ धन देंगे। रास्ते में चोर-डाकूओं, व्याघ्र आदि हिंसक प्राणियों से उनका रक्षण करेंगे।" इस प्रकार की घोषणा करवाने के पश्चात् [गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं (ज्ञाता सूत्र अ० नवमा)] गणिम–गिन गिन कर बेचने योग्य नारियल आदि, धरिम–तोल कर बेचने योग्य–घृत आदि, मेय–(पायली आदि में मापकर बेचने योग्य अनाज आदि और परिच्छेद्य–परखने योग्य स्वर्ण आदि चार प्रकार की चीजों से गाड़ी और गाड़े भरे। घर की स्त्रियों ने उनका प्रस्थान मंगल किया। शुभ मुहूर्त में धन्य सार्थवाह रथ पर बैठकर नगर के बाहर चले। सेठ के चलने के समय सेवकों ने भेरी बजाई। भेरी के आवाज को वसन्तपुर निवासियों ने भी सुना और उसे अपने बुलाने का आमंत्रण समझकर वे भी अपने-अपने सामान के साथ तैयार हो गये। और सेठ के पास आगये। सेठ नगर के बाहर उद्यान में आकर ठहरे।

उस समय 'धर्म घोष' नामके एक स्थविर भी अपने शिष्य परिवार के साथ वसन्तपुर जाना चाहते थे। किन्तु मार्ग की कठिनाईयों के कारण वे जा नहीं सकते थे। स्थविर ने जब घोषणा सुनी तो वे अपने शिष्य परिवार के साथ धन्य सार्थवाह के पास आये। धर्मघोष आचार्य को अपने समीप आता देख धन्यसार्थवाह उठ खड़ा हुआ और आचार्य के सन्मुख गया। विनायपूर्वक वन्दन कर उन्हें अपने डेरे पर ले आया और उनसे पधारने का कारण पूछा। आचार्य ने कहा–"हम आपके साथ वसन्तपुर चलना चाहते हैं।" सार्थवाह बोला–"भगवन् ! आज मैं धन्य हूं। आप जैसे महापुरुष के साथ रहने से हमारा दल पवित्र हो जायगा। आपके उपदेशामृत का पान कर हमारे जैसे अनेक व्यक्ति सन्मार्ग की ओर आकृष्ट होंगे। आप अवश्य मेरे साथ पधारें।" उसी समय अपने रसोइये को बुलाकर धन्य ने कहा–"हमारे साथ चलने वाले श्रमणों का पूरा ध्यान रखा जाय और उन्हें आहार-पानी आदि की पूरी सुविधा दी जाय" सार्थवाह की यह आज्ञा सुनते ही आचार्य ने कहा

"धन्य ! हम निर्ग्रन्थ श्रमण हैं। निर्ग्रन्थ श्रमणों को ४२ दोषों से वर्जित आहार लेना ही कल्पता है। वे ४२ दोष इस प्रकार हैं--

आहार सम्बन्धी दोष

आहाकम्मुद्देसिय पूईकम्मे य मीस जाए य।
ठवणा पाहुडियाए पाओअर कीय पामिच्चे ॥ १ ॥
परियट्टिए अभिहडे उब्भिन्न मालोहडे इय।
अच्छिज्जे अणिसिट्ठे अज्झोयरए य सोलसमे ॥ २ ॥

(१) आधाकर्म—किसी खास साधु को मन में रखकर उसके निमित्त से सचित वस्तु को अचित करना या अचित को पकाना आधा कर्म कहलाता है। यह दोष चार प्रकार से लगता है। प्रतिसेवन—आधाकर्मी आहार का सेवन करना। प्रतिश्रवण—आधाकर्मी आहार के लिए निमन्त्रण स्वीकार करना। संवसन-आधाकर्मी आहार सेवन करने वालों के साथ रहना। अनुमोदन—आधाकर्मी आहार भोगने वाले की प्रशंसा करना।

(२) औद्देशिक—सामान्य याचकों को देने की बुद्धि से जो आहारादि तैयार किये जाते हैं, उन्हें औद्दशिक कहते हैं। उनके दो भेद हैं—ओघ और विभाग। भिक्षुओं के लिए अलग तैयार न करते हुए अपने लिये बनते हुए आहार आदि में ही कुछ और मिला देना ओघ है। विवाहादि में याचकों के लिये अलग निकाल कर रख छोड़ना विभाग है। यह उद्दिष्ट, कृत और कर्म के भेद से तीन प्रकार का है। फिर प्रत्येक के उद्देश, समुद्दश, आदेश और समादेश इस तरह चार-चार भेद हैं। किसी खास साधु के लिए बनाया गया आहार अगर वही साधु ले तो आधाकर्म और दूसरा ले तो औद्देशिक। आधाकर्म पहिले से ही किसी खास निमित्त से बनाया जाता है। औद्देशिक साधारण दान के लिए पहिले या बाद में कल्पित किया जाता है।

(३) पूतिकर्म—शुद्ध आहार में आधाकर्मादि का अंश मिल जाना पूतिकर्म है। आधाकर्मी आहार का थोड़ा सा अंश भी शुद्ध और निर्दोप आहार को सदोप बना देता है। शुद्ध चारित्र पालने वाले संयमी के लिए वह अकल्पनीय अर्थात् ग्रहण करने योग्य नहीं है। जिसमें ऐसे आहार का अंश लगा हो, ऐसे वर्तन को भी टालना चाहिए।

(४) मिश्रजात–अपने और साधु के लिए एक साथ पकाया हुआ आहार मिश्रजात कहलाता है। इसके तीन भेद है–यावदर्थिक, पाखंडी मिश्र और साधुमिश्र। जो आहार अपने लिये और सभी याचकों के लिये इकट्ठा बनाया जाय, वह यावदर्थिक है। जो अपने और साधु-संन्यासियों के लिये इकट्ठा बनाया जाय, वह पाखंडी मिश्र है। जो सिर्फ अपने और साधुओं के लिये इकट्ठा किया जाय, वह साधु-मिश्र है।

(५) स्थापन—साधु को देने की इच्छा से कुछ काल के लिये आहार को अलग रख देना स्थापन है।

(६) प्राभृतिका—साधु को विशिष्ट आहार बहराने के लिये जीमनवार या निमंत्रण के समय को आगे पीछे करना।

(७) प्रादुष्करण—देय वस्तु के अन्धेरे में होने पर अग्नि या दीपक आदि का उजाला करके या खिड़की वगैरह खोलकर वस्तु को प्रकाश में लाना अथवा आहारादि को अन्धेरी जगह से प्रकाश वाली जगह में लाना प्रादुष्करण है।

(८) क्रीत—साधु के लिये मोल लिया हुआ आहारादि क्रीत है।

(९) प्रामित्य—साधु के लिये उधार लिया हुआ आहारादि प्रामित्य कहलाता है।

(१०) परिवर्तित साधु के लिये अट्टा-सट्टा करके लिया हुआ आहार परिवर्तित कहलाता है।

(११) अभिहृत—साधु के लिये गृहस्थ द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाया हुआ आहार अभिहृत आहार कहलाता है।

(१२) उद्भिन्न—साधु को घी वगैरह देने के लिये कुप्पी आदि का मुंह (छादण) खोल कर देना उद्भिन्न कहलाता है।

(१३) मालापहृत—उपर नीचे या तिरछी दिशा में जहाँ–आसानी से हाथ न पहुँच सके वहाँ पंजों पर खड़े होकर या निःसरणी आदि लगा कर आहार देना। इसके चार भेद है–उर्ध्व, अधः, उभय और तिर्यक्। इनमें से भी हर एक के जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम रूप तीन–तीन भेद हैं। एड़ियाँ उठाकर हाथ फैलाते हुए छत में टंगे छींके वगैरह से कुछ निकालना जघन्य ऊर्ध्व मालापहृत है। सीढी वगैरह लगाकर ऊपर की मंजिल से उतारी गई वस्तु उत्कृष्ट मालापहृत है। इनके बीच की वस्तु मध्यम है इसी तरह अधः, उभय और तिर्यक् के भेद से भी जानने चाहिये।

(१४) आच्छेद्य–निर्बल व्यक्ति या अपने आश्रित रहने वाले नौकर, चाकर और पुत्र वगैरह से छीन कर साधु को देना। इसके तीन भेद हैं–स्वामी विषयक, प्रभु विषयक, और स्तेन विषयक। ग्राम मालिक स्वामी और अपने घर का मालिक प्रभु कहलाता है। चोर और लुटेरे स्तेन कहलाते हैं। इनमें से कोई किसी से कुछ छीन कर साधु को दे तो क्रमशः तीन दोष लगते हैं।

(१५) अनिसृष्ट–किसी वस्तु के एक से अधिक मालिक होने पर सब की इच्छा के बिना देना अनिसृष्ट है।

(१६) अध्यवपूरक–साधुओं का आगमन सुनकर आधन में अधिक ऊर देना अर्थात् अपने लिये बनते हुए भोजन में साधुओं का आगमन सुनकर उनके निमित्त से और मिला देना।

उद्गम के सोलह दोषों का निमित्त गृहस्थ अर्थात् देने वाला होता है।

प्रवचन सरोद्धार गा० ६७, ५६५, ५६६

गवेषणा (उत्पादन के १६ दोष)

धाई दूई निमित्ते, आजीवे वणीमगे तिगिच्छा य।
कोहे माणे माया लोभे य हवंति दस एए॥ १॥
पुव्विंपच्छा संथव, विज्जा मंते य चुण्ण जोगे य।
उप्पायणाइ दोसा सोलसमे मूलकम्मे य॥ २॥

१ धात्री–बच्चे को खिलाना–पिलाना आदि धाय का काम करके या किसी घर में धाय की नौकरी लगवा कर आहार लेना धात्री दोष है।

२ दूती–एक दूसरे का सन्देशा गुप्त या प्रकट रूप से पहुँचा कर दूत का काम करके आहारादि लेना दूती दोष है।

३ निमित्त–भूत और भविष्यत् को जानने के शुभाशुभ निमित्त बतला कर आहारादि लेना निमित्त दोष है।

४ आजीव–स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से अपनी जाति और कुल आदि प्रकट करके आहारादि लेना आजीव दोष है।

५ वनीपक–श्रमण, शाक्य, संन्यासी आदि में जो जिसका भक्त हो, उसके सामने उसी की प्रशंसा करके या दीनता दिखा कर आहारादि लेना वनीपक दोष हैं।

६ चिकित्सा–औषधि करना या बताना आदि चिकित्सक का काम करके आहारादि ग्रहण करना चिकित्सक दोष है।

७ क्रोध–करके या गृहस्थ को शापादि का भय दिखा कर भिक्षा लेना क्रोध दोष है।

८ मान–अभिमान से अपने को प्रतापी, तेजस्वी, बहुश्रुत बताते हुए अपना प्रभाव जमाकर आहारादि लेना मान दोष है।

९ माया–वंचना या छलना करके आहारादि ग्रहण करना माया दोष है।

१० लोभ–आहार में लोभ करना अर्थात् भिक्षा के लिये जाते समय जीभ के लालच से यह निश्चय करके निकलना कि आज तो अमुक वस्तु ही खाएंगे और उसके अनायास न मिलने पर इधर–उधर ढूंढना तथा आहारादि के मिल जाने पर जिह्वा स्वाद व शक्कर आदि के लिये इधर–उधर भटकना लोभ पिण्ड है।

११ प्राक्पश्चात् संस्तव–आहार लेने के पहिले या पीछे देने वाले की प्रशंसा करना प्राक्पश्चात् संस्तव दोष है।

१२ विद्या–स्त्रीरूप देवता से प्रतिष्ठित या जप-होम आदि से सिद्ध होनेवाली अक्षरों की रचना विशेष को विद्या कहते हैं। विद्या का प्रयोग करके आहारादि लेना विद्यापिण्ड दोष है।

१३ मंत्र–पुरुषदेवता के द्वारा अधिष्ठित ऐसी अक्षर रचना जो पाठ मात्र से सिद्ध हो जाय, उसे मंत्र कहते हैं। मंत्र के प्रयोग से लिया जाने वाला आहारादि मंत्र पिण्ड दोष हैं।

१४ चूर्ण–अदृश्य करने वाले सुरमे आदि का प्रयोग करके जो आहारादि लिए जांय, उन्हें चूर्णपिण्ड कहते हैं।

१५ योग पांव लेप आदि सिद्धियाँ बताकर जो आहारादि लिया जाय, उसे योगपिण्ड कहते हैं।

१६ मूलकर्म–गर्भस्तंभ, गर्भाधान, गर्भपात आदि संसार सागर में भ्रमण करानेवाली सावद्य क्रियाएँ कर आहार प्राप्त करना मूलकर्म दोष है।

उत्पादना के ये सोलह दोष साधु से लगते हैं। इनका निमित्त साधु ही होता है।

—पिण्डनिर्युक्ति गा० ४०८, ४०६

ग्रहणैषणा के दस दोष

भोजन आदि ग्रहण करने को ग्रहणैषणा कहतेहैं। इसके दस दोष हैं। साधु को उन्हें जानकर वर्जना चाहिए।

संकिय मक्खिय निक्खित पिहिय साहरिय दायगुम्मीसे।
अपरिणयलित्त छड्डिय एसणादोसा दस हवंति॥

१ शंकित–आहार में आधाकर्म आदि दोषों की शङ्का होने पर भी उसे लेना शङ्कित दोष है।

२ म्रक्षित–देते समय आहार चम्मच आदि या हाथ आदि किसी अंग का सचित वस्तु से छू जाना म्रक्षित दोष है।

३ निक्खित्त–दी जाने वाली वस्तु सचित्त के ऊपर रक्खी हो तो उसे लेना निक्षिप्त दोष है। इसके पृथ्वीकायादि छह भेद हैं।

४ पिहिय–देय वस्तु सचित्त के द्वारा ढंकी हुई हो, इसके भी पृथ्वी कायादि छह भेद हैं।

५ साहरिय–जिस बर्तन में असूजती वस्तु पड़ी हो, उसमें से असूजती वस्तु निकाल कर उसी वर्तन से आहारादि लेना साहरिय दोष है।

६ दायक–बालक आदि दान देने के अनधिकारी से आहारादि लेना दायक दोष हैं।

७ उम्मीसे–अचित्त के साथ सचित्त या मिश्र मिला हुआ अथवा सचित्त या मिश्र के साथ अचित्त मिला हुआ आहार लेना उन्मिश्र दोष है।

८ अपरिणय–पूरे पाक के बाद वस्तु के निर्जीव होने से पहले ही उसे ले लेना अथवा जिसमें शस्त्र पूरा परिणत न हुआ हो ऐसी वस्तु लेना अपरिणत दोष है।

६ लित्त-लेप की हुई वस्तु को लेना लिप्त दोष है।

१० छड्डिय–जिसके छींटें नीचे पड़ रहे हों, ऐसा आहार लेना छर्दित दोष है। ऐसे आहार में नीचे चलते हुए कीड़ी आदि जीवों की हिंसा का डर है। इसलिये साधु को अकल्पनीय है।

एषणा के ये दस दोष साधु और गृहस्थ दोनों के निमित्त से लगते हैं।

(प्रवचन सारोद्धार द्वार ६७ गा० ५६८ पृ० १४८। पिण्डनिर्युक्ति गा० ६२०। धर्म संग्रह अधि० ३ श्लोक २२ टीका पृ० ४१)।

इन बयालीस दोषों को टालकर ही श्रमण निग्रन्थ आहार ग्रहण करते हैं। सार्थपते ! जिनेन्द्र के शासन में मुनियों के लिये कुएँ, बावड़ी और तालाब का जल पीने की भी मनाई है। क्योंकि वह अग्न आदि से अचित्त किया हुआ नहीं होता। "ये बातें हो ही रही थी कि इतने में किसी ने सुन्दर पके हुए सुगन्धित आम्रफलों से भरा हुआ थाल सार्थपति को उपहार स्वरूप दिया। उसे देख कर प्रसन्न होते हुए सार्थपति ने आचार्य से कहा-भगवन् ! आप इन सुन्दर आम्रफलों को ग्रहण कर मुझ अनुग्रहीत करें" आचार्य ने कहा अभी मैंने कहा था कि जिस आहार को गृहस्थ अपने लिये बनाता है वही हमें लेना कल्पता है। कन्द, मूल, फल, बीज, आदि जब तक शस्त्र प्रयोग द्वारा अचित्त नहीं होते तब तक हमारे लिये उन्हें छूना भी नहीं कल्पता। खाना तो कैसे कल्प सकता है ! इनके लिये शास्त्रकार निम्न विधान करते हैं-

मूलए सिंगबेरे य उच्छुखंडे अनिव्वुडे।
कंद मूले य सचित्ते फले बीये य आमए ॥

द० अ० ३ गा० ७

अर्थात् सचित्त मूला, अदरख इक्षुखण्ड, वज्र, कन्द आदि सचित्त मूल-जड़, फल-आम-निम्बू आदि तथा तिलादि सचित्त बीजों का मुनि को सेवन नहीं करना चाहिये। "यह सुन कर सार्थवाह ने कहा-मुनि श्रेष्ठ ! आप लोगों का व्रत बड़ा कठोर है। सचमुच मोक्ष का शाश्वत सुख बिना कष्ट के प्राप्त नहीं हो सकता। आप जैसे दुष्कर व्रतधारी मुनियों के सहवास से हमारी आत्मा उज्ज्वल बन जायगी। यद्यपि आपका हमारे से बहुत थोड़ा प्रयोजन है, फिर भी मार्ग में आपको किसी बात की आवश्यकता हो तो हमें अवश्य कहियेगा और आप हमारे साथ पधार कर हमें पवित्र करियेगा।" ऐसा कह कर सार्थवाह ने आचार्य को वन्दन किया और उनके गुणों की प्रशंसा करते हुए उन्हें विदा किया। आचार्य धर्मघोष अपनी शिष्य मण्डली के साथ स्वस्थान पर चले आए। स्वाध्याय और ध्यान में लीन रहते हुए एक रात वहाँ ठहर कर प्रातःकाल होते ही सार्थवाह के साथ रवाना हुए।

इधर सार्थवाह ऊँट, घोड़े, बैल और गाड़ियों के विशाल काफिलों के साथ क्षितिप्रतिष्ठित नगर से रवाना हुआ। आचार्य धर्मघोष भी अपनी शिष्य मण्डली के साथ उन विशाल काफिले के साथ-साथ पैदल चलने लगे। काफिले के आगे-आगे धन्य सार्थवाह का रथ चलता था। उसके पीछे-पीछे उसका प्रधान मुनीम 'मणिभद्र' चलता था। उनके दोनों ओर वीर रक्षकों के दल चलते

इस श्लोक को सुन कर सार्थपति जग गया। वह विचार करने लगा—' इस श्लोक में स्तुति के बहाने मुझे अश्वशाला के रक्षक ने उपालम्भ दिया है। इस काफिले में सब से अधिक दुःखी कौन है ? इस बात का विचार करते-करते उसे सहसा धर्मघोष आचार्य का स्मरण हो आया। वह सोचने लगा—हमारे काफिले के लोग तो कंद, मूल एवं फल खाकर अपना जीवन निर्वाह कर लेते हैं। किन्तु पांच महाव्रत का हृदय पूर्वक पालन करने वाले उन आचार्य महाराज की क्या स्थिति होगी ? कन्द—मूल आदि सचित्त वस्तुएँ उनके लिए अभक्ष्य हैं। वे ४२ दोषों को टालकर आहार ग्रहण करते हैं। इस कठिन समय में वे कैसे रहते होंगे ? जिन आचार्य को मार्ग में सभी तरह की सहायता का वचन देने पर भी मैंने उनका स्मरण तक नहीं किया। मेरे जैसा पापी और कौन होगा ! प्रमाद रूपी नशा कितना भयंकर होता है ? यह पुरुष को सदा बुरी चिन्ताओं की ओर प्रवृत्त करता है। अच्छे विषयों की ओर से बुद्धि को हटाता है। आज तक मैंने जिनका वचन मात्र से भी कभी सत्कार नहीं किया, उनको आज मैं किस तरह मुंह दिखलाऊंगा ?" इस प्रकार का विचार कर ही रहा था, इतने में पहरेदार के मुंह से पुनः दूसरा श्लोक सुना—

संसारेऽत्र मनुष्यो घटनं केनाऽपि तेन सह लभते।
दैवस्यानभिलपतोऽपि यद्वशात् पतति सुखराशौ ॥

अर्थात्-संसार में मनुष्य अचानक ऐसी वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है जिनके कारण वह प्रकृति के प्रतिकूल होने पर भी सुखों को प्राप्त कर लेता है।

इस श्लोक को सुनकर धन्नासार्थवाह को सन्तोष हुआ क्योंकि इसमें सूचित किया गया था, कि बुरा समय होने पर भी मुनियों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं है।

इतने में काल निवेदक ने आकर कहा—

भूषितभुवनाभोगो दोषान्तकरः समुत्थितो भानुः।
दर्शयितुमिव तवायं समगुणभावेन मित्रत्वम् ॥

काफिले के लोगों की यह दुर्दशा देख सार्थवाह का प्रधान मुनीम 'मणिभद्र' धन्यसार्थवाह के पास आया और उसने अपने साथ के यात्रियों की दुर्दशा का वर्णन करते हुए कहा–स्वामिन् ! खाद्य सामग्री के कम हो जाने से सभी काफिले के लोग भूखे मर रहे हैं। कन्द, मूल, फल खाकर अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं। लज्जा, पुरुषार्थ और मर्यादा को छोड़कर सभी तापसों की तरह रहने लगे हैं। कहा है–

मानं मुञ्चति गौरवं परिहरत्यायाति दैन्यात्मताम् ।
लज्जामुत्सृजति श्रयत्यकरुणां नीचत्वमालम्बते ॥
भार्या बन्धु सुहृत्सुतेष्वपकृती नानाविधाश्चेष्टते ।
किं किं यन्न करोति निन्दितमपि प्राणी क्षुधापीडितः ॥१॥

अर्थ-ऐसा कौनसा निन्दित कार्य है, जिसे क्षुधा पीड़ित प्राणी नहीं करता। वह अपने मान को छोड़ देता है दीनता को धार लेता है, लज्जा को तिलांजलि दे देता है। क्रूरता और नीचता को अपना लेता है। स्त्री, बन्धु, मित्र और पुत्र आदि के साथ भी विविध प्रकार के बुरे व्यवहार करता है।

यह सुनकर धन्नासार्थवाह चिन्ता करने लगा। उसने मुनीम से कहा–मणिभद्र ! हमें अवश्य ही काफिले के लोगों की इस दुर्दशा को दूर करने का उपाय करना होगा। ऐसा कह कर सार्थवाह मुनीम को विदा कर अपने शयन कक्ष में चला गया और अपने काफिले की इस दुर्दशा पर विचार करते–करते सो गया।

जिसे अति दुःख या अति सुख होता है, उसे तत्काल नींद आ जाती है। क्योंकि ये दोनों निद्रा के मुख्य कारण हैं।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में अश्वशाला का रक्षक जग गया और वह अत्यन्त मधुर स्वर में निम्न आर्या गाने लगा–

पालयति प्रतिपन्नान् विषमदशामागतोऽपि सन्नाथः ।
खण्डीभूतोऽपि शशी कुमुदानि विकाशयत्यथवा ॥

अर्थात्–सज्जन मालिक स्वयं बुरी दशा में होने पर भी अपने आश्रित व्यक्तियों का पालन करता है। चन्द्रमा खण्डित होने पर भी कुमुदों को अवश्य विकसित करता है।

इस श्लोक को सुन कर सार्थपति जग गया। वह विचार करने लगा—'इस श्लोक में स्तुति के बहाने मुझे अश्वशाला के रक्षक ने उपालम्भ दिया है। इस काफिले में सब से अधिक दुःखी कौन है? इस बात का विचार करते-करते उसे सहसा धर्मघोष आचार्य का स्मरण हो आया। वह सोचने लगा—हमारे काफिले के लोग तो कंद, मूल एवं फल खाकर अपना जीवन निर्वाह कर लेते है। किन्तु पांच महाव्रत का हृदय पूर्वक पालन करने वाले उन आचार्य महाराज की क्या स्थिति होगी? कन्द-मूल आदि सचित्त वस्तुएँ उनके लिए अभक्ष्य हैं। वे ४२ दोषों को टालकर आहार ग्रहण करते हैं। इस कठिन समय में वे कैसे रहते होंगे? जिन आचार्य को मार्ग में सभी तरह की सहायता का वचन देने पर भी मैंने उनका स्मरण तक नहीं किया। मेरे जैसा पापी और कौन होगा! प्रमाद रूपी नशा कितना भयंकर होता है? यह पुरुष को सदा बुरी चिन्ताओं की ओर प्रवृत्त करता है। अच्छे विषयों की ओर से बुद्धि को हटाता है। आज तक मैंने जिनका वचन मात्र से भी कभी सत्कार नहीं किया, उनको आज मैं किस तरह मुंह दिखलाऊंगा?" इस प्रकार का विचार कर ही रहा था, इतने में पहरेदार के मुंह से पुनः दूसरा श्लोक सुना—

संसारेऽत्र मनुष्यो घटनं केनाऽपि तेन सह लभते।
दैवस्यानभिलषतोऽपि यद्वशात् पतति सुखराशौ॥

अर्थात्—संसार में मनुष्य अचानक ऐसी वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है जिनके कारण वह प्रकृति के प्रतिकूल होने पर भी सुखों को प्राप्त कर लेता है।

इस श्लोक को सुनकर धन्नासार्थवाह को सन्तोष हुआ क्योंकि इसमें सूचित किया गया था, कि बुरा समय होने पर भी मुनियों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं है।

इतने में काल निवेदक ने आकर कहा—

भूषितभुवनाभोगो दोषान्तकरः समुत्थितो भानुः।
दर्शयितुमिव तवायं समगुणभावेन मित्रत्वम्॥

अर्थात्—संसार को अलंकृत करनेवाला, रात्रि का अन्त करनेवाला सूर्य उदित हो गया है। मानों समान गुणोंवाला होने के कारण वह आपके साथ मित्रता करना चाहता है।

इसके बाद सार्थवाह शय्या से उठा। प्रातः कृत्य से निपट कर बहुत से लोगों के साथ आचार्य के समीप गया। वहाँ पहुँच कर मुनियों से घिरे हुए धर्मघोष आचार्य के दर्शन किये।

आहार के लिए परिभ्रमण करते हुए दो मुनि उसके निवास स्थान में पधारे। सार्थवाह को बड़ी प्रसन्नता हुई। पर दैवयोग से उस समय उसके घर में साधुओं को देने योग्य कुछ भी नहीं था। वह इधर-उधर देखने लगा। एक कोने में रखा हुआ ताजा घी दिख गया। उसने कहा— "मुनिवर ! क्या यह आपके ग्रहण करने योग्य है।" साधुओं ने "कहा—धन्य ! हम इसे ग्रहण कर सकते हैं। यह हमारे लिए कल्पनीय है।" यह कहते हुए उन्होंने अपना पात्र रख दिया। "मैं धन्य हुआ, कृतकृत्य हुआ, मैं पुण्यात्मा हुआ।" ऐसा विचार करते-करते उसे रोमांच हो आया और वह साधुओं को घी बहराने लगा। सेठ के उच्च परिणामों से समीपस्थ देवों को भी आश्चर्य होने लगा। सेठ के परिणामों की परीक्षा करने के लिए देवों ने मुनियों की दृष्टि बाँध दी। मुनि अपने पात्र को देख नहीं सकते थे। इस कारण सेठ का बहराया हुआ घी पात्र भर जाने से बाहर जाने लगा। फिर भी सेठ घी डालता रहा। परिणामों की उच्चता के कारण वह यही समझता रहा कि मेरा घी तो पात्र में ही जाता है। सेठ के दृढ़ परिणामों को देखकर देवों ने अपनी माया समेट ली और दान का महात्म्य बताने के लिये वसुधारा आदि पांच द्रव्य प्रकट किये।

सार्थवाह ने भावपूर्वक दान देकर बोधि बीज सम्यक्त्व को प्राप्त किया। मुनिराज घी लेकर स्वस्थान चले आये। रात्रि के समय सार्थवाह आचार्य के निवास स्थान पर गया। आचार्य प्रवर ने उसे निकट मोक्षवर्ती जीव जान कर धर्मोपदेश दिया—

"हे धन्य ! अनेक विघ्नों का नाश करने वाला तथा संसार रूपी अटवी में भटकने वाले प्राणियों का शरण भूत धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है।" कहा भी है—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो॥

[दशवैका० पहला अ० गा० १]

भावार्थ—धर्म सर्व श्रेष्ठ मंगल है। अहिंसा, संयम और तप धर्म के प्रकार हैं। जिस पुरुष का चित सदा धर्म में लगा रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

धम्मो ताणं धम्मो सरणं धम्मो गइ पइट्ठा य।
धम्मेण सुचरिएण य गम्मइ अजरामरं ठाणं॥

[[illegible] लिय गा० ३१]

भावार्थ-धर्म त्राण और शरण रूप है, धर्म ही गति है तथा धर्म ही आधार है। धर्म की सम्यग् आराधना करने से जीव अजर अमर स्थान अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है।

अतः हे सार्थ-

जरामरणवेगेण, वुज्झमाणाण पाणिणं ।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं ॥

[उत्तराध्ययन अ० १३ गा० ६८]

—जरा-मरण के प्रवाह में बहते हुए प्राणियों के लिये धर्म ही एक मात्र द्वीप है, प्रतिष्ठा है, गति है और उत्तम शरण है।

लब्भंति विउला भोगा, लब्भंति सुर संपया।
लब्भंति पुत्त मित्तं च, एगो धम्मो न लब्भइ ॥

—हे सार्थ ! मनोरम प्रधान भोग सुलभ है। देवता की सम्पत्ति पाना भी सुलभ है। इसी प्रकार पुत्र मित्रों का सुख भी प्राप्त हो जाता है किन्तु धर्म की प्राप्ति ही दुर्लभ है। अतः हे सार्थ !

दानं सीलं च तवो भावो एवं चउव्विहो धम्मो।
सव्व जिणेहिं भणिओ तहा दुहा सुअचरित्तेहिं ॥

[सप्ततिशत स्थान प्रकरण० गा० ९६

भावार्थ—दान, शील, तप और भावना—यह चार-प्रकार का धर्म सभी तीर्थङ्करों ने कहा है श्रुत चारित्र के भेद से धर्म के दो प्रकार भी उन्होंने कहे हैं।

धम्म सरूवे परिणमइ, चाउ वि पत्तहं दिएणु।
साइयजलु सिप्पिहिं गयउ, मुत्तिउ होइ खएणु ॥

[सावयधम्म दोहा गा० ६१]

भावार्थ—पात्र को दिया हुआ दान धर्म रूप परिणत होता है। स्वाति जल सीप में पड़कर रमणीय मोती बन जाता है।

हे सार्थ ! दान स्व और पर के उपकार के लिए अर्थी अर्थात् जरूरत वाले पुरुष को दिया जाता है वह दान कहलाता है। अभयदान, सुपात्रदान, अनुकम्पादान और ज्ञानदान आदि दान के अनेक भेद हैं। इनका पालन करना दानधर्म कहलाता है। दान के प्रभाव से अनेक जीवों ने तीर्थङ्कर

नाम कर्म का उपार्जन किया है और मोक्ष प्राप्त किया। दुःखों से भयभीत जीवों को भय रहित करना अभयदान है। छः काय के आरम्भ से निवृत्त, पंच महाव्रतधारी साधुओं को आहार-पानी, वस्त्र और पात्र आदि धर्म सहायक धर्मोपकरण और आहारादि देना सुपात्रदान है। अनुकम्पा के पात्र दीन, अनाथ और रोगी संकट में पड़े हुए व्यक्तियों को अनुकम्पा भाव से दान देना अनुकम्पा-दान है। ज्ञान पढ़ाना, पढ़ने और पढ़ानेवालों की सहायता करना आदि ज्ञानदान है।

हे सार्थ ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ही पुरुष का पुरुषार्थ है। जिससे सब प्रकार के अभ्युदय एव मोक्ष की सिद्धि हो, वह धर्म है। धर्म पुरुषार्थ अन्य सब पुरुषार्थों का प्राप्ति का मूल कारण है। धर्म से पुण्य एवं निर्जरा होती है। पुण्य से अर्थ और काम की प्राप्ति होती है और निर्जरा से मोक्ष। इसलिए पुरुषाभिमानी सभी पुरुषों को सदा धर्म की आराधना करना चाहिए।

इस प्रकार धर्मघोष आचार्य का उपदेश सुनकर धन्यसार्थवाह बोला-"भगवन् ! आज आपका भव-भ्रमण का नाश करने वाले वचनामृत को सुन मेरी आत्मा का अज्ञानमय पर्दा हट गया है। मैं आज तक अर्थ और काम की प्राप्ति को ही जीवन की इतिश्री मानता आया था। किन्तु आज मेरी समझ में आया कि अर्थ और काम की प्राप्ति की अपेक्षा धर्म और मोक्ष को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करना ही पुरुष का सच्चा पौरुष है।" इस तरह कह कर उसने गुरुदेव के तथा अन्य मुनियों के चरणों में अपना मस्तक झुकाया और अपनी आत्मा को धन्य मानता हुआ वह अपने डेरे पर चला आया। अब वह प्रतिदिन आचार्य प्रवर के पास जाता और उनका धर्मोपदेश सुनता। इस प्रकार काल गमन करते वर्षाऋतु समाप्त हो गई। वर्षाऋतु की समाप्ति के पश्चात् धन्यसार्थवाह ने प्रयाण-भेरी बजवा दी। प्रयाण की भेरी बजते ही सार्थवाह का काफिला तैयार हो गया। काफिले को तैयार हुआ जान सार्थवाह ने वहाँ से प्रयाण कर दिया। गोपालों के शृंगनाद से जिस तरह गायों का झुण्ड चलता है, उसी तरह पृथ्वी और आकाश को पूर देने वाले भेरी नाद से सार्थवाह का काफिला सार्थ के साथ चलने लगा। भव्य प्राणियों को मोक्षमार्ग बताने वाले धर्मघोष आचार्य ने भी अपनी शिष्य मण्डली के साथ वहाँ से विहार कर दिया। सार्थ के साथ चलते हुए आचार्य ने अटवी को पार किया। जब ग्राम-नगर के नजदीक काफिला पहुँचा तो आचार्य ने अन्यत्र विहार कर दिया। जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में आकर मिलती हैं, उसी तरह सार्थवाह भी निर्विघ्न मार्ग को पार करता हुआ वसन्तपुर पहुँचा और वहाँ उसने साथ में लाया हुआ किराणा बेच दिया। इसके फल स्वरूप खूब धन का उपार्जन किया। कुछ काल तक वहाँ रह कर उसने और भी माल

खरीदा। उन्हें वाहनों में भर कर वह वहाँ से क्षितिप्रतिष्ठित नगर के लिये रवाना होगया और समय पर वह अपने काफिले के साथ क्षितिप्रतिष्ठित नगर में पहुँच गया। आचार्य धर्मघोष द्वारा बताये हुए मार्ग पर चलता हुआ वह अपना जीवन यापन करने लगा। आयु पूरी होने पर धन्य-सार्थवाह काल धर्म को प्राप्त हुआ।

दूसरा और तीसरा भव—

मुनि-दान के प्रभाव से वह उत्तर कुरुक्षेत्र में सीता नदी के उत्तर तट की ओर जम्बूवृक्ष के पूर्व अंचल में– जहां हमेशा सुषमा नामक आरा ही रहता है युगलियों के रूप में उसने जन्म लिया। यहां के युगलियों की अवगाहना तीन कोस और आयु तीन पल्योपम की होती है। तीन दिन के बाद इन्हें खाने की इच्छा होती है। इनके शरीर में दो सौ छप्पन (२५६) पसलियाँ होती हैं। ये अल्प कषाया और ममता रहित होते हैं। ये युगलिये अपने जीवन में एक ही बार युगल सन्तान (पुत्र-पुत्री) को जन्म देते हैं। बड़े होकर वे ही पति-पत्नी बन जाते हैं। युगल रूप से जन्म होने के कारण इस आरे के मनुष्य युगलिया कहलाते हैं। माता-पिता की आयु छः मास शेष रहने पर एक युगल उत्पन्न होता है। ४९ दिन तक माता-पिता उसकी प्रतिपालना करते है। आयु समाप्ति के समय माता को छींक और पिता को जम्भाई आता है और दोनों काल (मृत्यु-प्राप्ति) कर जाते हैं। वे मर कर देव लोक में उत्पन्न होते हैं। इस आरे के मनुष्य मद्यांगादि दस प्रकार के कल्पवृक्षों से मनोवांछित सामग्री प्राप्त करते हैं। उनमें मद्यांग नामक कल्पवृक्ष मद्य (मादक-रसासव) देते हैं। "भृंगांग" नामक कल्पवृक्ष पात्र देते हैं। "तुर्यांग" नामक कल्पवृक्ष से संगीतमय मधुर ध्वनि अनेक प्रकार की होती है। "दीप शिखांग" और "ज्योतिष्कांग" नामक कल्पवृक्ष अद्‌भुत प्रकाश या रोशनी देते हैं। 'चित्रांग' नाम के कल्पवृक्ष फूल मालाएँ देते हैं। 'चित्ररस' नामके कल्प वृक्ष भोजन देते हैं। 'मण्यंग' नामक कल्प वृक्ष गहने और जवर देते हैं। 'गेहाकार' कल्पवृक्ष गेह या घर देते है। एवं 'अनग्न' नामके कल्पवृक्ष दिव्य वस्त्र देते हैं। ये कल्पवृक्ष नियत और अनियत दोनों प्रकार के पदार्थ देते हैं। और भी कल्पवृक्ष वहाँ के निवासी युगलिये को मन चाहे पदार्थ देते हैं। धन्यसार्थवाह का जीव युगलिये के भव में स्वर्गवत् सुखों का उपभोग करने लगा। युगलियों की आयु पूरी कर धन्य सार्थवाह का जीव मर कर प्रथम देवलोक सौधर्म में महर्द्धिक देव रूप से उत्पन्न हुआ।

चौथा भव—

पश्चिम महाविदेह में स्थित गंधिलावती विजय में वैताढ्य पर्वत के उपर गंधार देश की

राजधानी 'गंधसमृद्धि' नगरी है। वहाँ विद्याधर शिरोमणि 'शतबल' नाम का राजा राज्य करता था। उसकी सर्वगुण सम्पन्ना 'चन्द्रकान्ता' नाम की रूपवती रानी थी। देवभवधारी धन्यसार्थवाह का जीव देवता सम्बन्धी दिव्य सुखों का उपभोग कर आयुष्य पूर्ण होने पर महारानी चन्द्रकांता की कुक्षि से पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ। शक्तिमान होने के कारण बालक का नाम 'महाबल' रखा गया। माता-पिता की स्नेहमयी छाया में महाबल कुमार दूज के चांद की तरह बढ़ने लगा। योग्य वय होने पर माता-पिता ने मूर्तिमती लक्ष्मी के समान राजकुमारी विनयवती आदि अनेक राजकुमारियों के साथ उसका विवाह कर दिया। महाबल कुमार अपनी कामिनियों के साथ यौवन सुख का अनुभव करने लगा।

एक दिन रात्रि के अन्तिम प्रहर में धर्म जागरणा करते हुए विद्याधरपति शतबल विचारने लगे–अहो! यह देह स्वभाव से ही अपवित्र है। केवल यह वस्त्र और गहनों से ही सुन्दर लगता है। वास्तव में यह दुःख और क्लेश का ही भाजन है। जीव का यह अशाश्वत आवास है। न जाने इसे कब छोड़ना पड़े। कहा भी है–

असासए सरीरम्मि, रइं नोवलभामहं।
पच्छा पुरा व चइयव्वे, फेण बुब्बुय सन्निभे॥

[उत्तराध्ययन अ० १९ गा० १४]

यह शरीर पानी के बुलबुले के समान क्षणभंगुर है। पहले या पीछे एक दिन इसे छोड़ना ही पड़ता है। यही कारण है कि विविध भोग सामग्री के सुलभ होते हुए भी इस अशाश्वत देह में मैं जरा भी सुख अनुभव नहीं करता।

इहलोग दुहावहं विऊ, परलोगे वि दुहावहं।
विद्धंसण धम्ममेव तं, इइ विज्जं को गारमावसे॥

[सूयगडांग अ० २ उ० २ गा० १०]

स्वजन सम्बन्धी, परिग्रह आदि इस लोक और परलोक में दुःख देने वाले हैं तथा सभी नाशवान हैं। यह जानकर गृहस्थ में रहना कौन पसन्द करेगा।

जम्म दुक्खं जरा दुक्खं, रोगाणि मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो जत्थ किस्संति जंतवो॥

[उत्तराध्य० १९ गा० १६]

संसार में जन्म दुःख है, जरा का दुःख है और रोग तथा मृत्यु का दुःख है। अहो संसार ही दुःख रूप है। जहाँ प्राणी क्लेश दुःख प्राप्त करते हैं।

अहो ! आश्चर्य है कि इन दुःखदायी विषयों में सुख मानने वाले प्राणियों को नरक के अपवित्र कीड़े की तरह जरा भी विरक्ति नहीं होती है। ऐसे प्राणी संसार के विषयों में आसक्त होकर अनन्त संसार परिभ्रमण करते रहते हैं। प्राणियों को इस अपार संसार रूपी समुद्र में अमूल्य रत्न के समान मनुष्य भव मिलना दुर्लभ है। कदाचित् मनुष्य भव मिल भी गया तो उसे उत्तम साधु और सच्चे धर्म का योग भी मिलना अत्यन्त दुष्कर है। मुझे मानवदेह मिल गया है और सच्चे देव, गुरु और धर्म का संयोग भी प्राप्त है। अतः मुझे इस नश्वर राज्य-वैभव का त्याग कर पवित्र भागवती दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। ऐसा विचार कर दूसरे दिन शतबल ने अपने युवराज पुत्र को बुलाया और उसे राज्य ग्रहण करने का आदेश दिया। नम्र महाबलकुमार ने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य किया। राजा शतबल ने बड़े समारोह के साथ महाबलकुमार का राज्याभिषेक किया। पुत्र को राजगद्दी पर बैठाकर शतबल राजा ने आचार्य के पास जाकर चारित्र ग्रहण किया। चारित्र ग्रहण कर शतबल मुनि उत्कृष्ट भावना से चारित्र का पालन करने लगे। वे मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ भावना रूप सन्तति को वृद्धि करते हुए रहने लगे। ध्यान और तप द्वारा संयम की आराधना करते हुए उन्होंने आयुष्य पूरा किया और मर कर वे देवलोक में महर्द्धिक देव बने।

महाबलकुमार अपने मन्त्री और सामन्तों की सहायता से राज्य का संचालन करने लगा। उसके राज्य में प्रजा अत्यन्त सुखपूर्वक रहने लगी। वह प्रजा को पुत्रवत् मानता था। उसके मन में जिन भक्ति का स्थायी निवास हो गया था। उसकी वाणी से जिनेश्वर एवं उनके शासन की प्रशंसा होती रहती थी। वह झुकता था तो जिनेश्वर देव के सामने ही, शेष सभी उसके चरणों में झुकते थे।

महाराजा महाबल के चार मंत्री थे–स्वयंबुद्ध, संभिन्नमति, शतमति और महामति। ये चारों मंत्री बुद्धि के निधान और राज्य संचालन में बड़े कुशल थे। इन चारों मंत्रियों में स्वयंबुद्ध मंत्री सम्यक्त्व धारी एवं धर्मपरायण था। शेष तीन मंत्री मिथ्यात्वी थे।

एक दिन अनेक मंत्री और सामन्तों से अलंकृत राजसभा में महाराजा महाबल बैठे हुए थे। उस समय स्वयंबुद्ध, संभिन्नमति, शतमति और महामति भी उपस्थित थे। उस समय महामंत्री स्वयंबुद्ध इस प्रकार विचारने लगा–"महाराजा महाबल राज्य और इन्द्रियों के विषयों में बुरी तरह आसक्त होते जा रहे हैं। विषय विनोद में महाराजा का बहुमूल्य समय और मनुष्य जन्म

व्यर्थ जा रहा है। मेरा कर्तव्य है कि स्वामी को विषय भोगों की बुराइयाँ समझा कर उन्हें हितमार्ग पर लगाऊँ। स्वामी के सच्चे हितैषी होने क नाते मुझे कुछ कहना चाहिये। यह सोच स्वयबुद्धि मन्त्री नम्रता पूर्वक बाला-"हे स्वामिन् मनुष्य की भोगाभिलाषा समुद्र के समान है! असंख्य नदियों के समुद्र में मिल जाने पर भी समुद्र नदियों के जल से अतृप्त हो रहता है। उसी तरह इस जीव की इच्छा अनन्तबार भोग भोगने पर भी अतृप्त ही रही है। प्राणी ज्यों-ज्यों विषयों को भोगता है, त्यों-त्यों उसको भोगने की इच्छा और भी बलवती होती है। कहा भी है कि-

तणकट्ठेहि व अग्गी लवणजलो वा नईसहस्सेहिं।
ण इमो जीवो सक्को तिप्पेउं कामभोगेहिं॥

(आतुरप्रत्याख्यान गाथा ५०)

-जैसे तृण काष्ठों से अग्नि तृप्त नहीं होती। हजारों नदियों से भी लवण समुद्र को सन्तोष नहीं होता। इसी प्रकार कामभोगों से भी इस जीव को तृप्ति नहीं हो सकती।

हे राजन्!

गुरु से कामा तओ से मारंते, जओ से मारंते तओ से दूरे, नेव से अंतो नेव से दूरे।

(आचारांग अ० ५ उ० १ सू० १४२)

अर्थात्-अपरमार्थदर्शी आत्मा के लिये इन काम भोगों का त्याग करना अति कठिन है और इसी कारण वह जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसा रहता है। जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसकर वह यथार्थ सुख से बहुत दूर रहता है। इसी प्रकार विषयाभिलाषी आत्मा विषय सुखों के प्राप्त न होने से न उनके समीप होता है और विषयाभिलाषा का त्याग न करने के कारण न वह उनसे दूर होता है।

इसलिए हे स्वामी!

कामेसु गिद्धा निचयं करंति, संसिच्चमाना पुणरिंति गब्भं।

(आचारांग अ० ३ उ० २ सू० ११२)

काम भोगों में आसक्ति रखने वाले प्राणी कर्मों का संचय करते हैं कर्मों से पूर्ण होकर वे संसार का परिभ्रमण करते हैं।

आप स्वयं विज्ञ है; इसलिये मोह को छोड़कर अपने मन को धर्म कार्य में लगाइये। कारण धर्म से ही मनुष्य सुखी होता है। शास्त्रकार कहते हैं-

अद्धाणं जो महंतं तु सपाहेज्जो पवज्जइ ।
गच्छन्तो सो सुही होई छुहा तण्हाविवज्जिओ ॥
एवं धम्मं वि काऊणं, जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छंतो सो सुही होइ, अप्पकम्मे अवेयणे ॥

(उत्तराध्ययन अ० १९ गा० २० २१)

जो पथिक पाथेय (भाता) साथ लेकर लम्बी यात्रा करता है वह रास्ते में भूख और प्यास से तनिक भी पीड़ित न होकर अत्यन्त सुखी होता है । इसी प्रकार जो मनुष्य यहाँ भलीभाँति धर्म की आराधना कर परलोक में जाता है वह वहाँ अल्पकर्मवाला एवं वेदना रहित होकर परम सुखी होता है ।

हे राजन् !

धम्मो ताणं धम्मो सरणं धम्मोगइ पइट्ठाणं ।
धम्मेण सुचरिएण य गम्मइ अजरामरं ठाणं ॥

धर्म ही त्राण और शरण रूप है, धर्म ही गति है तथा धर्म ही आधार है । धर्म की सम्यग् अराधना करने से जीव अजर–अमर स्थान यानी मोक्ष प्राप्त करता है । अतः हे राजन् ! जरा, मरण और व्याधि से मुक्ति पाने के लिए आप धर्म का आश्रय लीजिये ।

स्वयंबुद्ध मन्त्री की बातें सुनकर मिथ्यात्वी संभिन्नमति मन्त्री बोला–"अरे स्वयंबुद्ध धर्म कर्म की अनर्गल बातें कह कर तुम स्वामी के सुखमय जीवन को दुखी क्यों कर रहे हो ? प्राप्त सुखों का त्याग कर अप्राप्त सुखों के लिए प्रयत्न करना, कौनसी बुद्धिमानी है ? धर्म से परलोक में उत्तम फल की प्राप्ति होती है, यह कहना तुम्हारा असंगत है । कारण परलोकी जनों का अभाव है, इसलिए परलोक भी नहीं है । जिस तरह गुड़, द्राक्ष, पिष्ट एवं जल आदि के संयोग से मादक शक्ति उत्पन्न होती है; उसी तरह पृथ्वी, जल, तेज एवं वायु आदि भूतों के संयोग से चेतना शक्ति उत्पन्न होती है । शरीर से भिन्न आत्मा नामक कोई स्वतंत्र पदार्थ का अस्तित्व नहीं है । अतः शरीर के नाश से चेतना शक्ति का भी नाश हो जाता है । इसलिए धर्म, अधर्म, पुण्य और पाप की कल्पना भी गधे के सींग जैसी ही है । जो प्राणी मरता है, वह पुनः जन्म नहीं ग्रहण करता । अतः जब तक जीवन है, तब तक सुखों का उपभोग कर लेना चाहिये और जीवन को आनन्दमय बनाना चाहिये ।"

मंत्री सभिन्नमति की बातें समाप्त होने के बाद शतमति बोला–"हे राजन् ! यह समस्त जगत् विज्ञान मात्र है, क्योंकि क्षण भंगुर है । जो जो क्षणभंगुर होते हैं, वे सब ज्ञान के विकार हैं यदि

ज्ञान के विकार न होकर स्वतंत्र पृथक् पदार्थ होते तो वे नित्य होते, परन्तु संसार में कोई नित्य पदार्थ नहीं है। इसलिये वे सब ज्ञान के विकार मात्र है। वह विज्ञान निरंश है-अवान्तर भागों से रहित है, बिना परम्परा उत्पन्न किये ही उसका नाश हो जाता है और वेद्य, वेदक और संवित्ति रूप से भिन्न प्रकाशित होत है. अर्थात् वह स्वभावत: न तो किसी अन्य ज्ञान के द्वारा जाना जाता है और न किसी को जानता ही है। एक क्षण रहकर समूल नष्ट हो जाता है। वह ज्ञान नष्ट होने के पहले ही अपनी सांवृत्तिक सन्तान छोड़ जाता है। जिससे पदार्थों का स्मरण होता रहता है। वह सन्तान अपने सन्तानी ज्ञान से भिन्न नहीं है। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि विज्ञान की सन्तान प्रतिसंतान मान लेने से पदार्थ का स्मरण सिद्ध हो जावेगा, परन्तु प्रत्यभिज्ञान सिद्ध नहीं हो सकेगा? क्योंकि प्रत्यभिज्ञान की सिद्धि के लिए पदार्थ को अनेक क्षण स्थायी मानना चाहिए, जो कि आपने माना नहीं है। पूर्व क्षण में अनुभूत पदार्थ का द्वितीयादि क्षण में प्रत्यक्ष होने पर जो जोड़ रूप ज्ञान होता है, उसे प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। इसका समाधान इस प्रकार है-क्षणभंगुर पदार्थ में जो प्रत्यभिज्ञान होता है, वह वास्तविक नहीं है, किन्तु भ्रान्त है। जिस प्रकार काटे जाने पर फिर से बढ़ हुए नखों और केशों में 'ये वेही नख केश हैं' इस प्रकार का प्रत्यभिज्ञान प्राप्त होता है। संसारी स्कन्ध दु:ख कहे जाते हैं। वे स्कन्ध, विज्ञान, वेदना, सञ्ज्ञा, संस्कार और रूप के भेद से पांच प्रकार के कहे गये हैं। पांचों इन्द्रियां, शब्द आदि उनके विषय, मन और धर्मायतन (शरीर), यह बारह आयतन हैं। जिस आत्मा और आत्मीय भाव से संसार में रुलाने वाले रागादि उत्पन्न होते हैं, उसे समुदय सत्य कहते हैं। 'सब पदार्थ क्षणिक हैं।' इस प्रकार की क्षणिक नैरात्म्य भावना मार्ग सत्य है तथा इन स्कन्धो के नाश होने को निरोध मोक्ष कहते हैं। इसलिए विज्ञान की सन्तान से अतिरिक्त जीव नाम का कोई पदार्थ नही है। जोकि परलोक रूप फल को भोगने वाला हो। अतएव परलोक सम्बन्धी दु:ख दूर करने के लिए प्रयत्न करना व्यर्थ है।"

इस प्रकार विज्ञानवादी शतमति मंत्री जब अपना अभिप्राय प्रकट कर चुप हो गया, तब अपनी प्रशंसा करता हुआ महामति मंत्री मायावाद की स्थापना करते हुए बोला-"महाराज! यह समस्त जगत माया रूप है। ये सब पदार्थ जो दिखाई देते हैं, वे स्वप्न और मृगतृष्णा के समान मिथ्या हैं। जब सारा जगत ही इन्द्रजाल की तरह मिथ्या है, तब संबुद्ध मंत्री का माना हुआ जीव कैसे सिद्ध हो सकता है और जीव के अभाव में परलोक भी कैसे सिद्ध हो सकता है? क्योंकि यह सब गंधर्व नगर की तरह असत्स्वरूप है। अत: परलोक के लिए जो पुरुष तपश्चरण आदि अनुष्ठान करते हैं, वे व्यर्थ क्लेश को प्राप्त होते हैं। ऐसे जीव यथार्थ ज्ञान से रहित हैं। जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में मरुभूमि में पड़ती हुई सूर्य की चमकीली किरणों को जल समझ कर मृग व्यर्थ ही

दौड़ा करते हैं। उसी प्रकार ये भोगाभिलाषी मनुष्य परलोक के सुखों को सच्चा सुख मान कर व्यर्थ ही दौड़ा करते हैं।" इस प्रकार शून्यवाद का स्थापना कर महामति चुप हो गया।

सब मंत्रियों की बात सुनकर बुद्धिमान् स्वयंबुद्ध शान्त भाव से बोला-

"हे भूतवादिन संभिन्नमति ! 'आत्मा नहीं है' यह आपका कथन मिथ्या है। क्योंकि पृथ्वी आदि भूत चतुष्टय के अतिरिक्त ज्ञानदर्शन रूप चैतन्य की प्रतीति होती है। वह चैतन्य शरीर रूप नही है और न शरीर चैतन्य रूप ही है। क्योकि दोनों का परस्पर विरुद्ध स्वभाव है। चैतन्य चित्स्वरूप है-ज्ञान दर्शनरूप है और शरीर अचित्स्वरूप-जड है। शरीर और चैतन्य दोनों मिलकर एक नहीं हो सकते। क्योंकि दोनों में विरोधी गुण पाये जाते हैं। चैतन्य का प्रतिभास तलवार की तरह अंतरंग रूप होता है और शरीर का प्रतिभास म्यान के समान बहिरंग रूप होता है। जिस प्रकार म्यान में तलवार रहती है वहाँ म्यान और तलवार दोनों में अभेद नहीं होता। उसी प्रकार 'शरीर में चेतन्य है', यहाँ शरीर और आत्मा में अभेद नहीं होता। प्रतिभास भेद होने से दोनों ही पृथक्-पृथक् पदार्थ सिद्ध होते हैं। यह चैतन्य न तो भूतचतुष्टय का कार्य है और न उसका कोई गुण है। क्योंकि दोनों की जातियाँ पृथक्-पृथक् हैं। एक चैतन्य रूप है तो दूसरा जड रूप हैं। यथार्थ में कार्य-कारण भाव और गुण-गुणी भाव सजातीय पदार्थों में ही होता है, विजातीय पदार्थों में नहीं होता। इसके अतिरिक्त एक कारण यह भी है कि पृथिवी आदि से बने हुए शरीर का ग्रहण उसके एक अंशरूप इन्द्रियों के द्वारा ही होता है। जब कि ज्ञानरूप चेतन्य का स्वरूप अतीन्द्रिय है-ज्ञान मात्र से ही जाना जाता है। यदि चैतन्य, पृथिवी आदि का कार्य अथवा स्वभाव होता तो पृथिवी आदि से निर्मित शरीर के साथ ही साथ इन्द्रियों द्वारा उसका भी ग्रहण अवश्य होता, परन्तु ऐसा नहीं होता है। यदि चैतन्य शरीर का विकार होता तो उसके भस्म आदि विकार रूप ही चैतन्य होना चाहिये था, परन्तु ऐसा नहीं होता। दूसरी बात यह है कि शरीर का विकार मूर्तिक होगा, परन्तु यह चैतन्य अमूर्तिक है-रूप, रस, गन्ध, स्पर्श से रहित है। इन्द्रियों द्वारा उसका ग्रहण नहीं होता। शरीर और आत्मा का सम्बन्ध ऐसा ही है, जैसे जल और घट का होता है। आधार और आधेय रूप होने से जल और घट जिस प्रकार पृथक् सिद्ध पदार्थ है, उसी प्रकार शरीर और आत्मा भी पृथक् सिद्ध पदार्थ हैं।

मित्र संभिन्नमति ! मैं तुम से पूछता हूँ कि चेतना प्रत्येक भूत से उत्पन्न होती है या सभी भूतों के संयोग से उत्पन्न होती है ? यदि प्रत्येक भूत से उत्पन्न होती हो, तो चेतना भी भूतों के जितनी ही होनी चाहिये। यदि सभी भूतों के सम्मिलन से चेतना उत्पन्न होती हो तो परस्पर f

स्वभाववाले भूतों से एक स्वभाववाली चेतना कसे उत्पन्न हो सकती है ? साथ ही तुमने गुड़-जल अन्य वस्तुओं के सयोग से मादकता उत्पन्न होने का जो दृष्टान्त दिया है, वह भी उपयुक्त नहीं है । कारण मदशक्ति स्वयं अचेतन है । इसलिए चेतन के लिए अचेतन का उदाहरण घटित नहीं होता । अतएव शरीर से भिन्न आत्मा अवश्य है और वह परलोक में जाता है और वह अपने शुभा-शुभ कर्म का फल अवश्य भोगता है । अतः हे राजन् ! भूतवादियों के तर्कजाल मे फँस कर हमें अपनी आत्मा का अहित नहीं करना चाहिये ।

मंत्री शतमति ने जो यह कहा कि-' प्रतिक्षण नाश होने वाली वस्तु का ज्ञान कराने वाली शक्ति को ही आत्मा कहते हैं । इसके सिवाय आत्मा नाम की कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं हैं । वस्तु में स्थिरत्व नहीं होता, जीवों में जो स्थिरत्व बुद्धि है, वह तो वासना है । इसलिए पूर्व और पश्चात् क्षणों का वासना रूप एकत्व ही वास्तविक है, क्षणों का एकत्व सत्य नहीं है । उनका यह कथन भी सत्य नहीं है । क्योंकि कोई भी वस्तु अन्वय परम्परा रहित नहीं होती । वस्तु में स्थिरत्व ध्रुवत्व भी होता है । जिस प्रकार जल और घास आदि पूर्व कारण का पश्चात् कार्य गाय से दूध प्राप्ति रूप होता है । उसी प्रकार स्थिरत्व भी है । कोई भी वस्तु आकाश पुष्पवत् परम्परा रहित नहीं हैं । अतएव पदार्थ का प्रतिक्षण निरन्वय विनाश मानना उचित नहीं है । अगर पदार्थ का प्रतिक्षण निरन्वय विनाश मानेंगे तो उसमें सन्तति की परंपरा कैसे बन सकती है ! तथा किसी के यहाँ रक्खी हुई धरोहर कालान्तर में फिर मांगना और पूर्व की बातों और घटनाओं का स्मरण कैसे हो सकता है ? तथा वस्तु को क्षणस्थायी मानने पर पाप-पुण्य के फल भोगने की मान्यता भी मिथ्या हो जायगी । साथ ही चोरी करने वाले चोर ने जिस क्षण में चोरी का है, वह तो आपकी मान्यता के अनुसार नष्ट हो चुका है और उसका फल भोगने वाला अब दूसरा ही प्राणी उत्पन्न हुआ है । अतएव क्षणिकवाद में कृतनाश और अकृतागम जैसे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं । अतएव पदार्थ को एकान्त अनित्य क्षणिक मानना उपयुक्त नहीं है । द्रव्य की अपेक्षा पदार्थ का ध्रुवत्व भी मानना चाहिये ।

वस्तु असत्य और माया–भ्रम मात्र है तो जीव अपने कृत्यों का कर्ता भी नहीं हो सकता। यदि प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले पदार्थ भी स्वप्न है तो स्वप्न में प्राप्त धन–सम्पत्ति स्त्री आदि भी मिथ्या होते हैं वैसे हो प्राप्त साधन भी मिथ्या हीं होने चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं होता। तथा असत् पदार्थों में कार्य कारण भाव तथा "मैं" "तुम" "वे" आदि वाच्यवाचक सम्बन्ध भी नहीं हो सकते। अत: मायावादी महामति की बातें भो माया ही है।

"राजन्! मायावादी क्षणिकवादी एवं भूतवादियों की ये सब बातें वितण्डावाद है। नरक आदि कुगतियों में ले जाने वाली है। आप स्वयम् बुद्धिमान हैं। वीतरागी पुरुषों के वचनों पर पूर्ण विश्वास रखकर विषयों का त्याग करना चाहिये और अपना भविष्य सुधारना चाहिये। यही मेरा आप से नम्र निवेदन है।

सभी मन्त्रियों के अपने अपने मत को पुष्ट करनेवाले वचन सुनकर महाराज महाबल निर्णायक स्वर में बोले–हे महाबुद्धि स्वयंबुद्ध! तुमने बड़ा ही हितकारी उपदेश दिया है। मैं तुम्हारे यथार्थ उपदेश का आदर करता हूँ। तुमने धर्म आचरण की जो उचित सलाह दी है वह उचित ही दी है। मैं धर्म का द्वेषी नहीं हूँ। किन्तु धर्म का पालन भी उचित समय पर ही करना चाहिये। वर्तमान में मित्र की तरह प्राप्त यौवन की उपेक्षा करना भी उचित नहीं है। अत: आपका उपदेश हितावह होते हुए भी असमय पर हुआ है। जब वीणा मधुर स्वर में बज रहीं हो। नृत्यांगनाओं के नुपूर झंकृत हो रहे है। ऐसे समय धर्म की बातें करना वैसे है जैसे विवाह के समय वैराग्य की बातें करना। धर्म का परलोक में मिलने वाला फल निःसंदेह नहीं है। इसलिए आपका इस लोक में प्राप्त सुख भोग का निषेध करना अनुचित है।

राजा की बातें सुनकर महामन्त्री स्वयंबुद्ध बोला–

"महाराज! धर्म के फल में कभी सन्देह नहीं करना चाहिये। आप को याद ही होगा कि जब आप बालक थे तब एक बार नन्दन वन में गये थे। वहाँ आपको एक दिव्य कान्तिवाला देव मिला था। उसने प्रसन्न होकर आप से कहा था कि–मैं अतिबल नामक तुम्हारा पितामह हूँ। विषयों का परित्याग कर मैं मुनि बना था और उत्तम तप त्याग के प्रभाव से मर कर ले लांतक देवलोक का महर्द्धिक अधिपति बना हूँ। अगर तुम भी मेरी ही तरह सुखी बनना चाहते हो तो विषयों का परित्याग कर निर्ग्रन्थ बनना। इतना कह कर वह देव अदृश्य हो गया। इसलिए हे महाराज! आप अपने पितामह की उस वाणी का स्मरण कर के परलोक में विश्वास करें। उस प्रत्यक्ष प्रमाण के सामने अन्य प्रमाण उपस्थित करना व्यर्थ है।

मंत्रीप्रवर ! तुमने मेरे पितामह का बात स्मरण करवाई यह बहुत अच्छा किया। मैं अपने पितामह के उस उपदेशप्रद वचन को तो भूल ही गया था धर्म अधर्म का फल देने वाले परलोक पर अब मेरा पूरा विश्वास हो गया है। मैं अपने पितामह के वचनानुसार अवश्य धर्म का आचरण करूँगा।

राजा महाबल पर अपने उपदेश का असर होता हुआ देख महामन्त्री स्वयंबुद्ध बोला—महाराज ! आपके वंश में कुरुचन्द्र नाम के एक प्रतापी राजा हुए थे। उनके कुरुमती नाम की रानी और हरिश्चन्द्र नाम का पुत्र था। महाराज कुरुचन्द्र अनार्यकर्म करनेवाले विषयलोलुप व अत्यन्त क्रूर प्रकृति के थे। उस राजा ने अपने रौद्र परिणाम के कारण नरक आयु का बन्ध कर लिया था जब उनके मरने के दिन नजदीक आये तब उसके धातुविपर्यय नामक रोग उत्पन्न हो गया। उस रोग के कारण रुई की तरह नरम लगने वाले गद्दे भी काटों की तरह चुभने लगे। मधुर भोजन भी नीम की तरह कड़ुआ लगने लगा। लाल कमलों से सुवासितजल और चन्दन का शीतल लेप भी उसके शरीर में दाह उत्पन्न करते थे। मधुर गान कानों को कठोर लगते थे। पुत्र और स्त्री भी उसे शत्रु की तरह लगते थे। इस प्रकार उनकी विपरीत प्रकृति के कारण जो भी अनुकूल उपचार होते थे वे उन्हें अत्यन्त पीड़ाकारी सिद्ध होते थे। अन्त में दाह ज्वर से पीड़ित होकर अत्यन्त रौद्र परिणाम से वे मरे और नरक में उत्पन्न हुए।

पिता की मृत्यु के बाद हरिचन्द राजा बना। वह अपने पिता के पापमय जीवन और उसके फल को देख चुका था। इसलिए उसने पाप से विमुख होकर धर्ममय जीवन बना लिया। एक समय उसने अपने बाल सखा श्रावक सुबुद्धि से कहा—मित्र ! तुम प्रतिदिन मेरे पास आकर मुझे धर्मोपदेश देना। राजाज्ञा के अनुसार सुबुद्धि श्रावक प्रतिदिन राजा को उपदेश सुनाने लगा। राजा बड़े ध्यान से सुबुद्धि का उपदेश सुनने लगा और तदनुसार आचरण भी करने लगा।

नरक में उत्पन्न हुए हैं और वहाँ वे महावेदना को सह रहे हैं। आचार्य के मुख से अपने पिता की कुगति सुनकर राजा अत्यन्त भयभीत हो गया। उसे संसार विषवत् लगने लगा। घर आकर उसने अपने पुत्र को राज्य दिया और सुबुद्धि के साथ उसने आचार्य के पास दीक्षा ग्रहण करली। अत्यन्त कठोर तप कर उसने समस्त कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष में गया।

स्वयं बुद्धमंत्री आगे कहने लगा–

स्वामिन् ! आपके वंश में दण्डक नामका राजा हुआ था। वह बड़ा प्रतापी था। उसने अपने समस्त शत्रुओं का दमन कर लिया था। उसके मणिमाली नामका पुत्र था। जब वह बड़ा हुआ तब राजा दण्ड ने उसे युवराज पद पर नियुक्त कर दिया और आप इच्छानुसार भोग भोगने लगा। वह विषयों में इतना अधिक उत्सुक हो रहा था कि चिरकाल तक भोगों को भोग कर भी तृप्त नहीं होता था। उसकी अपनी स्त्री, पुत्र और राज्य के प्रति अधिकाधिक आसक्ति बढ़ती ही जाती थी परिणाम स्वरुप उस राजा ने अत्यन्त तीव्र सक्लेश भावों से तिर्यंच आयु का बन्धन किया। अन्त में आर्तध्यान की तीव्रता से मरकर वह अपने ही भण्डार में दुर्धर अजगर हुआ। वह इतना भयंकर था कि भण्डार में जो भी जाता वह सर्वभक्षी अग्नि की तरह उसे निगल जाता था।

एक बार उसका पुत्र मणिमाली भण्डार में गया। उसे देखकर अजगर को उसके प्रति स्नेह उत्पन्न हो गया। विचार करते करते उसे पूर्व जन्म का स्मरण हो आया। यह मेरा ही पुत्र है यह जानकर वह अत्यन्त स्नेहभाव से मणिमाली को देखने लगा। अब वह अजगर भण्डार में केवल अपने पुत्र को ही आने देता था अन्य को नहीं।

एक दिन राजा मणिमाली किन्हीं अवधिज्ञानी मुनिराज से पिता के अजगर होने का समस्त वृत्तान्त जानकर पितृ-भक्ति से उसका मोह दूर करने के लिए भण्डार में गया और धीरे से अजगर के आगे खड़ा होकर स्नेह से कहने लगा–पिताजी ! आपने धन ऋद्धि आदि में अत्यन्त ममत्व और विषयों में अत्यन्त आसक्ति की थी इसी पाप के फल से आप सर्प योनि में उत्पन्न हुए है। यह विषयरूपी आमिष अत्यन्त कटुक है, दुर्जर है और किंपाक फल के समान है इसलिए धिक्कार के योग्य है। पिताजी ! इस विषयरूपी आमिष को तथा इस धन के प्रति अपने ममत्वभाव को छोड़ दो। पुत्र के उपदेश का असर अजगर पर हो गया। उसने धन के प्रति अपनी आसक्ति छोड़ दी। उसे अपने पूर्व जन्म के पाप का घोर पश्चाताप होने लगा। उसने अपने पुत्र के उपदेशानुसार धर्म ग्रहण किया। अन्त में उसने ससार से भयभीत होकर आहार पानी छोड़ दिया, शरीर का भी ममत्व छोड़ और आयु के अन्त में शरीर त्याग कर महर्द्धिक देव बना। उस देवने अवधिज्ञान के द्वारा

अपना पूर्व भव जान मणिमाली के पास आकर उसका सत्कार किया तथा उसे प्रकाशमान मणियों से शोभायमान एक मणियों का हार दिया। वह हार आज भी आपके वक्षस्थल पर शोभायमान हो रहा है।

हे राजन्! इसके सिवाय एक और भी वृत्तान्त मैं कहता हूँ। शतबल नामके आपके दादा थे। चिरकाल तक राज्य सुखों को भोगकर वे स्वयं भोगों से निस्पृह हो गये। उन्होंने सम्यक्त्व से युक्त श्रावक के व्रत ग्रहण किये। अन्त समय में समाधिपूर्वक देह का त्याग कर मरे और महेन्द्र देवलोक में बड़े ऋद्धियों के धारक देव बने। वहाँ उनकी सात सागरोपम की आयु थी। किसी एक दिन आप सुमेरु पर्वत के नन्दनवन में क्रीडा करने के लिये मेरे साथ गये हुए थे। वहीं पर वह देव भी आया था आप को देखकर बड़े स्नेह के साथ उसने उपदेश दिया कि हे कुमार! यह जैन धर्म ही उत्तम धर्म है। यही मोक्ष का साधन है। इसे कभी मत भूलना।

हे राजन्! आपके पिता के दादा का नाम सहस्त्रबल था। वे बड़े शक्तिशाली थे। उन्होंने भी अपने पुत्र शतबल को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की थी। कठोर तप द्वारा कर्मों का क्षय कर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष में गये।

तरह धर्म की साधना करूँ। स्वयंबुद्ध ने कहा राजन् ! चिन्ता न करियेगा हम परलोक में बन्धु के समान जिन दीक्षा ग्रहण करेंगे महाबल राजा ने बुद्धिमान मंत्री की बात स्वीकार करली। दूसरे ही दिन राजा ने अपने पुत्र को बुलाया और उसे राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त किया। दीन अनाथों को खूब दान दिया—इतना कि उन्हें फिर जीवन में कभी मांगने की आवश्यकता ही नहीं पड़े। फिर उसने अपने सग सम्बन्धी व परिजनों से क्षमा याचना की और मुनींद्र के समीप सर्व सावद्य योग का परित्याग कर दीक्षा ग्रहण की दीक्षा लेने के बाद अपना आयुष्य सन्निकट जान कर महाबल मुनि ने यावज्जीवन के लिए अनशन ग्रहण कर लिया। अनशन के कारण प्रतिदिन शरीर क्षीण होने लगा किन्तु आत्मा की कांति बढ़ने लगी। अन्त में २२ दिन का अनशन पूर्ण कर वह स्वर्गवासी हुआ।

पांचवां, छठा, सातवां और आठवां भव--

वहाँ वह 'श्रीप्रभ' नाम के अतिशय सुन्दर विमान में उपपात शय्या पर बड़ी ऋद्धि का धारक ललितांग देव हुआ। वह देव अंतर्मुहूर्त मे ही नवयौवन से पूर्ण तथा सम्पूर्ण लक्षणों से सम्पन्न होकर उपपात शय्या पर ऐसा सुशोभित होने लगा मानों सब लक्षणों से सहित कोई तरुण पुरुष सोकर उठा हो। देदीप्यमान कुण्डल, केयूर, मुकुट और बाजूबंद आदि आभूषण पहिने हुए माला से सहित और उत्तम वस्त्रों को धारण किये हुए था। सब ओर से नमस्कार करते हुए अनेक देवों के शरीर की प्रभा से व्याप्त दिशाओं में दृष्टि घुमाकर ललितांग देव ने देखा कि यह परम ऐश्वर्य क्या है ? मैं कौन हूँ ? और ये सब कौन है ? जो मुझे नमस्कार कर रहे हैं। ललितांगदेव यह सब देखकर क्षण भर के लिए आश्चर्य चकित हो गया। मैं यहाँ कहाँ आ गया ? कहाँ से आया ? आज मेरा मन प्रसन्न क्यों हो रहा है है ? यह शय्यातल किसका है ? यह मनोहर देव विमान किसका है ? इस प्रकार चिन्तन कर ही रहा था कि उसे उसी क्षण अवधिज्ञान प्रकट हो गया। उस अवधिज्ञान के द्वारा ललितांग देव ने अपना पूर्व जन्म जान लिया। 'यह मेरे पूर्व जन्म के तप का ही मनोहर फल है। यह अतिशय कांतिमान् स्वर्ग है। ये प्रणाम करने वाले देव है। ये मनोहर शब्द करती तथा रुणझुन शब्द करने वाली मणिमय नूपुर पहने हुई अप्सराएँ हैं। यह सब विचार कर ही रहा था कि अनेक देव उसके पास आये। वे देव ऊँचे स्वर से कह रहे थे कि हे स्वामिन् ! आपकी जय हो ! हे विजय शील आप समृद्धिमान् है। आपने अपने दिव्य आचरण से यह देव सम्बन्धी वैभव प्राप्त किया है। हे स्वामिन् ! आपका स्वामित्व पाकर हम धन्य हो गये हैं। यह ईशान देवलोक है। आपने अपने पुण्य योग से ही इस श्रीप्रभविमान का स्वामित्व प्राप्त किया है। आपकी सभा को सुशोभित करने वाले ये आपके सामानिक देव हैं। शस्त्र और कवचधारी जो देव आपके सामने खड़े

हैं ये आपके आत्मरक्षक देव हैं और ये लोकपाल आपके विमान की रक्षा करने वाले हैं। आपको सेना के ये रणकुशल सेनापति हैं। ये पुरवासी और देशवासी प्रकीर्णक देवता आपकी प्रजा हैं। ये रत्नों से जड़े हुए आपके महल हैं। सुवर्ण कमलसी ये वाटिकाएँ। रत्न तथा सुवर्ण की चोटी वाले ये क्रीड़ा-पर्वत तथा स्वच्छ जल वाली ये क्रीड़ा नदियाँ, रत्नमय सभा मण्डप, चमर, दर्पण और पंखे वीजने वाली अप्सराएँ ये सब आपके ही वैभव हैं यह गन्धर्ववर्ग संगीत व नाटक करने के लिए आपकी सेवा में उपस्थित है।

इस प्रकार प्रातिहारी देवों का निवेदन सुनने के बाद ललितांग देव अभिषेक के लिए देव-शय्या से उठा। देवों ने ललितांग देव का विधिवत् अभिषेक किया। अभिषेक की क्रिया पूरी होने पर ललितांग देव क्रीड़ा भवन में गया जहाँ उसे "स्वयंप्रभा" नाम की देवी दिखाई दी जो अपनी प्रभा से दिशाओं को प्रकाशित कर रही थी, वह अत्यन्त सुन्दर थी। ललितांग देव को अपने भवन में आता देख वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह अपने आसन से उठी और ललितांग का सत्कार करने के लिए आगे बढ़ी। दोनों परस्पर एक दूसरे से अत्यन्त स्नेह से मिले। अब ललितांग देव स्वयंप्रभा के साथ रह कर अपना जीवन व्यतीत करने लगा। अविच्छिन्न प्रेम रूपी सौरभ से पूर्ण ललितांग देव ने स्वयं प्रभा के साथ क्रीड़ा करते हुए अपने आयुष्य का बहुत बड़ा भाग एक घड़ी की तरह बिता दिया। इस प्रकार निरन्तर अपने रूप तथा यौवन से ललितांग को मुग्ध करने वाली स्वयंप्रभा देवी की आयु समाप्त होगई। स्वयप्रभा की मृत्यु से ललितांग देव को बड़ा भारी आघात लगा। अपनी प्रिया के वियोग में वह मूर्छित हो गया। देवों ने उपचार कर ललितांगदेव की मूर्छा दूर की सचेत होने के बाद स्वयंप्रभा के वियोग में विलाप करता हुआ वह इधर उधर भटकने लगा। स्वयंप्रभा के वियोग में उसे कहीं भी चैन नहीं मिलता था।

इधर स्वयंबुद्ध मन्त्री को अपने स्वामी महाबल की मृत्यु से वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने श्री सिद्धाचार्य नामके आचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की। लम्बे समय तक निरतिचार व्रतों का पालन करते हुए वहाँ मरा और ईशान देवलोक में इन्द्र का दृढ़धर्मा नामक सामानिक देव हुआ। उसने अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव के स्वामी ललितांगदेव को स्वयंप्रभा के वियोग में विलाप करते देखा। पूर्वभव के स्नेह वश वह अपने स्वामी की हालत देख न सका वह तत्काल ललितांग के पास आया और अपने पूर्व का परिचय दिया। और उसके बाद वियोग के संताप से संतप्त ललितांग को कहने लगा लगा-बन्धुवर! आप जैसे बुद्धिमान देव को स्त्री के पीछे इस तरह शोकाकुल रहना शोभा नहीं देता। संकट के समय धीरता रखना ही सच्चा पौरुष है। जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु भी

अवश्यंभावी है। अतः हे धीर ! स्वयंप्रभा को भूलने में तुम्हारी भलाई है। दृढधर्मा के उपदेश का ललितांग देव पर किंचित् भी असर नहीं हुआ। वह बोला–दृढधर्मा ! मैं अपने प्राणों का वियोग सह सकता हूँ किन्तु स्वयंप्रभा का वियोग एक क्षण के लिए भी नहीं सह सकता। इस समय तो मुझे स्वयंप्रभा क सिवाय किसी में सार दृष्टिगोचर नहीं होता। अगर तू मुझे सुखी देखना चाहता है तो किसी भी प्रकार से मुझे पुनः स्वयप्रभा से मिला दो। इस समय यही तुम्हारे मित्रता की सच्ची परीक्षा है। ललितांग के इस तीव्रतम मोहोदय को देखकर दृढधर्मा देव अत्यन्त दुखी हुआ। उसने अवधि ज्ञान से उपयोग लगा कर कहा–मित्र घबड़ाओ नहीं। मैंने ज्ञान बल से आपकी प्रिया कहाँ है, यह बात जानली है वह कहाँ है ? और किस प्रकार पुनः प्राप्त हो सकती है उसे मैं कहता हूँ। तुम ध्यान पूर्वक सुनो–

धातकीखण्डद्वीप में पूर्व महाविदेह क्षेत्र में मंगलावती नाम का विजय है। उस विजय में नन्दी नाम का गांव है। उस गांव में दरिद्र दुःख के भार से दबा हुआ नागिल नामक ब्राह्मण रहता है। उसकी स्त्री का नाम नागश्री है। वह दरिद्र ब्राह्मण दिन भर आजीविका के लिए भटकता रहता है फिर भी वह अपना तथा अपने कुटुम्ब का निर्वाह नहीं कर पाता। और भूखा प्यासा ही सो जाता है। जैसा वह दरिद्र है वैसी ही उसकी स्त्री नागश्री भी दुर्भागिनी है। इस महा दारिद्रय में भी उसने सुलक्षणा सुमंगला आदि छह कन्याओं को जन्म दिया। वे सब की सब कुरुपा और बहुत अन्न खाने वाली है। पहले से ही वह दारिद्रय के भार से अत्यन्त दुखी रहता था इन कन्याओं के कारण उसका दु.ख असीमित हो गया। नागश्री पुनः गर्भवती हो गई। पत्नी को पुनः गर्भवती हुई जान वह सोचने लगा–यह मेरे किस कर्म का फल है, जिससे मैं मनुष्यलोक में रह कर भी नरक की व्यथा अनुभव कर रहा हूँ। जिस प्रकार घुन नाम का कीड़ा काष्ठ में घुस कर उसे पोला और निर्वल वना देता है उसी प्रकार जन्म से ही मुझ जैसे दरिद्र को इन कन्या रूपी घुन ने निकम्मा वना दिया है। अगर इस बार भी पत्नी ने कन्या को ही जन्म दिया तो मैं इस महा व्यथा उत्पन्न करने वाले दरिद्र कुटुम्ब का परित्याग कर परदेश चला जाऊँगा। इस प्रकार चिन्ता ही चिन्ता में वह घुल रहा था कि फिर उसके घर पुत्री का ही जन्म हुआ। कान में सुई चुभने की तरह उसने कन्या के जन्म की बात सुनी। उसके दिल पर जवरदस्त चोंट लगी। जिस प्रकार दुष्ट वैल भार को छोड़कर भाग जाता है उसी प्रकार वह कुटुम्ब के दुःख से दुःखी होकर पलायन कर गया। प्रसव की वेदना से दुःखी नागश्री ने जब पति के भाग जाने की खबर सुनी तो उसे अत्यन्त आघात लगा। उसे अपनी नवजात कन्या पर अत्यन्त क्रोध आया। वह उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगी। इस रोप के कारण उसने उसका नामकरण भी नहीं किया। माता पिता के स्नेह से वंचित वह बाला

वनलता की तरह बढ़ने लगी। लोग उसे निर्नामिका के नाम से पुकारने लगे। निर्नामिका इधर-उधर के घरों में काम करके अपना उदर भरने लगी।

एक वार किसी उत्सव के दिन निर्नामिका ने धनवानों के बच्चों को खेलते हुए देखा। उनके हाथों में लड्डू आदि विविध मिठाइयाँ थी। उन्हें देखकर उसे भी मिठाई खाने के इच्छा हुई वह अपनी माँ के पास गई और वोली-माँ मुझे लड्डू दो। जिससे मैं भी नगर क बच्चों के साथ खेलूं। माँ न क्रोध के साथ त्योरियाँ और भौंहे चढ़ाकर उसके मुंह पर थप्पड़ लगाया और घर से निकालते हुए कहा-अभागिन्! तेरे खाने को यहाँ क्या रक्खा है? यदि कुछ खाना चाहता है तो अम्बरतिलक पहाड़ पर चली जा। वहाँ मनोरम नाम के बाग में तरह तरह के फल मिलेंगे। उन्हें खाकर अपनी इच्छा से खेलना। मेरे घर की तरफ मत आना। अगर आई तो ऐसा करूंगी जैसा कभी नहीं हुआ। इस प्रकार तिरस्कृत कर उस की माँ ने उसे घर के बाहर निकाल दिया। बाहर आकर उसने अम्बरतिलक पर्वत पर जाते हुए बहुत से लोगों को देखा उनके साथ वह भी पर्वत पर पहुँच गई। वहाँ विविध प्रकार के फलों से लदे हुए वृक्षों वाले अनेक पक्षियों से व्याप्त, मृग आदि प्राणियों से सुशोभित तथा ऊँचे शिखरों से मंडित अम्बर तिलक नामके पर्वत को देखा। दूसरे लोगों के समान उसने भी पक करके अपने आप गिरे हुए स्वादिष्ट फलों को खाया। पर्वत के रमणीय होने के कारण उन लोगों के साथ घुमते हुए उसने कहीं से आता हुआ मधुर स्वर सुना। स्वर के अनुसार कुछ दूर चलने पर चार ज्ञान तथा चौदह पूर्व के धारक युग-धर नाम के आचार्य को अपनी शिष्य मण्डली के साथ देखा। मनुष्य और देवों की सभा में विराजे हुए वे धर्म कथा सुना रहे थे। निर्नामिका ने भी जीवों के बन्ध और मोक्ष विषयक धर्मोपदेश को सुना। कथा के अन्त में उसन आचार्य युगन्धर से पूछा-भगवन्! क्या संसार में मुझ से भी अधिक दुखी कोई प्राणी है! आचार्य ने कहा भद्रे! तेरा दुःख तो अन्य दुःखी प्राणियों के सामने कुछ भी नहीं है। कारण तुम अच्छे बुरे शब्दों को सुन सकती हो, सुन्दर तथा असुन्दर रूपों को देख सकती हो, भले तथा बुरे अनेक प्रकार के गन्धों को सूंघ सकती हो, मीठे और कडवे सभी प्रकार के रसों का स्वाद ले सकती हो, कोमल तथा कठोर सभी प्रकार के स्पर्शों का अनुभव कर सकती हो। शीत, उष्ण, तथा भूख, प्यास आदि कष्टों को दूर करने का उपाय कर सकती हो, सुख से नींद ले सकती हो, अन्धेरे मे दीप आदि के प्रकाश द्वारा अपना कार्य कर सकती हो। संसार में दुखी तो वे हैं जिन्हें सदा अशुभ शब्द, अशुभ रूप, अशुभ गन्ध, अशुभ रस और अशुभ स्पर्श की प्राप्ति होती है। जो अपनी शीत तथा उष्ण वेदना को नहीं मिटा सकते। एक पल भर भी

जिन्हें कभी निद्रा सुख प्राप्त नहीं होता। जहाँ सदा अन्धकार छाया रहता है। जिन्हें परमाधार्मिक विविध प्रकार की यातनाएँ सदा देते रहते हैं। मृत्यु की इच्छा होने पर भी निरुपक्रम आयु होने के कारण जिन्हें मौत नहीं आती। नरक के दुःखों का वर्णन शास्त्रकार ने इस प्रकार किया है—

हण छिंदह भिंदह णं दहेति सद्दे सुणिता परहम्मियाणं।
ते नारगाओ भयभिन्नसन्ना कंखंति कं नाम दिसं वयामो॥
इंगालरासिं जलियं सजोतिं तत्तोवमं भूमिमणुक्कमंता।
ते डज्झमाणा कलुणं थणंति अरहस्सरा तत्थ चिर-द्वितीया॥

—सूत्रकृतांग अ. ५ उ. १ गा. ६–७ में

वहाँ नरक में परमाधार्मिक देवों के—मारो, काटो, चीरो, जलाओ—ये शब्द सुन कर ये नारक जीव भयभीत होकर यह इच्छा करते हैं कि कहीं भाग जाएँ। और वे वहाँ की जाज्वल्यमान अग्नि के समान तप्त भूमि पर (दुःखों से छूटने के लिये) बार बार दौड़ते हैं और विवश होकर जलते हुए रोते चिल्लाते हैं। इस प्रकार वहाँ लम्बे समय तक वे दुःख भोगते हैं।

जइ ते सुया वेयरणी भिदुग्गा, णिसिओ जहा खुर इव तिक्ख-सोया।
तरंति ते वेयरणीं भिदुग्गां, उसुचोइया सत्तिसु हम्ममाणा॥
कीलेहि विज्झंति असाहुकम्मा नावं उविंते सइ विप्पहूणा।
अन्ने तु सूलाहिं तिसूलियाहिं, दीहाहिं विद्धूण अहे करंति॥

—सूत्रकृतांग अ. ५ उ. १ गा ८-९

उस्तरे के समान तेज धार वाली वैतरणी नदी के विषय में शायद तुमने सुना होगा। वह नदी बड़ी दुर्गम है। परमाधार्मिक देवों से बाण तथा भालों से विद्ध और शक्ति द्वारा मारे गये नारकी जीव घबराकर उस वैतरणी में कूद पड़ते हैं किन्तु वहाँ पर भी उन्हें शान्ति नहीं मिलती।

वैतरणी नदी के खारे गर्म और दुर्गन्धयुक्त जल से सन्तप्त होकर नारकी जीव परमाधार्मिक देवों द्वारा चलाई जाती हुई कांटेदार नाव में चढ़ने के लिए नाव की तरफ दौड़ते हैं। ज्यों ही वे नाव के समीप पहुँचते हैं त्यों ही नाव में पहले से चढ़े हुए परमाधार्मिक देव उनके गले में कांटे चुभा देते हैं जिससे वे संज्ञाहीन हो जाते है। उन्हें कोई शरण दिखाई नहीं देती।

केसिं च बंधितु गले सिलाओ, उदगंसि बोलंति महालयंसि।
कलंबुया वालु य मुम्मरे य, लोलंति पच्चंति अ तत्थ अन्ने॥

परमाधार्मिक देव किन्हीं किन्हीं नारकी जीवों को गले में बड़ी बड़ी शिलाएँ बांधकर अगाध जल में डुबा देते हैं। फिर उन्हें खींच कर तप्त वालुका तथा मुर्मुराग्नि में फेंक देते हैं और चने की तरह भूनते है कई परमाधार्मिक देव शूल में बींधे हुए मांस की तरह नारकी जीवों को अग्नि में डाल कर पकाते हैं।

आसूरियं नाम महाभितावं अंधंतमं दुप्पतरं महंतं।
उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु समाहिओ जत्थऽगणी झियाई॥

—सूत्रकृतांग अ. ५ गा. १०-११

असूर्य नामक नरक महा अभिताप–दुःख से परिपूर्ण है। वहाँ अभेद्य गहनतम अन्धकार है। ऊँची नीची तिरछी सभी दिशाएँ अति उष्ण अग्नि से जलती रहती हैं। इतना ही नहीं–

सयाजला नाम नदी भिदुग्गा, पविज्जलं लोह विलीण तत्ता।
जंसि भिदुग्गंसि पवज्जमाणा, एगायताणुक्कमणं करेंति॥

—सूयगडांग अ. ५ उ० २ गा. २१

नरक में मांसादि के कीचड़ से पूर्ण, पिघले हुए लोहे के समान जलवाली, अत्यन्त दुःखदायी, निरन्तर प्रवाहित (सदाजला) एक नदी है जिसमें नरक के जीव, असहाय और अकेले तैरते हैं।

एयाइं फासाइं फुसंति बालं, निरंतरं तत्थ चिरट्ठितीयं।
न हम्ममाणस्स उ होइ ताणं, एगो सयं पच्चणुहोइ दुक्खं॥

(सूयगडांग अ० ५ उ० २ गा० २२)

इन दुखों को नरक में बालजीव लम्बे समय तक निरन्तर भोगते रहते हैं। उन्हें कोई भी पीड़ा भोगने से नहीं बचा सकता है, निःसहाय अकेले को ही दुःख भोगने पड़ते हैं।

हे निर्नामिके! तिर्यंच भी ऐसी ही असह्य वेदनाएँ उठाते हैं जिनका वर्णन करना कठिन है। शीत, उष्ण, भूख, प्यास आदि को दूर करने के लिए वे सदा पराधीन रहते हैं। स्वपक्ष से तथा पर पक्ष से अनेक प्रकार के आघात सहते हैं। तुम से हीन पुण्यवाले, बन्धन आदि में पड़े हुए तथा पराधीन मनुष्यों को भी हजारों दुख उठाने पड़ते हैं। वे तुम्हारी अपेक्षा बहुत अधिक दुःख भोगते हैं।

इसके बाद निर्नामिका ने वन्दना करके आचार्य से प्रार्थना की–भगवन! आपने जो कहा वह सर्वथा सत्य है। मेरे लिए उपयुक्त कोई ऐसा उपाय बताइए जिससे अगले जन्म में मुझे इस प्रकार कष्ट न उठाने पड़ें। आचार्य ने उसे पांच अणुव्रतों का उपदेश दिया। निर्नामिका ने उन्हें श्रद्धा-

पूर्वक ग्रहण कर लिया। आचार्य के उपदेश से बहुत लोगों को प्रतिबोध हुआ किसी ने सर्वविरतिचारित्र अंगीकार किया तो किसी ने देशविरति और किसी ने सम्यक्त्व ग्रहण किया।

इसके बाद निर्नामिका ने आचार्य को वन्दना की और अपने को कृतकृत्य मानती हुई वन में गई और वहाँ से लकड़ियों की भारी बना कर उसे घर ले आई। अब वह प्रतिदिन वन में जाती आचार्य का उपदेश सुनती और तद्नुसार आचरण करने लगी। आचार्य युगन्धर के द्वारा बताये गये विविध प्रकार के तप से अपनी आत्मा का कर्म रूपी भार हलका करने लगी। धीरे धीरे वह युवा होगई किन्तु कुरूपता के कारण किसी ने उसके साथ विवाह नहीं किया। बेले, तेले आदि तपस्याओं से उसने अपना शरीर सुखा डाला। एक दिन अपने शरीर को जीर्ण शीर्ण तथा सभी प्रकार से क्षीण देख कर निर्नामिका ने आहार को त्याग कर अम्बर तिलक पर्वत पर जाकर अनशन कर लिया। हे ललितांग ! वह इस समय अनशन पूर्वक अपने जीवन का अन्तिम समय बीता रही है। अत: तुम उसके पास जाओ और अपना दिव्य रूप प्रकट कर उसे अपनी ओर आकर्षित करो।" अपने मित्र देव की बात सुन कर ललितांग देव उसी क्षण अंबर तिलक पर्वत पर मित्रदेव के द्वारा बताये स्थान पर आया और वहाँ निर्नामिका को देख कर उसने अपना दिव्य रूप प्रकट किया और बोला—निर्नामिके ! मुझे लक्ष्य करके तू नियाणा करले कि मैं इसकी देवी बनूं। यह कह कर वह अदृश्य हो गया। उसे देख कर निर्नामिका के हृदय में कुछ अभिलाषा पैदा हो गई। पूर्व स्नेहवश वह ललितांगदेव का ध्यान करती हुई काल करके ईशान कल्प के 'श्रीप्रभ' विमान में ललितांग-देव की 'स्वयंप्रभा' नामक देवी के रूप में उत्पन्न हुई। अन्तर्मुहूर्त में सारी पर्याप्तियाँ पूर्ण हो गई जन्म से होने वाले अवधिज्ञान के कारण उसने अपने पूर्व भव का वृत्तांत जाना। ललितांगदेव के साथ अम्बरतिलक पर्वत पर जाकर युगन्धराचार्य को वन्दना की और उनके सामने भक्तिपूर्वक विविध प्रकार के नाटक किये, इसके बाद अपने विमान में आकर ललितांगदेव स्वयंप्रभा के साथ यथेष्ट भोग भोगता हुआ अपना समय बिताने लगा।

एक दिन ललितांग आँखें नीची किए कुछ चिन्तितसा बैठा था। उसकी माला के फूल मुरझाये हुए थे। स्वयंप्रभादेवी ने पास में जाकर पूछा प्राणेश ! आज आप उदास क्यों मालूम पड़ते हैं ? उसने उत्तर दिया—प्रिये ! अब मेरी आयु बहुत कम बची है। तुम्हारा वियोग समीप है। यह सुनकर स्वयंप्रभादेवी को बहुत दुःख हुआ। उसी समय ललितांग देव ने नन्दीश्वर द्वीप के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में देवी की आंखों के सामने ही आंधी से बुझे हुए दीप के समान ललितांगदेव समाप्त हो गया। वहाँ से चवकर वह पूर्वविदेह के पुष्कलावती विजय में लोहार्गल नगर के राजा

सुवर्णजंघ की रानी लक्ष्मीवती के गर्भ में पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ। गर्भकाल के पूर्ण होने पर रानी लक्ष्मीवती ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। बालक का नाम वज्रजंघ रक्खा गया।

इधर ललितांगदेव की मृत्यु से स्वयंप्रभादेवी को अत्यन्त दुःख हुआ। वह दिन-रात ललितांग देव का ही ध्यान करती रहती थी। अन्त में वह भी कुछ दिनों के बाद काल करके जम्बूद्वीप में विदेह नामक विजय की पुण्डरीकिणी नगरी में वज्रसेन नामक राजा की रानी गुणवती की कुक्षी में पुत्रीरूप से उत्पन्न हुई। जन्म होने पर माता-पिता ने उस बालिका का नाम 'श्रीमती' रखा। 'श्रीमती' पाँच धाइयों के संरक्षण में गुफा में रही हुई लता की तरह बढ़ने लगी। दूज के चांद की तरह उसने क्रमशः यौवन प्राप्त किया।

एक दिन वह अपने सर्वतोभद्र नाम के महल में गवाक्ष मे बैठी हुई थी। उस समय मनोरम नामक उद्यान में किसी मुनीश्वर को केवलज्ञान प्राप्त होने के कारण वहाँ जाने वाले देवताओं पर उसकी नजर पड़ी। उनको देखते ही मैंने पहले भी ऐसा देखा है, यों विचार करती हुई उसे अपना पूर्व जन्म याद आ गया। पूर्व जन्म का स्मरण होते ही वह मूर्छा खाकर जमीन पर गिर पड़ी। सखियों ने तत्काल शीतल जल का उपचार किया। जिससे वह होश में आई। अब वह अपने पूर्व जन्म के साथी ललितांग के बारे में सोचने लगी—मुझे अपने प्रिय ललितांगदेव की प्राप्ति कैसे हो? वह अब कहाँ जन्मा होगा? क्या उसका पुनः मिलन होगा! जब तक वह मुझे न मिल जाय तब तक मैं किसी से भी बात नहीं करूँगी यह सोचकर उसने मौन कर लिया। श्रीमती की सहसा बोली बन्द होने से सभी घर वाले घबरा गये। उन्होंने तंत्र, मंत्र, वैद्यक आदि अनेक विध उपचार किये किन्तु श्रीमती ने अपना मौन भग नही किया।

एक दिन उसका शृंगार करने वाली धात्री ने एकान्त में पूछा—बेटी! यदि किसी कारण से तुमने मौन स्वीकार किया हैं तो मुझे बतादो। सम्भव है मैं भी कुछ उपाय कर सकूं। बिना कहे तो कुछ भी नहीं किया जा सकता। क्योंकि रोग को जाने बिना रोग की चिकित्सा हो नही सकती। यथार्थ स्नेह रखने वाली धात्री से श्रीमती ने अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त कह सुनाया। धात्री ने श्रीमती के सारे पूर्व जन्म की घटना को एक पट पर चित्रित किया। उसमें धातकी खण्ड से, लेकर देवलोक से च्यवन तक ललितांग देव का सारा चरित्र विस्तार सहित चित्रित कर दिया।

उसी समय वज्रसेन चक्रवर्ती की वर्षगांठ होने के कारण, उसके उत्सव में शामिल होने के लिए अनेक राजा और राजकुमार आने लगे। उस समय श्रीमती की मनोकामना को पूर्ण करने वाला वह चित्रपट लेकर धात्री राजमार्ग पर आई और उत्सव में शामिल होने वाले राजकुमारों

को वह चित्रपट बताने लगी । अपने आपको पंडित मानने वाले कितने ही राजकुमार इस चित्रपट के आशय को नहीं समझ सके इसलिये वे चित्रपट को देख देखकर आगे चले जाते थे । कितने ही राजकुमार चित्रपट के कलापक्ष की प्रशंसा कर आगे बढ़ जाते थे । उस समय झूठ बोलने में अत्यन्त चतुर दुर्दशन राजा का पुत्र दुर्दांत वहाँ आया और कुछ क्षण तक चित्रपट को देखता हुआ बनावटी मूर्छा से जमीन पर गिर पड़ा । कुछ समय बाद होश में आकर कपट पूर्वक बोला– इस पट में किसी ने मेरे पूर्व जन्म का वृतान्त चित्रित किया है । इस राजपुत्री के पूर्व जन्म का मैं ही पति हूँ । इस चित्र की सारी घटनाएँ मेरे पूर्व जन्म से सम्बन्धित हैं । जब पण्डिता ने चित्रपट के गूढ़ रहस्यों के बारे में पूछा तो वह चुप हो गया । प्रश्न का जवाब न देने के कारण वह लज्जित होकर वहाँ से चुप चाप चला गया । कुछ समय के बाद लोहार्गलपुर के राजा सुवर्णजंघ का पुत्र वज्रजंघ वहाँ आया और वह भी चित्रपट को देखने लगा । चित्रपट देखते ही वज्रजंघ को जातिस्मरण हो गया । अपने पूर्व जन्म की प्रिया स्वयंप्रभा का विचार आते ही वह मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़ा । थोड़ी देर के बाद जब वह सचेत हुआ तो उसने उसे पूछा–भद्रे ! इस चित्र में मेरे पूर्व जन्म की घटना किसने लिखी है । यह ईशान कल्प है, उसमें यह श्री प्रभ विमान है । यह मैं ललितांगदेव हूँ । और मेरी यह स्वयंप्रभादेवी है । यह धातकी खण्ड का नन्दी ग्राम है इस घर के भीतर निर्नामिका नाम की एक दरिद्र लड़की रहती थी । उसने अम्बर तिलक पर्वत पर अनशन किया था । वह मर कर मेरी देवी स्वयंप्रभा बनी थी । इस प्रकार वज्रजंघ चित्रपट का वैसा ही वर्णन कर रहा था मानो उसके जीवन में चित्रपट की समस्त घटनाएँ घटी हो । वह बोला–भद्रे ! यह चित्रपट किसने बनाया ? स्वयंप्रभादेवी को छोड़ कर और कोई इस बात को नहीं जानता । मैं उससे मिलना चाहता हूँ । धाय ने कहा–राजकुमार ! तुम्हारी भुआ की पुत्री श्रीमती ने यह चित्रपट चित्रित कराया है । वही स्वयंप्रभादेवी है । उसने अपने पूर्व जन्म के पति ललितांग की खोज के लिये ही यह चित्रपट तैयार करवाया है । वह भी आपसे मिलने के लिए अत्यन्त आतुर है किन्तु आप कुछ समय के लिए यहीं ठहरिये । मैं श्रीमती के पास जाकर आपका सारा वृत्तान्त कह कर आती हूँ । यह कह कर पंडिता श्रीमती के पास आई और उसने सारा हाल कह सुनाया । राजा के पास पहुँच कर पंडिता ने दोनों के पूर्व जन्म का वृत्तान्त तथा प्रेम की बात कह दी । राजा ने पंडिता के मुख से अपने भावी दामाद के विषय में सुना तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने उसी क्षण राजकुमार वज्रजंघ को अपने पास बुलाया और कहा–मेरी पुत्री श्रीमती पूर्व जन्म की तरह इस जन्म की भी आपकी प्रिया हो बनी रहेगी । इसके बाद राजा वज्रसेन ने बड़े धूम धाम से श्रीमती का वज्रजंघ के साथ विवाह कर दिया । माता पिता ने बड़े सम्मान के साथ उन्हें विदा

दी। श्रीमती अपने पति के साथ लोहार्गल नगर में चली गई। राजकुमार वज्रजंघ अपनी प्रिया श्रीमती के साथ सांसारिक भोग भोगते हुए रहने लगे। कुछ समय के बाद राजा सुवर्णजंघ ने वज्रजंघ को राज्यसिंहासन पर बैठाया और स्वयं ने दीक्षा ग्रहण की।

धुआँ छोड़ दिया। विषले धुए के कारण राजा और रानी की तत्काल मृत्यु हो गई। भाव विरक्त दम्पति वहाँ से मर कर उत्तरकुरु क्षेत्र में युगल रूप से उत्पन्न हुए।

नौवां भव—

वहाँ से आयु पूर्ण होने पर वे सौधर्म देवलोक में देव रूप से उत्पन्न हुए। चिरकाल तक दिव्य भोगों को भोगकर आयुष्य के पूर्ण होने पर वज्रजंघ के जीव ने जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र के क्षितिप्रतिष्ठित नाम के नगर में सुविधि नाम के वैद्य के घर पुत्र रूप से जन्म ग्रहण किया। वहाँ उसका नाम 'जीवानन्द कुमार' रक्खा। उसी समय नगर में अन्य चार पुण्यशाली बालकों ने भी जन्म ग्रहण किया। उनमें से एक ईशानचन्द्र राजा की रानी कनकावती के उदर से जन्मा उसका नाम महिधर रक्खा। दूसरा बालक सुनाशीर मंत्री की पत्नी लक्ष्मी की कुक्षि से जन्मा उसका नाम सुबुद्धि रक्खा। तीसरा सागरदत्त सार्थवाह की स्त्री अभयमता से पूर्णभद्र नाम का पुत्र हुआ और चौथा धनसेठ की शीलमता के उदर से शीलपुंज नाम से जन्म ग्रहण किया। ये चारों बालक बाल्यावस्था से ही चन्द्रमा के समान समस्त कलाओं के भण्डार थे और प्रतिदिन अपनी बाल सुलभ लीलाओं से माता पिता के नेत्रों का आनन्द बढ़ा रहे थे। इधर श्रीमती का जीव भी देवलोक से चवकर उसी नगर में ईश्वरदत्त सेठ का 'केशव' नाम का पुत्र हुआ। इन छहों बालकों में बड़ी मित्रता थी। ये साथ में रहते और खेलते कूदते रहते थे। इनकी मित्रता की सारा नगर प्रशंसा करता था इस प्रकार ये छहों बालक बाल्यकाल को पार कर युवा हुए। उनमें जीवानन्द अपने पिता की ही तरह आयुर्वेद शास्त्र में निपुण हुआ। अपने अनुभव और चातुर्य से वह सारे नगर भर के वैद्यों में श्रेष्ठ बना। लोग जीवानन्द वैद्य का बड़ा सम्मान करते थे।

एक बार जीवानन्द वैद्य के घर पांचों मित्र बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे। उस समय गुणाकर नाम के राजर्षि अनगार आहार के लिए जीवानन्द के घर पधारे। तपस्या के कारण उनका शरीर सूख गया था। वे कुष्ट रोग से पीड़ित थे। उनके सारे शरीर में कृमियाँ उत्पन्न हो गई थीं। वे कृमियाँ उनके देह का मांस खा रही थीं जिससे उनके शरीर में अत्यन्त पीड़ा होती थी। असह्य पीड़ा होने पर भी वे अपना अशुभ कर्म का उदय मानकर उसे अत्यन्त शान्त भाव से सहन कर रहे थे। उन्होंने अपने रोग को हटाने के लिए मन से भी औषधोपचार करने का विचार नहीं किया। वे बेले को तपस्या का पारणा ग्रहण करने के लिए पधारे थे। मुनिराज के चले जाने के बाद महिधर कुमार ने जीवानन्द से कहा मित्र! तुम वैद्य कला में अत्यन्त कुशल हो। किन्तु तुम्हारी **वैद्य**कीय निपुणता केवल अर्थप्राप्ति के लिये ही है। तुम वेश्या की तरह पैसे के बिना आँख उठा

को नहीं देखते इससे मालूम होता है कि तुम हृदय हीन हो। तुम्हारे घर अभी अभी जो मुनिराज पधारे थे क्या उनको तुमने ध्यान से देखा ? मुझ लगता है वे मुनिराज असाध्य रोग से पीड़ित हैं। उनके सारे शरीर में कृमियाँ उत्पन्न हो गई हैं। वे समता के अवतार हैं। वे मन से भी अपने रोग की चिकित्सा नहीं चाहेंगे किन्तु तुम जैसे महावैद्य का भी कुछ न कुछ कर्त्तव्य अवश्य हैं वास्तव में मानव का जीवन अर्थ प्रधान न हाकर परोपकार प्रधान होना चाहिये। परोपकार की बुद्धि से चिकित्सा करने वाला वैद्य धर्म द्रव्य और यश तीनों को प्राप्त करता है। किन्तु धर्म और यश की उपेक्षा करने वाला वैद्य केवल द्रव्य ही प्राप्त करता है। अतः हे मित्र प्रवर ! तुम धर्म का आश्रय ग्रहण करो और व्याधिग्रस्त मुनिराज की चिकित्सा कर पुण्य का उपार्जन करो।

राजपुत्र महिधर का ऐसा वचन सुनकर खिन्न चित्त वाले जीवानन्द ने उदार आशय वाले महिधर से कहा-हे महिधर ! तुम सचमुच धन्यवाद के पात्र हो इस युवावस्था में भी तुम्हारा धर्म के प्रति अनुराग देखकर मेरा हृदय प्रसन्नता से भर गया हैं। तुम जैसा धर्म प्रेरक मित्र पाकर मैं धन्य हो गया हूँ। तुमने इस प्रकार की सूचना देकर मेरे पर बड़ा भारी उपकार किया है। मैं इन महा-मुनि की अवश्य ही चिकित्सा करूँगा किन्तु इन मुनिराज का उपचार करने के लिए जो आवश्यक दवा चाहिये वह इस समय मेरे पास नहीं हैं। अगर तुम उसकी व्यवस्था कर सकते हो तो मैं अवश्य ही उपचार करूँगा। महिधर ने कहा-वैद्यराज बताइए, मुनिराज की चिकित्सा में किन किन औष-धियों की जरुरत रहेगी ! । जीवानन्द ने कहा-लक्षपाक तैल, रत्नकम्बल और गोशीर्ष चन्दन इन औषधियों में से लक्षपाक तेल तो मेरे पास हैं। गोशीर्ष चन्दन और रत्नकम्बल तुम लाकर दो। हम इन वस्तुओं को अवश्य लाकर देंगे ऐसा कह कर पांचों मित्र वहाँ से उठ और बाजार में आये, वे एक वृद्ध व्यापारी की दुकान पर गये और उनसे रत्नकम्बल तथा गोशीर्ष चन्दन की मांग की। उत्तर में वृद्ध व्यापारी ने कहा-कुमारो ! इन चीजों की कीमत एक एक लाख सुवर्ण मुद्रा है। आप मूल्य देकर उपरोक्त वस्तु ले जा सकते हो किन्तु मुझे यह बताइए कि आप लोग इन कीमती चीजों का क्या करेंगे। उत्तर में कुमारों ने कहा-वृद्ध ! आप जो भी मूल्य मांगेंगे वह हम देंगे किन्तु आप शीघ्र ही उपरोक्त वस्तुएँ दें ! कारण कि हम लोग जीवानन्द वैद्य की सहायता से एक कुष्ट रोग से पीड़ित मुनिराज का उपचार करना चाहते हैं। कुमारों के मुख से परोपकार की बात सुनकर वृद्ध को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह अपने मन में सोचने लगा-कहाँ तो इन सबका उन्माद-प्रमाद और कामदेव से भी अधिक मदपूर्ण यौवन और कहाँ इनकी वृद्धों के योग्य विवेक पूर्ण मति ? इस उठती जवानी में इनमें वृद्धों के योग्य विवेक विचार पूर्ण मति-गति देख कर विस्मय होता है। विवेक रूप सूर्य से प्रकाशित अंतःकरण वाले कुछ तरुण युवक संसार रूपी अटवी को पार करने में समर्थ हो जाते हैं जबकि महामोह-

रूपी अन्धकार से निराश बने हुए कुछ वृद्धपुरुष भी सन्मार्ग पर नहीं चलते। इस प्रकार विचार करता हुआ वृद्ध बोला-कुमारों! तुम लोग सचमुच धन्यवाद के पात्र हो। इस युवावस्था में भी धर्म और परोपकार की तुम्हारी उत्कट अभिलाषा स्तुत्य है। तुम्हारी इस धार्मिक भावना से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। तुम्हारे जैसे धार्मिक परोपकारी युवकों से ही देश धर्म और कुल की उन्नति होगी। मैं आप लोगों पर प्रसन्न हूँ। आप बिना मूल्य ही रत्नकम्बल तथा गोशीर्षचन्दन ले जाइए और मुझे भी आपके पुण्यकार्य का हिस्सेदार बनाइए। यह लक्ष्मी तो नाशवान है। इसका परोपकार में जितना भी उपयोग करेंगे उतना ही इस भव और परभव के लिए लाभप्रद है। वृद्ध ने बिना मूल्य उन दोनों वस्तुओं को दे दिया। बाद में वृद्ध ने अपनी सारी सम्पत्ति को परोपकार में खर्च कर दीक्षा अंगीकार की और मोक्ष सुख को प्राप्त किया।

वृद्ध की धर्म-भावना से विस्मित कुमार दोनों वस्तुओं को लेकर जीवानन्द वैद्य के पास आये। जीवानन्द वैद्य वैद्यकीय उपचार के सामान लेकर अपने मित्रों के साथ मुनिराज के पास वन में पहुँचे। उस समय मुनिराज एक वटवृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग में स्थित थे। मुनिराज को प्रणाम कर जीवानन्द ने मुनिराज से कहा—भगवन्! हम आप की चिकित्सा करना चाहते हैं। चिकित्सा से आपके ध्यान में जो विघ्न होगा उसके लिए आप क्षमा करें। यह कह कर वैद्य ने मुनिराज का उपचार प्रारम्भ कर दिया। मुनि के शरीर की कृमियों को रखने के लिए तत्काल मरी हुई गाय का शव मंगाया। वैद्य ने प्रथम मुनिराज के शरीर पर लक्षपाक तेल लगाया। लक्षपाक तेल से मुनिराज तत्काल मूर्च्छित हो गये। लक्षपाक तैल से तमाम कृमियाँ मुनिराज के शरीर से बाहर आईं। उन तमाम कृमियों को मृत गाय के देह में रख दिया। इस प्रकार रत्नकम्बल की सहायता से समस्त कृमियाँ मुनिराज के देह से निकल गईं। उसके बाद गोशीर्षचन्दन का मुनिराज के देह पर लेप किया गया। गोशीर्षचन्दन के लेप से मुनिराज ने शीतलता का अनुभव किया। उनकी मूर्च्छा दूर होगई। वे पूर्ण स्वस्थ हो गये।

दूसरे दिन फिर वही उपचार किया गया। उससे मुनि के शरीर में रहे हुए अवशेष कीटाणु भी निकल गये। तीसरे दिन के उपचार से तो मुनि का शरीर कीटाणुओं से रहित हो गया। तैल की उष्णता को सहन न कर सकने के कारण समस्त कीट बाहर आ गए और जब गोशीर्ष-चन्दन का लेप किया गया तो शरीर का सारा दाह शांत हो गया।

रोगी मुनि अब स्वस्थ हो गये थे। अपना अभिग्रह पूर्ण हुआ समझ कर उन्होंने ध्यान पूर्ण किया। ध्यानपूर्ति के पश्चात् मुनिराज ने कहा—जो रोगी, वृद्ध, ग्लान और असमर्थ व्यक्ति की सेवा

करते हैं वे अपना जीवन सफल बनाते हैं। छहों मित्रों ने कहा–मुनिवर ! रोग की परिचर्या करते समय आपको जो कष्ट दिया है और ध्यान में विघ्न डाला है उसके लिए आप हमें क्षमा प्रदान करें। मुनिराज ने कहा–तुम्हारी भक्ति और सेवा परायणता अति प्रशंसनीय हैं, क्योंकि तुमने संयम सम्बन्धी दोषों को बचाकर मुनि की सेवा की है और मुनि के रोगग्रस्त शरीर को नीरोग बनाया है। तुम्हरी निस्वार्थ सेवा तुम्हें अवश्य दुःख मुक्त करेगी।

जीवानन्द वैद्य ने कहा–भगवन् ! ऐसा कौनसा कर्त्तव्य है जो तुरन्त करना चाहिए–

'त्वरितं किं कर्त्तव्यम् ? विदुषा संसार सन्ततिच्छेदः।

मुनिराज ने कहा–विवेकवान को जल्दी से जल्दी जन्म मरण के प्रवाह का अन्त करना चाहिये। यही उसका आद्य कर्तव्य है। भव परम्परा का अत करने के पश्चात् फिर कुछ भी करना शेष नहीं रहता। इसके बाद मुनि ने चतुर्गति का स्वरूप बताया और मोक्ष प्राप्ति में ही सच्चा सुख है उसका प्रतिपादन किया।

गुणाकर मुनि का प्रभावोत्पादक उपदेश सुनकर महिधर आदि छहों कुमारों को प्रतिबोध की प्राप्ति हुई। उन्होंने माता पिता की आज्ञा लेकर आचार्य के समीप दीक्षा धारण की। श्रुतसागर में अवगाहन करके चित्त के कालुष्य को धो डाला, तपस्या की आग में कर्म के कूड़े कचरे को भस्म करते हुए वे आत्मा को निर्मल बनाने के प्रयास में लग गए। इस तरह मुनिराज धरातल पर विचरण करते हुए धर्म का उद्योत करने लगे। अन्त समय में समाधि पूर्वक पण्डित मरण से काया का त्याग किया। उन्होंने अपने जीवन और मरण को सफल बनाया।

दसवां भव—

छहों मुनिराज वहां से देह त्याग कर अच्युत नाम के बारहवें देवलोक में इन्द्र के सामानिक देव हुए। इस प्रकार के तप का साधारण फल नहीं होता। उन्होंने वहां २२ सागरोपम की उत्कृष्ट आयु प्राप्त की। निरन्तर २२ सागरोपम तक देवों के दिव्य भोगों को भोग कर वे वहाँ से च्युत हुए।

ग्यारहवां भव—

जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह में पुष्कलावती नाम का विजय है। इस विजय में पुण्डरीकिनी नाम की एक धन धान्य से समृद्ध नगरी है। महाराजा वज्रसेन इस नगरी के अधिपति थे। वे भावी तीर्थङ्कर थे। उन्होंने अभी तक संसार–अवस्था का त्याग नहीं किया था। वे महारानी धारिणी के

साथ सुख पूर्वक गृहस्थाश्रम का पालन कर रहे थे। यथा समय क्रमशः छहों अनगारों के जीवों में से पांच अनगारों ने बारहवें देवलोग से चवकर महारानी धारिणी के उदर में जन्म ग्रहण किया सबसे बड़े पुत्र का नाम वज्रनाभ था वज्रनाभ वैद्यराज जीवानन्द का जीव था। दूसरे पुत्र का नाम बाहु था। महीधर का जीव बाहु के रूप से जन्मा। तीसरे पुत्र का नाम सुबाहु था। यह मंत्री पुत्र सुबुद्धि का जीव था। चौथा पुत्र था-पीठ। यह पूर्व भव में पूर्णभद्र श्रेष्ठी का पुत्र था। पांचवें पुत्र का नाम महापीठ था। वह पूर्व भव में शीलपुंज था।

इस प्रकार छह मित्रों में से पांच तो एक ही राजपरिवार में उत्पन्न हुए और छठा केशव का जीव दूसरे राजा के परिवार में जन्मा। सुयश उसका नाम था। पूर्व स्नेह के कारण सुयश की वज्रनाभ के साथ अत्यन्त गाढी प्रीति थी। इस प्रकार छहों मित्र यहाँ भी एक साथ सुखमय जीवन यापन करने लगे। सब के सब समृद्ध परिवार में उत्पन्न हुए थे। उन्हें सुखोपभोग की समस्त साम–ग्रियाँ उपलब्ध थी। किसी भी वस्तु की न्यूनता नहीं थी। उन्होंने कलाचार्य के पास रहकर समस्त कलाओं में निपुणता प्राप्त करली। ये क्रमशः बाल्यावस्था को पार कर युवावस्था को प्राप्त हुए।

महाराज वज्रसेन भावी तीर्थङ्कर थे अतः उनका भी समय परिपक्व हुआ। उन्होंने दीक्षा धारण करने का विचार किया। उसी समय लोकान्तिक देवों ने आकर तीर्थङ्कर भगवान से प्रार्थना की–नाथ! तीर्थ की स्थापना कीजिए और पृथ्वी पर के प्राणियों के उद्धारण का मार्ग प्रदर्शित कीजिए।

महाराज वज्रसेन वैरागी तो थे ही, देवों की प्रार्थना पर उन्होंने तत्काल प्रव्रज्या लेने का निश्चय किया। तदनुसार उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र वज्रनाभ को राज्य का भार सौंप दिया और वर्षीदान देकर स्वयं दीक्षित हो गये। वे जन्म से ही अवधिज्ञानी थे। दीक्षा ग्रहण करते ही उन्हें मनःपर्यवज्ञान भी प्राप्त हो गया। इस प्रकार चार ज्ञान के धारक वज्रसेन तीर्थङ्कर ने ऐसी घोर तपस्या की कि एक ही मास में मोहनीय आदि चार घनघातिया कर्म का समूल क्षय करके वीतराग अवस्था प्राप्त कर ली। दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय में मोहनीय कर्म का उन्मूलन करके सीधा अप्रतिपाति नामक बारहवें गुणस्थान को प्राप्त किया। एक अन्तर्मुहूर्त बारहवें गुणस्थान में रहकर और उसके चरम समय में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मों का क्षय करके अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और अनन्तशक्ति के स्वामी हो गये। तेरहवें गुणस्थान पर आरूढ़ होकर भगवान वज्रसेन ने धर्मतीर्थ की स्थापना की। वज्रसेन तीर्थङ्कर अपनी अमृतमयीवाणी से धरातल के प्राणियों को पावन करने लगे।

इधर पिता द्वारा राज्य प्राप्त कर वज्रनाभ ने अपने चारों भाइयों को माण्डलिक राजा के पद पर नियुक्त किया और सुयश को मन्त्रीपद पर प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार छहों साथी सुख-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

कुछ समय के बाद वज्रनाभ की आयुधशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ। चक्ररत्न के साथ में अन्य भी तेरह रत्न प्राप्त हो गये। इन रत्नों की सहायता से वज्रनाभ ने पुष्कलावती विजय के छहों खण्डों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। छहों खण्डों पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् वे चक्रवर्ती पद पर प्रतिष्ठित हुए। और चौदह रत्न तथा नौ निधान के स्वामी बन गये। सोलह हजार देव वज्रनाभ की सेवा करने लगे।

एक बार भगवान वज्रसेन ग्रामानुग्राम विचरते हुए पुण्डरीकणी नगरी मे पधारे. देवों ने समवसरण की रचना की। चक्रवर्ती सम्राट को जब भगवान के आगमन की सूचना मिली तो वे बड़े वैभव के साथ उत्साह और उमंग को लेकर तथा नगरजनों को साथ लेकर तीर्थङ्कर भगवान के दर्शन करने और प्रवचन पीयूष का पान करने के लिए गये। सब लोग यथा विधि वन्दना-नमस्कार करके यथायोग्य स्थान पर बैठ गये। भगवान ने वज्रनाभ सहित समस्त जन समूह को उपदेश देना प्रारंभ कर दिया--

भव्य जीवों ! यह जगत् अनादि अनन्त है। न इसकी आदि है और न अन्त हैं। इस अनादि अनन्त संसार में प्राणी अपने शुभाशुभ कर्म से चारों गतियों में परिभ्रमण करता आया है। अत: इस संसार मे प्राणियों को मनुष्य जन्म, धर्मश्रवण धर्म पर श्रद्धा एव संयम में प्रवृत कराने वाली आत्मशक्ति इन चार मोक्ष के प्रधान अंगो की प्राप्ति होना दुर्लभ है। कहा भी है--

समावण्णा णं संसारे णाणागोत्तासु जाइसु।
कम्मा नाणाविहा कट्टु पुढो विस्संभया पया॥

संसार में विविध गोत्र वाली जातियों में जन्म लेकर प्राणी नाना प्रकार के कर्म करते हैं और इनके वश होकर वे एक एक कर यानी कभी कहीं कभी कहीं उत्पन्न होकर सारे लोक मे व्याप्त होते हैं।

एगया देवलोएसु नरएसु वि एगया।
एगया आसुरं कायं अहाकम्मेहिं गच्छइ॥

—उत्तरा० ४ गा० २

जीव स्वकृत कर्मानुसार कभी देवलोक में उत्पन्न होता है, कभी नरक में जन्म लेता है एवं कभी असुर काया को प्राप्त होता है।

एवमावट्ट–जोणीसु, पाणिणो कम्म–किब्बिसा ।
न निविज्जंति संसारे सव्वट्ठेसु व खत्तिया ॥

इस प्रकार आवर्त वाली योनियों में भ्रमण करते हुए अशुभ कर्म वाले जीव संसार से निर्वेद प्राप्त नहीं करते। संसार से कब छुटकारा होगा ऐसा उन्हें कभी उद्वेग नहीं होता। सभी अर्थ पाने पर भी जैसे क्षत्रियों को संतोष नहीं होता उसी प्रकार संसार भ्रमण से उन्हें तृप्ति नहीं होती।

कम्मसंगेहिं सम्मूढा दुक्खिया बहु-वेयणा ।
अमाणुसासु जोणीसु विणिहम्मंति पाणिणो ॥

कर्म सम्बन्ध से मूढ बने हुए दुःखी और शारीरिक वेदना से व्यथित बने हुए प्राणी कर्म–वश मनुष्येतर योनियों में उत्पन्न होते हैं।

कम्माणं तु पहाणाए आणुपुव्वी कयाइ उ ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता आययंति मणुस्सयं ॥

मनुष्यगति के बाधक कर्मों का नाश होने पर शुद्ध हुए जीवात्मा मानव भव पाते हैं।

माणुसत्तम्मि आयाओ जो धम्मं सोच्चसद्दहे ।
तवस्सी वीरियं लद्धुं संवुडे णिद्धुणे रयं ॥

जो जीव मनुष्यभव में आकर धर्म श्रवण करता है एवं उस पर श्रद्धा करता है। संयम में उद्योग करके तप एवं संवर से युक्त होकर वह कर्मरज का नाश कर देता है।

सोही उज्जुय भूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई ।
निव्वाणं परमं जाइ घयसित्तिव्व पावए ॥

मानव भव, धर्म श्रवण, श्रद्धा एवं वीर्य इन चारों अंगों को पाकर मुक्ति की ओर अभिमुख हुए जीव की शुद्धि होती हैं। एवं शुद्धि प्राप्त जीव में क्षमा आदि धर्म रहते हैं। घी से सींची हुई अग्नि की तरह तप के तेज से दीप्त वह आत्मा परम निर्वाण को प्राप्त होता है।

विगिंच कम्मुणो हेउं, जसं संचिणु खंतिए ।
पाढवं सरीरं हिच्चा, उड्ढं पक्कमई दिसं ॥

मिथ्यात्व अविरति आदि कर्म के हेतुओं को आत्मा से पृथक् करो और क्षमा मार्दव आदि द्वारा संयम की वृद्धि करो। ऐसा करने से तुम पार्थिव शरीर का त्याग कर ऊँची दिशा (सिद्धि) में जाओगे।

तीर्थङ्कर भगवान का उपदेश सुनकर और उनके लोकोत्तर वैभव को देखकर चक्रवर्ती वज्रनाभ को अपनी ऋद्धि नगण्य और निस्सार प्रतीत होने लगी। उनके पूर्व जन्म के वैराग्य के संस्कार जागृत हो उठे। उन्होंने उसी समय संयम लेने का दृढ़ विचार किया।

उसके बाद चक्रवर्ती वज्रनाभ तीर्थंकर भगवान को वन्दना नमस्कार करके अपने महल में आये। पुत्र को राज्य भार सौंप कर आप दीक्षा लेने की तैयारी में लग गए।

चक्रवर्ती वज्रनाभ दीक्षा ले रहे हैं यह संवाद पाते ही उनके भव भवान्तर के साथी पांचों सहयोगियों ने भी दीक्षा लेने का विचार किया। अन्तत: छहों ने साथ ही अत्यन्त उत्साह के साथ आर्हती दीक्षा धारण की। दीक्षा लेकर छहों अनगार आन्तरिक कर्मशत्रुओं को जीतने के पराक्रम में लग गए।

स्थविरों की सेवा में रहकर वज्रनाभ मुनि ने बारह अंगसूत्रों का अध्ययन किया। शेष पांच मुनि ग्यारह अंगसूत्रों के पाठी हुए।

छहों मुनि दीर्घकाल तक वज्रसेन तीर्थङ्कर भगवान की छत्रछाया में रहकर संयम का पालन करते रहे। चार अघातियां कर्मों का भी क्षय करके वज्रसेन तीर्थङ्कर ने निर्वाण प्राप्त किया। देवों ने भगवान का निर्वाणोत्सव मनाया। तीर्थङ्कर भगवान के निर्वाण के बाद वज्रनाभ मुनि श्रमण संघ के नायक बने। तथा उत्कृष्ट तपस्या करते हुए विहार करने लगे। विनय और क्षमा के साथ तपस्या करने के कारण तथा निरतिचार संयम के पालन से आचार्य वज्रनाभ को अनेक प्रकार की लब्धियां प्राप्त होगई, जो इस प्रकार हैं—

आमोसहि विप्पोसहि खेलोसहि जल्लओसही चेव ।
सव्वोसहि संभिन्ने ओही रिउ विउलमइ लद्धी ॥
चारण आसीविस केवलिय गणहारिणो य पुव्वधरा ।
अरहंत चक्कवट्टी बलदेवा, वासुदेवा य ॥

खीर महु सप्पि आसव कोट्ठय बुद्धि पयाणुसारी य ।
तह बीयबुद्धि तेयग आहारग सीयलेसा य ॥
वेउव्वि देह लद्धी अक्खीण महाणसी पुलाया य ।
परिणाम तव वसेणं एमाइ हुंति लद्धिओ ॥

—प्रवचनद्वार २७० गा० १४९ १४९२, १५०८

अर्थ—आमर्शौषधिलब्धि, विपुलौषधिलब्धि, खेलौषधिलब्धि, जल्लौषधिलब्धि, सर्वौषधि-लब्धि, सम्भिन्नश्रोतोलब्धि, अवधिलब्धि, ऋजुमतिलब्धि, विपुलमतिलब्धि, चारणलब्धि, आशीविष-लब्धि, केवलीलब्धि, गणधरलब्धि, पूर्वधरलब्धि, अर्हल्लब्धि, चक्रवर्त्तीलब्धि, बलदेवलब्धि, वासुदेव-लब्धि, क्षीरमधुसर्पिराश्रवलब्धि, कोष्ठकलब्धि पदानुसारीलब्धि, बीजबुद्धिलब्धि, तेजोलेश्यालब्धि, आहारकलब्धि, शीतलेश्यालब्धि, वैकुर्विकदेहलब्धि, अक्षीणमहानसीलब्धि, एवम् पुलाकलब्धि । उपरोक्त अट्ठाईस लब्धियों में से वज्रनाभमुनि ने निम्न लब्धियाँ प्राप्त करली थी—

१—**आमर्शौषधिलब्धि**—इस लब्धि के प्रभाव से वे हाथ पैर आदि अवयवों के स्पर्श मात्र से रोगी के रोग को शान्त कर सकते थे ।

२—**विप्रुडौषधि लब्धि**—विप्रुड शब्द का अर्थ है मल मूत्र । इस लब्धि के प्रभाव से उनका मल मूत्र सुगन्धमय बन गया था । इनका मल मूत्र रोगी के रोग को मिटाने के लिए औषधि रूप बन गया था ।

३—**खेलौषधि लब्धि**—इस लब्धि से उनका श्लेष्मकुष्ट जैसे रोगी के रोग को भी उपशान्त करने की शक्ति रखता था ।

४—**जल्लौषधि लब्धि**—इस लब्धि के प्रभाव से उनके मैल के स्पर्श से रोगी का रोग दूर हो जाता था ।

५—**सर्वौषधि लब्धि**—इस लब्धि के प्रभाव से उनका मल मूत्र नख, केश आदि सभी औषधि रूप बन गया था ।

६-**सभिन्न श्रोतो लब्धि**—जो शरीर के प्रत्येक भाग से सुने उसे संभिन्न श्रोता कहते हैं । ऐसी शक्ति जिस लब्धि से प्राप्त हो उसे सम्भिन्न श्रोतो लब्धि कहते हैं । अथवा किसी भी एक इन्द्रिय से दूसरी सभी इन्द्रियों के विषय ग्रहण किया जा सके वह संभिन्न श्रोतो लब्धि है । यह भी उन्हें प्राप्त थी ।

७ जंघाचारण लब्धि—इसके प्रभाव से वे एक उडान में रूचक द्वीप पर पहुँचने की शक्ति रखते थे। रूचक पवत से लौटते समय प्रथम उडान में नन्दीश्वर द्वीप और दूसरी उडान में अपने स्थान पर आ जाते थे। यदि वे ऊर्ध्व दिशा की ओर उडान करते तो एक ही उडान में मेरु-पर्वत के पांडुक वन में पहुँच जाते और लौटते समय प्रथम उडान में नन्दन वन में और दूसरी उडान में अपने स्थान पर पहुँचने की शक्ति रखते थे।

८ विद्याचारण लब्धि—इस लब्धि के प्रभाव से वे पहली उडान में मानुषोत्तर पर्वत पर और दूसरी उडान में नन्दीश्वर पर्वत पर जाने की शक्ति रखते थे और लौटते समय एक ही उडान में अपने स्थान पर पहुँचने की सामर्थ्य रखते थे। उनकी उर्ध्व गमन शक्ति जंघाचरण के विपरीत थी। अणुत्व लब्धि से वे सूई के छिद्र में से भी निकल सकते थे। महत्वशक्ति से वे अपना शरीर मेरु पर्वत जितना विशाल बना सकते थे। गुरुत्व शक्ति से वे इन्द्र के वज्र से भी भारी अपना शरीर बना सकते थे। लघुत्व शक्ति से वे अपना शरीर वायु से भी हल्का बना सकते थे। प्राप्ति शक्ति के प्रभाव से वे आकाश के तारों को भी छू सकते थे। प्राकाम्य शक्ति से वे जल पर भी चलने की शक्ति रखते थे। ईशत्व शक्ति से वे चक्रवर्ती जैसी ऋद्धि बना सकते थे। वशीकरण शक्ति से क्रूर प्राणियों को भी वश कर लेते थे। अप्रतिघाति शक्ति से पर्वत के भीतर से भी जगह बना कर निकल सकते थ। अप्रतिहत अंतर्धान शक्ति से वे वायु की तरह अदृश्य हो सकते थे। कामरूपत्व शक्ति से वे अनेक प्रकार के रूप बना कर सारे लोक कोक को भर सकते थे। बीज बुद्धि से एक अर्थ रूप बीज से अनेक अर्थ जान लेते थे। कोष्ठ बुद्धि लब्धि से वे अक्षीण स्मृति वाले थे।

पदानुसारिणी बुद्धि से वे आदि, अन्त और मध्य के एक पद को सुनकर समस्त ग्रन्थ को जान लेते थे। इसके अतिरिक्त मनोबलिलब्धि, वचनबलीलब्धि, कायबलीलब्धि, क्षीरमधुसर्पिरासवा, (जिनकी वाणी दुखियों के मन को क्षीर, अमृत, शहद और घृत जैसी शान्ति और सुख देने वाली थी) अक्षीणमहानसी (अल्प वस्तु बहुत बन जाय) अक्षीण महानस आशीविषलब्धि, निग्रहलब्धि, अनुग्रहलब्धि आदि अनेक लब्धियां प्राप्त करके भी वे कभी उनका प्रयोग नहीं करते थे। वे दोष रहित शुद्ध चारित्र का पालन करते थे। वे निरन्तर ज्ञानाभ्यास में लगे रहते थे। ज्ञान तप और संयम का उत्तरोत्तर विकास करते हुए उन्होंने तीर्थङ्कर नाम कर्म के बीस स्थानों की आराधना की— ये बीस स्थान ये है--

तीर्थंकरगोत्र के बीस स्थानक (कारण)

अरिहंत सिद्ध-पवयण-गुरु-थेर-बहुस्सुए-तवस्सीसु
वच्छलया य तेसिं अभिक्ख णाणोवओगे ॥ १ ॥
दंसण - विणए आवस्सए य सीलव्वए निरइयारं ।
खणलव - तवच्चियाए, वेयावच्चे समाही य ॥२॥
अपुव्वनाण गहणे, सुयभत्ती पवयणे पभावणया ।
एएहिं कारणेहिं तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥ ३ ॥

ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र अ ८

अर्थ- (१) अरिहंत (२) सिद्ध (३) प्रवचन-श्रुतज्ञान (४) धर्मोपदेशक (५) स्थविर अर्थात् साठवर्ष की उम्र वाले जाति स्थविर समवायांग के ज्ञाता श्रुतस्थविर, और वीसवर्ष की दीक्षा वाले पर्यायस्थविर, यह तीन प्रकार के स्थविर साधु (६) बहुश्रुत-दूसरों की अपेक्षा अधिक श्रुत के ज्ञाता (७) तपस्वी-इन सातों के प्रति वत्सलता धारण करना अर्थात् इनका यथोचित सत्कार-सम्मान करना, गुणोत्कीर्तन करना, (८) वारंवार ज्ञान का उपयोग करना (९) दर्शन सम्यक्त्व (१०) ज्ञानादिक का विनय करना (११) छह आवश्यक करना (१२) उत्तरगुणों और मूलगुणों का निरतिचार पालन करना (१३) क्षणलव अर्थात् क्षण एवं लव प्रमाण काल में भी संवेग भावना एवं ध्यान का सेवन करना (१४) तप करना (१५) त्याग मुनियों को उचित दान देना (१६) वैयावृत्य करना (१७) समाधि गुरु आदि को साता उपजाना (१८) नया-नया ज्ञान ग्रहण करना (१९) श्रुत की भक्ति करना (२०) और प्रवचन की प्रभावना करना। इन वीस कारणों से जीव तीर्थंकरत्व की प्राप्ति करता है। इन एक एक बोल की आराधना करने से भी जीव तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन करता है। वज्रनाभ मुनि ने वीसों स्थानों की आराधना कर तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया ।

बाहु मुनि को वृद्ध रोगी और तपस्वी साधुओं की सेवा करने में बड़ा आनन्द आता था। वे प्रति दिन पांचसौ साधुओं की सेवा बड़ी तन्मयता के साथ करते थे। आहार पानी औषध और

हितकारी आहार निर्दोष लाकर मुनियों को देते थे और उन्हें साता उपजाते थे। निस्वार्थ सेवा और मुनियों को साता उपजाने से उन्होंने महान पुन्य प्रकृति का बन्ध किया। चक्रवर्ती की ऋद्धि सिद्धि के स्वामी बनने का शुभ कर्म उपार्जन किया।

सुबाहु मुनि भी अत्यन्त सेवा परायण थे। ये भी बड़ी श्रद्धा से मुनियों की सेवा करते थे। वृद्ध ग्लान और रोगी मुनियों की सेवा में ही अपना सारा समय लगाते थे। विशुद्ध और निस्पृह सेवावृत्ति से उन्होंने भी उच्चतर पुण्य प्रकृति का बन्ध किया। चक्रवर्ती अतिशय बलवान होते हैं किन्तु सुबाहु मुनि ने चक्रवर्ती से भी अधिक बलवान होने योग्य पुण्यमय प्रकृ ति क बन्ध किया।

पीठ और महापीठ मुनि भी निरंतर ध्यान साधना से लगे रहते थे। किन्तु एक बार वज्रनाभ मुनि ने बाहु, सुबाहु मुनि की प्रशंसा करते हुए कहा—बाहु, सुबाहु मुनि को धन्य है जिन्होंने मुनियों की सेवा में ही अपने आपको अर्पित कर दिया है। इनकी ग्लान वृद्ध रोगी और तपस्वियों के प्रति अग्लान भाव युक्त सेवा अजोड़ हैं। इस प्रशंसा से प ठ और महापीठ मुनि के मन में ईर्षाभाव उत्पन्न हो गया। वे सोचने लगे—जो लोग प्रकट में उपकार करते हैं उन्हीं की संसार में प्रशंसा होती है। केवल स्व की ही साधना करता है उसकी कौन प्रशंसा करता है। हम तो ज्ञान—ध्यान में ही लगे रहते हैं अतः हमारी कौन प्रशंसा करेगा ? इत्यादि ब तें सोचते रहते थे। उन्होंने प्रकट में गुरु पर विश्वास और अतरंग में अविश्वास रक्खा। इस प्रकार वे कपट का पोषण करते रहे। बाहु, सुबाहु की प्रशंसा को वे मिथ्या प्रशंसा समझते। इस तरह कपट करने से प ठ और महापीठ मुनि को स्त्री वेद का बन्ध पड़ गया।

इस प्रकार छहों मुनियों ने अपनी यथाशक्ति से व निरतिचार शुद्ध संयम से उच्च उच्चतम पुण्य का उपार्जन किया। अन्त में जब इनका आयु का अंत समय आया तो उन्होंने अनशन ग्रहण किया। शरीर और आहार का ममत्व छोड़ दिया। वे अपने शरीर की किंचित् भी परवाह न करते हुए पादोपगमन अनशन में स्थिर रहे। अन्त में समाधि पूर्वक अपने प्राणों को त्याग कर सर्वार्थ सिद्ध विमान में तेतीस सागरोपम की उत्कृष्ट आयु वाले महर्द्धिक अहमेन्द्र देव बने। इन्होंने चौदह लाख पूर्व तक प्रव्रज्या का पालन किया था।

कुलकरोत्पत्ति

विमल वाहन कुलकर का पूर्व भव–

जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह में अपराजिता नाम की नगरी थी। उस नगर में ईशानचन्द्र नाम का पराक्रमी राजा राज्य करता था। उसी नगर में चन्दनदास नाम का एक धनाढ्य श्रेष्ठी रहता था। वह सेठ अत्यन्त धर्म प्रिय एवं न्याय से अर्थ उपार्जन करने वाला था। उसके सागरचंद्र नाम का आज्ञाकारी पुत्र था। वह अपने विनम्र स्वभाव से माता पिता को सदा प्रसन्न रखता था। स्वभाव से-ही सरल धार्मिक और विवेकी होने के कारण वह नगर भर में लोक प्रिय था।

एक बार महाराजा ईशानचन्द्र अपने दरबारियों के साथ राजसभा में बैठा हुआ था उस समय सागरचन्द्र भी राजदरबार में पहुंचा राजा ने सागरचन्द्र का सन्मान कर उसे उचित आसन पर बैठाया।

उसी समय एक मंगल पाठक ने आकर महाराज को सूचना दी "हे राजन्! वसन्त आगया है अतः प्रतिवर्ष के अनुसार कल वसन्तोत्सव की तैयारी करने को नगर जन को आज्ञा दीजिये।" मंगल पाठक की यह बात सुन कर राजा ने द्वारपाल को आज्ञा दी सारे नगर में ऐसी घोषणा करो कि कल प्रातः काल वसन्तोत्सव के अवसर पर सभी नगर जन राजउद्यान में एकत्र हों" राजा की आज्ञा के अनुसार सारे नगर मे यह घोषणा करवा दी। राजा ने सागरचन्द्र को भी कल राजोद्यान में आने का निमंत्रण दे दिया।

दूसरे दिन प्रातः काल राजा के कहे अनुसार सभी नगर जन राजउद्यान में वसन्तोत्सव मनाने के लिये एकत्र हो गये। सागरचन्द भी अपने मित्र अशोकचन्द्र के साथ उद्यान में पहुँचा। सभी लोग वसन्तोत्सव के राग रंग में निमग्न हो गये।

उस समय सागरचन्द्र अपने मित्र अशोकदत्त के साथ बगीचे की सैर कर रहा था। अचानक ही उसके कान में एक करुण चीत्कार सुनाई दी "बचाओ, बचाओ, बचाओ" यह शब्द सुनते ही

सागरचन्द्र आवाज की दिशा की ओर भागा। वह एक सघन वृक्षों की गुफा के पास पहुंचा। वहां उसने देखा कुछ बन्दीवान पूर्णभद्र सेठकी कन्या प्रियदर्शना को बलात् पकड़े हुए थे और बलात्कार की तैयारी कर रहे हैं। तत्काल वह उन गुण्डो पर टूट पड़ा। और एक एक को पकड़ कर जमीन-पर पछाड़ दिया। उनके हाथ से छुरा छीन लिया। इतने में अशोकदत्त तथा अन्य लोग भी आगये सागरचन्द्र के पराक्रम को देख कर बन्दीवान वहां से भाग खड़े हुए। युवती की रक्षा हो गई लोग सागरचन्द्र के इस पराक्रम की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। प्रियदर्शना के रुपलावण्य पर सागरचन्द्र मोहित हो गया। प्रियदर्शना भी अपने उद्धारक युवक सागरचन्द पर मोहित हो गई।

समय पाकर सेठ चन्दनदास ने सागरचन्द का विवाह प्रियदर्शना के साथ कर दिया। दोनों पति पत्नी सुख पूर्वक अपना जीवन बिताने लगे।

सागरचन्द्र का मित्र अशोकचन्द्र कपटी स्वभाव का था। उसकी मित्रता कपट पूर्ण थी। सागरचंद स्वभाव से ही सरल था। वह अपने मित्र अशोकदत्त पर पूर्ण विश्वास रखता था। सेठ चन्दनदास अशोकदत्त को अच्छी तरह पहचानता था। उसे अशोकदत्त की कपटपूर्ण वृत्ति ज्ञात थी। अवसर पाकर उसने अपने पुत्र सागरचन्द्र को बुलाकर कहा-पुत्र अशोकदत्त कुलीन होते हुए भी हृदय का मैला दिखाई देता है। उसका हृदय अपने मित्र के प्रति शुद्ध नहीं है वह ऊपर से बेर की तरह मीठा है और अन्दर से गुठली की तरह कठोर है। ऐसे लोगों के साथ की हुई मित्रता अंततः दुखदायक ही होती है। तू स्वयं बुद्धिमान है अतः तुझे अधिक सीख देने की आवश्यकता नहीं।

अशोकदत्त की दुष्टता-

कह दूं। प्रियदर्शना बोली–कह दो, क्या बात है। अशोकदत्त बोला–तुम्हारा पति सागरचन्द्र प्रतिदिन धनदत्त सेठ की पत्नी से मिलता जुलता है। वह उससे प्यार करता है मैंने कई बार उनको प्रेम करते हुए देखा है। यह सुन कर प्रियदर्शना चिन्ता में पड़ गई। उसे चिन्तित देखकर अशोकदत्त बोला–प्रिये ! तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं अगर सागरचन्द्र धनदत्त की स्त्री को अपनी प्रिया बनाना चाहता है तो मैं तुझे अपनी प्रिया बनाऊंगा। मेरा पूरा विश्वास है कि तुम मेरे इस प्रस्ताव को नहीं ठुकराओगी।

अशोकदत्त के मुख से यह बात सुनते ही प्रियदर्शना उसके गन्दे आशय को समझ गई। वह क्रुद्ध होकर गरजते हुए स्वर में बोली–अरे नराधम, नीच, कपटी ! अपने मित्र को भी धोखा देने वाले नर पिशाच ! तुझे ऐसी गन्दी बात कहने में भी शरम नहीं आती। अरे कामी कुत्ते चला जा यहां से अगर भूल कर भी तूने मेरे घर में पैर रखा तो तेरी अवश्य दुर्गति करूंगी।

प्रियदर्शना के ये शब्द सुनकर अशोकदत्त चौंक गया। उसकी तेजस्विता के सामने वह क्षण भी वहां खड़ा नहीं रह सका। अपना सर नीचा कर वहाँ से चुप चाप चला गया। वह अपने घर जा रहा था तो रास्ते में सागरचन्द्र आता हुआ दिखाई दिया वह उदास मुंह लिए सागरचन्द्र के सामने आया। सागरचन्द्र ने अशोकदत्त को अत्यन्त उदास देख पूछा–मित्र ! आज तुम बड़े उदास दिखाई पड़ते हो ! क्या मैं तुम्हारी उदासी का कारण जान सकता हूं। सागरचन्द्र के बार बार पूछने पर भी वह मौन ही खड़ा रहा अन्त में विशेष आग्रह पर अशोकदत्त आंसू बहाते हुए बोला–मित्र ! कहने जैसी बात नहीं हैं क्योंकि सच्ची बात कहने पर तुम्हे भी दुख होगा। मै अपने मित्र को किसी स्थिति में दुखी नहीं करना चाहता अतः तुम मत पूछो। ऐसी बात गुप्त ही रहनी चाहिये।

सागरचन्द आश्चर्य प्रकट करता हुआ बोला मित्र–ऐसी क्या बात है जो अपने मित्रसे भी छिपा रहे हो। भले ही मुझे दुःख हो किन्तु तुम्हें यह बात कहनी ही होगी।

अशोकदत्त बनावटी अश्रुपूर्ण आंखों में लज्जा प्रकट करता हुआ बोला–मित्र ! अगर तुम वह बात सुनने को मजबूर ही करते हो तो सुनो।

तेरी पत्नी प्रियदर्शना बहुत समय से मुझ से अयोग्य बात कहा करती थी। उसने कई बार मुझ से प्रेम करने का प्रस्ताव किया। मित्र–पत्नी होने के नाते मैंने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया

ी सो धनुष ऊँचे शरीर वाले एवं पल्योपम के दशमांश आयु वाले वज्र ऋषभ संस्थान तथा चतुरस्त्र संस्थान वाले थे इनका वर्ण सुवर्ण की भांति पीत था। इनकी पत्नी चन्द्रजसा प्रियंगु से सुशोभित थी।

अशोकदत्त अपने पूर्व जन्म के कपट के कारण उसी वन में सफेद रंग और चार दांत वाला ी हुआ।

वह हाथी एक बार बड़ी मस्ती में वन में घूम रहा था। घूमते घूमते उसकी दृष्टि अपने जन्म के मित्र युगलधर्मी सागरचन्द्र पर पड़ी। मित्र को देखते ही हाथी के मन में स्नेह व उत्पन्न हुआ। वह सागरचन्द्र के पास आया और अत्यन्त स्नेह से उसे सूंड से उठा कर अपने ंधे पर बिठा दिया। स्नेह स्पर्श से व एक दूसरे को देखने से दोनों को जाति स्मरण ज्ञान हुआ। नों ने अपने पूर्व भव को देखा।

नाम रखा। छः मास तक युगल सन्तान का पालन पोषण कर विमल वाहन तथा उनकी पत्नी चन्द्रजसा काल धर्म को प्राप्त हुए। मरकर विमल वाहन सुवर्णकुमार देव बने व चन्द्रयशा ने नागकुमारी जाति के देव में जन्म ग्रहण किया।

दूसरा तीसरा कुलकर–

अपने पिता की मृत्यु के बाद चक्षुष्मान् कुलकर बना। इसने भी 'हाकार' नीति से युगलियों का नेतृत्व किया। इन्होंने भी एक युगल सन्तान को जन्म दिया। इनका नाम यशस्वी और सुरूपा था। इन युगलों की ऊँचाई साढे सातसौ धनुष थी। मृत्यु के बाद चक्षुष्मान सुवर्णकुमार में एवं चन्द्रकान्ता ने नागकुमार नाम की देव जाति में जन्म ग्रहण किया।

पिता की मृत्यु के बाद यशस्वी कुलकर बने। इन्होंने 'माकार' नीति का प्रवर्तन किया। इन्होंने भी एक युगल सन्तान को जन्म दिया। पुत्र का नाम अभिचन्द्र और पुत्री का नाम प्रतिरूपा रखा। ये युगल साढ़े छसौ धनुष ऊँचे थे। मृत्यु के बाद यशस्वी कुलकर उदधिकुमार एवं सुरूपा नागकुमार में पैदा हुई।

चौथा कुलकर–

छठा और सातवां कुलकर-

पिता के स्वर्गवास के पश्चात् मरुदेव कुलकर भी अपनी पिता की तरह 'धिक्कार' नीति से युगलियों पर शासन करने लगे। इन्होंने अपनी आयु के कुछ मास शेष रहने पर एक युगल संतान को जन्म दिया। उन्होंने अपने पुत्र का नाम नाभि और पुत्री का नाम मरुदेवी रखा। इन युगलों की ऊँचाई सवा पांचसौ धनुष थी। मरुदेवी श्याम व नाभि पीत वर्णी थे।

卐 भगवान ऋषभदेव का जन्म 卐

इमीसे ओसप्पिणीए समाए सुसमसुसमाए वितिक्कंताए सुममाए वितिकंताए सुसम-दुस्समाए ततियाएवि बहुवितिक्कंताए चउरासीए पुव्वसयसहस्सेहिं सेसएहिं एगूणणऊइए य पक्खेहिं असाढ बहुल पक्खे चउत्थीए उत्तरासाढ़ा जोगजुत्ते मियंके विणियाए भूमिए नाभिस्स कुलगरस्स मरुदेवाए भारियाए कुच्छसि गब्भत्ताए उववन्नो।

चोद्दस सुमिणा उसभ-गयसीह अभिसेय दाम-ससि-दिणयर-भय कुंभे-पउमसर-सागर विमान-रयणुच्चय-सिहिं च पासित्ता पडिबुद्धा णाभिस्स कहेंति तेण भणियं-तुज्भ पुत्तो वड्डो कुलगरो होहितित्ति, सक्कस्स आसणं चलितं, सिग्घं आगमणं भणति-देवाणुप्पिया ! तव पुत्तो सयल भुवन मंगलालओ पढम धम्म वर चक्कवट्टी महइ महाराया भविस्सइ, केवि भणंति बत्तीसंवि इंदा आगंतूण वागरेति. ततो मरुदेवी हट्ठतुट्ठा गब्भं वहतित्ति तएणं नवण्हं मासाणं अद्धट्ठमाणं च राइंदियाणं बहुवितिक्कंताणं अद्धरत्त कालपमयंसि चेत बहुलट्मीए उत्त-रासाढाणक्खतेणं जाव अरोगा अरोगं पयाता जायमाणेसु तित्थयरेसु सव्वलोए उज्जोओ भवति, तित्थयरमायरो य पच्छन्नगब्भाओ भवंति जररुहिर कलमलाणि य न भवंति।

आवश्यक चूर्णि पृ. १३५ आवश्यक हारिभद्रीय पृ १२०

भावार्थ- इस अवसर्पिणीकाल में सुषमसुषमा नामक आरे के वीत जाने पर सुषमा आरे के वीतजाने पर सुषमदुषमा नामक तीसरे आरे का बहुत काल वीत जाने पर तथा इस

आरे के चौरासी लक्षपूर्व और नवासी पक्ष यानी तीन वर्ष साढ़े आठ महीने शेष रहने पर आषाढ़ मास की कृष्ण चतुर्थी के दिन उत्तराषाढा नक्षत्र में चन्द्र का योग होने पर वज्रनाभ का जीव सर्वार्थ सिद्ध विमान में ३३ सागरोपम का आयुष्य पूर्ण करके विनीता की भूमि में नाभि कुलकर की मरुदेवी स्त्री के गर्भ में उत्पन्न हुआ। (इनके गर्भ में आने पर तीनों लोक में सुख और उद्योत हुआ) और मरुदेवी ने चौदह महास्वप्न देखे वे इस प्रकार हैः—
१. वृषभ २. गज ३. सिंह ४. अभिषेक ५. पुष्पमाला ६. चन्द्रमा ७. सूर्य ८. ध्वजा ९. कुम्भ १०. पद्मयुक्त सरोवर ११. सागर १२ विमान १३. रत्नों की राशि १४. और धूमरहित अग्नि। इन स्वप्नों को देखकर मरुदेवी जागृत हुई। और नाभि-कुलकर के पास जाकर स्वप्नों का वृत्तान्त सुनाया। नाभिकुलकर ने कहा—"तुम्हारे एक ऐसा पुत्र होगा जो महान होगा।" उस समय शक्र का आसन चलायमान हुआ। शक्र ने अवधिज्ञान से आसन कम्पन का कारण जान कर तत्काल वह नाभिकुलकर के पास आया और बोला—देवानुप्रिय! तुम्हारा पुत्र सम्पूर्ण लोक में मंगल के आलय रूप धर्मवरचक्रवर्ती तीर्थंकर महान् राजा होगा। कुछ आचार्य यह भी कहते हैं कि—बत्तीसों इन्द्रों ने आकर यह बात कही थी। इन्द्रों के मुख से यह कथन (स्वप्न का फल) सुनकर मरुदेवी अत्यन्त प्रसन्न हुई और गर्भ का सुखपूर्वक पालन करने लगी। गर्भस्थ बालक के प्रभाव से मरुदेवी माता के देह की कांति-शोभा और लावण्य उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। तथा कुलकर नाभिराज का वैभव, यश और प्रतिभा भी बढ़ने लगी। प्रकृति भी अनुकूल होगई और कल्प वृक्षों की फलदा शक्ति में भी अभिवृद्धि हुई। इसके बाद मरुदेवी ने नौ मास और साढ़े सात दिवस पूर्ण होने पर चैत्र कृष्ण ● अष्टमी की अर्द्धरात्रि को सभी ग्रह उच्च स्थान में रहे हुए थे और चन्द्रमा उत्तराषाढा नक्षत्र में था जब देश के सब लोग प्रमुदित होकर क्रीड़ा कर रहे थे ऐसे समय में आरोग्यपूर्वक अर्थात् बिना किसी बाधा के प्रथम तीर्थंकर को जन्म दिया। भगवान के जन्म से सारे लोक में प्रकाश फैलगया। तीर्थंकर की माता प्रच्छन्न गर्भवाली होती है। बालक के जन्म के समय उनके शरीर से रुधिर जर आदि खराब वस्तुएँ नहीं निकलती कर्मभूमि के आदि महामानव के जन्म से जन समुदाय में स्वभाव से ही आनन्द का वातावरण पैदा हो गया। दिशाएँ प्रफुल्लित हो उठीं। आकाश देवदुंदुभि की आवाज से गूंजने लगा। उस

● त्रिषष्टी शलाका पुरुष चरित्र के अनुसार चतुर्दशी

समय नारक जीवों को भी क्षण भर के लिये अपूर्व आनन्द और सुख की प्राप्ति हुई । भूमि पर चलते हुए मंद मंद पवन ने पृथ्वी पर की रज और कचरे को दूर करके सफाई करदी। मेघ सुगन्धित जल की वृष्टि करने लगे ।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार भगवान ऋषभ का जन्मोत्सव-

तेणं कालेणं तेणं समएणं अहेलोग वत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ महत्तरिआओ सएहिं सएहिं कूडेहिं सएहिं २ भवनेहिं सएहिं २ पासायवडेंसएहिं पत्तेअं २ चउहिं सामाणिअ साहस्सीहिं चउहिं महत्तरिआहिं सपरिवाराहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणिआहिवईहिं सोलसएहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अएणाहिं अ बहुहिं भवणवइवाण मन्तरेहिं देवीहिं देवेहि अ सद्धिं संपरिवुडाओ महया हयणट्टगीयवाइअ जाव भोगभोगाइं भुंजमाणीओ विहरंति तं जहा- भोगंकरा १ भोगवई २ सुभोगा ३ भोगमालिनी ४ तोयधारा ५ विचित्राय ६ पुप्फमाला ७ अणिंदिआ ।

तएणं तासिं अहेलोग वत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारीणं महतरिआणं पत्तेअं पत्तेअं आसणाइं चलंति । तए णं ताओ अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारीओ महत्तरिआओ पत्तेयं २ आसणाइं चलिआइं पासंति २ त्ता ओहिं पउंजंति पउंजित्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएंति२त्ता अएणमण्णं सद्दाविंति २ त्ता एवं वयासी-उप्पएणे खलु भो जम्बुद्दीवे भयवं ! तित्थयरे तं जीयमेअं तीअपच्चुप्पएणमणागयाणं अहेलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारी महत्तरिआणं भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करेत्तए तं गच्छामो णं अम्हेवि भगवओ जम्मणमहिमं करेमोतिकट्टु एवं वयंति २ त्ता पत्तेअं पत्तेअं आभिओगिए देवे सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी- खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठं लीलट्ठिअ०एवं

विमाणवरणओ भाणिअव्वो सालभंजिआगं ईहामियउसभतुरगनरमगर विहग वालग किन्नर रुरु सरभ चमर कुंजर वणलय पउमलय भत्तिचित्तं खंभुग्गय वइरवेइया परिगयाभिरामं विज्जाहर जमलजुयलजंतजुत्तं पित्र अच्चीसहस्समालणीयं रूवगसहस्सकलियं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोयणलेसं सुहफासं ससिसरियरूवं घण्टावलि चालिय महुरमणहरसरं सुहं कंतं दरिसणिज्जं णिउणउच्चिय मिसि मिसित मणिरयण घण्टिया जाल परिक्खित्तं जोयण विच्छिण्णे दिव्वे जाणविमाणे विउव्वित्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह। तएणं ते आभिओगा देवा अणेगखम्भसय जाव पच्चप्पिणंति तएणं ताओ अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारी महत्तरिआओ हट्ठतुट्ठ पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणिअ साहस्सीहिं चउहिं महत्तरि आहिं जाव अण्णेहिं बहूहिं देवेहिं देवीहि अ सद्धि संपरिवुडाओ ते दिव्वे जाण विमाणे दुरुहंति दुरुहित्ता सव्विड्ढीए सव्व जुईए घणमुइंगपणवपवाइअरवेणं ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए जेणेव भगवओ तित्थगरस्स जम्मणणगरे जेणव तित्थगरस्स जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणं तेहिं दिव्वेहिं जाणविमाणेहिं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेंति करित्ता उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए ईसिं चउरंगुलमसंपत्ते धरणिअले ते दिव्वे जाणविमाणे ठविंति ठवित्ता पत्तेअं २ चउहिं सामाणिअ सहस्सेहिं जावसद्धि संपरिवुडाओ दिव्वेहिंतो जाणविमाणेहिंतो पच्चोरुहंति २ त्ता सव्विड्ढिए जाव पाइएणं जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति २ त्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिखुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंति २ त्ता पतेअं करयल परिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी णमोत्थु ते रयणकुच्छि धारिए जगप्पईवदाईए सव्वजगमंगलस्स चक्खु भूअस्स सव्वजगजीववच्छलस्स हिअकारगमग्गदेसिय पागिद्धिविभुपभुस्स जिणस्स णाणिस्स नायगस्स बुहस्स बोहगस्स सव्वलोगनाहस्स निम्ममस्स पवरकुलसमुब्भवस्स जाईए खतिअस्स जंसि लोगुत्तमस्स जणणी धण्णासि तं पुण्णासि कयत्थासि अम्हेणं देवाणुप्पिए। अहेलोग वत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामो तएणं तुब्भेहिं ण

भाइव्वं इति कट्टु उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति२ त्ता वेउव्विअ समुग्घाएणं सम्मोहणंति २ त्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दण्डं निसरंति तंजहा–रयणाणं जाव संवट्टगवाए विउव्वंति २ त्ता तेणं सिवेणं मउएणं मारुएणं अणुद्धुएणं भूमितल विमल करणेणं मणहरेणं सव्वोउअसुरहि–कुसुमगन्धाणुवासिएणं पिण्डिमणिहारिमेणं गन्धुद्धुएणं तिरिअं पवाइएणं भगवओ तित्थयरस्स जम्मण भवणस्स सव्वओ समंता जोअणपरिमण्डलं से जहा नामए कम्मगरदारए सिआ जाव तहेव जं तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कयवरं वा असुइमचोक्खं पूइअं दुब्भिगन्धं तं सव्वं आहुणिय २ एगन्ते एडेंति २ त्ता जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति २त्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए अ अदूरसामंते आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति ॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं उड्ढलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी महत्तरिआओ सएहिं सएहिं कूडेहिं सएहिं सएहिं भवणेहिं सएहिं २ पासायवडेंसएहिं पत्तेअं पत्तेअं चउहिं सामाणिअ साहस्सीहिं एवं तं चेव पुव्ववण्णिअं जाव विहरंति तं जहा-१ मेहंकरा २ मेहवई ३ सुमेहा ४ मेहमालिनी ५ सुवच्छा ६ वच्छमित्ता य ७ वारिसेणा ८ बलाहगा ॥ तएणं तासिं उड्ढलो-गवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारी महत्तरिआणं पत्तेअं पत्तेअं आसणाइं चलंति एवं तं चेव पुव्ववण्णिअं भाणियव्वं जाव अम्हे णं देवाणुप्पिए ! उड्ढलोग वत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी महत्तरिआओ जेणं भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामो तेणं तुब्भेहिं ण भाइयव्वं ति कट्टु उत्तरपुरित्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति २ त्ता जाव अब्भवद्दलए विउव्वंति २ त्ता जाव तं निहयरयं णट्ठरयं भट्ठरयं पसंतरयं उवसंतरयं करेंति २ खिप्पामेव पच्चुवसमन्ति एवं पुप्फवद्दलंसि पुप्फवासं वासंति वासित्ता जाव कालागुरु पवर जाव सुरवराभिगमण जोग्गं करेंति २ त्ता जेणेव भयवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता जाव आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ।

आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति । तेणं कालेणं तेणं समएणं दाहिणरुअगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी महत्तरिआओ तहेव जाव विहरंति तंजहा- १ समाहार २ सुप्पइण्णा ३ सुप्पबुद्धा ४ जसोहरा ५ लच्छिमई ६ सेसवई ७ चित्तगुत्ता ८ वसुंधरा । तहेव जाव तुब्भाहिं न भाइअव्वं तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए अ दाहिणेणं भिंगारहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं पच्चत्थिम रुअगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी महत्तरिआओ सएहिं सएहिं जाव विहरंति । तं जहा-१ इलादेवी सुरादेवी २ पुहवी ३ पउमावइ ४ एगणासा ५ नवमिया ६ भद्दा ७ सीआ ८ य अट्ठमा । तहेव जाव तुब्भाहिं णं भाइअव्वंति कट्टु जाव भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए अ पच्चत्थिमेणं तालिअंट हत्थगयाओ आगायमाणीओ, परिगायमाणीओ चिट्ठंति ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं उत्तरिल्ल रुअग वत्थव्वाओ जाव विहरंति । तं जहा- १ अलंबुसा २ मिस्सकेसी ३ पुण्डरिआ ४ वारुणी ५ हासा ६ सव्वप्पभा चेव ७ सिरि ८ हिरी चेव उत्तरओ । तहेव जाव वन्दित्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए अ उत्तरेणं चामरहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं विदिसि रुअगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरिआओ जाव विहरंति । तं जहा-१ चित्ता य २ चित्त कणगा य सतेरा ३ सोदामिणी ४ तहेव जाव ण भाइअव्वंति कट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए अ चउसु विदिसासु दिविआ हत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति त्ति ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं मज्झिमरुअगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरिआओ सएहिं सएहिं कूडेहिं तहेव जाव विहरंति तं जहा- १ रूआ २ रूआसिआ ३ सुरूआ ४ रूअगावई । तहेव जाव तुब्भाहिं ण भाइयव्वं तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स चउरंगुलवज्जं नाभिनालं कप्पन्ति कप्पित्ता विअरगं खणंति खणित्ता विअरगे नाभिं णिहणंति णिहणित्ता रयणाण य वइराण य पूरेंति २ त्ता हरिआलिआए पेढं बन्धंति २ त्ता तिदिसिं तओ कयलिहरए विउव्वंति, तएणं तेसिं कयलिहरगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ चाउस्सालए विउव्वंति

तएणं तेसिं चाउस्सालगाणं वहुमज्झ देसभाए तओ सीहासणे विउव्वंति तेसि णं सीहासणाणं अयमेयारूवे वरणावासे पराणत्ते सव्वो वण्णगो भाणियव्वो तए णं ताओ रुअगसज्झ वत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीओ महत्तराओ जेणेव भयवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता भगवं तित्थयरं करयल संपुडेणं गिरहन्ति तित्थयर मायरं च बाहाहिं गिरहंति २ गिरिहत्ता जेणेव दाहिणिल्ले कयलीहरए जेणेव चाउसालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागछन्ति २ त्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति २ त्ता सयपागसहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भंगेंति २ त्ता सुरभिणा गन्धवट्टुएणं उव्वट्टेन्ति २ त्ता भगवं तित्थयरं करयलपुडेण तित्थयरमायरं च बाहासु गिरहंति २ त्ता जेणेव पुरत्थिमिल्ले कयलीहरए जेणेव चउसालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छन्ति उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीआवेन्ति २ त्ता तिहिं उदयेहिं मज्जावेन्ति, तं जहा गन्धोदएणं २ पुप्फोदएणं ३ सुद्धोदएणं, मज्जावित्ता सव्वालकारविभूसिअं करेंति २ त्ता भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं व बाहाहिं गिरहंति २ त्ता जेणेव उत्तरिल्ले कयली हरए जेणेव चउसालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीआविंति २ त्ता आभिओगे देवे सद्दाविन्ति २ त्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चुल्लहिमवन्ताओ वासहर पव्वयाओ गोसीसचन्दनकट्ठाइं साहरह, तएणं ते आभिओगा देवा ताहिं रुअगमज्झवत्थव्वाहिं चउहिं दिसाकुमारीमहत्तरिआहिं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव विणएणं वयणं पडिच्छन्ति २ त्ता खिप्पामेव चुल्लहिमवन्ताओ वासहर पव्वयाओ सरसाइं गोसीसचन्दनकट्ठाइं साहरन्ति तएणं ताओ मज्झिम रुअगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीमहत्तरिआओ सरगं करेंति २ त्ता अरणिं घडेंति अरणिं घडिता सरएणं अरणिं महिंति २ त्ता अग्गिं पाडेंति २ अग्गिं संधुक्खन्ति २ त्ता गोसीसचन्दनकट्ठे पक्खिवन्ति २ त्ता अग्गिं उज्जालन्ति २ त्ता समिहाकट्ठाइं पक्खिविन्ति २त्ता अग्गिहोमं करेंति २ त्ता भूतिकम्मं करेंति २ त्ता रक्खापोट्टलियं बंधन्ति बन्धेत्ता णाणामणिरयण भत्तिचित्तं दुविहे पाहाणवट्टगे गहाय भगवओ तित्थयरस्स कण्णमूलम्मि टिट्टिआविन्ति भवउ भयवं पव्वयाउए २।

तएणं ताओ रुअगमज्झवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीमहत्तरिआओ भयवं तित्थयरं करयल पुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिरहन्ति गिरिहत्ता जेणेव भगवओ तित्थयरस्स

जम्मण भवणे तेणेव उवा गच्छन्ति २ त्ता तित्थयरमायरं सयणिज्जंसि णिसीआविन्ति णिसी आवित्ता भयवं तित्थयरं माउए पासे ठवेंति ठविता आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति त्ति ॥

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ५ वक्षस्कार पृ० ३८३-३८४
आवश्यकचूर्णि पृ० १३६-१४०

उस काल और उस समय में अधोलोक में बसनेवाली आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाएँ अपने अपने परिवार के साथ सात अनिक सात अनिकाधिपति सोलह हजार आत्मरक्षक देव और अन्य बहुत से वाणव्यंतर देव व देवियों के साथ घिरी हुई बड़े हृत, नृत्य, गीत व वादित्र सहित भोग भोगती हुई विचरण कर रही थी। इनके नाम ये है- १ भोगंकरा २ भोगवती ३ सुभोगा ४ भोगमालिनी ५ तोयधारा ६ विचित्रा ७ पुष्पमाला ८ अनिंदिका ।

उस समय उन अधोलोकवासिनी आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाओं के प्रत्येक के आसन चलायमान होते है तब वे अवधिज्ञान का उपयोग कर भगवान तीर्थंकर को अवधिज्ञान से देखती हैं देखकर वे एक दूसरी को बुलाती हैं और परस्पर मिलकर इस प्रकार कहती हैं- हे देवानुप्रिये ! जम्बूद्वीप में भगवान तीर्थंकर उत्पन्न हुए हैं अतः अतीत वर्तमान व अनागत अधोदिशा में रहने वाली आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाओं का यह जीताचार है कि वे तीर्थंकर का जन्माभिषेक करें। अतः इस जीताचार के अनुसार हमें भी तीर्थंकर भगवान का जन्मोत्सव करने के लिए जाना चाहिये। इस प्रकार का निश्चय कर वे आठों दिशाकुमारिकाएँ अपने-अपने अभियोगिक देवों को बुलाती हैं और बुलाकर उन्हें यह आज्ञा देती है कि हे देवानुप्रियों ! शीघ्र ही अनेक सैकड़ों स्तंभों से बना हुआ तथा जिसमें लीलायुक्त अनेक पुतलियां स्थापित की गई हो। ऊँची और सुनिर्मित वज्ररत्न की वेदिकाएँ हो, तोरण से युक्त हो । मनोहर निर्मित पुतलियों सहित उत्तम, मोटे एवं प्रशस्त वैडूर्य रत्न के स्तंभ से युक्त विविध प्रकार के मणियों सुवर्ण तया रत्नों से खचित होने के कारण उज्जवल दिखाई देते हो । उनका भूमि भाग बिलकुल सम, विशाल, पक्का और रमणीय हो, उस विमान में ईहा, मृग, वृषभ, तुरग, मनुष्य, मकर, विहग, व्याल, किन्नर, रुरु, शरभ, चमर, कुंजर, वनलता, पद्मलता आदि के चित्र चित्रित किये हुए हों। स्तम्भों पर बनी वज्ररत्न

की वेदिकाओं से युक्त होने के कारण रमणीय दिखाई पड़ते हो, समान श्रेणी में स्थित विद्याधरों के युगल यंत्र द्वारा चलते दिखाई पडते हों। वह विमान हजारों किरणों से व्याप्त और हजारों चित्रों से युक्त होने से देदोप्यमान अतीव देदीप्यमान हो। उसे देखते ही दर्शक के नयन उसमें चिपक से जाते हों। उसका स्पर्श सुखप्रद हो और रूप शोभायमान हो। उसमें सुवर्ण मणि, एवं रत्नों की स्तूपिकाएँ बनी हुई हो। उसका प्रधान शिखर नाना प्रकार की पाँच वर्णो की एवं घंटाओं से युक्त पताकाओं से सुशोभित हो। ऐसा एक योजन का विस्तार वाला यान विमान को तैयार कर हमारी आज्ञा हमें वापस दो।

उसके बाद आभियोगिक देवों ने अनेक सैंकड़ों स्तंभों से बना हुआ यावत् विमान को विकुर्वित किया और इसकी सूचना अपनी २ स्वामिनी दिग्कुमारिओं को दो।

उसके बाद अधोलोक वासिनी आठ दिशा कुमारी महत्तरिकाएँ अत्यन्त हृष्ट, तुष्ट होती हुई अपने अपने चार हजार सामानिक देवों, चार महत्तरिकाओं एवं अन्य बहुत से देव देवियों, के परिवार से घिरी हुई दिव्ययान विमान पर आरुढ़ हुई और आरुढ़ होकर सब ऋद्धि सब द्युति सहित घनमृदंग व झूसिर के शब्द से उत्कृष्ट दिव्य देवगति से जहां भगवान तीर्थंकर का जन्म नगर था जहां भगवान का जन्म भवन था वहां आई और उस भवन को अपने दिव्य विमान से तीन बार प्रदक्षिणा की... और फिर ईशान कोण में पृथ्वी से चार अंगुल उपर विमान रखकर चार हजार सामानिक देवों सहित यावत् परिवार से घिरी हुई सब ऋद्धि, द्युति यावत् मृदंगों के शब्द से जहां भगवान तीर्थंकर व उनकी माता को तीन बार आदान प्रदक्षिणा करके दोनों हाथ जोड़कर मस्तक से आवर्तना करके अंजलिबद्ध हो इस प्रकार कहने लगी–" हे उदर में रत्न को धारण करनेवाली ! हे जगत् के प्रदीप की जननी तुम्हे नमस्कार हो। क्योंकि तुम समस्त जगत के हितकारी प्राणिमात्र के लिए नेत्र के समान; अखिल संसारी जीवों के वत्सल, मोक्ष मार्ग का प्रकाश करने वाले, विशाल वचन–ऋद्धि के स्वामी, जिन, ज्ञानी, नायक, बुद्ध बोधक, सर्वलोक के नाथ, अनासक्त श्रेष्ठकुल में उत्पन्न जाति के क्षत्रिय और लोक उत्तम भगवान की जननी हो, धन्य हो !" धन्य हो कृतार्थ हो, हे देवानुप्रिय ! हम अधोलोक निवासिनी आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाएं भगवान तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करेंगी। अतः आप हमें देखकर भयभीत न होवे।'

इस प्रकार कहकर वे ईशान कोन में गई और वहां वैक्रिय समुद्घात से संख्यात योजन का दण्ड बनाया। रत्न यावत् संवर्तक वायु की विकुर्वणा की। फिर उस कल्याणकारी मृदु अनुधूत भूमितल को विमल करने वाला, मनहर सब ऋतुओं के पुष्पों की गंध का विस्तार करने वाला और गंध को पैदा करने वाला ऐसे तिर्यग् वायु से भगवान तीर्थंकर के जन्म भवन से चारों तरफ एक योजन के मण्डल मे जो कुछ तृण कचरा अशुचि व दुर्गंध आदि थे उन्हे लेकर दूर डाल दिया जैसे झाड़ू निकालने वाला चारों ओर सफाई करता है उसी प्रकार उन आठों दिशाकुमारी महत्त-रिकाओं ने सफाई की और उसके बाद वे महत्तरिकाए तीर्थंकर भगवान के पास आकर गीत गाती हुई विशेष गीत गाती हुई खड़ी रही।

उस काल उस समय में ऊर्ध्वलोक में रहने वाली आठ दिशाकुमारी महत्तरिका अपने अपने कूट में अपने अपने भवनो में अपने अपने प्रासादावतंसक में अपने २ चार हजार सामानिक देवों सहित यावत् विचरण करती थी जिनके नाम ये हैं;-१ मेघंकरा २ मेघवती ३ सुमेघा ४ मेघमालिनी ५ सुवत्सा ६ वत्समित्रा ७ वारिषेणा और ८ वलाहका। आठों दिशाकुमारिकाओं के उस समय आसन चलायमान होते हैं। यावत् वे अवधिज्ञान से तीर्थंकर भगवान का जन्म हुआ जानकर वे पूर्वोक्त ढंग से माता को वन्दना कर स्तुति करती है इसके बाद वे ईशान कोण में गई यावत् उन्होंने वैक्रिय शक्ति से आकाश में मेघ उत्पन्न किये, उन मेघों से सुगन्धित जल बरसा कर सूतिका घर के चारों तरफ चार २ कोश तक सुगन्धित पुष्पों की वृष्टि की। तथा कालागुरू, कुंदुरुक्क, तुरुष्क तथा धूप के जलाने से महकती हुई गन्ध से व्याप्त होने के कारण मनोहर श्रेष्ठ सुगन्ध के चूर्ण से सुगन्धित तथा सुगन्ध की गुटिका के समान एक योजन तक स्थान को सुगन्धित बनाया और जहां भगवान की माता थी वहां आई और उनके पास खड़ी रहकर गीत गाने लगी।

उस काल उस समय में पूर्व दिशा के रुचक कूट पर रहनेवाली आठ दिशाकुमारिकाएं यावत् विचरण करती हैं। जिनके नाम ये हैं।-१ नंदुत्तरा २ नंदा ३ आनन्दा ४ नंदी ५ वर्द्धना ६ विजया ७ वैजयंति ८ और अपराजिता। शेष सब पूर्वोक्त प्रकार से जानना यावत् आप डरे नहीं ऐसा कहकर तीर्थंकर व उनकी माता के पास दर्पण हाथ में लिये गीत गाती हुई खड़ी रही।

उस काल उस समय दक्षिण दिशा के रुचक पर्वत पर रहने वाली १ समाहारा २ सुप्रतिज्ञा

३ सुप्रबुद्धा ४ यशोधरा ५ लक्ष्मीवती ६ शेषवती ७ चित्रगुप्ता ८ और वसुन्धरा ये आठों पूर्वोक्त ढंग से तीर्थंकर की माता के समीप आई और अपने हाथों मे भृंगार (झारी) लिये हुए गीत गाती हुई रहने लगी ।

उसी समय पश्चिम दिशा के रुचक पर्वत की आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाएं अपने अपने आवास में विचरण कर रही थी जिनके नाम ये हैं—१ इलादेवी २ सुरादेवी ३ पृथ्वी ४ पद्मावती ५ एकनासा ६ नवमिका ७ सीता ८ और सुभद्रा ये आठों पूर्वोक्त ढंग से भगवान की माता के पास आई और हाथ में पंखे लेकर गीत गाती हुई भगवान की माता के पास खड़ी रहीं ।

उस समय उत्तर दिशा के रुचक पर्वत पर रहने वाली १ अलम्बुसा २ मितकेशी ३ पुण्डरी-कणी ४ वारुणी ५ हासा ६ सर्वगा ७ श्री ८ और ह्री । ये आठों पूर्वोक्त दिशाकुमारियों की तरह भगवान की माता के पास आई और हाथ में चमर लिये गीत गाती हुई खड़ी रही ।

उस समय १ चित्रा २ चित्र कनका ३ शतेरा ४ सौदामिनी ये चार दिशाकुमारियां विदिशा से आईं । इनके हाथ में दीपक थे ये भगवान और उनकी माता मरुदेवी के पास आगान परिगान करती खड़ी हुई ।

इसी तरह १ रुपा २ रुपांशा ३ सुरुपा ४ और रुपवती ये चार दिशाकुमारियां पूर्वोक्त ढंग से रुचक पर्वत के मध्य भाग से आई और उन्हें प्रणाम कर, हम भगवान के उत्सव करने आई है. आप डरियेगा नहीं । ऐसा कहकर वे तीर्थंकर के चार अंगुल शेष नाल को काटकर भूमि मे गाड़ देती है और वज्र रत्नों से उस गड्ढे को पूर देती है और उस पर हरताल की पीठिका बांधती है । हरताल की पीठिका बाँधकर पूर्व, उत्तर व दक्षिण इन तीन दिशा में तीन कदलीघर का निर्माण करती है । कदलीघर के बीच चतुःशील भुवन की विकुर्वणा करती है । इस भवन के मध्य भाग में तीन सिंहासन की रचना करती है । उसके बाद मध्यरुचक पर रहनेवाली चार दिशाकुमारी महत्तरिकाएं जहां तीर्थंकर और तीर्थंकर की माता थी वहां आई और वहां आकर तीर्थंकर को हस्तांजलि में ग्रहण करती है । और माता को हाथ का सहारा देकर उन्हें दक्षिण दिशा के कदलीगृह में ले आती है । वहां भगवान को तथा उनकी माता को सिंहासन पर बैठाती हैं । फिर वहाँ शतपाक व सहस्त्रपाक तेल से उनके शरीर को मर्दन करती हैं । तदनन्तर सुगन्धित महागन्धवाली गन्धपूड़ा के

उवटन को लगाती हैं। फिर पूर्वदिशा के कदलीगृह के चतुःशाल में उन दोनों को ले जाकर सिंहासन पर विठाकर तीन प्रकार के गंधोदक, पुष्पोदक एवं शुद्धोदक पानी से उन्होंने दोनो को स्नान कराया और सर्व वस्त्रालंकारों से विभूषित किया बाद में भगवान तीर्थंकर को करतल में ग्रहण कर व उनकी माता को बांह पकड़ कर उत्तर दिशा के कदलीगृह के चतुःशाल में उन्हें ले आई। और वहां सिंहासन पर उन दोनों को बिठाया और उसके बाद उन्होंने अपने अभियोगिक देवों को बुलाया और कहा—"चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत पर जाकर शीघ्र ही गोशीर्ष चन्दन की लकड़ियां ले आवो।" महत्तरिकाओं की यह आज्ञा पाते ही वे अत्यंत हर्षित और संतुष्ट होते हुए आभियोगिक देव चुल्लहिमवत वर्षधर पर्वत से सरस सुगन्धवाला गोशीर्ष चन्दन काष्ठ ले आये। उसके बाद मध्य-रुचक पर्वत पर रहनेवाली दिशाकुमारी महत्तरिकाओं ने शारक बनाया और अरणी काष्ठ का शारक बनाकर अरणी काष्ठ के दोनों सिरों को घिसकर उनसे आग पैदा की। आग को प्रज्वलित कर उसमें गोशीर्षचन्दन के काष्ठ को डाला और उसका हवन किया। हवन की आग से जो भस्म तैयार हुई उसकी उन्होंने रक्षा–पोटली बनायी और रक्षा पोटली को दोनों के हाथों में बांध दी। (प्रभु और उनकी माता दोनों ही महामहिमावंत थे तो भी दिशाकुमारियां भक्ति के आवेश में ये सब कर रहीं थी) पीछे आप पर्वत की जैसी आयुवाले होओ–प्रभु के कान में ऐसा कहकर मणि-रत्न के समान पत्थर के दो गोलों को आपस में टकरा कर टिक टिक शब्द किया। इसके बाद वे तीर्थंकर को तथा उनकी माता को लेकर जन्म भवन में आई और माता को शयन कक्ष पर बैठाकर उनके पास तीर्थंकर को रखकर वे मांगलिक गीत गाती हुई वहीं खड़ी हो गई।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के णामं देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरंदरे सयक्केऊ सह-स्सक्खे मघवं पागसासणे दाहिणद्धलोकाहिवई बत्तीस विमाणावाससयसहस्साहिवई एरावण वाहणे सुरिंदे अरयंबरवत्थधरे आलइयमालमउडे नवहेमचारुचित्त चंचलकुण्डलविलिहिज्जमाण गंडे भासुरबोंदी पलम्बवणमाले महिड्ढिए महज्जुईए महाबले महायसे महानुभागे महासोक्खे सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणेसभाए सुहम्माए सक्कंसि सीहासणंसि से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससयसाहस्सीणं चउरासीए सामाणिअसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीस-गाणं चउण्हं लोगपालाणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणि-आणं सत्तण्हं अणिआहिवईणं चउण्हं चउरासीणं आयरक्खा देवसाहस्सीणं अन्नेसिं च बहूणं

सोहम्मकप्पवासीणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहयणट्टगीय वाइयतंतीतलतालतुडिअघणमुइंगपडुपडहवाइअरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

उस काल उस समय में शक्र नाम का देवेन्द्र देवराजा हाथ में वज्र को धारण करने वाला पुरन्दर सहस्राक्ष, शतकेतु मघवा, पाकशासन, दक्षिणार्द्ध लोकाधिपति, बत्तीस लाख विमानों का स्वामी, ऐरावत वाहन वाला, सुरेन्द्र, रजरहित निर्मल व श्रेष्ठ वस्त्र को धारण करनेवाला गले में माला और मस्तक पर मुकुट धारण करनेवाला, नूतनसुवर्ण से निर्मित सुन्दर और मन को चंचल करने वाले कुण्डलों से आलेखित गंडस्थल वाला, प्रकाशमान देहवाला, लटकती हुई माला धारण करने वाला, महर्द्धिक, महान् तेजवाला विपुल बलवाला, महायशस्वी, महानुभाव, महान् सौख्यवाला, ऐसा देवेन्द्र सौधर्म देवलोक के सौधर्मावतंसक नामक विमान में सुधर्मा नाम की सभा में शक्र सिंहासन पर बत्तीस लाख विमान; चौरासी हजार सामानिक देव तेतीस त्रायस्त्रिंशत् देव, चार लोकपाल, आठ अग्रमहिषियों तीन परिषदों-सभाओं, सात सेनाओं सात सेनाधिपतियों, तीनलाख छत्तीसहजार आत्मरक्षक देवों और अन्यान्य बहुत से सौधर्मकल्प में रहनेवाले देव और देवियों पर आधिपत्य पुरोवर्तित्व स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तारकत्व आज्ञाईश्वरत्व सेनापत्य-सेना पर नेतृत्व करता हुआ उनका पालन करता हुआ वह सपरिवार नाट्य-गीत-वाद्य तंत्री-तल ताल और अनेक गाजे बाजे और बजाने की कला में दक्ष-पुरुष जिसे बजाया करते है, इस प्रकार मेघ की तरह गर्जना करता हुआ मृदंग इन सब में से निकलता मीठा स्वर सुनता सुनता दिव्य भोगों को भोगता हुआ विचर रहा था।

तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणं चलइ, तए णं से सक्के जाव आसणं चलिअं पासइ २ त्ता ओहिं पउंजइ पउंजित्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ २ त्ता हट्ठतुट्ठ चित्ते आनंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहिअए धाराहयकयंबकुसुमचंचुमालइअऊसविअरोमकूवे विअसिअवरकमलनयणवयणे पचलिअ वरकडगतुडिअकेऊरमऊडे कुण्डलहारविरायंतवच्छे पालंबपलंबमाणघोलंतभूसणधरे ससंभमं तुरिअं चवलं सुरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ २ त्ता वेरुलिय वरिट्ठरिट्ठ अंजणनिउणोविअ मिसिमिसिंतमणिरयणमंडिआओ पाउआओ ओमुअइ २ त्ता एगसाडिअं उत्तरासंगं

करेइ २ त्ता अंजलि मउलियग्गहत्थे तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ २ त्ता वामं जाणुं अंचेइ २ त्ता दाहिणं जाणुं धरणीअलंसि साहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि निवेसेइ २त्ता ईसिं पच्चुण्णमइ २ त्ता कडगतुडिअथंभिआओ भुआओ साहरइ २त्ता करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी-णमोत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं आइगराणं तित्थयराणं सयं संबुद्धाणं पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुण्डरिआणं पुरिसवरगन्धहत्थीणं, लोगुत्तमाणं लोगणाहाणं, लोगहियाणं, लोगपईवाणं लोगपज्जोअगराणं अभयदयाणं चक्खुदयाणं,मग्गदयाणं सरणदयाणं, जीवदयाणं, वोहिदयाणं धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं, दीवोताणं सरणं गई पइट्ठाणं अप्पडिहयवरणाणदंसणधराणं विअट्टछउमाणं, जिणाणं जावयाणं, तिण्णाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोअगाणं सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिसिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्ताणं णमो जिणाणं जिअभयाणं णमोत्थु णं भगवओ तित्थयरस्स, आइगरस्स जाव संपाविउकामस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भयवं ! तत्थगए इहगयं तिकट्टु वन्दइ णमंसइ २ त्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णो तएणं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अयमेआरुवे जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था-उप्पण्णो खलु भो जम्बुद्दीवे दीवे भगवं तित्थयरे तं जीयमेयं तीअपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं तित्थयराणं जम्मण महिमं करेत्तए, तं गच्छामि णं अहंपि भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करेमित्ति कट्टु एवं संपेहेइ २ त्ता हरिणेगमेसिं पायत्ताणियाहिवइं देवं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! सभाए सुहम्माए मेघोघरसिअं गम्भीरमहुरयरसद्दं जोयणपरिमडलं सुघोसं सूसरं घंटं तिक्खुत्तो उल्लालेमाणे २ महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे २ एवं वयाहि-आणवेइ णं भो सक्के देविंदे देवराया गच्छइ णं भो सक्के देविंदे देवराया जम्बुद्दीवं २ भगवओ तित्थयरस्स जम्मण महिमं करित्तए, तं तुब्भेवि णं देवाणुप्पिआ सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वविभूइए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वणाडएहिं सव्वोवरोहेहिं सव्वपुप्फगन्धमल्लालंकारविभूसाए सव्वदिव्वतुडिअसद्दसण्णिणाएणं महया इड्ढिए जावरवेणं णिअयपरिआल संपरिवुडा सयाइं २ जाणविमाणवाहणाइं दुरुढापमाणा अकालपरिहीणं चेव सक्कस्स जाव अंतिअं पाउब्भवह, तएणं से हरिणेगमेसि देवे पायत्ताणीयाहिवई सक्केणं ३ जाव एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव एवं देवोत्ति

आणाए विणयं वयणं पडिसुणेइ पडिसुणेइत्ता सक्कस्स ३ अंतिआओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव सभाए सुहम्माए मेघोघरसिअगंभीरमहुरयरसद्दा जोअणपरिमण्डला सुघोसा घण्टा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तं मेघोघरसिअगम्भीरमहुरयरसद्दं जोअणपरिमण्डलं सुघोसं घंटं तिक्खुत्तो उल्लालेइ, तए णं तीसे मेघोघरसिअगम्भीरमहुरयरसद्दाए जोअणपरिमण्डलाए सुघोसाए घंटाए तिक्खुत्तो उल्लालिआए समाणीए सोहम्मे कप्पे अण्णेहिं एगूणेहिं बत्तीस-विमाणावाससयसहस्सेहिं अण्णाइं एगूणाइं बत्तीसं घण्टासयसहस्साइं जमगसमगकणकणारावं काउं पयत्ताइं हुत्था इति ।

तएणं सोहम्मे कप्पे पासायविमाणनिक्खुडावडिअसद्द समुट्ठिअ घण्टा पडंसुआसयसह-स्स संकुले जाए यावि होत्था इति, तएणं तेसिं सोहम्मकप्पवासीणं बहूणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य एगन्तरइपसत्तणिच्चपमत्तविसयसुहमुच्छिआणं सूसरघंटारसिअविउलबोलपुरिअ चवलपडिबोहणे कएसमाणे घोसणकोऊहलदिण्णकण्णएगग्गचित्त उवउत्तमाणसाणं से पायत्ताणी आहिवई देवे तंसि घण्टावरंसि निसंतपडिसंतंसि समाणंसि तत्थ तत्थ तहिं तहिं देसे महया सद्देणं उग्घोसेमाणे २ एवं वयासीति-हंत ! सुणन्तु भवंतो बहवे सोहम्मकप्पवासी वेमाणिअ-देवा देवीओ अ सोहम्मकप्पवइणो इणामो वयणं हिअसुहत्थं आणावइ णं भो सक्के तं चेव जाव अन्तिअं पाउब्भवहत्ति तएणं ते देवा देवीओ अ एअमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठा जावहिअआ अप्पेगइआ वंदणवत्तिअं एवं पूअणवत्तिअं सक्कारवत्तिअं सम्माणवत्तिअं दंसणवत्तिअं जिणभ-त्तिरागेणं अप्पेगइआ तं जीअमेअं एवमादित्तिकट्टु जाव पाउब्भवंति त्ति । तए णं से सक्के देविंदे देवराया ते विमाणिए देवे देविओ अ अकालपरिहीणं चेव अतियं पाउब्भवमाणे पासइ २ त्ता हट्ठे पालयनामं आभिओगिअं देवं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणु-प्पिया ! अणेगखम्भसयसन्निविट्ठं लीलट्ठियसालभंजिआकलियं ईहामिअउसभतुरगणर मगर विहगवालगकिण्णररुरुसरभचमरकुंजर वणलयपउमलमभत्तिचित्तं खंभुग्गयवइरवेइआप-रिगयाभिरामं विज्जाहरजमलजुअलजंतजुत्तंपिव अच्चीसहस्समालिणीअं रूवगसहस्सकलिअं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोअणलेसं सुहफासं सस्सिरिअरूवं घण्टावलिअ महुरमणहर-सरं सुहं कंभं दरिसणिज्जं णिउणोविअमिसिमिसिंतमणिरयण घंटिआजालपरिक्खित्तं जोयण-सहस्सविच्छिण्णं पंचजोअणसयमुव्विद्धं सिग्घंतुरिअं जइणणिव्वाहि दिव्वं जाणविमाणं विउव्वाहि २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चाप्पिणाहि ।

उस समय उस शक्र देवेन्द्र देव राजा का आसन चलायमान होता है तब वह शक्र यावत् चलायमान आसन को देखता है देखकर अवधि ज्ञान का प्रयोग करता है अवधिज्ञान से भगवान तीर्थङ्कर को देखता है। देखकर शक्र हर्ष-संतोष और आनन्द विभोर हो गया तथा भगवान की ओर उसके मन में प्रीति और सौमनस्य पैदा हुआ। हर्ष के आवेश से उसका मन हृदय प्रफुल्लित हो उठा। मेघ की धाराओं का आघात पाये कदम्ब के फूल के समान उसे रोमांच हो आया। उसके कमल से उत्तम नेत्र व मुख खिल उठे। आनन्द के वेग से उसके मूल्यवान कड़े कंगन, भुज बंध मुकुट–दोनों कुंडल और सुन्दर हार से शोभित छाती ये सब एकदम हिल उठे।

नीचे तक लटकते हुए लम्बे और कम्पित अन्यान्य आभूषणों को धारण करता हुआ वह शक्रेन्द्र भगवान को देखते ही सम्भ्रमपूर्वक त्वरा और चपलतापूर्वक सिंहासन से उठ खड़ा हुआ। फिर उसने पीढ़े पर आकर वैडूर्यरिष्ट रत्नों से जड़े हुवे अंजन के समान कृष्ण वर्णवाले चमकते हुए मणिरत्नों से मण्डित पैर के पादत्राण को निकाल डाले और तीर्थङ्करवाली दिशा के सामने सात आठ कदम जाकर बायां घुटना खड़ा करके दाहिने घुटने को जमीन पर लगाकर मस्तक को तीन वार धरती के ऊपर झुकाया। फिर थोड़ासा मस्तक ऊँचा उठाकर कंकण–कड़े से स्तब्ध होनेवाली भुजाओं को इकट्ठा करके हाथ के दशनख एक दूसरे से मिलाकर दोनों हथेली जोड़कर शिरसावर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि जोड़कर इस तरह बोला–

" नमस्कार हो अरिहंत भगवान को, (अरिहंत भगवान् कैसे हैं ?) जो धर्म की आदि करने वाले हैं, धर्म–तीर्थ की स्थापना करनेवाले हैं, अपने आप ही प्रबुद्ध हुए हैं, पुरुषों में श्रेष्ठ हैं, पुरुषों में सिंह है, पुरुषों में पुण्डरीक कमल है। पुरुषों में श्रेष्ठ गंधहस्ती है, लोक में उत्तम है, लोक के नाथ हैं, लोक के हितकर्ता है, लोक में दीपक के समान है, लोक में धर्म का उद्योत करने वाले है, अभय दान के देने वाले है, ज्ञाननेत्र के देनेवाले है, धर्म मार्ग के देनेवाले अर्थात् बताने वाले है, शरण के देने वाले हैं, संयमजीवन के देनेवाले हुं, बोधि सम्यक्त्व के देनेवाले हैं, धर्म के दाता है, धर्म के उपदेशक हैं, धर्म के नेता हैं, धर्मरथ के सारथी हैं, चार गति के अंत करने वाले श्रेष्ठ धर्म. चक्रवर्ती हैं। संसार समुद्र में द्वीप–टापू हैं, शरण है। गति है, प्रतिष्ठा है अप्रतिहत अर्थात किसी भी आवरण से अवरुद्ध न हो सकें–ऐसे श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवल दर्शन के धारण करने वाले हैं, मोहनीय प्रमुख घातिकर्म से तथा प्रमाद से रहित हैं। स्वयं राग-द्वेष के जीतने वाले हैं। दूसरों को

जीताने वाले हे स्वयं संसार सागर से तर गये हैं दूसरों को तारने वाले हैं। स्वयं बोध पाये हुए है दूसरों को बोध देने वाले है, स्वयं कर्म से मुक्त हुए हैं, दूसरों को मुक्त करनेवाले हैं तीन काल के और तीन लोक के सूक्ष्म तथा स्थूल सभी पदार्थो के ज्ञाता होने से सर्वज्ञ है, और इसी प्रकार सबके द्दष्टा होने से सर्वदर्शी है। शिव–कल्याणरूप अचल–स्थिर अरुज–रोग से रहित, अनन्त–अन्तरहित अक्षय–क्षयरहित, अव्यावाध–बाधा पोड़ा से रहित, पुनरागमन से भी रहित 'सिद्धि गति' नामक स्थान को प्राप्त कर चुके हैं।

नमस्कार हो भय के जीतने वाले, रागद्वेषके जीतने वाले जिन भगवान को तथा नमस्कार हो भगवान तीर्थंकर को जो धर्म की आदि करने वाले हैं यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को भविष्य में पानवाले हैं। यहां स्थित मैं (शक्रेन्द्र) वहां स्थित भगवान् को वन्दना करता हूं । वहां स्थित भगवान यहां स्थित मुझे देखें। ऐसा कहकर भगवान को वन्दना नमस्कार करता है, वन्दना नमस्कार करके श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व दिशा में मुख करके बैठ गया।

उसके बाद शक्र देवेन्द्र देव राजा के मन में इस प्रकार का यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ–कि जम्बूद्वीप में भगवान तीर्थंकर का जन्म हुआ है। अतः अतीत वर्तमान व अनागत शक्र देवेन्द्र का यह जीताचार है कि भगवान तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करना। इसलिए मैं भी वहाँ जाकर तीर्थंकर भगवान का जन्म महोत्सव करूँ ऐसा सोच कर उसने पदात्यनीकाधिपति (पैदल सेना का सेनापति) हरिणेगमेषी देव को बुलवाया। बुलवाकर इस प्रकार कहा–हे देवानुप्रिय शीघ्र ही सुधर्मा सभा में एक बड़ी अच्छीसी रणकार करनेवाली घंटा टँगी है, जिसका घेरा एक योजन का है, और जो मेघ की ध्वनिसी रणकती है। उस घंटे को शीघ्र उछालते–उछालते ऊँचे ऊँचे नादघोष से उद्घोषणा करते हुए यह कहो कि–हे देवो! शक्र देवेन्द्र देवराजा जम्बूद्वीपांतर्गत भारतवर्ष में इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर का जन्म महोत्सव मनाने के लिये जा रहा है। अतः उसकी आज्ञा है कि तुम सब देव अपनी २ ऋद्धि से, द्युति से, सब हस्ती अश्वादिसैन्यरूप बल से, सब अपने अपने पूर्व परिवार रूप समुदाय से, समस्त प्रकार के आदर भाव से, आभ्यंतर में वैक्रिय करने आदि रूप और बाहर में रत्नादि संपत्ति रूप सब विभूति से, अपने नायक के प्रति बहुमान से निवेदन करने में परायण प्रवृत्ति रूप सर्वोत्कृष्ट संभ्रम से, पुष्प, गंध, माला आदि रूप सब अलंकारों से, युक्त होकर

सर्व दिव्य वाजों की एकत्र मिलित शब्द की महाध्वनि के साथ २ बहुत ही शीघ्र शक्र देवेन्द्र देव-राजा के पास पहुंचो। महती ऋद्धि के साथ, महती द्युति के साथ, विपुल सैन्य के साथ, महान समुदाय के साथ एवं अपने अपने परिवारों के साथ अपने अपने वाहनों पर आरुढ़ होकर तुम सब एक साथ वजते हुए श्रेष्ठ वाद्यों की एवं शंख, पटह–ढोल भेरी, दुदुंभी भेरी की तुमुल ध्वनि से पुरस्कृत होते हुए थोड़ा भी विलम्ब किये बिना उपस्थित होओ।"

इस प्रकार शक्र देवेन्द्र देवराज के द्वारा आज्ञापित हुआ यावत् उसका हृदय आनन्द से आनन्दित होगया और बोला–हे देव ! जैसी आप आज्ञा देते हैं वह हमें प्रमाण है इस प्रकार कह उसने उसके प्रदत्त आज्ञा के वचन को बड़े विनयपूर्वक स्वीकार कर लिया। विनयपूर्वक स्वीकार करके फिर वह जहां सुधर्मासभा थी और उसमें भी जहां मेघों के समुदाय के गर्जित जैसे गम्भीर मधुर शब्दवाली एक योजन प्रमाण वर्तुलाकार विशिष्ट सुस्वरा नाम की घंटा थी वहां पर आया और आकर के उसने मेघों के समुदाय द्वारा गर्जित जैसे गंभीर एवं मधुर शब्दोंवाली उस एक योजन प्रमाण वर्तुलाकार विशिष्ट सुस्वरा घंटा को तीन बार बजाया। इस प्रकार मेघौघरसित गम्भीर मधुर शब्दवाली उस योजन प्रमाण वर्तुलाकार विशिष्ट सुस्वरा घंटा के तीन बार बजाये जाने पर वह सौधर्म कल्प के एक कम बत्तीस लाख विमान की उतनी ही घण्टाएं एकसाथ ध्वनि से मुखरित हो उठीं।

उस समय सौधर्मकल्पवासी देव तथा देवियां एकांत रूप से विषय सुख में निमग्न हो रहे थे वे सहसा सुस्वर घण्टा के विपुल शब्दों की प्रतिध्वनि से तत्काल जागृत होगये। जागृत होने पर उस पदाति अनीकाधिपति की घोषणा के विषय में जायमान–उत्पन्न कौतूहल से जिनके कान खड़े हो गये हैं और इसी से जिनका चित्त निश्चल एकाग्र होगया है और घोषणा सम्बन्धी विषय को जानने के लिए जिनका मन व्याप्त हो रहा है ऐसे उन देवों के समक्ष वह पदात्यनीकाधिपति-देव उस घंटारव के धीरे धीरे बिल्कुल शांत होजाने पर जोर जोर से बार बार घोषणा करता हुआ इस प्रकार बोला–" बड़े हर्ष की बात है कि आप सौधर्म कल्पवासी समस्त वैमानिक देव और देवियां सौधर्मकल्प के हित सुखार्थ वचन सुनिये। शक्र देवेन्द्र देवराज ने आप सबके लिये ऐसी आज्ञा दी है क्योंकि वे शक्रेन्द्र देवराज तीर्थंकर भगवान का जन्म महोत्सव मनाने के लिए

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में जा रहे हैं अतः आप लोग भी समस्त ऋद्धि, द्युति, से युक्त होकर यावत् विलम्ब किये बिना बहुत ही शीघ्र शक्रेन्द्र देवराज के पास पहुंच जावें ।

शक्रेन्द्र देवराज की सेनाधिपति द्वारा सुनाई गई आज्ञा को सुन कर सब देव और देवियाँ हर्षित हुए और अपने अपने ऋद्धि वैभव के अनुसार तैयार होकर कई देव देवियां वन्दना करने के लिये, कई पूजा करने के लिए, कई सत्कार सन्मान करने के लिए, कई दर्शन करने के लिए,कई जिन भक्ति के रागवश, और कई अपना जीताचार है वंश परम्परा का व्यवहार है ऐसा मान कर–विना कसी विलम्ब के शक्रेन्द्र देवराज के समीप उपस्थित हुए ।

उसके बाद शक्र देवेन्द्र देवराज ने उन सौधर्मकल्पवासी देव और देवियों को बिना किसी विलम्ब के अपने पास उपस्थित हुए देखा। देखकर वह हृष्ट तुष्ट यावत् हृदयवाला हुआ। उसने उसी समय आभिओगिक देव को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा–हे देवानुप्रियों ! शीघ्र ही एक ऐसा विमान जो सैकड़ों स्तम्भों से बना हुआ हो, उसमें लीलायुक्त अनेक पुतलियां स्थापित की गई हो, उसमें ईहामृग–वृषभ, तुरग, मनुष्य, मकर विहग, व्यालग किन्नर रुरु, शरभ, चमर कुंजर वनलता, पद्मलता, आदि चित्रों से चित्रित किया गया हो, स्तंभों पर बनी वज्ररत्न की वेदिका से युक्त होंने के कारण अत्यन्त रमणीय दिखाई देता हो समान श्रेणी में स्थित विद्याधरों के युगल यंत्रद्वारा चलते दीख पड़ते हों। वह विमान हजार किरणों से व्याप्त और हजारों चित्रों से युक्त होने से देदिप्यमान और अत्यन्त देदिप्यमान हो। उसे देखते ही दर्शक के नयन उसमें चिपक जाते हों। उसका स्पर्श सुखप्रद हो और रूप शोभा सम्पन्न हो, पवन के स्पर्श से भी कम्पित घण्टा समूह से निर्गत श्रवण मधुर मनप्रसाद जनक नाद से युक्त हो, शुभ हो, सुन्दर हो, अतएव जो दर्शन के योग्य हो, देदिप्यमान मणि एवं रत्न जिसमें शिल्पकला से परिकल्पित मति वाले जनों से तयार किया गया हो और छोटी छोटी घण्टिका जाल से घिरा हुआ हो ऐसा गमनीय शीघ्रगामी एक लाख योजन का विस्तार वाला हो तथा पांचसौ योजन ऊंचा ऐसा यान विमान की विकुर्वना करके मेरी यह आज्ञा वापस करो ।

तए णं से पालयदेवे सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणित्ता तहेव करेइ इति, तस्सणं तं दिव्वस्स जाणविमाणस्स तिदिसिं

तओ तिसोवाणपडिरूवगा वण्णओ, तेसिं णं पडिरूवगाणं पुरओ पत्तेअं पत्तेअं तोरणावण्णओ जाव पडिरूवा १, तस्स णं जाणविमाणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे, से जहानामए आलिंग पुक्खरेइ वा जाव दीविअचम्मेइ वा अनेकसंकुकीलकसहस्सवितते आवडपच्चावडसेढि पसेढिसुत्थिअसोवत्थिअवद्धमाणपूसमाणवमच्छंडगमगरंडगजारमारफुल्लावली पउमपत्तसागर· तरंगवसंतलयपउमलयभत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं सप्पभेहिं समरीएहिं सउज्जोएहिं णाणाविह पंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए उवसोभिए।

तेसिणं मणीणं वण्णे गन्धे, फासे अ भाणियव्वे जहा रायप्पसेणइज्जे, तस्सणं भूमिभाग· स्स बहुमज्झदेसभाए पिच्छाघरमण्डवे अनेकखंभसयसन्निविट्ठे वण्णओ जाव पडिरूवे, तस्स उल्लोए पउमलयभत्तिचित्ते जाव सव्वतवणिज्जमए जाव पडिरूवे, तस्सणं मण्डवस्स बहुसम- रमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झ देसभागंसि, महं एगामणिपेढिआ अट्ठ जोअणाइं आयाम विक्खम्भेणं चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं सव्वमणिमयी वण्णओ तीए उवरिं महं एगे सीहासणे वण्णओ तस्सुवरिं महं एगे विजयदूसे सव्वरयणामए वण्णओ तस्स मज्झदेसभाए एगे वइरामए अंकुसे, एत्थणं महं एगे कुम्भिक्के मुत्तादामे, से णं अण्णेहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमित्तेहिं चउहिं अद्धकुम्भिक्केहिं मुत्तादामेहिं सव्वओ समंता सपरिक्खित्ते, ते णं दामा तवणिज्जलम्बूसगा सुवण्णपयरगमण्डिआ णाणामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोभिआ समुदया इसिं अण्णमण्ण मसंपत्ता पुव्वाइएहिं वाएहिं मन्दं एइज्जमाणा २ जाव निव्वइकरेणं सद्देणं ते पएसे आपूरे- रेमाणा २ जाव अईव उवसोभेमाणा २ चिट्ठंतित्ति तस्स णं सीहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं सक्कस्स चउरासीइ भद्दासणसाहस्सीओ, पुरत्थिमेणं अट्ठण्हं अग्ग- महिसीणं एवं दाहिणपुरत्थिमेणं अब्भिंतरपरिसाए दुवालसण्हं देवसाहस्सीणं दाहिणेणं मज्झिमाए चउद्दसण्हं देवसाहस्सीणं दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरपरिसाए सोलसण्हं देवसाह- स्सीणं पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणिआहिवईणंति। तए णं तस्स सीहासणस्स चउदिसिं चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं एवमाई विभासिअव्वं सूरिआभगमेणं जाव पच्च- प्पिणंति त्ति।

इसके बाद पालकदेव शक्र देवेन्द्र देवराज के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर हर्षित और सन्तुष्ट हुआ यावत् (यहां यावत् शब्द की पादपूर्ति के लिए शास्त्रकार रायपसेनीयसूत्रान्तर्गत सूर्याभदेव के विमान के वर्णन को देखने का सूचन करते हैं वह पाठ इस प्रकार है—

हट्ठतुट्ठहियए करयल परिग्गहियं जाव पडिसुणेइ पडिसुणित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसरति-तं जहा-१ रयणाणं २ वइराणं ३ वेरूलियाणं ४ लोहियक्खाणं ५ मसारगल्लाणं ६ हंसगब्भाणं ७ पुलगाणं ८ सौगंधियाणं ९ जोइरसाणं १० अंकाणं ११ अंजणाणं १२ रयणाणं १३ जायरूवाणं १४ अंजनपुलयाणं १५ फलिहाणं १६ रिट्ठाणं अहावायरे पोग्गले परिसाडेइ परिसाडेत्ता अहासुहमे पोग्गले परिगिण्हइ परिगिण्हइत्ता दोच्चंपि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता अणेगखम्भसयसन्निविट्ठं जाव दिव्वं जाण-विमाणं विउव्विउं पवत्ते यावि होत्था। तएणं से आभिओगिए देवे तस्स दिव्वस्स जाण-विमाणस्स तिदिसिं तओ तिसोवाण पडिरूवए विउव्वइ, तं जहा- पुरत्थिमेणं दाहिणेणं उत्तरेणं, तेसिं तिसोवाणपडिरूवगाणं इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते तं जहा-वइरामया नेमा रिट्ठामया पइट्ठाणा वेरूलियामया खंभा, सुवण्णरुप्पमया फलगा, लोहितक्खमइयाओ सूइओ, वयरासंधी णाणामणिमया अवलंवणा, अवलंवणवाहाओ य पासाइया जाव पडिरूवा ॥

हृष्टतुष्ट हृदयवाला हो बड़े विनय के साथ दोनों हाथों की अंजलि बनाकर और उसे मस्तक पर चढ़ाकर उसकी आज्ञा के वचनों को स्वीकार किया · स्वीकार करके वह उत्तर पूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) में जाता है और वैक्रियसमुद्घात से समुद्घात करता है अर्थात् उत्तरवैक्रिय शरीर बनाने के लिये जीवप्रदेशों को बाहर निकालता है। जीव प्रदेशों को बाहर निकालकर संख्यात योजन का दण्ड बनाता है · वह इस प्रकार है–

१ कर्केतन रत्न २ वज्र रत्न ३ वैडूर्यरत्न ४ लोहिताक्ष रत्न ५ मसारगल्ल रत्न ६ हंस–गर्भरत्न ७ पुलकरत्न ८ सौगन्धिक रत्न ९ ज्योति रस रत्न १० अंकरत्न ११ अंजनरत्न १२ रजत रत्न १३ जातरूप रत्न १४ अंजन पुलक रत्न १५ स्फटिक रत्न १६ और रिष्ट रत्न इन रत्नों के यथाबादर अर्थात् असारपुद्गलों का परित्याग करता है। परित्याग करके यथा सूक्ष्म अर्थात् सारभूत पुद्गलों को ग्रहण करता है ग्रहण करके दुबारा भी उसने वैक्रिय समुद्घात किया वैक्रिय समुद्घात करके फिर वह अनेक स्तंभ शत पर सन्निविष्ट हुए यावत् यान विमान बनाना प्रारंभ किया।

उस देव ने उस दिव्य यान विमान के तीन ओर बड़े सुन्दर सोपान बनाये। एक सोपान पूर्व

में दूसरा दक्षिण में और तीसरा उत्तर में। उसका वर्णन इस प्रकार है—उनमें सोपानों की धरती वज्ररत्न मय बनाई और उसके प्रतिष्ठान रिष्ट रत्न मय बनाये। सहारे के लिये थंभे वडूर्य रत्न में से घड़कर निकाले, सोपानों के तख्ते सोने चांदी के थे। कटहरे में आये हुए सरिये लोहिताक्ष रत्न में से बनाये। सन्धिभाग वज्र से जड़े गये। अवलंबन अनेक अनेक मणियों से बनाये। अवलबन की बाहुओं को—सोपान की दोनों तरफ की कटहरे वाली भीतों को भी मणियों से रचा। इस तरह उस पालक नाम के आभियोगिक देव द्वारा यान—विमान की तीनो ओर बनाये हुए सोपान अति आकर्षक देखनेवाले के मन को आनन्द पैदा करने वाले दर्शनीय अभिरूप और प्रतिरूप थे अतीव मनोहर थे।

तेसिं णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ तोरणे विउव्वइ, तेणं तोरणा मणिमया णाणा-मणिमएसु थंभेसु उवनिविट्ठ सन्निविट्ठविविह मुत्तंतरूवोवचिया विविहतारारूवोवचिया ईहामिय उसभतुरगनरमकरविहग वालगकिन्नररुरुसरभचमरकुंजरवणलय पउमलयभत्तिचित्ता खंभुग्गय वरवइरवेइयापरिगयाभिरामा विज्जाहरजमलजुयलजंतजुत्ताविव अच्चीसहस्समालणिया रूवग-सहस्स कलिया भिसमाणा भिब्भिसमाणा चक्खुल्लोयणलेसा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासाईया दरसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ॥

तेसिं णं तोरणाणं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता तं जहा सोत्थिय–सिरिवच्छ नंदिया वत्त–वद्धमाणग–भद्दासण–कलस–मच्छदप्पणा। तेसिं च णं तोरणाणं उप्पिं बहवे किण्ह-चामरज्झए जाव सुक्किल्लचामरज्झए अच्छे सण्हे रुप्पपट्टे वइरामयदंडे जलयामल गंधिए सुरम्मे पासाईए दरिसणीज्जे अभिरूवे पडिरूवे विउव्वइ। तेसिं णं तोरणाणं उप्पिं, बहवे छत्ता-इच्छत्ते घंटाजुयले पडागाइ पडागे उप्पलहत्थए कुमुदणलिणसुभगसोगन्धिय पोण्डरीय महा-पोण्डरीय सयपत्त सहस्सपत्तहत्थए सव्वरयणामए। अच्छे जाव पडिरूवे विउव्वइ॥

उन तोरणों के ऊपर आठआठ मंगल द्रव्य थे, जो इस प्रकार हैं-स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्दिकावर्त्त, वर्द्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य और दर्पण। उन तोरणों के उपर उपने अनेक कृष्णचामर ध्वजाओं की यावत् शुक्ल चामर ध्वजाओं की विकुर्वणा की ये सब ध्वजाएं स्वच्छ, चिकनी, रुप्यपटवाली, वज्ररत्नमय दण्डवाली कमल जैसी सुगंधवाली चित्त को प्रसन्न करनेवाली दर्शनीय अभिरूप और प्रतिरूप थी। तथा उन तोरणों के ऊपर उसने एक छत्रातिछत्रों घण्टा-युगलों एवं अनेक पताकातिपताकाओं की विकुर्वणा की। तथा अनेक उत्पलसमूह, अनेक कुमुद-समूह, अनेक नलिनीसमूह की तथा अनेक सुभग सौगन्धिक, पुण्डरीक महापुण्डरीक, शतपत्र, और सहस्त्रपत्र के समह को रत्नमय बनाया ये सब दर्शनीय अभिरूप और प्रतिरूप थे।

तए णं से आभियोगिए देवे तस्स दिव्वस्स जाणविमाणस्स अन्तो बहुसमरमणिज्ज भूमिभागं विउव्वइ। से जहा नामए आलिंगपुक्खरेइ वा मुइंगपुक्खरेइ वा सरतलेइ करतलेइ वा चदमंडलेइ वा सूरमण्डलेइ वा आयंस मण्डलेइ वा उरब्भचम्मेइ वा वसहचम्मेइवा वराह चम्मेइ वा सीहचम्मेइवा वग्घचम्मेइवा मिगचम्मेइवा छगलचम्मेइवा दीविय चम्मेइ वा अनेक संकुकीलगसहस्सवितए णाणाविह पंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए आवडपच्चावडसेढिपसेढि सोवत्थियपूसमाणवगवद्धमाणगमच्छंडगमगरंडगजारमारफुल्लावलि पउमपत्तसागरतरंगवसन्त-लयपउमलयभत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं सप्पभेहिं समरीइएहिं सउज्जोएहिं णाणाविह पंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए तं जहा किण्हेहिं णीलेहिं लोहिएहिं हालिद्देहिं सुक्किल्लेहिं। तत्थ णं जे से किण्हा मणी तेसिं णं मणीणं इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते-से जहानामए जीमूतएइ वा अंजणेइ वा कज्जलेइवा ······मणामतराए चेव वण्णेणं पण्णत्ता। तत्थणं जे ते नीलामणि तेसिं णं इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते–से जहा नामए भिंगे इ वा भिंगपत्तेइ वा······

तेणं नीलामणी एत्तो इट्ठतराए चेव जाव वएणेणं पण्णत्ता । तत्थणं जे लोहियगामणी तेसि णं इमे एयारूवे वण्णावासे पएणत्ते से जहा णामए उरब्भरुहिरेहि वा ससरुहिरेइ वा········· इत्तो इट्ठतराए चेव जाव वएणेणं पएणत्ता । तत्थणं जे हालिद्दा मणी तेसि णं मणीणं इमे एयारूवे वएणावासे पएणत्ते, से जहा नामए चंपए इवा चंपछल्लीइवा चंपगगब्भे इवा··· तेणं हालिद्दामणी एत्तो इट्ठतराए चेव जाव वएणेणं पण्णत्ता । तत्थणं जे ते सुक्किल्लामणी तेसि णं मणीणं इमे एयारूवे वण्णावासे पएणत्ते से जहाणामए अंकेइ वा संखेइ वा चंदेइ वा······से णं सुक्किल्ला मणी एत्तो इट्ठतराए जाव वएणेणं पएणत्ता ।

तेसिं णं मणीणं इमे एयारूवे गंधे पएणत्ते, से जहा नामए कोट्ठपुडाण वा तगरपुडाण वा एलापुडाण वा··· ···ते णं मणी एत्तो इट्ठत्तराए चेव गंधेणं पएणत्ता ।

तेसिं णं मणीणं इमे एयारूवे फासे पएणत्ते. से जहाणामए आइणेइ वा रूएइ वा वुरेइ वा णवणीएइवा हंसगब्भतुलियाइ वा सिरिसकुसुमनिचयेइ वा वालकुसुमपत्तरासीइ वा भवे एयारूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे तेणं मणी एत्तो इट्ठत्तराए चेव जाव फासेणं पण्णत्ता ॥

इसके वाद उस पालक आभिओगिक देव ने उस दिव्ययान भूमि के भीतर बहुसम रमणीय भूभाग की विकुर्वणा की । जैसे ढोल के उपर का हिस्सा मृदंग के उपर का भाग, सरोवर के उपरवाला तलभाग हाथ की हथेली का भाग, चंद्रमा के मण्डल का भाग जो कि सब तरह से समान होता हैं । कहीं से ऊंचा नीचा नहीं होता । ऐसे ही उस विमान के भीतर वाला भूभाग सव प्रकार से वरावर किया । जैसे मेंढ़ा–वैल–वराह–सिंह–वाघ–हिरण बकरा और चीते की खाल चारों ओर से शंकु जितने कीलों से वींधकर उसे चारों ओर से खींचकर उसे बराबर कस कर एक सा किया जाता है । इसी तरह विमान का भीतरी भाग सम बनाया गया । उसमें काले नीले लाल–पीले और सफेद मणि जड़े गये थे । उनमे कई आवर्तवाले, कई प्रत्यावर्त वाले, श्रेणी और प्रश्रेणी क थे । कई तो स्वस्तिक जैसे पुष्यमाणव शराव–संपुट से थे । उन मणियों में कई मछली या मगर के अण्डाकार जैसे मालूम देते थे वहुतसे मणियो में फूल, वेल, कमलपत्र, समुद्रतरंग वासंतीलता कमलवेल, जैसे कई तरह के चित्र खुदे हुए थे । उस भूभाग में जड़े हुए सवके सव मणि अत्यंत

देदिप्यमान थे। उसमे अगणित किरणें सी भासती थीं। उत्कृष्ट प्रभाव और तेज के अंबार से भरे हुए थे।

इन मणियों में जो काले मणि थे वे मेघ, अंजन स्याही कज्जल या भैंसे के सींग से भी अधिक काले थे। नीलमणि भृंग, भृंग की पांख, तोते और तोतों की पाँख से भी अधिक नीले थे। एवं जो लालमणि थे वे मेढ़े खरगोश आदमी के रक्त से भी अधिक लालवर्ण के थे इसी तरह जो पीतमणि थे वे सोने–चम्पें से चम्पे की छाल हलदी और हलदी चूर्ण से भी अधिक पीतवर्णी थे। इन मणियों में जो सफेद मणि थे वे शंखरत्न, शंख, चन्द्र कुंदकुसुम आदि से भी अधिक शुभ्र थ।

इस दिव्य यान विमान के भीतर के भाग में अनेक रंगवाले चमकते हुए जो तेजस्वी मणि थे वे मात्र दीखने में ही सुन्दर न थे वल्कि उनमें सुगंध भी थी। इन मणियों में से इतनी अधिक सरस सुगन्ध फैलती थी कि मानो इस भूभाग में, कूठ नागरमोथा, इलायची, खुशबूदार चोआ, चम्पा, दमन, कुंकुम, चंदन, मरवा, जाइ, जूई, मल्लिका स्नानमल्लिका, केतकी, पाटल, नवमल्लिका अगर लौंग कपूर वांसकपूर के पुट (पुडियाएं आदि) की अनुकूल हवा मे चारों ओर गन्ध फैलती है इसी प्रकार खुले न पड़े हों अथवा वहां इन गन्धमय द्रव्यों में से फूटने योग्य द्रव्य मानों गंध से फूट पड़ते हों, विखरते न हों, एक वरतन से निकालकर दूसरे वर्तन में भरते न हों, इस प्रकार की उदार मनोज्ञ मनोहर और नाक, मन को शान्ति–तरी देनेवाली सुगन्ध इस भूभाग से चारों ओर झर झरकर वरसती थी। ऊपर सुगन्ध को वताने के लिए जितनी भी उपमाएं दी गई हैं उससे भी अधिक वह सुगन्ध इष्ट इष्टतर इष्टतम सरस मनोहर और मनोज्ञ थी।

उन मणियो का रंग सुगन्ध जितना उत्तम था उतना ही उनका स्पर्श मुलायम था श्रेष्ठ–तम था। मानों वहां रुई भरदी है! या मखमल का स्पर्श लगा हो या हंसगर्भ की रुई से भरी हुई तलाईया (तोषक) बिछौने बिछाये हों। मानों सरसों के फूलों मुलायम ढेर कर डाले हैं तथा कोमल कमलों के पत्ते बिछाये हो। इस तरह का उन मणियो का कोमल कोमलतर कोमलतम स्पर्श था। मणियो की कोमलता बताने के लिये उपर जो उपमाएं दी हैं उनसे भी उनका स्पर्श कोमल कोमलतम था। इष्ट, इष्टतर, इष्टतम सरस, मनोहर, मनोज्ञ स्पर्श से युक्त था।

तएणं से आभियोगिए देवे तस्स दिव्वस्स जाणविमाणस्स वहुमज्झदेसभाए

महं पेच्छावरमंडवं विउव्वइ अनेगखंभसयसन्निविट्ठं अब्भुग्गयसुकयवरवेइयातोरणवररइयसाल-भंजियागं सुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठ संठियपसत्थवेरुलियविमलखंभं णाणामणि कणगरयणखचिय-उज्जलबहुसमसुविभत्तभूमिभागं ईहामियउसभतुरगनरमगरविहगवालगकिन्नररुरुसरभचमरकुंजर-वणलयपउमलय भत्तिचित्तं कंचनमणिरयणथूभियागं णाणाविह पंचवण्णघंटापडागपरि-मण्डियग्गसिहरं चवलं मरीइकवयंविणिम्मुयंतं लाउल्लोइयमहियं गोसीससरस रत्तचंदणदद्दर दिन्नपंचंगुलितलं उवचियचंदणकलसंचंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागं आसत्तोसत्तविउल-वट्टवग्घारियमल्लदामकलावं पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं कालागुरूपवर-कुंदुरुक्कतुरक्क धूवमघमघंतगंधुद्धूयाभिरामं सुगन्धवरगंधियं गंधवट्टिभूयं दिव्वतुडियसद्दसंपण इयं अच्छरगणसंघविकिण्णं पासाइयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं ॥

इसके बाद उस (पालक) आभियोगिक देव ने उस दिव्ययान विमान के बहुमध्य देश भाग मे एक विशाल प्रेक्षागृह मण्डप की विकुर्वणा की। यह प्रेक्षागृहमण्डप अनेक सैकड़ों स्तंभों पर सन्निविष्ट था। उसमे लीलायुक्त अनेक पुतलियां स्थापित की हुई थी। उसमें ऊंची और सुनिर्मित वज्ररत्न की वेदिका थी और तोरण थे। मनोहर निर्मित पुतलियों सहित उत्तम, मोटे एवं प्रशस्त वैडूर्यरत्न के स्तंभ थे, वे विविध प्रकार के मणियों सवर्ण तथा रत्नों से खचित होने के कारण उज्ज्वल दिखाई देते थे। उनका भाग बिलकुल समविशाल, पक्का और रमणीय था। उस रत्नमय स्थूलिकाओं पर ईहामृग वृषभ, तुरग, नर, मकर, विहग, व्याल, किन्नर, मृग, शरभ, चमर कुंजर वनलता और पद्मलता आदि के चित्र चित्रित किये थे। कई भांति की पचरंगी झण्डियां और पताकाओं से उसका उपरी भाग सजाया गया था। यह मण्डप इतना अधिक चमचमाट करता था कि देखनेवालों को हिलता सा चपल प्रतीत होता था। उन्हे लगता था मानों इनमें से किरणों की धाराएँ तारतम्यता से छूट रही हैं। उसके सारे भाग लीप पोतकर भड़कीले और मुलायम बनाये गये थे। मण्डप के बाहर और भीतर लाल चन्दन आदि के (अनेक सुगन्धित द्रव्यों के थापे लगाये गये। जहां तहां चन्दन के कलश चुनकर विधि से रक्खे गये थे। दरवाजों के टोड़े चन्दन के कलशों से शोभायमान होने के कारण वे तोरण और भी अच्छे लगते थे। जहां तहां खशबदार मालाएं लटकाई थी पचरंगे फूलों के तो ढेर के ढेर लगे थे अगर आदि पर्वकथित द्रव्य

और अप्सराओं की छोटी बड़ी टोलियां इधर-उधर घूमती फिरती थीं जो अत्यन्त दर्शनीय प्रासादिक व मनोहर थी ।

तस्स णं पेच्छाघरमंडवस्स बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं विउव्वइ जाव मणीणं फासो । तस्स णं पेच्छाघरमण्डवस्स उल्लोयं विउव्वइ ईहामिय जाव पडिरूवं । तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगं वइरामयं अक्खाडगं विउव्वइ । तस्स णं अक्खाडयस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थणं महं एगं मणिपेढियं विउव्वइ । अट्ठजोयणाइं आयामविक्खंभेण चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं सव्व-मणिमयं अच्छं सण्हं जाव पडिरूवं तीसे णं मणिपेढियाए उवरि एत्थणं महं एगं सीहासणं विउव्वइ । तस्स णं सीहासणस्स इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते-तवणिज्जमया चक्कला, रययामया सीहा, सोवण्णिया पाया, णाणामणिमयाइं पायसीसगाइं जंबूणयमया गत्ताइं, वयरामया संधा णाणामणिमये विच्चे । से णं सीहासणे ईहामिय-जाव भत्तिचित्तं सारसारोवचियमणिरयणपायपीढत्थरगमिउमसूरगणवतयकुसंतलिंबकेसर पच्चुत्थुयाभिरामे सुविरइयरयत्ताणे उवचिय खोमदुगल्लपट्टपडिच्छायणे रत्तंसुअसंवुए सुरम्मे आइणगरूयबूरणवणीयतूलफासे मउए पासाइए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ।

केशर तन्तु के समान प्रतीत होती थी। सिंहासन के ऊपर धूल न पड़ जाय इसे बचाने के लिये अच्छे से सिले रजस्त्राणों से ढांका गया था । बढ़िया कपास से बना अच्छा सूती कपड़ा उस रजस्त्राण के ऊपर विधि से फैलाया गया था। और फिर अन्त में वह पूरे सिंहासन के ऊपर लाल लाल कपड़े से ढंका था। इस तरह उस सिंहासन को रम्य सुकुमार और सब तरह से प्रासादिक बनाया।

तस्स णं सीहासणस्स उवरि एत्थ णं महं एगं विजयदूसं विउव्वइ, संखककुंदद्गरयअमयमहियफेणपुंजसन्निगासं सव्वरयणामयं अच्छं सण्हं पासाईयदरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं ।

तस्स णं सीहासणस्स उवरि विजयदूसस्स य बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगं वयरामयं अंकुसं विउव्वइ तस्सिं च णं वयरामयंति अंकुसंमि कुंभिक्खं मुत्तादामं विउव्वइ। सेणं कुंभिक्के मुत्तादामे अन्नेहिं चउहिं अद्धकुम्भिक्केहिंमुत्तादामेहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणेहिं सव्वओ समंता सपरिक्खित्ते। ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा सुवण्णपयरगमंडियग्गा णाणामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोभियसमुदाया ईसिं अण्णमण्णमसंपत्ता वाएहिं पुव्वावरदाहिणुत्तरागएहिं मंदायं मंदायं एज्जमाणाणि २ पलंबमाणि २ पज्झंझमाणाणि २ उरालेणंमणुण्णेणं मणहरेणं कण्णमणणिव्वइकरेणं सद्देणं ते पयेसे सव्वओ समंता आपूरेमाणा २ सिरिए अईव २ उवसोभेमाणा २ चिट्ठन्ति ।

उस आभियोगिक देव ने सिंहासन के ऊपर एक बडे विजयदूष्य की रचना की। वह शंख–कुंद–जलबिन्दु और समुद्र के झागोंसा, सफेद, रत्नों से खचित था, स्वच्छ, श्लक्ष्म, सर्वरत्नमय तथा मन को आनन्द देनेवाला दर्शनीय था। उस विजयदूष्य के बराबर–बीचोंबीच एक बड़ा सारा वज्रमय अंकुश टांगा गया था। इन सुलाखों में घड जेसा एक वडा मुक्ता–दाम मोती का गुच्छा लटकाया। उस मोती के गुच्छे के चारों ओर आधे घडे जैसे चार मोती–दाम और पिरोये थे। इस प्रकार सिंहासन के उपरि भाग में वांधे गये विजयदूष्य में एक वडासा मोती का झूमका शोभा दे रहा था। इस झूमके के मोती सोने की पत्तियो वाले अन्य अनेक प्रलंबनों से, हारों से, अनेक विध-मणियों से आधे हार, पूर्ण हार आदि अनेक रत्नमय हारों से वे सुशोभित थे। जव पूर्व पश्चिम दक्षिण या उत्तर का वायु चलता था तव ये मोती शनैःशनै स्वाभाविकता से हिलते थे। हिल हिल–

कर वे एक दूसरे से टकराते थे तब उनमें से कान को मीठी लगनेवाली और मन को परम शांति देने वाली उदार तथा मनोहारी गूंज निकलती थी। यह सुन्दर-दिव्य-गूंज सिंहासन के चारों ओर शब्दायमान होकर रह जाती थी।

तएणं से आभियोगिए देवे तस्स सीहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थं णं सक्कस्स चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं ...(इसका शेष पाठ देखिए पृ ... ...)

उस समय आभियोगिक देव ने उस सिंहासन के वायव्य-कोण में उत्तर और ईशान कोण में शक्रेन्द्र देवराज के चोरासी हजार सामानिक देवों को बैठने के लिए एक एक के हिसाब से ८४ हजार बड़े सुन्दर भद्रासन की विकुर्वणा की। शक्रेन्द्र की आठ अग्रमहिषियों को बैठने के लिये आठ भद्रासन रचे गये। शक्रेन्द्र देवराज की अंतरंग सभा के १२ हजार देवों के बैठने के लिए अग्निकोण में १२ हजार भद्रासन रखे गये। दक्षिण के मध्य भाग की परिषद् के १४ हजार देव के १४ हजार भद्रासन। नैऋत्य कोण का बाह्य परिषद् के सोलह हजार देवों के सोलह हजार भद्रासन, पश्चिम के सात अनिकाधिपति के साथ भद्रासन और इसके उपरांत चारों दिशा के आत्म-रक्षक देवों के लिए चारों दिशा में ८४-८४ हजार भद्रासन कुल ३३६००० आसन रक्खे गये।

तस्स णं दिव्वस्स याण-विमाणस्स इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहानामए अइरुग्गयस्स वा हेमंतियबालिय सूरियस्स वा खाइंगालाणं वा रत्तिं पज्जलियाण वा जवा-कुसुमवणस्स वा किंसुयवणस्स वा पारिजायवणस्स वा सव्वओ समंता संकुसुमियस्स भवे एयारूवे सिया? णो इणट्ठे समट्ठे। तस्स णं दिव्वस्स जाण विमाणस्स एत्तो इट्ठतराए चेव जाव वण्णेणं पण्णत्ते, गंधो य फासो य जहा मणीणं।

तएणं से आभिओगिए देवे दिव्वं जाणविमाणं विउव्वइ, विउव्वित्ता जेणेव सक्कं देविंदं देवरायं देवं करयल परिग्गहियं जाव पच्चप्पिणंति ॥

इस प्रकार वह यान विमान बात की बात में तैयार किया गया, जिस तरह नवजात उगा हुआ हेमन्तऋतु का बालसूर्य, अन्धेरी रात में सुलगाए गए खेर की लकड़ी के अंगार जपा के फूलों का वन, केसु का वन, पारिजात का वन जैसा लाल ही लाल लगता है वैसे ही वह दिव्य यान विमान लाल-सूर्ख चमक रहा था।

प्रश्न–क्या यह यान विमान बालसूर्य आदि उपमाओं सा लाल था ?

उत्तर-यह अर्थ समर्थ नहीं हैं, अर्थात् आयुष्मन् श्रमण ! यह तो मात्र उपमालंकार है, परंन् यह यान–विमान तो सारी उपमाओं की अपेक्षा अधिक इष्ट-इष्टतर और इष्टतम सरस, मनोहर और मनोज्ञ लालवर्ण का था। उसका गन्ध और स्पर्श पूर्ववर्णित मणियों सा बेहद सुगन्धित और अतिशय सुकोमल था।

उस आभियोगिक देव ने अपने स्वामी शक्रेन्द्र देवराज की आज्ञानुसार दिव्ययान विमान की रचना कर उसकी सम्पूर्णता के समाचार उन्होंने विनयपूर्वक अंजलिबद्ध हो नत-मस्तक से शक्रेन्द्र देवराज को उनकी आज्ञा पीछी लौटादी। (विमान का वर्णन रायपसेनी सूत्र के सूर्याभदेव के प्रकरण से यावत् शब्द की पूर्ति के रुप में लिया गया है)

तए णं से सक्के जाव हट्ठहिअए दिव्वं जिणिंदाभिगमणजुग्गं सव्वालंकारविभूसियं उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वइ २ त्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं णट्टाणीएणं गंधव्वाणीएणं य सद्धिं तं विमाणं अणुप्पयाहिणी करेमाणे २ पुव्विल्लेणं तिसोवाणेणं दुरूहइ २ त्ता जाव सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णेत्ति, एवं चेव सामाणिआवि उत्तरेणं तिसोवाणेणं दुरुहित्ता पत्तेअं २ पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीअंति अवसेसा य देवा देवीओ अ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणेणं दुरुहित्ता तहेव जाव णिसीअंति तएणं तस्स सक्कस्स तंसि दुरुढस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ। तयाणंतरंच णं पुण्णकलस भिंगारं दिव्वा य छत्तपडागा सचामरा य दंसणरइय आलोअदरिसणिज्जा वाउद्धुअविजय वेजयन्ती अ समूसिआ गगनतलमणुलिहंति पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिया। तयणंतरं छत्तभिगारं तयणंतरं च णं वइरामयवट्टलट्ठसंठिअसुसिलिट्ठपरिघट्ठमट्ठसु पइट्ठिए विसिट्ठे अणेगवर पंचवण्णकुडभीसहस्सपरिमण्डियाभिरामे वाउद्धुअविजयवेजयंतिपडागा छत्ताइच्छत्तकलिए तुंगे गयण तलमणुलिहंतसिहरे जोअणसहस्स मूसिए महइ महालए महिंदज्झए पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिएत्ति तयणंतरं च णं सरुवनेवत्थपरिअच्छिअसुसज्जा सव्वालंकारविभूसिआ पंच अणिया पंच अणिआहिवईणो जावसंपट्ठिया, तयणतरं च णं बहवे आभिओगिआ देवा य देवीओ अ सएहिं सएहिं रूवेहिं जाव णिओगेहिं सक्कं देविंद देवरायं पुरओ अ मग्गओ अ अहा० तयणंतरं च णं बहवे सोहम्मकप्पवासी देवाय देवीओ अ सव्विद्धिए जाव दुरुढा समाणा मग्गओ अ जाव संपट्ठिआ, तए

णं से सक्के तेणं पंचाणिअपरिक्खित्तेणं जाव महिंदज्झएणं पुरओ पकड्ढिज्जमाणेणं चउरासीए सामाणिअ जाव परिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेणं सोहम्मस्स कप्पस्स मज्झं मज्झेणं तं दिव्वं देवद्धिं जाव उवदंसेमाणे २ जेणेव सोहम्मस्स कप्पस्स उत्तरिल्ले निज्जाणमग्गे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जोयणसयसाहस्सीएहिं विग्गहेहिं ओवयमाणे २ ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए वीईवयमाणे वीईवयमाणे तिरियमसंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं जेणेव णन्दीसरवरे दीवे जेणेव दाहिणपुरत्थिमिल्ले रइकरग पव्वए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता एवं जा चेव सूरिआभस्स वत्तव्वया णवरं सक्काहिगारो वत्तव्वो इति जाव तं दिव्वंदेवद्धिं जाव दिव्वं जाव विमाणं पडिसाहरमाणे २ जाव जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणनगरे जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मण भवणे तेणेव उवागच्छति २ त्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मण भवणं तेणं दिव्वेणं जाणविमाणेणं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ त्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मण भवणस्स उत्तर पुरत्थिमे दिसीभागे चउरंगुलमसंपत्तं धरणियले तं दिव्वं जाण विमाणं ठवेइ २ त्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं दोहिं अणीएहिं गन्धव्वाणीएणं य णट्टाणीएणं य सद्धिं ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाण पडिरूवएणं पच्चो-रुहइ, तए णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउरासीई सामाणिअसाहस्सीओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ उत्तरिल्लेणं तिसोवाण पडिरूवएणं पच्चोरुहंति अवसेसा देवय देवीओ अ ताओ दिव्वाओ जाण विमाणाओ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंतित्ति।

तएणं से सक्के देविंदे देवराया चउरासीए सामाणिअ साहस्सीएहिं जाव सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव दुंदुभिणिग्घोसणाइयरवेणं जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थरमाया य तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आलोए चेव पणामं करेइ २ त्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिक्खुत्तो आयाहिणं करेइ २ त्ता करयल जाव एवं वयासी "णमोत्थु णं ते रयण कुच्छि धारए एवं जहा दिसाकुमारीओ जाव धण्णासि पुण्णासि तं कयत्थाऽसि, अहण्णं देवाणु-प्पिए सक्के णामं देविंदे देवराया भगवओ तित्थयरस्स जम्मण महिमं करिस्सामि, तं णं तुब्भाहिं ण भाइव्वंति कट्टु ओसावणिं दलयइ २ त्ता तित्थयर पडिरूवगं विउव्वइ तित्थ-यरमाउआए पासे ठवइ २ त्ता पंच सक्के विउव्वइ विउव्वइत्ता एगे सक्के भगवं तित्थयरं करयल पुडेणं गिण्हइ एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ दुवे सक्का उभओ पासिं चामरु-क्खेवं करेंति एगे सक्के पुरओ वज्जपाणी पकड्ढइत्ति, तएणं से सक्के देविन्दे देवराया

अण्णेहिं बहूहिं भवणवइ वाणमतर जोइस वेमाणिएहि देवेहिं देवीहिं अ सद्धि संपरिवुडे सव्विड्ढिए जाव णाइएणं ताए उक्किट्ठाए जाव वीइवयमाणे जेणेव मन्दरे पव्वए जेणेव पंडगवणे जेणेव अभिसेअसिला जेणेव अभिसेअसीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णेत्ति ॥

अपनी आज्ञा के अनुसार उस दिव्य यान विमान की तैयारी के समाचार सुनकर शक्र देवेन्द्र देवराज बडा आनन्दित हुआ और उसी समय जिनेन्द्र भगवान के पास जाने योग्य दिव्य उत्तर वैक्रिय शरीर की विकुर्वणा की। विकुर्वणा करके सर्वालंकारों से शरीर को विभूषित किया। तदनंतर परिवार सहित आठ अग्रमहिषियों के साथ एवं गन्धर्वानीक और नृत्यानीक इन दो अनीकों के साथ दिव्य यान विमान को प्रदक्षिणा देकर पूर्व दिशा के सो पान से उस यान विमान पर चढकर उसमें रचे गये मुख्य सिंहासन के ऊपर पूर्वाभिमुख होकर बैठा फिर उसके ८४ हजार सामानिक देव उस यान विमान की परिक्रमा देकर उत्तर दिशा के सो पान से उस पर चढे और अपने अपने आसन पर आ बैठे। बाकी के देव देवियाँ भी उस दिव्य यान विमान पर यावत् दक्षिण दिशा की ओर को त्रिसोपान पंक्तियों से चढ़कर अपने-अपने अलग अलग भद्रासनों पर बैठकर मण्डप की शोभा को चार चांद लगा दिये।

उस यान विमान पर जब शक्रेन्द्र देवराज अपने विशाल परिवार के साथ बैठ गया तब उसके आगे स्वस्तिक श्रीवत्स, नन्दावर्त, वर्द्धमानक भद्रासन, कलश, तथा मत्स्ययुग्म ये आठ आठ मंगल थे। उसके पीछे पूर्ण कलश भृंगार दिव्य छत्र और चंवर थे। इनके साथ गगनतल का स्पर्श करती अतिशय सुन्दर और हवा में लहरायमान एक बड़ी ऊंची विजय वैजयन्ती नाम की पताका चलती थी। इसके बाद वैडूर्यमणि के चमकते हुए डंडे वाला मालाओं से सुशोभित चांदसा उजला शुभ्र ऊंचा छत्र चलता था। फिर उसके ऊपर खडाऊ की सुन्दर जोडी और पीठा रक्खा गया था। मणि और रत्नों की कारीगरी से अचरज में डालने वाला उत्तम सिंहासन अनेक दास देवों के कन्धे पर चलता था। इसके बाद वज्र में से बनाया गया चमकीला घिसकर सुकुमाल किया गया गोलाकार पंचरंगी छोटी छोटी पताकाओं से सुशोभनीय छत्राकार बनाया गया। विजय वैजयन्ती ध्वजाओं से युक्त अतिशय ऊंचा (हजार योजन ऊंचा) था। इसलिये आकाश को छूता हुआ सा ऐसा बड़े से बड़ा इन्द्र ध्वज चलता था। इसके बाद अपने अपने सुन्दर वेष भूपा वाले ठीक तरह से सजाया

गये सब तरह के अलंकारों से विशेष देखने लायक पांच सेनाधिपति उनके बड़े बड़े सुभट समुदाय के साथ अनुक्रम से चलते थे। उनके पीछे अपने अपने समूहों और वृन्दों के साथ अपने अपने नेता सहित अपनी अपनी विशिष्ट वेष भूषा से युक्त ये आभियोगिक देव और उनकी सब देवियां चलती थी। इसके अनन्तर ठीक तरह से अन्त में उस शक्र देवेन्द्र के सौधर्म कल्प में रहने वाले अन्यान्य देव देवियां अपनी अपनी सब प्रकार की ऋद्धि, समृद्धि, द्युति, बल, वेश भूषा और परिवार के साथ उस यान विमान की सवारी में सब समन्वित थे। इस भांति विमान के स्वामी सौधर्मेन्द्र शक्र के आगे पीछे और दोनों ओर अनेकानेक देव देवियाँ थी इन सबको उठाकर वह यान विमान वेग बद्ध गर्जना करता हुआ गति करने लगा।

इस तरह से सज धज कर शक्रेन्द्र अपने दिव्य ठाठ बाट को बताता बताता सौधर्म कल्प के बीचों बीच होकर निकला और सोधर्म कल्प से उत्तर में आये हुए नीचे आने के निर्याण मार्ग की ओर अपने यान विमान को हांका। वह निर्याण मार्ग पर पहुंच कर लाख योजन की वेगवाली गति से बड़ी तीव्र गति के साथ भरत क्षेत्र की ओर आने लगा। इस क्षेत्र की ओर आते आते उसे असंख्यद्वीप और समुद्र लांघने पड़े। इस ढ़ग से वेगबद्ध-गति करता हुआ वह शक्रेन्द्र देवराज नन्दी श्वर-द्वीप तक आ पहुँचा और वहां के अग्निकोण में आये हुए रतिकर पर्वत के पास आकर उस देवेन्द्र शक्र ने अपनी पहली बनाई हुई देवमाया का संकोच करके जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे पहुंचने जैसी अवस्था करली। फिर उस रतिकर पर्वत से जम्बूद्वीप की ओर आने के मार्ग से अपने यान विमान को तीव्र गति से चलाना प्रारंभ किया। और शीघ्र ही भरतक्षेत्र में जहां तीर्थंकर भगवान का जन्म नगर था और जहां उनका जन्म स्थान था वहां आ पहुंचा। वहां आते ही उसने भगवान तीर्थंकर के जन्म भवन को तीन बार प्रदक्षिणा की और भगवान से उत्तर पूर्व के भाग-ईशान कोण मे अपने यान-विमान को धरती से चार अंगुल ऊपर रोककर खड़ा किया। खड़ा करके वह अपनी आठ अग्रमहिषियों और दो अनीकों के साथ एक गन्धर्वानीक और दूसरा नाट्यानीक के साथ उस दिव्य यान-विमान से पूर्व दिशा के ओर के सोपानत्रय से होकर नीचे उतरा। इसके बाद उस शक्रेन्द्र देवराज के ८४ हजार सामानिक देव उत्तर के त्रिसोपान से और उस यान की सब देव देवियां क्रमशः दक्षिण दिशा के त्रिसोपान से नीचे उतरी। इतने बड़े परिवार में घिरा हुआ शक्रदेवेन्द्र देवराज अपनी सब ऋद्धि के साथ देव वाद्यों के मीठे घोष के साथ तीर्थंकर

भगवान और उनकी माता के पास आया। आकर तीन वार प्रदक्षिणा की और दर्शन होते ही प्रणाम किया। प्रणाम करके दोनों हाथों को जोड़कर सिर पर आवर्त और अंजलि करके इस प्रकार कहा–

"हे रत्नकुक्षि धारिके ! अर्थात् कूंख में भगवानरुपी रत्न को धारण करनेवाली ! हे जगत् प्रदीप दीपिके–जगत् के प्रकाशक भगवान को जन्म देकर प्रकाश में लाने वाली ! तुम्हें नमस्कार हो, क्योंकि तुम तीनों लोकों के लिए मंगलस्वरुप सब जीवों के नेत्र के समान समस्त संसारवर्ती जीवों का पुत्र के समान पालन करने वाले, सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चारित्र–रूप हितकारक मोक्ष मार्ग का प्रकाश करनेवाली तथा समस्त भाषाओं के रूप में परिणत होनेवाली होने से सर्वव्यापिनी, वचन लब्धि के स्वामी रागद्वेष के विजेता, सातिशय ज्ञान के धारक, धर्मवर चक्रवर्ती तत्त्वों के ज्ञाता भव्य जीवों को बोध देनेवाले बोधि बीज को देनेवाले और रक्षण करनेवाले अतः योग क्षेमकर होने से समस्त लोक के नाथ, ममत्व से रहित, नाभिराज क्षत्रिय के श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होनेवाले जाति (वर्ण) से क्षत्रिय, और समस्त जनों में (भगवान) की माता हो ! इस कारण तुम धन्य हो, कृतार्थ हो !" हे देवानुप्रिये ! मैं शक्रदेवेन्द्र देवराज भगवान तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करूंगा अतः आप भयभीत न होना।

इस प्रकार कहकर इन्द्र ने उन्हे अवस्वापिनी निद्रा में सुला दिया और तीर्थंकर के समान आकृति विशेष को उनकी माता को गोद में रख दिया। तदनंतर पांच शक्र के रूपों की विक्रिया की। अर्थात वैक्रिय शक्ति से अपने पांच रूप बनाय। उन पांच इन्द्र रूपों में से एक इद्र भगवान तीर्थंकर को कोमल करतलों मे लेता है। एक शक्र पीछ की तरफ अपनी धवलता से हस के पत्र (पांख) को जीतने वाला आतपत्र–छत्र धारण करता है। दो शक्र दोनों बगलों में चामर वींजता हैं। एक इन्द्र वज्र हाथ में लेकर भगवान तीर्थंकर के आगे चलता है। इसके वाद शक्र देवेन्द्र देवराज अन्य बहुत से भवनपति, वाणव्यंतर ज्योतिप एवं वैमाणिक देव और देवियों के साथ परिवृत होते हुए सर्वऋद्धि यावत् नादघोप के साथ उत्कृष्ट देवरूप के साथ यावत् पंखा करते हुए जहां मंदरपर्वत था जहां पंडगवन था जहां अभिषेक शिला थी जहां अभिषेक सिंहासन था वहां आते हैं। आकर अभिषेक सिंहासन पर पूर्वाभिमुख हो बैठ जाते हैं।

तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया सूलपाणी वसभवाहणे सुरिंदे उत्तरद्ध-लोगाहिवई अट्ठावीसविमाणवाससयसहस्साहिवई अरयंबरवत्थधरे एवं जहा इमं णाणत्तं–महाघोसाघण्टा लहुपरक्कमो पायत्ताणियाहिवई पुप्फओ विमाणकारी दक्खिणे निज्जाणमग्गे उत्तरपुरत्थिमिल्लो रइकर पव्वओ मंदरे समोसरिओ जाव पज्जुवासइत्ति, एवं अवसिट्ठावि इंदा भाणियव्वा जाव अच्चुओत्ति, इम णाणत्तं–चउरासीइ असीइ बावत्तरि सत्तरि अ सट्ठी अ। पण्णा चत्तालीसा तीसा वीसा दस सहस्सा। एए सामाणिआणं, बत्तीसट्ठावीसा बारसट्ठ चउरो सयसहस्सा। पण्णा चत्तालीसा छच्च सहस्सारे ॥ आणयपाणयकप्पे चत्तारि सयाऽऽरणच्चुए तिण्णि। एए विमाणाणं, इमे जाणविमाणकारी देवा-तं जहा-१ पालय २ पुप्फेय ३ सोमणसे ४ सिरिवच्छे अ ५ णंदि आवत्ते ६ कामगमे पीइगमे मणोरमे विमल सव्वओ भद्दे॥ सोहम्मगाणं सणं बंभलोअगाणं महासुक्कयाणं पाणयगाणं इंदाणं सुघोसाघण्टा हरिणेगमेसी पायत्ताणीआहिवई उत्तरिल्ला णिज्जाणभूमी दाहिणपुरत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए ईसाणगाणं माहिंदलंतगसहस्सार अच्चुअगाण य इंदाण महाघोसा घण्टा लहुपरक्कमो पायत्ताणीआहिवई दक्खिणिल्ले निज्जाणमग्गे उत्तरपुरत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए परिसा णं जहा जीवाभिगमे आयरक्खा सामाणिअ चउग्गुणा सव्वेसिं जाणविमाणा सव्वेसिं जोअणसयसहस्सविच्छिण्णा उच्चत्तेणं सविमाणप्पमाणा महिंदज्झया सव्वेसिं जोअणसाहस्सिआ सक्कवज्जा मंदरे समोसरंति जाव पज्जुवासंति त्ति ॥

उस काल उस समय ईशान नामक देवेन्द्र देवराज हाथ में त्रिशूल धारण करने वाला, वृषभ वाहन वाला, देवताओं का इन्द्र उत्तरार्द्धलोक का अधिपति २८ लाख विमान का स्वामी, रजरहित वस्त्र धारण करनेवाला ईशानेन्द्र भी शक्र की तरह भगवान का जन्मोत्सव मनाने के लिये निकलता है। इसमें विशेषता यह थी कि इसने लघुपराक्रम नाम के पादात्यनीक द्वारा महाघोषा घण्टा बजवा कर अपने देवों को प्रबोधित किया था। तथा पुष्पक विमान से बैठकर अपने परिवार सहित महति ऋद्धि के साथ दक्षिण दिशा के मार्ग से ईशानकल्प से नीचे उतरकर तिर्छे चलकर नन्दीश्वर द्वीप पर आये और रतिकर पर्वत पर अपने विमान को संकुचित कर मेरु पर्वत पर भगवान के समीप भक्तिपूर्वक उपस्थित हुए। इसी प्रकार महेन्द्र श्रीवत्स विमान से ब्रह्मेन्द्र नन्द्यावर्त विमान से लांतकेन्द्र, कामगव विमान से, शुक्रेन्द्र, प्रीतिगम विमान से, सहस्रार इन्द्र मनोरम विमान से,

आनतप्राणत के इन्द्र विमल विमान से, और आरणाच्युत देवलोक के इन्द्र सर्वतोभद्र विमान में बैठकर भगवान का जन्मोत्सव मनाने के लिए शक्र की तरह भक्तिपूर्वक मेरू पर्वत पर आये।

इन इन्द्रों के सामानिक देव तथा विमानों की संख्या इस प्रकार हैं—सौधर्मेन्द्र के ८४ हजार सामानिक, और ३२ लाख विमान, ईशानेन्द्र क ८० हजार सामानिक और २८ लाख विमान सनत्कुमारेन्द्र के ७२ हजार सामानिक एवं १२ लाख विमान, माहेन्द्र के ७० हजार सामानिक और ८ लाख विमान, ब्रह्मेन्द्र के ६० हजार सामानिक. और ४ लाख विमान लांतकेन्द्र के ५० हजार सामानिक, और ५० हजार विमान, शुक्रेन्द्र के ४० हजार सामानिक ओर ४० हजार विमान, सहस्त्रारेन्द्र के ३० हजार सामानिक और ६ हजार विमान, प्राणतेन्द्र के २० हजार सामानिक और ४०० विमान, अच्युतेन्द्र के १० हजार सामानिक और ३०० विमान हैं। सौधर्मेन्द्र, सनत्कुमार, ब्रह्मेन्द्र महाशुक्रेन्द्र और प्राणतेन्द्र इन पांच इन्द्रों की सुघोषा घण्टा और हरिणैगमेषी नाम के पदात्यनीक देव है और विश्रामस्थल अग्निकोण के रतिकर पर्वत है। ईशानेन्द्र, माहेन्द्र, लांतकेन्द्र, सहस्त्रारेन्द्र और अच्युतेन्द्र इन पांचों की महाघोषा घण्टा और लघु पराक्रम नाम के पदात्यनीक है। इनके निकलन के द्वार दक्षिण दिशा मे और विश्राम के स्थल ईशान कोन के रतिकर पर्वत है। इनकी परिषदों को सख्या जावाभि गम मूत्र मे मिलता है। उपरोक्त इन्द्रों के सामानिक देवों से चौगुने इनके आत्मरक्षक देव है। सब इन्द्रों के यान विमान एक लाख याजन लम्बे चोड़े होते है। और इनका ऊचाई अपने २ देवलोक जितनो बनाते हैं। सबका महेन्द्रध्वजा एक हजार योजन का होती है। शक्रेन्द्र तीर्थंकर के जन्म नगर में आते है। शेष इन्द्र अपने अपने स्थान से सीध मेरू पर्वत पर आते है यावत् पर्युपासना करते है।

तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिंदे असुरराया चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि चउसट्ठीए सामाणिअसाहस्सीहिं तायत्तीसाए तायत्तीसेहिं चउहिं लोगपालेहिं पंचहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अनिएहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं चउहिं चउसट्ठिहिं आयरक्खसाहस्सीहिं अण्णेहि अ जहा सक्के णवरं इम णाणत्तं—दुमो पायत्ताणीआहिवई ओघस्सरा घण्टा विमाणं पण्णासं जोअण सहस्साइं महिन्दज्भओ पञ्चजोअण सयाइं विमाणकारी आभिओगिओ देवो अवसिट्ठं तं चेव जाव मन्दरे समोसरइ पज्जुवासइत्ति।

तेणं कालेणं तेणं समएणं चली असुरिंदे असुर राया एगमेव णवरं सट्ठी सामाणीअ साहस्सीओ चउगुणा आयरक्खा महादुमो पायत्ताणीआहिवई महाओहस्सरा घण्टा सेसं तं चेव परिसाओ जहा जीवाभिगमे इति।

तेणं कालेणं तेणं समएणं धरणे तहेव णाणत्तं छ सामाणिअ साहस्सीओ छ अग्गमहिसिओ चउगुणा आयरक्खा मेघस्सरा घण्टा भद्दसेणो पायत्ताणीयाहिवई विमाणं पणवीसं जोअणसहस्साइं महिंदज्झओ अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं एवमसुरिन्दवज्जिआणं भवणवासि इंदाण, णवरं असुराणं ओघस्सरा घण्टा नागाणं मेघस्सरा, सुवण्णाणं हंसस्सरा, विज्जूणं कोंचस्सरा अग्गीणं मंजुस्सरा दिसाणं मंजुघोसा, उदहीणं सुस्सरा दीवाणं महुरस्सरा वाऊणं णंदिस्सरा, थणिआणं णंदिघोसा चउसट्ठी सट्ठी खलु छच्च सहस्सा उ असुरवज्जाणं। सामाणिआ उ एए चउगुणा आयरक्खाउ। दाहिणिल्लाणं पायत्ताणीआहिवई भद्दसेणो उत्तरिल्लाणं दक्खोत्ति। वाणमंतर जोइसिया णेअव्वा एवं चेव णवरं चत्तारि सामाणिअ साहस्सीओ चत्तारि अग्गमहिसीओ सोलस आयरक्ख सहस्सा विमाणा सहस्सं महिंदज्झया पणवीसं जोअणसयं घण्टा दाहिणाणं मंजुस्सरा उत्तराणं मंजुघोसा पायत्ताणीआहिवई विमाणकारी अ आभिओगा देवा जोइसिआणं सुस्सरा सुस्सरणिग्घोसाओ घण्टाओ मंदरे समोसरणं जाव पज्जुवासंतित्ति।

उस काल उस समय चमर नामक असुरेन्द्र चमरचंचा राजधानी में सुधर्मा सभा में चमर नामक सिंहासन पर आसीन था। ६४ हजार सामानिक देवों, तेतीस त्रायस्त्रिशक देवों चार लोकपालों के परिवार सहित, पांच अग्रमहिषियों परिवार सहित, तीन परिषदों, सात अनीकों, सात अनीकाधिपतियों, दो लाख छप्पन हजार आत्मरक्षक देवों तथा अन्यान्य असुरकुमार देवों और देवियों के साथ परिवृत होकर जोर जोर से बजने वाले वादिन्त्र नृत्य आदि से मनोरंजन करते हुए विचर रहे थे। उस समय चमरेन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। अवधि ज्ञान के उपयोग से जब भ. आदिनाथ का जन्म होना जाना तो उसने तत्काल अपने पदात्यानीकाधिपति द्रुम को बुलाया और उसे ओघस्वरा घंटा बजाकर अपने अपने अधीनस्थ सभी देव देवियों को भगवान के जन्मोत्सव के अवसर पर उपस्थित होने का आदेश दिया। इसके बाद आभियोगिक देव ने चमरेन्द्र के आदेश से पचास हजार योजन लम्बा और चौड़ा विमान बनाया। तथा पांचसौ योजन ऊंचा महेन्द्र ध्वजा तैयार

की। तदनन्तर चमरेन्द्र अपनी दिव्य ऋद्धि एवं देव देवियों के परिवार के साथ शक्रेन्द्र की तरह मेरु पवत पर आया।

उस काल उस समय बलि नाम का असुरेन्द्र बलिचंचा राजधानी में अन्य इन्द्रों की तरह भोग भोगता हुआ विचर रहा था। इसकी विशेषता यह हैं कि इसके ६० हजार सामानिक देव चालीस हजार आत्म रक्षक देव, महाद्रुम नामक पदात्यनीकाधिपति हैं। इनकी ओघस्वरा घण्टा हैं। शेष चमरेन्द्र की तरह यह भी अपने दिव्य ऋद्धि और परिवार के साथ सीधा मेरु पर्वत पर जन्मोत्सव मनाने के लिये पहुंचा।

इसी तरह नागकुमार का धरण नामक इन्द्र मेघस्वरा नामकी घण्टा बजाकर भद्रसेन नाम के अपने पदात्यनीकाधिपति द्वारा बुलाये हुए छ हजार सामानिक देवताओं और उनसे चार गुने आत्म रक्षक देव छ पट्टरानी एवं अन्य भी नागकुमार देवों को साथ लेकर दो लाख मील लंबे चौड़े और दो हजार मील (पांच सौ योजन) ऊंचे और इन्द्र ध्वज से सुशोभित विमान में बैठकर भगवान का जन्मोत्सव मनाने के लिए उत्सुक होकर मेरु पर्वत पर आया। भूतानन्द नामक नागेन्द्र अपनी मेघस्वरा नामक घंटा बजवाकर दक्ष नामक सेनापति द्वारा आमन्त्रित सामानिक देवों अग्रमहिषियों आत्म रक्षकों तथा अन्यान्य देवों के दिव्य परिवारों के साथ विमान में बैठकर मेरुपर्वत पर आया उसी तरह विद्युत्कुमारेन्द्र हरि और हरिसह, सुवर्णकुमार के इन्द्र वेणुदेव और वेणुदारी, अग्निकुमार के इन्द्र अग्नि शिख और अग्निमाणव वायुकुमार के इन्द्र वेलम्ब और प्रभंजन, स्तनित कुमार के इन्द्र सुघोष और महाघोस, उदधि कुमार के इन्द्र पूर्ण जलकांत और जलप्रभ, द्वीप कुमार के इन्द्र पूर्ण और अवशिष्ट और दिशा कुमार के इन्द्र अमित और अमित वाहन भी अपने अपने दिव्य ऋद्धि के साथ मेरु पर्वत पर आये। इन देवों में नाग कुमार के मेघस्वरा घंटा, सुवर्ण कुमार के हंसस्वर वाली घंटा, विद्युत्कुमार के क्रौंच स्वर वाली घंटा अग्नि कुमार के मंजुस्वरा,, उदधि कुमार के, सुस्वरा, द्वीप कुमार के मधुर स्वरा, वायु कुमार के नन्दीस्वरा, स्तनित कुमार के नंदीघोषा, घण्टाएं है।

व्यंतर जाति के देवों में पिशाचों के इन्द्र काल और महाकाल, भूतों के इन्द्र सुरुप और प्रति रूप यक्षों के इन्द्र पूर्णभद्र और मणिभद्र राक्षसों के इन्द्र भीम और महाभीम, किन्नरों के इन्द्र

किन्नर और किं पुरुष, कि पुरुषों के इन्द्र सत्य पुरुष और महा पुरुष, महोरगों के इन्द्र गीतरति और गीत यश। इन इन्द्रो के प्रत्येक के चार हजार सामानिक देव, चार अग्रमहिषियों सोलह हजार आत्म रक्षक देव, एक हजार योजन का लम्बा चौड़ा विमान, सवा सौ योजन की महेन्द्र ध्वजा तथा दक्षिण दिशा के सोलह व्यंतरेन्द्रों की मंजुस्वरा घण्टा एवं उत्तर दिशा के १६ इन्द्रों की मंजुघोषा घण्टा। इन इन्द्रों के कटक के स्वामी पालदेव है। ये सभी अपने दिव्य यान विमान में आरुढ़ होकर जन्मोत्सव मनाने के लिये मेरु पर्वत पर आये (व्यंतरों की दूसरी आठ निकाय के १६ इन्द्रों के नाम इस प्रकार है:-अप्रज्ञप्ति के इन्द्र सन्निहित और समानक, पंच प्रज्ञप्ति के इन्द्र धाता और विधाता, ऋषिवादियों के इन्द्र-ऋषि और ऋषिपालक, भूतवादितों के इन्द्र ईश्वर और महेश्वर क्रन्दितों के इन्द्र-सुवात्सक और विशालक, महा क्रन्दितों के इन्द्र हास और हासरति, कुष्मांडों के इन्द्र-श्वेत और महा श्वेत और पानकों के इद्र पावक और पावक पति।

ज्योतिषियों के इन्द्र चन्द्र और सूर्य इनमें चन्द्रमा की सुस्वरा घण्टा और सूर्य की सुस्वर-निर्घोष नामक घंटा है।

इस प्रकार वैमानिकों के १०, भवनपतियों के २०, व्यंतरों के ३२ और ज्योतिषियों के २ इस प्रकार ६४ इन्द्र भगवान का जन्मोत्सव मनाने के लिये मेरु पर्वत पर एकत्रित हुए।

तए णं से अच्चुए देविन्दे देवराया महं देवाहिवे आभिओगे देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! महत्थं महग्घं महारिहं विउलं तित्थयराभिसेअं उवट्ठवेह। तए णं ते अभिओगा देवा हट्ठतुट्ठ जाव पडिसुणित्ता उत्तर पुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति २ त्ता वेउव्विअ समुग्घाएणं जाव समोहणित्ता अट्ठ सहस्सं सोवण्णिअकलसाणं एवं रुप्पमयाणं मणिमयाणं सुवण्ण रुप्पमयाणं सुवण्ण मणिमयाणं, रुप्प मणिमयाणं सुवण्ण रुप्पमणिमयाणं अट्ठ सहस्सं भोमिज्जाणं अट्ठ सहस्सं चन्दन कलसाणं एवं भिंगाराणं आयंसाणं थालाणं पाईणं सुपईट्ठाणं चित्ताणं रयणकरंडगाणं वाय करगाणं पुप्फचंगेरीणं एवं जहा सुरिआभस्स सव्वचंगेरीओ सव्व पडलगाइं विसेसिअतराइं भाणि-अव्वाइं, सीहासण छत्त चामरतेल्ल समुग्ग जाव सरीसव समुग्गा तालिअंटा जाव अट्ठ सहस्सं कडुच्छुगाणं विउव्वंति विउव्वित्ता साहाविए विउव्विए अ कलसे जाव कडुच्छुए अ गिण्हित्ता जेणेव खीरोदये समुद्दे तेणेव आगम्म खीरोदगं गिण्हंति २ त्ता जाइं तत्थ

उप्पलाइं पउमाइं जाव सहस्स पत्ताइं ताइं गिरहंति एवं पुक्खरोदाओ जाव भरहेरवयाणं मागहाइ तित्थाणं उदगं मट्टिअं च गिण्हंति २ त्ता पउमद्दहाओ दहोअगं उदगं मट्टिअं च अ एवं सव्ववासेसु सव्वचक्कवट्टी विजएसु वक्खार पव्वएसु अंतरणईसु विभासिज्जा जाव उत्तरकुरुसु जाव सुदसण भद्दसालवणे सव्वतुअरे जाव सिद्धत्थए अ गिरहंति। एवं सोमण सपंडगवणाओ अ सव्वतुअरे जाव सुमणसदामं दद्दरमलय सुगन्धे य गिण्हंति २ त्ता एगओ मिलंति २ त्ता जेणेव सामी तेणेव उवागच्छंति २ त्ता महत्थं जाव तित्थयराभिसेअं उवट्ठवेंतित्ति।

ततपश्चात अच्युत नामक देवेन्द्र देवर जा ने जो ६४ इन्द्रों में लब्धप्रतिष्ठ था उसने आभिओगिक देव को बुलाया और कहा हे देवानुप्रिय ! महान अर्थवाला बहुमूल्य एवं महान् पुरुषों के योग्य ऐसा तीर्थंकर भगवान के जन्माभिषेक के योग्य सामग्री तैयार करो। उसके बाद अच्युतेन्द्र की आज्ञा सुनते ही आभिओगिक देव हृष्ट तुष्ट होते है यावत् ईशान कोन में जाकर वैक्रिय समुद्घात करते हैं। समुद्घात करके वे १००८ सुवर्णो के कलश, १००८ चांदी के कलश, १००८ मणियों के कलश, १००८ सुवर्ण और रौप्य कलश, १००८ सुवर्ण और मणिमय कलश, १००रौप्य मणि ८ के कलश, १००८ सुवर्ण रोप्य और मणि के कलश, १००८ मिट्टी के कलश, १००८ चन्दन के कलश, १००८ लोटे, १००८ थालियां, १००८ पात्रियाँ, १००८ सुप्रतिष्ठक, १००८ चित्रक, १००८ रत्न करंडक, १००८ वातकरक एवं पुष्पचंगेरियों को यावत् पुष्पों की सब चंगरियों को आभरण चगरियों को सब पटलको तथा सिंहासन, छत्र, चमर, तेल हिंगुलक और अंजन आदि के बड़े बड़े द्रव्ये एवं धूपदानियां आदि एक हजार आठ की संख्या में वैक्रिय शक्ति से बनाये।

ये सब स्वाभाविक और वैक्रयिक सामग्री लेकर वे सब आभियोगिक देव तिर्छेलोक की ओर जाने के लिये वेगवती गति की उड़ान से चल पड़े। असंख्य योजन लांघकर क्षीर समुद्र के पास आये। क्षीरोदक जल और प्रशस्त उत्पल आदि कमल लेकर पुष्करोदक समुद्र पर आये। वहां से निर्मल पानी और खिले हुए फूल लेकर वे आभियोगिक देव भरत और ऐरावत के मागध-वरदान और प्रभास जलपदों की ओर उड़े। वहां का पानी और मिट्टी लेकर गंगा, सिन्धु, रक्ता, रक्तवती नदियों के पास उतरे। वहां का शुद्ध पानी और मिट्टी लेकर चुल्लहिमवंत आदि पर्वतों की चोटियों पर जा पड़े। वहां से भी पानी फल और नाना औषधि-सरसों चुने। वहां से वे पद्मपुण्डरीक

द्रह की ओर गये । वहांका अच्छेसे अच्छा पानी भरकर हिमवंत और ऐरावत, रोहिता रोहितांशा, सुवर्ण कूला- रूप्यकूला नदियों की ओर बढ़े। फिर सद्दाव,ती वियडावाती और वृत वैताढ्य की ओर गये वहां से महाहिमवंत रुक्मि आदि पर्वतों की ओर मुड़े और वहां से महापद्मद्रह महापुण्डरीकद्रह की ओर जाकर आगे हरिवर्ष और रम्यक क्षेत्र की हरिकांता और नारीकान्ता नदियों की ओर गये । वहां से गन्धवती मालवंत और वृत्तवैताढय तथा निषध-नीलवत तिगिच्छकेसरी द्रह एवं महाविदेह की सीता और सीतोदा नदियों की तरफ चले गये । फिर वहांसे चक्रवर्ती की सब विजयों से होकर इसी रीति से उन उन स्थलों का पानी-मिट्टी-फूल-पान आदि लेकर अन्त में वे मन्दर पर्वत पर आ पहुंचे । मन्दर पर्वत के भद्र शालवन नन्दनवन और सोमनस वन से मांगलिक गोशीर्ष-चन्दन आदि सामग्री लेकर वे बड़े वेग से वापस मुड़े और त्वरा की चाल से वापस जहां तीर्थंकर भगवान का जन्माभिषेक होने वाला था। वहां आये और जन्माभिषेक के लिये आये अच्युतेन्द्रादि के समक्ष सब सामग्री जो कि उन्होंने विविध स्थलों से ली थी, वह सब की सब प्रस्तुत कर दी ।

तए णं से अच्चुए देविन्दे दसहिं सामाणिअसाहस्सीहिं तायत्तीसाए तायत्तीसएहिं चउहिं लोगपालेहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्ताहिं अणिआहिवईहिं चत्तालीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे तेहिं साभाविएहिं विउव्विएहिं अ वरकमलपइट्ठाणेहिं सुरभिवरवारि पडिपुण्णेहिं आविद्धकण्ठ गुणेहिं पउमुप्पलविहाणेहिं करयलसुकुमारपरिग्गहिएहिं अट्ठ सहस्सेणं सोवण्णिआणं कलसाणं जाव अट्ठसहस्सेणं भोमेज्जाणं जाव सव्वोदएहिं सव्वमट्टिअ हिं सव्वतुअरेहिं जाव सव्वोसहिसिद्धत्थएहिं सव्विड्ढीए जाव रवेणं महया २ तित्थयराभिसेएणं अभिसिंचंति, तए णं सामिस्स महया २ अभिसेअंसि वट्टमाणंसि इंदाईआ देवा छत्तचामरधूवकडुच्छुअपुप्फगंध जाव हत्थ गया हट्ठतुट्ठ जाव वज्जसूलपाणी पुरओ चिट्ठंति पंजलिउडा इति। एवं विजयाणुसारेणं जाव अप्पेगइआ देवा आसिअसंमज्जि-ओवलित्तसित्तसुइसम्मट्ठरत्थंतरावणवीहिअं करेंति जाव गन्धवट्टिभूअंति अप्पेगइआ हिरण्ण-वासं वासिंति एवं सुवण्णरयणवइरआभरणपत्तपुप्फ फल बीअ मल्ल गन्धवण्णजाव चुण्ण-वासं वासंति अप्पेगइआ हिरण्णविहिं भाइंति एवं जाव चुण्णविधिं भाइंति । अप्पेगइआ चउव्विहं वज्जं वाएंति तं जहा-ततं १ विततं २ घणं ३ झुसिरं ४ अप्पेगइआ चउव्विहं गेअं गायंति, तं जहा-१ उक्खित्तं २ पायत्तं ३ मन्दायईअं ४ रोइआवसाणं अप्पेगइआ

चउव्विहं णट्टं णच्चन्ति तं जहा-अंचिअं १ दुअं २ आरभडं ३ भसोलं ४ अप्पेगइआ चउव्विहं अभिणयं अभिणेंति, तं जहां-दिट्ठंतिअं पाडिस्सुइअं सामण्णोवणिवाइअं लागमज्झावसा णिअं, अप्पेगइआ बत्तीसइविहं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेन्ति। अप्पेगइआ उप्पयनिवयं निवयउप्पयं संकुचिअपसारिअं जाव भंत संभतणामं दिव्वं नट्टविहिं उवदंसन्तीति अप्पेगइआ तंडवेन्ति अप्पेगइआ लासेंति अप्पेगइआ पीणेंति एवं बुक्कारेंति अप्फोडेंति वग्गंति सीहणायं णदंति अप्पेगइआ सव्वाइं करेंति अप्पेगइआ हयहेसियं एवं हत्थिगुलुगुलाइयं रहघणघणाइअं अप्पेगइआ तिण्णिवि अप्पेगइआ उच्छलंते अप्पेगइआ पच्छोलंति अप्पेगइआ तिवइं छिंदंति पायदद्दरयं करेंति भूमिचवेडे दलयंति। अप्पेगइआ महया सद्देणं रावेंति एवं संजोगाविभासिअव्वा अप्पेगइआ हक्कारेंति; एवं पुक्कारेंति वक्कारेंति ओवयंति उप्पयन्ति परिवयंति जलन्ति तवन्ति पयवन्ति गज्जंति विज्जुआयन्ति वासिन्ति अप्पेगइआ देवुक्कलियं करेन्ति एवं देवकहकहगं करेन्ति अप्पेगइआ दुहदुहगं करेंति अप्पेगइआ विकिअ भूयाइं रूवाइं विउव्वित्ता पणच्चन्ति एवमाइ विभासेज्जा जहा विजयस्स जाव सव्वओ समन्ता आहावेन्ति परिधावेन्तित्ति।

जन्माभिषेक की सब सामग्री आ पहुंचने पर अच्युतेन्द्र अपने दस हजार सामानिक तेतीस त्रायस्त्रिंशक, चार लोक पाल, तीन परिषद् सात अनीक सात अनीकाधिपति, चालीस हजार आत्म-रक्षक देव और दूसरे भी बहुत से देव देवियों के साथ उन्होंने स्वाभाविक तथा वैक्रिय शक्ति से बनाये हुए श्रेष्ठ कमल जैसे सुगन्धित जल से परिपूर्ण चन्दन से चर्चित, कण्ठ पर रस्सी वाले, पद्मोत्पल के ढक्कन वाले तथा सुकुमार हाथों में ग्रहण किये हुए १००८ आठ सुवर्ण के कलशों इसी प्रकार १००८ चांदी के कलशों, एक हजार आठ स्वर्ण रजत के कलशों १००८ मणिमय कलशों १००८ स्वर्ण मणिमय कलशों १००८ रजतमणि के कलशों और १००८ मिट्टी के कलशों इस प्रकार पांच लाख सोलह हजार छियानवे कलशों में सब प्रकार का जल भरकर तथा सब प्रकार की मृत्तिका से, सब प्रकार के पुष्पों से सब प्रकार के गन्धों से, सब प्रकार की मालाओं से, सब प्रकार की औषधियों से तथा सरसों से उन्हें परिपूर्ण करके सर्व समृद्धि द्युति तथा सर्व देव परिवार के साथ दुंदुभि आदि के निर्घोष की प्रतिध्वनि के शब्दों के साथ तुमुल बाजों की ध्वनि पूर्वक भगवान का विशाल रूप से जन्माभिषेक किया।

जिस समय भगवान का अभिषेक हो रहा था उस समय इन्द्रादि देव हाथमें छत्रचँवर, धूपदानी पत्र पुष्प सुगन्धि द्रव्य लिये हुए अंजलिबद्ध हो खडे हुए थे। शक्रेन्द्र के हाथ में वज्र और ईशानेन्द्र के हाथ में त्रिशूल था वे भी नत मस्तक हो भगवान के सन्मुख खडे थे। जब अभिषेक हो रहा था तब कई देवों ने सुगन्धित पानी का छिडकाव किया। कइओं ने वहाँ की धूल झाड कर बाहर निकाल फेंकी। तथा लीप पोत कर साफ किया। सुगन्धित पानी को छीटे दिये चन्दन के छापे लगाये। द्वार द्वार पर चन्दन के पूर्ण कलश और तोरण टांगे। लम्बी लम्बी सुगन्धित फूल मालाएँ लटकाई सुवासित फूल बिखेरे। सुगन्धमय धूप खेया। सोना-चांदी-वज्र-रत्न-मणि-फूल-फल-चूर्ण-गन्ध-आभरण और वस्त्र आदि की कई देवों ने वर्षा की। कई देव हिरण्यादि की विधि से अपने शरीर को सुशोभित करते हैं यावत् चूर्ण विधि से सुशोभित करते हैं। यावत् पर-स्पर देते हैं। कई देवता तत वितत घन और शुषिर इस प्रकार चार प्रकार के वाद्य बजाते हैं। कई देव उत्क्षिप्त, पादात्त मंदायक एवं रोचितावसान यों चार प्रकार के गीत गाते हैं। कई देव अंचित नृत आरभड और भसोल यों चार प्रकार के नृत्य करते हैं। कई देव दृष्टान्तिक, प्राति श्रुतिक, सामान्यतोविनिपातिक और लोकमध्यावसानिक इस प्रकार चार तरह का अभिनय करते हैं कई देव बत्तीस प्रकार के दिव्य नाटक बताते हैं। कई देव ऊँचे उछल कर नीचे गिरते हैं। नीचे गिरकर ऊँचे उछलते। अंगों को संकुचित करते। विस्तृत करते। यावत् भ्रान्त सभ्रान्त नामक दिव्य नाटक का प्रदर्शन करते। कई देव ताण्डव नृत्य करते तथा लासिक नामका अभिनय शून्य नाटक बताते थे। हर्षातिरेक में आकर कोई देव पुचकारते थे, कोई फूले नहीं समाते थे। कई तो मारे खुशी के नाचने लग पडते थे। ताण्डव करते थे हिन हिनाने लगते थे। भुजाओं को फटकारभे हुंकार भरते, हाथी की तरह चिघाडते उछलते और सिंहनाद करते ऊँचाइ पर जा कर उडने लगते। नीचे की ओर झपटते। पैरों को पछाडते। गर्जना करते, चमकते बरसने लग पडते, अपने अपने नाम कह बताते, तीव्र तेज में तपते कुछ तो मुँह से ही बबकारते, कई तो अपने हाथ में धूपदानी कलश और कमल लेकर इधर उधर दौडते। इस भाँति वे सब देव भगवान् के जन्माभिषेक की बहुत ही खुशी मनाते हैं।

तए णं से अच्चुइंदे सपरिवारे सामि तेणं महया महया अभिसेएणं अभिसिंचइ २ त्ता करयलपरिग्गहियं जाव मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ २ त्ता ताहिं इट्ठाहिं जाव

जयजयसद्दं पउंजंति पउंजित्ता जाव पम्हल सुकुमालाए सुरभिए गंधकासाईए गायाइं लूहेइ २ त्ता एवं जाव कप्परुक्खगं पिव अलंकियविभूसियं करेइ २ त्ता जाव नट्टविहिं उवदंसेइ २ त्ता अच्छेहिं सण्हेहिं रययामएहिं अच्छरसा तण्डुलेहिं भगवओ सामिस्स पुरओ अट्ठट्ठ मंगलगे आलिहइ, तं जहा १ दप्पण २ भद्दासण ३ वद्धमाण ४ वरकलस ५ मच्छ ६ सिरिवच्छो ७ सोत्थिअ ८ णंदा-वत्ता लिहिआ अट्ठट्ठ मंगलगा ॥ लिहिऊण करेइ उवयारं, किंते ? पाडलमल्लिअचंपगासोगपुंनाग चूअमंजरिणवमालिअ वउलतिलयकणवीरकुंद कुज्जग कोरंट पत्त दमणग वरसुरभिग-न्धगान्धिअस्स कयग्गहगहियकरयलपब्भट्ठ विप्पमुक्कस्स दसद्धवण्णस्स कुसुमणिअरस्स तत्थ-चित्तं जण्णुस्सेहप्पमाणमित्तं ओहिनिकरं करेत्ता चन्दप्पभ रयणवइर वेरुलियविमलदण्डं कंचणमणिरयणभत्तिचित्तंकालागुरुपवरकुंदुरुक्क तुरुक्क धूवगंधुत्तमाणुविद्धं च धूमवट्टिं विणिम्मुअंतं वेरुलियमयं कडुच्छुअं पग्गहित्तु पयएणं धूवं दाऊण जिणवरिंदस्स सत्तट्ठ-पयाइं ओसरित्ता दसंगुलियं अंजलिं करिअ मत्थयम्मि पयओ अट्ठसयविसुद्धगन्थजुत्तेहिं महावित्तेहिं अपुणरुत्तेहिं अत्थजुत्तेहिं संथुणइ २ त्ता वामं जाणुं अंचेइ २ त्ता जाव करयला-परिग्गहिअं मत्थए अंजलिकट्टु एवं वयासी—

णमोऽत्थु ते सिद्धबुद्धणीरय समणसामाहिअ समत्त समजोगिसल्लगत्तणाणिब्भयणी राग-दोस - निम्ममणिस्संगणीसल्लमाणमूरणगुणरयणसीलसागरमणंतमप्पमेय भविअ धम्मवर-चाउरंत चक्कवट्टी णमोऽत्थु ते अरहओत्तिकट्टु एवं वंदइ णमंसइ २ त्ता णच्चासण्णे णाइदूरे-सुस्सूसमाणे जाव पज्जुवासइ। एवं जहा अच्चुअस्स तहा जाव ईसाणस्स भाणियव्वं। एवं भवणवइ वाणमंतर जोइसिआ य सूरपज्जवसाणा सएणं परिवारेणं पत्तेअं २ अभिसिंचंति। तएणं से ईसाणे देविंदे देवराया पंच ईसाणे विउव्वइ २ त्ता एगे ईसाणे भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे एगे ईसाणे पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ दुवे ईसाणा उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेंति एगे ईसाणे पुरओ सूलपाणी चिट्ठइ, तए णं से सक्के देविंदे देवराया आभिओगे देवे सद्दावेइ २ त्ता एसो वि तह चेव आभिसेआणत्तिं देइ तेऽवि तह चेव उवणेंति तए णं से सक्के देविन्दे देवराया भगवओ तित्थयरस्स चउद्दिसिं चत्तारि धवलवसभे विउव्वेइ सेए संखदलविमल निम्मल दधिघण गोखीरफेणरययणिगरप्पगासे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे। तएणं तेसिं चउण्हं धवलवसभाणं अट्ठहिं सिंगेहिंतो अट्ठतोअधाराओ णिग्गच्छंति। तए णं ताओ अट्ठ

तोअधाराओ उद्धं वेहासं उप्पयंति २ त्ता एगओ मिलायंति २ त्ता भगवओ तित्थयरस्स मुद्धाणंसि निवयंति। तए णं से सक्के देविन्दे देवराया चउरासीईए सामाणिअ साहस्सीहिं एअस्सवि तहेव अभिसेओ भाणियव्वो जाव णमोत्थु ते अरहओत्ति कट्टु वंदइ णमंसइ जाव पज्जुवासइ।

ततपश्चात वह अच्युतेन्द्र अपने परिवार के साथ भगवान का बड़ा भारी अभिषेक करते हैं और अभिषेक करके दोनों हाथ जोड़कर यावत् दोनों करतलों से ग्रहण की हुई और मस्तक के चारों ओर घुमती हुई अंजलि को मस्तक पर धारण कर और जय विजय के शब्द से बधाकर इष्टकारी कांतकारी यावत् शब्द बोलते हैं बोलकर वे पक्षी के पख के समान अत्यन्त कोमल सुगन्धित और कषाय रंग से रंगे हुए वस्त्र से उनके गात्र को पोंछते है और उन्हें कल्पवृक्ष तरह अलंकारों से अलंकृत करते हें। उसके बाद वे नृत्य विधि बताते हैं। फिर स्वच्छ श्रेष्ठ रत्नमय तंदुल से भगवान के आगे आठ आठ मंगल का आलेखन करते हैं। जिनके नाम दर्पण, भद्रासन, वर्धमान, श्रेष्ठ कलश, मत्स्य, श्रीवत्स, स्वस्तिक और नदावर्त। इन आठ मंगलों का आलेखन कर फिर पूजन करते हैं। उसके बाद पाटल के पुष्प, मालती के पुष्प, चंपक के पुष्प, अशोक पुष्प, पुन्नाग पुष्प, आम्र मंजरी, मालती पुष्प, बकुल पुष्प, तिलक, कणवीर कुंद पुष्प, कोरंट वृक्ष के पत्र ये सब सुगन्धित हाथ से नीचे न गिरे हुए अभग्न पांच वर्णो के पुष्पों को हाथ में लेकर उनका घुटनों तक ढेर कर देते है। फिर चन्द्रप्रभ, वज्र वैडूर्य कंचनमय विमल दण्ड वाले मणिरत्न की धूपदानी में वे कालागुरु श्रेष्ठ कुदरुक्क, तुरुक्क आदि धूप उसमें जलाते है। उस रत्नमय धूपदानी को भगवान के पास ले जाते है और धूप खेते है। धूप देकर सात आठ कदम पीछ सरकते है फिर दसों ऊंगलियों से मस्तक पर अंजली करके अर्थयुक्त पुनरुक्त दोष से रहित १०८ विशुद्ध ग्रन्थों से श्लोकों से स्तुति करते है। फिर बाया घुटना नीचे भूमि पर रखकर यावत् दोनों हाथ जोड़कर मस्तक से अंजली बद्ध हो ऐसा कहते है "नमस्कार हो सिद्ध, बुद्ध, कर्मरज रहित, श्रमण, तपस्वी, समाधिवंत सम्यक्कृत्य वाले, समयोगी, शल्य के विनाशक, निर्भय, रागद्वेष रहित, ममत्व रहित, संगरहित, कर्ममल रहित, शल्य विदारक, मानमर्दक, गुणरत्नाकर, शील के समुद्र, अनत ज्ञानमय, अप्रमेय, अनन्तगुणी, भव्य, धर्मवर चातुरंत चक्रवर्ती ऐसे आप अर्हत् भगवान को नमस्कार हो।" इस प्रकार वन्दना नमस्कार कर वे न अति दूर और न अति नजदीक विनम्र भाव से सुश्रूषा करते हुए उनकी पर्युपासना करते हैं। जिस प्रकार अच्युतेन्द्र ने भगवान का

जन्माभिषेक कर सेवा सुश्रूषा की उसी प्रकार ईशान आदि इन्द्रों ने भवनपतियों ने, वाणव्यंतरों ने ज्योतिषी देवों के इन्द्र सूर्य आदि ने भी अपने अपने परिवार के देवों के साथ भगवान का जन्माभिषेक किया। वन्दना की और पर्युपासना की।

उसके बाद ईशानेन्द्र ने पांच ईशान रूप बनाये। उनमें एक ईशानेन्द्र भगवान को करतल में ग्रहण कर पूर्वाभिमुख हो सिंहासन पर बैठते है। दूसरे ईशानेन्द्र भगवान के पीछे छत्र को धारण करते हैं। दो ईशानेन्द्र भगवान के दाहिने और बांये चामर बीजते हैं। पांचवे रूपधारी ईशानेन्द्र हाथ में त्रिशूल धारण करके खड़े रहते है। उसके बाद शक्र देवेन्द्र देवराज अपने आभियोगिक देव को बुलाते हैं और पूर्ववत अभिषेक की सामग्री लाने की आज्ञा देते हैं। आभियोगिक देव अपने स्वामी की आज्ञानुसार अभिषेक की सामग्री ले आते हैं। सामग्री के आ जाने के बाद शक्रेन्द्र शंख के समान निर्मल दधि गोक्षीर समुद्र फेन, एवं चांदी के समान अत्यन्त शुभ्र चित्त को आकर्षित करने वाले अत्यन्त सुन्दर चार वृषभ की विकुर्वणा करते है। वे चारों वृषभ चारों दिशा में रहकर अपने आठ शृंगों द्वारा भगवान पर पानी की धारा बहाते है। उक्त आठों ही धारा एक होकर भगवान के मस्तक पर गिरती है। उसके बाद शक्रेन्द्र ८४ हजार सामानिक देवों के साथ भगवान का अभिषेक करते है। यावत् भगवान को वन्दना कर उनकी वे पर्युपासना करते हैं।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया पंचसक्के विउव्वइ २ त्ता एगे सक्के भयवं तित्थयरं करयलपुडेणं गिण्हइ। एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ दुवे सक्का उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेंति एगे सक्के वज्जपाणी पुरओ पगड्ढइ, तए णं से सक्के चउरासीईए सामाणिअ साहस्सीहिं जाव अण्णेहि अ भवणवइ वाणमंतर जोइसवेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ सद्धिं संपरिवुडे सव्विद्धिए जाव नाइअरवेणं ताए उक्किट्ठाए जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणनयरे जेणेव जम्मणभवणे जेणेव तित्थयरमाया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता भगवं तित्थयरं माऊए पासे ठवेइ २ त्ता तित्थयरपडिरूवगं पडिसाहरइ २ त्ता ओसोवणिं पडिसाहरइ २ त्ता एगं महं खोमजुअलं कुंडलजुअलं च भगवओ तित्थयरस्स उस्सीसगमूले ठवेइ २ त्ता एगं महं सिरिदामगंडं तवणिज्ज लंबूसगं सुवण्णपयरगमंडिअं णाणामणिरयण विविहहारद्धहार उवसोहिअ समुदयं भगवओ तित्थयरस्स उल्लोअंसि निक्खिवइ तण्णं भगवं तित्थयरे अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणे

२ सुहंसुहेणं अभिरममाणे चिट्ठइ, तए णं सक्के देविंदे देवराया वेसमणं देवं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! बत्तीसं हिरण्ण कोडीओ बत्तीसं णंदाइं बत्तीसं भद्दाइं सुभगे सुभगरूवजुव्वणलावण्णे अ भगवओ तित्थयरस्स जम्मण भवणंसि साहराहि २ त्ता एअ माणत्तिअं पच्चप्पिणाहि । तए णं से वेसमणे देवे सक्केणं जाव विणएणं वयणं पडिसुणेई २ त्ता जंभए देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासि खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! बत्तीसं हिरण्ण कोडीओ जाव भगवओ तित्थयरस्स जम्मण भवणंसि साहरह साहरित्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह तए णं ते जंभगा देवा वेसमणेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव खिप्पामेव बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जाव च भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहरंति २ त्ता जेणेव वेसमणे देवे तेणेव जाव पच्चप्पिणंति तए णं से वेसमणे देवे जेणेव सक्के देविंदे देवराया जाव पच्चप्पिणई । तए णं से सक्के देविंदे देवराया ३ अभिओगे देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरंसि सिंघाडग जाव महापहपहेसु महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वदह हंदि सुणंतु भवंतो बहवे भवणवइवाणमंतर जोइसवेमाणिया देवा य देवीओ अ जे णं देवाणुप्पिआ ! तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए वा असुभं मणं पधारेइ तस्स णं अज्जगमंजरिआ इव सयधा मुद्धाणं फुट्टउ त्तिकट्टु घोसणं घोसेह २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणहत्ति । तए णं ते आभिओगा देवा जाव एवं देवोत्ति आणाए पडिसुणंति २ त्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतिआओ पडिणिक्खमंति २ खिप्पामेव भगवओ तित्थगरस्स जम्मणणगरंसि सिंघाडग जाव एवं वयासी हंदि सुणंतु भवंतो बहवे भवणवइ जाव जे णं देवाणुप्पिआ । तित्थयरस्स जाव फुट्टिहीतित्ति कट्टु घोसणगं घोसंति २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणंति, तए णं ते बहवे भवणवइवाणमंतर जोइस वेमाणिआ देवा भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करेंति २ त्ता जेणेव णंदीसरदीवे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता अट्ठाहियाओ महामहिमाओ करेंति २ जामेव दिसिं पाउब्भूआ तामेव दिसिं पडिगया ।

उसके बाद शक्र देवेन्द्र देवराज ने अपने पांच रूपों की विकुर्वणा की । उन पांच शक्र के रूपों में से एक शक्र ने भगवान को अपने करसंपुट में लिया । दूसरे शक्र ने पीछे से छत्र धारण किया । दो शक्रों ने दाहिनी ओर बाई ओर चामर बींजना आरम्भ किया । एक-पांचवां पुरन्दर इन्द्र हाथ में वज्र लेकर आगे आगे चले ।

तब देवेन्द्र देवराज शक्र चौरासी हजार सामानिक देवों के साथ तेतीस त्रायस्त्रिंश देवों के साथ चार लोकपालों के साथ आठ सपरिवार अग्रमहिषियों के साथ, तीनों परिषदों सात अनीकों के साथ, सात अनीकाधिपतियों के साथ चौरासी हजार आत्म रक्षकों के साथ (अर्थात् तीन लाख छत्तीस हजार आत्म रक्षकों के साथ) और इनके अतिरिक्त भवनपति व्यन्तर ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों तथा देवियों के साथ, सर्व ऋद्धि सहित सर्वद्युति सहित, सर्व बल सहित, सर्व समुदय सहित सर्वादर सहित, सर्व विभूति सहित सर्व संभ्रम सहित, सर्व समारोह सहित, पुष्प सहित सभी प्रकार के गन्ध माल्य और अलंकार की शोभा युक्त होकर तथा दिव्य वाद्यों की ध्वनि से, महती ऋद्धि से महान मानसिक उल्लास से और भेरी आदि बाजों के महाध्वनि से युक्त होकर उत्कृष्ट त्वरित उत्कण्ठा के कारण शीघ्रतावाली अद्भुत देवगति से जहां भगवान तीर्थंकर का जन्म नगर था और जिस जगह जन्म गृह था तथा जहां तीर्थंकर ऋषभदेव की माता थी, उसी स्थान पर शक्र आये। आकर भगवान तीर्थंकर को मरुदेवी माता की बगल में स्थापित कर दिया स्थापित करने के बाद मरुदेवी माता की बगल में जो भगवान ऋषभ की कृत्रिम आकृति विशेष थी उसका साहरण करते हैं। साहरण करके माता मरुदेवी की अवस्वापिनी निद्रा को दूर करते हैं। और एक बड़े क्षौम युगल एवं कुण्डल युगल को तीर्थंकर के तकिये के नीचे रखते हैं। फिर एक बड़ा रक्त सुवर्णमय गोलाकार सुवर्ण के पतरों से युक्त अनेक मणिरत्नमय तथा विविध प्रकार के हार अर्द्धहार युक्त सुशोभित श्री दामकाण्ड नामक (गेंद) बड़ा भगवान की नजर में आये वैसा रखा। उसके बाद वे भगवान को अनिमेष दृष्टि से देखते हुए आनन्द का अनुभव करने लगे।

सुवर्ण यावत् सौभाग्य रूप यौवन लावण्य लाकर भगवान के जन्म भवन में रखा। रखकर वे वैश्रमण देव के पास आये और उनकी आज्ञा को वापस लौटा दी।

इसके बाद शक्र देवेन्द्र देवराज अपने आभियोगिक देव को बुलाकर कहते हैं। हे देवानुप्रियों ! तुम त्रिपथ, द्विपथ यावत् महापथ में जाकर बड़े-बड़े शब्दों में यह घोषणा करो कि हे भवन पति वाण मंतर ज्योतिषी व वैमानिक देवों और देवियों सुनो ! जो कोई अर्हत् भगवान और उनकी मां की अशुभ चिन्तना करेगा उनकी बुराई सोचेगा उसके सिर के अर्जक मंजरी की तरह सात टुकड़े हो जायेंगें। अर्थात् अर्जक वृक्ष की मंजरी के पक कर फूटने पर जिस तरह सात भाग हो जाते हैं। उसी तरह भगवान और उनकी जननी का बुरा चाहने वाले के मस्तक के सात भाग हो जायेंगे। शक्रेन्द्र की आज्ञानुसार आभियोगिक देवों ने चारों निकाय के देवों को संबोधित कर डोंडी पीट दी--सुरपति की आज्ञा सबको ऊंचे स्वर से सुना दी। और यह आज्ञा देवेन्द्र को वापिस लौटा दी।

तए णं से बहवे भवणवई जाव वेमाणिया देवा भगवं तित्थयरं तित्थयरजम्माभिसेगेणं अभिसिंचित्ता जेणेव नंदीसरवर दीवे तेणेव उवागच्छंति। तए णं से सक्के देविंदे पुरत्थिमिल्ले अंजणगपव्वते अट्ठाहियं महामहिमं करेति। तए णं सक्कस्स चत्तारि लोकपाला चउसु दधिमुहग पव्वतेसु अट्ठाहियाओ महामहिमाओ करिंति। एवं ईसाणे देविंदे उत्तरिल्ले अंजणग पव्वते, तस्स लोगपाला चउसु दहिमुहपव्वतेसु, चमरो य दाहिणिल्ले अंजणगपव्वते, तस्स लोगपाला चउसु दहिमुहपव्वतेसु। बली पच्चत्थिमिल्ले अंजणग पव्वए, तस्स लोगपाला चउसु दहिमुह पव्वतेसु तए णं बहवे भवणवई जाव महिमाओ करेत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

उसके बाद बहुत से भवणपति वाणमंतर ज्योतिषी व वैमानिक देव भगवान तीर्थंकर का जन्माभिषेक करके जहां नन्दीश्वर द्वीप था वहां आये और अष्टान्हिक महा महिमा उत्सव करने लगे। उनमें शक्रेन्द्र देवराज पूर्वदिशा स्थित अंजन पर्वत पर जाकर अठाई महोत्सव करने लगा। उसके चार लोकपाल चारों दिशा के दधिमुख पर्वत पर जाकर अष्टान्हिका महोत्सव करने लगे। इस प्रकार ईशानेन्द्र उत्तर दिशा स्थित अंजन पर्वत पर एव उनके चार लोकपाल चारों दधिमुख

पर्वत पर जाकर अठाई महोत्स व करने लगे चमरेन्द्र दक्षिण दिशा के अंजन पर्वत पर एवं उनके चार लोकपाल चारों दधिमुख पर्वत पर तथा बलि इन्द्र पश्चिम दिशा के अंजन पर्वत पर और उनके चारों लोकपाल दधिमुख पर्वत पर जाकर अठाई महोत्सव करने लगे। इस प्रकार भवन-पति आदि चारों निकाय के देवों ने भगवान का जन्मोत्सव मनाया और जिस दिशा से वे आये थे उसी दिशा से होकर वे अपने अपने स्थान पर चले गये। प्रातःकाल होने पर भगवती मरुदेवी जागृत हुई प्रभु का जन्म और देवागमन आदि बातें उनके लिए स्वप्नवत् थी उन्होंने नाभिराजा को सारा वृतान्त कहा। वे भी आश्चर्य चकित हुए।

उरूसु उसभलंछण उसभोत्ति सुमिणंमि तेणं कारणेण उसभोत्ति नामं कयं।

—आव० चू० पृ० १५१

भगवान की जांघ पर ऋषभ का चिन्ह था तथा उनकी माता ने प्रथम ऋषभ का स्वप्न देखा था इसलिये माता पिता ने वालक का ऋषभ ऐसा नामकरण किया।

भगवान् तीर्थकर का असंस्कृत आहार होता है। कहा भी है—

सव्वे तित्थगरा बाल भावे जदा तण्हातिया छुहातिया वा भवंति तदा अप्पणो अंगुलियं वयणे पक्खिवंति, तत्थ देवा सव्वभक्खे परिणामयंति। एस बाल भावे आहारो सव्वेसि ण ते थणं धावंति, पच्छा सिद्धमेव भुंजंति महतीभूता। उसभस्स पुण सव्वकालं देवोवणीयाइं उत्तरकुरुफलाइं जाव पव्वतितो।

सभी तीर्थंकर जब बाल्यावस्था में क्षुधित और तृषित होते हैं तब वे अपनी अंगुलि को मुख में डाल कर चूसते हैं। कारण देवगण उनकी अंगुलि में सभी पदार्थों का स्वाद भरते हैं। अर्हंत् माता के स्तनों का दूध नहीं पीते वे जब बड़े होते हैं तब सिद्ध (पका हुआ) आहार करने लगते हैं। तीर्थंकरों का बाल्यकालीन यही आहार होता है।

देवता भगवान ऋषभदेव के लिये उत्तरकुरु से फल लाकर देते थे भगवान जब तक प्रव्र-जित नहीं हुए तब तक उन्हीं फलों का आहार करते रहे।

—आव चू. पृ. १५२

भगवान ऋषभदेव के साथ मरुदेवी माता ने एक कन्यारत्न को भी जन्म दिया था उस कन्या का नाम सुमंगला रखा। दोनों बालक माता पिता के संरक्षण में बढ़ने लगे।

इक्ष्वाकु वंश की स्थापना

ताहे देसूणं वासं जायस्स तित्थगरस्स ताहे सक्कस्स इच्छा जाया—जीतमेतं तीतपडुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं पढम तित्थगराणं वंसट्ठवणं करेत्तए त्तिकट्टु, जाव आगतो पच्छा किह रिक्कहत्थओ पविसामित्ति, इतो य णाभिकुलगरो उसभसामिणो अंकवरगएणं एवं विहरति, सक्को य महप्पमाणाओ इक्खुलट्ठीओ गहाय उवगतो णयावेइ। भगवया लट्ठीसु दिट्ठी पाडिता, ताहे सक्केणं भणियं किं भगवं! इक्खु अकु? अकु भक्खणे। ताहे सामिणा पसत्थो लक्खणधरो अलंकितविभूसितो दाहिणा हत्थो पसारितो। अतीव तंमि हरिसो जातो भगवंतस्स, तएणं सक्कस्स देविन्दस्स अयमेयारूवे अब्भत्थिते—जम्हाणं तित्थगरो इक्खु अभिलसति तम्हा इक्खागु वंसो भवतु। एवं सक्को वंसं ठवेऊण गतो, अन्नेऽवि तं कालं खत्तिया इक्खुं भुंजंति तेण इक्खागवंसा जाता इति "आसीत इक्खुभोदी इक्खागा तेणं खत्तिया होंति" त्ति भणिही, पुव्वगा य भगवतो इक्खुरसं पिविताइवा तेण गोत्तं कासवंति।

—आव चू. पृ. १५२

जब भगवान् कुछ कम एक वर्ष के हुए तब शक्रेन्द्र के मन में ऐसा विचार आया—कि तीर्थंकरों के वंश की स्थापना करना यह अतीत अनागत एवं वर्तमान शक्र देवेन्द्र का जीताचार है। ऐसा विचार करके वह पूर्ववत् पालक विमान में बैठ कर भगवान के पास आया। खाली हाथ स्वामी के घर कैसे प्रवेश करूँ! यह सोच वह एक बड़ा ईख का सांठा अपने साथ लेता आया और नाभि कुलकर की गोद में बैठ हुए भगवान के पास आया। भगवान ने शक्र के हाथ में रहे हुए गन्ने पर अपनी दृष्टि डाली। भगवान को ईख की तरफ देखता हुआ देख शक्र बोला—क्या भगवान् ईख खावेंगे? प्रशस्त लक्षण को धारण करने वाले एवं अलंकारों से विभूषित भगवान ने अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ा दिया। भगवान के हाथ बढ़ाने से इन्द्र को अत्यन्त हर्ष हुआ। उस शक्र देवेन्द्र के मन में इस प्रकार का विचार आया—भगवान ईक्षु की अभिलाषा करते हैं इसलिये भगवान का ईक्ष्वाकु वंश हो। इस प्रकार वंश की स्थापना करके इन्द्र अपने स्थान को चला आया। उस

समय अन्य भी क्षत्रियों ने ईख को खाया अतः उनका भी वंश ईक्ष्वाकु कहलाया–कहा भी है–"ईख का भक्षण करने वाले क्षत्रिय ईक्ष्वाकु कहलाये" भगवान के पूर्वज ईक्षु रस पीते थे इसलिए उनके गोत्र का नाम काश्यप पड़ा।

भगवान का विवाह

इतो य भगवं सुमंगलाए भगिणीए सद्धिं सुहंसुहेण विहरति संवड्ढति य, तेणं कालेणं तेणं समएणं एगस्स मिहुणस्स मिथुणगं जायमेत्तगं, ताणि तं मिथुणगं तलरुक्खहेट्ठा ठवेऊण अभिरमंति कयलीघरगाईसु, ततो य तलरूक्खाओ तलफलं पक्कं समाणं वातेण आहतं तस्स दारगस्स उवरि पडितं तेण सो अकाले चेव जीवितातो ववरोवितो, ताहे तं मिथुणगं तं एक्कलियं दारियं कंचि कालं संवड्ढेऊण पयणुपेम्मरागेणं तं उज्झित्ता गताणि, सा य अतीव उक्किट्ठसरीरा देवकण्णाविव तेसु णं वणंतरेसु जह वणदेवता तहा विहरति। तं च एक्कलियं दट्ठुं केति पुरिसा नाभिस्स साहेंति। ताहे नाभी तं दारियं गहाय भणति उसभस्स भारिया भविस्सतित्ति। सयमेव संगोवेमाणो विहरति। ताहे सामी ताहिं दोहिं दारियाहिं समं वड्ढति।

सो य पुण भगवं पुव्वजातिस्सरो तिणाणोवगतो उम्मुक्कबालभावो भिन्न जोव्वणो जातो।

तए णं सक्कस्स अयमेयारूवे अब्भत्थिते–जीतमेतं तीतपडुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं पढमतित्थगराणं विवाहमहिमं करेत्तएत्ति कट्टु एवं संपेहेति, संपेहेत्ता आगतो सिग्घमेव महता रिद्धिसक्कार समुदएणं। ताहे सक्को उसभ भगवतो सयमेव वरकम्मं करेति। तं जहा–पमक्खणगण्हाण गीतवातिय अविधवं एवं वरकम्मं करेति तासिं पुण दारियाणं सक्कग्गमहीसिओ महत्ता रिद्धि सक्कार समुदएणं विवाहं काऊण जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगता।

बालिका के माता पिता का भी स्वर्गवास हो गया। बालिका अत्यन्त रूपवती थी। वह वनदेवी की तरह वन में अकेली घूमने लगी। वनदेवी की तरह सुन्दर रूपवाली उस बालिका को युगल पुरुषों ने देखा और फिर वे उसे नाभिकुलकर के पास ले गये। नाभि कुलकर बालिका को अपने पास रख कर बोला-कि भविष्य में यह ऋषभ की पत्नी बनेगी। इस कन्या का नाम सुनन्दा रखा। नाभि कुलकर स्वयं बालिका का संरक्षण करने लगे। भगवान दोनों बालिकाओं के साथ बढ़ने लगे। भगवान जातिस्मरण ज्ञान व मति श्रुत एवं अवधिज्ञान से युक्त थे। उन्होंने क्रमशः बाल्यकाल को पार करके यौवन अवस्था में प्रवेश किया।

एक बार शक्र के मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ-प्रथम तीर्थंकरों का विवाह करना यह अतीत अनागत और वतमान के इन्द्रों का जीताचार है। विचार करके वह अपने परिवार के साथ ऋद्धि समुदय के साथ शीघ्र ही चल कर भगवान के पास आया और सुनन्दा तथा सुमंगला के साथ विवाह करके, विवाह सम्बन्धी लोकनीति प्रचलित करने का निवेदन किया। भगवान अवधि ज्ञानी थे अपने भोगावली कर्म का उदय जानते थे अतः उन्होंने इन्द्र की प्रार्थना को मौन भाव से स्वीकार किया। भगवान के मौन को ही स्वीकृति मानकर अपने आज्ञाकारी देवों को विवाह की सामग्री एवं मण्डप बनाने का आदेश दिया। आज्ञाकारीदेवों ने एक सुन्दर व विशाल मण्डप बनाया और विवाह की सब सामग्री मण्डप में लाकर रख दी।

इसके बाद कई देवियों ने सुनन्दा और सुमंगला को गीत गाते हुए सुगन्धित तेल की मालिश की। उबटन लगाया और सुगन्धित जल से स्नान कराया। गन्ध काषायी वस्त्र से उनका शरीर पोंछा। सुगन्धित धूप से उनके बालों को धूपित किया। उसके बाद उन दोनों स्त्री रत्नों के अंगों को अंगराग से रंजित किया। गर्दनों भुजाओं गालों पर पत्रवल्लरी की रचना की। आंखों में काजल आंजा। उनके केश कलापों को खिले हुए विविध पुष्पों से सजाया। कपाल पर तिलक लगाया। सुन्दर वस्त्र पहनाये और विविध प्रकार के आकर्षक आभूषणों से उन नारी रत्नों को साक्षात् इंद्राणी की तरह सज्जित किया। इस प्रकार दोनों कन्या रत्न को सजाकर उन्हें मातृ-भवन में लाया गया। और एक सुन्दर कलाकृतिमय सुवर्ण पट्ट पर उन्हें बैठाया।

कन्याओं को विवाह के योग्य तैयार हुआ देख इन्द्र भगवान के पास आया और उन्हें

विवाह के लिये तैयार होने की प्रार्थना की। गृहस्थ धर्म की उचित व्यवस्था का प्रचलन करने के उद्देश्य से एवं अपने भोगावली कर्म को अवशेष जानकर भगवान ने इन्द्र की प्रार्थना को स्वीकार करली। तव विधि के जानकार इन्द्र ने भगवान को स्नान कराया और चन्दन केशर कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थों को भगवान के शरीर पर लगाकर उन्हें सुन्दर वस्त्राभूषण पहनाये। इसके वाद भगवान दिव्य वाहन पर वैठकर विवाह मण्डप की ओर चले इन्द्र भगवान के आगे-आगे चलने लगा। अप्सराएं दोनों ओर लवण उतारने लगी। इन्द्राणियों मंगलगान करने लगी। सामानिक देवियाँ वलैया लेने लगी। गन्धर्व गीत और नृत्य से वारात की शोभा में अभिवृद्धि करने लगें। अन्य देवों ने सुमधुर वाद्य ध्वनि से सारे वातावरण को खुशहाल वना दिया। इस प्रकार भगवान मण्डप द्वार के पास पहुँचे। इन्द्र ने हाथ का सहारा देकर भगवान को दिव्य वाहन से नीचे उतारा। मंडपस्थ देवियों ने चांदी की थाल में रखे हुए मंगल पदार्थों से भगवान की आरती उतारी। उस अवसर पर देवियाँ मंगल गीत गाने लगीं। इसके वाद भगवान् ने मण्डप में प्रवेश किया। शुभ लग्न की वेला में भगवान पट्ट पर विराज मान हुए। उसके वाद सुगन्धित लेप वाले दोनों वालाओं के हाथ को अपने हाथ में लिया। पाणिग्रहण के वाद इन्द्र ने दोनों कन्याओं के वस्त्र से भगवान के वस्त्र की गांठ वांध दी। इसके वाद उन्होंने अपनी वधुओं के साथ वेदिकाओं के फेरे लगाये। अग्नि प्रदक्षिणा आदि विधि से भगवान का विवाह समाप्त हुआ। विवाह की क्रिया के वाद इन्द्र इन्द्रानियों ने देव देवियों ने वड़ा उत्सव किया। तदन्तर भगवान दोनों वधुओं के साथ दिव्य वाहन पर चढ़कर अपने महल में लौट आये। भगवान का विवाह कार्य कर इन्द्रादि देव अपने स्थान को लौट गये।

भगवान ऋषभ देव के द्वारा वताई गई विधि से अव अन्य युगलिये भी विवाह करने लगे। विवाह की पद्धति भगवान ऋषभदेव से ही प्रारम्भ हुई।

अनासक्त भगवान् अपनी दोनों पत्नियों के साथ भोग भोगते हुए रहने लगे। क्योंकि भोगावली कर्मों को जव तक न भोग लिया जाय तव तक साता वेदनीय का भी तो क्षय नहीं होता। इस प्रकार भोग भोगते हुए भगवान के कुछ कम छह लाख पूर्व वर्ष वीत गए।

नियुक्ति कार आगे की जीवनी का वर्णन करते हुए कहते है—

छप्पुव्वसयसहस्सा पुव्विं जायस्स जिनवरिन्दस्स ।
तो भरह बंभि सुन्दरीबाहुबली चेव जायाइं ॥

तए णं सुमंगलाए बाहू य पीठो च अणुत्तरेहिंतो चइऊण मिहुणयं जातं, भरहो बंभी य, सुनन्दाए सुबाहू य महापीढो य पच्चायाता, ते पुण बाहुबली य सुन्दरी य, तते णं सा सुमंगलादेवी अन्नाणि एगूणपन्नं पुत्तजुयलगाणि पसवति, तेऽवि ताव कुमारो एवं संवड्ढति ।

इस प्रकार छ लाख पूर्व वर्ष के व्यतीत होने पर बाहू और पीठ के जीव सर्वार्थ सिद्ध विमान से चवकर सुमंगलादेवी की कोख में युग्म रूप से उत्पन्न हुए। उसी तरह सुबाहू और महापीठ के जीव सर्वार्थ सिद्ध विनान से च्युत होकर सुनन्दा के गर्भ में उत्पन्न हुए। सुमंगला देवी ने चौदह महा स्वप्न देखे। प्रात: काल होने पर सुमंगला ने रात्रि में देखें हुए चउदह महा स्वप्नों को कह सुनाया। उत्तर में भगवान ने कहा--महादेवी तुम्हें चक्रवर्ती पुत्र होगा।

कालान्तर में जिस तरह पूर्व दिशा सूर्य को जन्म देती है उसी तरह सुमंगला ने एक युगल सन्तान को जन्म दिया। उनमें बालक का नाम भरत और बालिका का नाम ब्राह्मी रखा। सुनन्दा ने भी गर्भकाल के पूर्ण होने पर सुन्दर युगल सन्तान को जन्म दिया जिसमें बालक का नाम बाहुबलि और बालिका का नाम सुन्दरी रखा। इसके बाद विदूर पर्वत की भूमि जिस प्रकार रत्नों को जन्म देती है उसी तरह सुमंगला ने उनपचास युगल सन्तान को जन्म दिया। वे उनपचास युगल बालक ही थे। उन उनपचास बालकों के नाम कल्पकिरणावली में इस प्रकार हैं–

(१ भरत २ बाहुबली) ३ शांव ४ विश्वकर्मा ५ विमल ६ सुलक्षण ७ अमल ८ चित्रांग ९ ख्यातकीर्ति १० वरदत्त ११ दत्त १२ सागर १३ यशोधर १४ अवर १५ थवर १६ कामदेव १७ ध्रुव १८ वत्स १९ नंद २० सूर २१ सुनन्द २२ कुरु २३ अंग २४ वंग २५ कोसल २६ वीर २७ कलिंग २८ मागध २९ विदेह ३० संगम ३१ दशार्ण ३२ गंभीर ३३ वसुवर्मा ३४ सुवर्मा ३५ राष्ट्र ३६ सुराष्ट्र ३७ बुद्धिकार ३८ विविधकर ३९ सुयश ४० यश: कीर्ति ४१ यशस्कर ४२ कीर्तिकर ४३ सुषेण ४४ ब्रह्मसेन ४५ विक्रान्त ४६ नरोत्तम ४७ चन्द्रसेन ४८ महसेन ४९ सुसेन ५० भानु ५१ कान्त ५२

पुष्पयुत ५३ श्रीचर ५४ दुद्धर्ष ५५ सुसुमार ५६ दुर्जय ५७ अजयमान ५८ सुधर्मा ५९ धर्मसेन ६० आनन ६१ आनन्द ६२ नंद ६३ अपराजित ६४ विश्वसेन ६५ हरिषेण ६६ जय ६७ विजय ६८ विजयवंत ६९ प्रभाकर ७० अरिदमन ७१ मान ७२ महाबाहु ७३ दीर्घबाहु ७४ मेघ ७५ सुघोष ७६ विश्व ७७ वराह ७८ वसु ७९ सेन ८० कपिल ८१ शैल विचारी ८२ अरिजय ८३ कुंजर बल ८४ जयदेव ८५ नागदत्त ८६ काश्यप ८७ बल ८८ वीर ८९ शुभमति ९० सुमति ९१ पद्मनाभ ९२ सिंह ९३ सुजाति ९४ संजय ९५ सुनाभ ९६ नरदेव ९७ चित्तहर ९८ सुरवर ९९ दृढ़रथ १०० प्रभंजन।

कल्प सूत्र किरणावली पत्र १५१, १५२

भगवान का राज्याभिषेक

भगवान ऋषभ देव के सौ पुत्र ऐसे प्रतीत होते थे मानो ज्योतिषी देवों का समूह हैं। उनमें तेजस्वी भरत सूर्य थे। अत्यन्त सुन्दर बाहुबलि चन्द्रमा थे। और शेष राजपुत्र ग्रह नक्षत्र और तारागण थे ब्राह्मी और सुन्दरी साक्षात् सरस्वती का अवतार थी। अपने सब पुत्र पुत्रियों से घिरे हुए भगवान ऋषभदेव ऐसे मालूम होते थे मानो ज्योतिषी देवों से घिरा हुआ सुमेरु पर्वत ही है। इस प्रकार भगवान ऋषभदेव अपने विशाल परिवार समूह के साथ सुख से समय बिताने लगे।

अवसर्पिणी का काल तेजी से आगे बढ़ रहा था। अवसर्पिणी का अर्थ ही ह्रास का युग। इस युग में सब चीज न्यूनता की ओर ही बढ़ती है। इस समय के कल्पवृक्ष प्रभावहीन होने लगे। कल्पवृक्षों के प्रभावहीन होने से युगलियों के कषाय भी बढ़ने लगे। जो कुछ भी कल्प वृक्ष अवशेष थे उन पर अधिकार जमाने के लिये युगलिये आपस में लड़ने लगे। हाकार, माकार और धिक्कार नीति का भी वे लोग खुलकर उलंघन करने लगे। खाद्य पदार्थों के अभाव में युगलिये भूख के कारण आकुल व्याकुल रहने लगे। इस कारण युगलिये इकट्ठे होकर भगवान के पास आये और अपनी दुःखमय कहानी कहने लगे। युगलियों के कष्टों को सुन कर तीन ज्ञान के धारक भगवान उनसे कहने लगे कि–"लोक में जो मर्यादा का उलघन करते हैं उन्हें शिक्षा देने वाला राजा होता है। जिसे राजा बनाते हैं उसे ऊँचे आसन पर बिठाते हैं और फिर उसका अभिषेक करते हैं।

उनके पास चतुरंगिनी सेना होती है। वह राजा ही साम, दाम, भेद और दण्ड नीति से प्रजा में फैले हुए व्यापक झगड़े को शान्त करता है। उसके अनुशासन में प्रजा सुख से रहती है।" प्रभु की ये बातें सुनकर युगलियों कहा-भगवन् ! आप ही हमारे राजा हैं। हे विभो ! आप ही इस युग के महामानव हैं और कल्पवृक्ष के समान उन्नत हैं आपके आश्रित हुए हम लोग भय के स्थान कैसे हो सकते हैं ? इसलिये हे देव ! हम लोगों की आजीविका निरुपद्रव हो उसी प्रकार का प्रयत्न कीजिये। इस प्रकार युगलियों के दीन वचन सुनकर भगवान ऋषभदेव ने कहा-मित्रों ! तुम पुरुषोत्तम नाभि-कुलकर के पास जाकर प्रार्थना करो वे ही तुम्हें राजा देंगे। युगलिये प्रभु की आज्ञानुसार नाभि-कुलकर के पास गये और अपना सारा हाल कह सुनाया। तब कुलकरों के अग्रगण्य नाभिकुलकर ने कहा-अहं सहल्लो सच्छह तुम्मे उसभं रायाणं ठवेह। मैं वृद्ध हो गया हूँ। अब आप लोग वृषभ को ही राजा बनाओ। यह बात सुनते ही सब युगलिये अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुनः भगवान ऋषभ-देव के पास आये और कहने लगे-नाभिकुलकर ने आपको ही अपना राजा बनाने को कहा है। यह कह कर वे युगलिये अभिषेक के लिये जल लाने के लिये पद्म सरोवर पर गये। उस समय शक्र देवेन्द्र का आसन चलायमान हुआ-

उस समय सौधर्मेन्द्र का आसन चलायमान हुआ। उसने अवधि ज्ञान से भगवान के रायज्भिषेक का समय जान लिया। उसने उसी समय आभियोगिक देवों से पालक नामका विमान तैयार करवाया। महद् ऋद्धि और अपने समस्त परिवार के साथ पालक विमान में आरुढ़ हो भगवान के समीप पहुंचा। वहां उसने भगवान का बड़े वैभव के साथ राज्याभिषक किया। राज्याभिषेक के बाद इन्द्र ने भगवान को दिव्य वस्त्र और अलंकार पहनाये। इसी बीच युगलिये कमल पत्तों में जल लेकर आये। वे प्रभु को गहने और कपड़ों से सजे हुए देख कर प्रसन्न हुए। उन्होंने दिव्य वस्त्र और अलंकारों से अलंकृत प्रभु के मस्तक पर जल डालना उचित नहीं समझा अतः उन्होंने वह जल प्रभु के चरणों में डाल दिया। और वे सब उनके चरणों झुक गये। यह सब दृश्य देख कर शक्र देवेन्द्र देवराज मन मे विचार करने लगा–अहो ! ये लोग कितने विनीत और नम्र हैं अतः इनके रहने के लिये जो नगरी बनाई जायगी उसका नाम 'विनीता' ही होगा। यह सोचकर उसने तत्काल वैश्रमण देव को बुलाया और उसे विनीता नाम की विशाल नगरी बनाने का आदेश दिया। और यह अपने स्थान पर चला गया।

इन्द्र का आदेश पाकर वैश्रमण देव ने 'विनीता' नाम की भव्य और विशाल नगरी का निर्माण किया और उसका दूसरा नाम 'अयोध्या' भी रक्खा। उस नगरी में लोगों को रहने के लिए भव्य, सुन्दर और सभी प्रकार की सुविधा वाले बड़े बड़े भवन बनायें। नगरी की रक्षा के लिए प्राकार व बड़ी बड़ी खाईयां बनाई। भगवान ऋषभदेव और उनके परिवार के लिए वैश्रमण देव ने अत्यन्त सुन्दर महल बनाये। कूप तालाब, बाग बगीचे व बड़े बड़े बाजार यथा स्थान बनाये। नगरी को धन धान्य और वस्त्रादि से समृद्ध किया।

भगवान ऋषभदेव ने अपने राज्य में हाथी, घोड़े गाय आदि का संग्रह किया तथा राज्य के संचालन के लिए उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रिय रूप चार कुलों की स्थापना की। राज्य की सुव्यवस्था करने वाला आरक्षक दल 'उग्रकुल' कहलाया। मंत्री मंडल 'भोग कुल' के नाम से प्रसिद्ध हुए। राजा के परामर्श दाता 'राजन्य' के नाम से विख्यात हुए और अन्य राजकर्मचारी 'क्षत्रिय' नाम से पहचाने गये।

卐 गृहस्थ कर्म की शिक्षा 卐

मूलम्-तेसिं पढमं कंदादी आहारो आसि, पच्छा तेण ण जीरंतेण ते उसभं उवट्ठायंति, जम्हा अम्ह ण जीरति, ताहे उसभसामी भणति-जहा तुब्भे हत्थेहिं मलेत्ता तयं अवणेत्ता ताहे आहारेह। एवं ते पाणिघंसी आसी, तहवि ण जीरितुं पवत्तं कढिणत्तणेणं ओसहीणं, ताहे भणेति, घंसित्ता तिम्मेत्ता खाह। तहवि न जीरत्ति, ताहे घंसेत्ता तिम्मेत्ता पवाल पुडेसु मुहुत्तं धारेह। तहवि ण जीरति ताहे घंसेत्ता तिम्मेत्ता पवाल पुडेसु मुहुत्तगं धरेत्ता तओ पुण हत्थपुडंसि मुहुत्तगं धरेता खाह। जाहे तहवि ण जीरति, ताहे कक्खंतरेसु उण्हवेत्ता पच्छा आहारेंति, कीस कारणेणं अग्गिं ण उप्पाएति' ? सामी जाणति-जदा एगंत निद्धो कालो तदा अग्गि ण उट्ठेति एगन्तरुक्खेणवि। जदा वेमादाणिद्ध लुक्खो भवति तदा अग्गी उट्ठेति तेण सामी अग्गिं ण उट्ठावेति। अहवा इमं निरुत्तं इक्खाग वंसस्स--

> आसी य इक्खु भोती,
> इक्खागा तेण खत्तिया होंति॥
> सणसत्तरसं धन्नं।
> आमं ओमं च भुंजीया॥

एवं च णाम ते कक्खंतरेसु ओहूण आहारेंति। इत्तो य काल सभावेण रुक्खसंघं-सेणं अग्गी उठ्ठाइतो, ताहे सो अग्गी भूमि पत्तो, जाणि तत्थ सुक्कपत्तकयवराणि ताणि दहितुमारद्धो, ते मणुसा तं दट्ठूण अब्भुतायं ततो हुत्ता पधाइता ताहे गेण्हामोत्ति इमाणि रयणाणि, गेण्हितुमारद्धा जाव डज्झंति ताहे ओसरंति। ताहे भीता समाणा उसभसामिस्स साहेंति, ताहे उसभो भणति-पासेसु विलग्गिऊणं मंडलिं परिपेरंतेसु छिंदह, ताहे हत्थेहि य आसेहिं तं सव्वं तणं मलितं ताहे सो उवसंतो अग्गी, ताहे सो अग्गी गेण्हावितो, ताहे भणिया-पागं करेह, ते ण जाणंति किह पागो कीरति? ते अग्गिमि छुभंति, सो अग्गी तं डहति, ते पुणो उवट्ठित्ता, तम्मि जं छुब्भति तं जरग्गतो जहा खाति, भगवं भणति-मट्टिय आणेह, भगवं हत्थिखंधे चडितओ णीति तेहि य चिक्खल्लो उवणीतो ताहे सामिणा

हत्थिस्स कुंभए काऊण दरिसितं पत्तयं-भणिता-एयारिसयाणि काऊण एत्थं चेव पयह, पच्छा कुसलेहिं कालेणं सुन्दरतराणि कयाणि, पच्छा पइऊण अग्गिमि तहिं पागं करेंति। एवं ता पढमं कुंभकारा उप्पन्ना ।

(आ० चू० पृ० १५४ भा० १)

काल के प्रभाव से धीरे धीरे कल्पवृक्ष नष्ट होने लगे। उनके स्थान पर अन्य साधारण वृक्ष उत्पन्न होने लगे। कल्प वृक्षों के अभाव में अब लोग कन्द मूलफल आदि खाकर अपना निर्वाह करने लगे। उस समय शालि गेहूं चना आदि अनाज बिना बोये अपने आप ही पैदा होता था। वे लोग कच्चा ही और छिलके सहित अनाज खाने लगे। कच्चा अनाज खाने से उनको अपच होने लगा और पेट दुखने लगा। तब वे भगवान के पास आये और कहने लगे--भगवान् ! कच्चे अनाज से हमारे पेट में गड़बड़ी उत्पन्न होती है और पेट दुखने लगता है। तब भगवान ने फरमाया-तुम अनाज का छिलका उतारकर व साफ कर खाओ कुछ दिन तक तो वे लोग अनाज का छिलका उतार कर खाने लगे किन्तु कच्चे अनाज से फिर पेट में गड़बड़ी शुरु हो गई। वे फिर भगवान के पास आये और कहने लगे-भगवन्! यह अनाज भी हमें नहीं पचता। इस बार भगवान ने कहा- उन अनाजों को हाथों से रगड़कर जल में भिगोकर और फिर दोनों में रखकर खाओ" उन्होंने ठीक इसी तरह किया। फिर भी उन्हें वह अनाज पचा नहीं। वे फिर भगवान के पास आये और निवेदन किया- इस पर भगवान ने कहा-अनाज को मुट्ठी या बगल में कुछ देर तक रखकर पानी में भिगोकर और उन्हें दोनों में रखकर खाओ! लोगों ने यह भी किया किंतु वह अनाज भी उन्हें नहीं पचा ।

इस प्रकार जैसा तैसा कच्चा अनाज खाकर अपना जीवन निर्वाह करने लगे।

इतने में वृक्षों के परस्पर घर्षण से अग्नि उत्पन्न हुई और घास फूस लकड़ी आदि को जलाने लगी। प्रकाशमान रत्न के भ्रम से उन्होंने आग को पकड़ने के लिए अपने हाथ बढ़ाए किन्तु आग को पकड़ने से उनके हाथ जल गये। तब वे घबराकर भगवान के पास गये और बोले-भगवन् वन में एक भयंकर राक्षस पैदा हुआ है। वह घास फूस लकड़ी आदि को भस्म कर डालता है। हम जब उसे पकड़ने के लिए गए तो हमारे हाथ जल गये। स्वामी ज्ञानी थे, वे

समझ गये कि चिकने और रूखे काल के दोष से आग उत्पन्न हुई हैं, क्योंकि एकान्त रूक्ष काल में आग उत्पन्न नहीं होती। भगवान ने उनसे कहा—तुम्हें घबराने की जरूरत नहीं है। वह आग है और अपने जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी है। तुम लोग उसके पास जाओ और उसके आसपास की लकड़ीं घास फूस हटाओ और फिर उसे ग्रहण करो। फिर पहले बताई हुई विधि से उसमें अनाज आदि डालकर पकाओ और फिर खाओ। उन लोगों ने वैसा ही किया किन्तु बर्तन के अभाव में वह सारा अनाज जल गया। तब वे फिर भगवान के पास आये और कहने लगे। भगवन्! आग स्वयं भूखी है वह सब कुछ खा जाती है किन्तु हमें कुछ भी नहीं देती। भगवान उनकी सारी स्थिति को समझ गये वे उस समय हाथी पर चढ़कर कहीं जा रहे थे। उन्होंने उसी समय उन युगलियों से गीली मिट्टी का पिण्ड मंगवाया उस गोले को हाथी से गंड स्थल पर रखकर उसी के आकार का पात्र बनाया। और उपस्थित युगलियों से कहा—इस पात्र में आप अन्न पकाकर खाओ। भगवान ने मिट्टी के पात्र बनाने की विद्या लोगों को सिखाई। इस प्रकार भगवान ने सर्व प्रथम कुम्भकार का शिल्प प्रकट किया। इसके बाद लुहार की कला सिखाई, फिर वस्त्र निर्माण कला, केश कर्त्तन कला तथा चित्रकार की कला, ये चार मूल कलाएँ सिखाईं। इन पांच मूल कलाओं के प्रत्येक के बीस-बीस भेद होने से एकसौ प्रकार का शिल्प होता है। इन शिल्पों के साथ कृषि कर्म व्यापार आदि बताये। साम, दाम, दंड और भेद ऐसे चार उपायों से नागरिक एवं राष्ट्रीय व्यवस्था कायम की।

तए णं उसभे अरहा कोसलिए पढमराया पढम भिक्खायरे पढम जिने पढमतित्थयरे, दक्खे दक्खपइण्णे पडिरूवे अल्लीणे भद्दए विणीते वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसइ. तेवट्ठि पुव्वसयसहस्साइं रज्जवासमज्झे वसइ तेवट्ठि पुव्वसयसहस्साइं महाराय वास मज्झे वसमाणे लेहाईआओ गणिअप्पहाणाओ सउणरुअ पज्जवसाणाओ बावत्तरिकलाओ चोसट्ठिं महिलागुणे सिप्पसयं कम्माणं तिण्णि वि पयाहियट्ठाए उवदिसइ, उवदिसित्ता पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता (पुणरवि लोयंतिएहिं जीयकाप्पितेहिं देवेहिं संबोहिए संवच्छरियं दाणं दाउणं भरहं विणीताए, बाहुबलिं बहलीए अन्ने य कच्छ महाकच्छादयो ठवेत्ता, अन्ने भणंति एते साहस्सिपरिवारा अणुपव्वतिया तदा, सामी चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं पव्वतितो।

(आवश्यक चूर्णि पृ० १६०)

तेसीइं पुव्वसय सहस्साइं महाराय वासमज्झे वसइ वसित्ता जे से गिम्हाणं पढमे मोसे पढमे पक्खे चित्तबहुलं, तस्स णं चित्त बहुलस्स णवमी पक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे चइत्ता हिरण्णं, चइत्ता सुवण्णं, चइत्ता कोसं, चइत्ता कोट्ठागारं, चइत्ता वलं, चइत्ता वाहणं, चइत्ता पुरं, चइत्ता अंतेउरं, चइत्ता विउल-धण-कणग रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्प वालरयणरत्तसंतसारसावइएज्जं विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता दाणं दाइआणं परिभाइत्ता, सुदंसणाए सिविआए सदेवमणुआसुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे, संखियचक्किअणंगलिअ-मुहमंगलिअ-पूसमाण-वद्धमाणग-आइक्खग-लंखमंखघंटिअगणेहिं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धण्णाहिं मंगलाहिं सस्सिरीआहिं हियगमणिज्जाहिं हिययपल्हायणिज्जाइं कण्णमणणिव्वुइकराहिं अपुणरुत्ताहिं अट्ठसइआहिं वग्गूहिं अणवरयं अभिणंदंता य अभिथुणंता य एवं वयासी-जय जय णंदा, जय जय भद्दा, धम्मेणं अभीए परीसहोवसग्गेणं खंतिखमे भयभेरवाणं धम्मे ते अविग्घं भवओत्ति कट्टु अभिणंदंति अभिथुणंति अ ॥

(जंबू पन्नति सूत्र)

इस प्रकार अर्हन् कौशलिक प्रथम राजा, प्रथम भिक्षाचर प्रथम जिन, प्रथम तीर्थंकर दक्ष—सत्य प्रतिज्ञा वाले, सुन्दर रूप वाले, सर्व गुण वाले, सरल परिणाम वाले भगवान ऋषभदेव बीस लाख पूर्व तक कुमार अवस्था में रहे। त्रेसठ लाख पूर्व महाराजाओं के पद पर राजा बनकर रहे। राजा पदवी पर रहते हुए लिखने की कला, गिनने की कला, आदि पक्षियों की भाषा जानने कला पर्यन्त पुरुष की ७२ कलाएँ सिखलाई, पुरुष की बहत्तर कलाएँ इस प्रकार हैं:—

मूलम्—१ लेहं २ गणियं ३ रूवं ४ नट्टं ५ गीयं ६ वाइयं ७ सरगयं ८ पुक्खरगयं ९ समतालं १० जूयं ११ जनवायं १२ पोरवच्चं १३ अट्ठावयं १४ दगमट्टियं १५ अन्नविही १६ पाणविहिं १७ वत्थविही १८ सयणविही १९ अज्जं २० पहेलियं २१ मागहियं २२ गाहं २३ सिलोगं २४ गंध जुत्तिं २५ मधुसित्थं २६ आभरणविही २७ तरुणीपडिकम्मं २८ इत्थीलक्खणं २९ पुरिसलक्खणं ३० हयलक्खणं ३१ गयलक्खणं ३२ गोण लक्खणं ३३ कुक्कुडलक्खणं ३४ मिढय लक्खणं ३५ चक्कलक्खणं ३६ छत्तलक्खणं ३७ दंडलक्खणं ३८ असिलक्खणं ३९ मणिलक्खणं ४० कागणिलक्खणं ४१ चम्मलक्खणं ४२ चंदलक्खणं

४३ सूरचरियं ४४ राहुचरियं ४५ गहचरियं ४६ सोभागकरं ४७ दोभागकरं ४८ विज्जागयं ४९ मंतगयं ५० रहस्सगयं ५१ सभासं ५२ चारं ५३ पडिचारं ५४ वूहं ५५ पडिवूहं ५६ खंधावारमाणं ५७ नगरमाणं ५८ वत्थुमाणं ५९ खंधावार निवेसं ६० वत्थु निवेसं ६१ नगरनिवेसं ६२ ईसत्थं ६३ छरूप्पवायं ६४ आससिक्खं ६५ हत्थिसिक्खं ६६ धनुव्वेयं ६७ हिरण्णपागं सुवण्ण० ६८ बाहुजुद्धं दंडजुद्धं मुट्ठिजुद्धं अट्ठिजुद्धं जुद्धं निजुद्धं जुद्धाइजुद्धं ६९ सुत्तखेडं नालिया खेडं वट्टखेडं चम्मखेडं ७० पत्तछेज्जं कडगछेज्जं ७१ सजीवं-निज्जीवं ७२ सउणरुयं (समवायांग ७२)

१ लेख २ गणित ३ रूप ४ नाट्य ५ गीत ६ वाद्य ७ स्वर जानने की कला ८ ढोल इत्यादि बजाने की कला ९ ताल देना १० द्यूत ११ वार्तालाप की कला १२ नगर रक्षा की कला १३ पासा खेलने की कला १४ पानी और मिट्टी मिलाकर कुछ बनाने की कला १५ अन्न उत्पादन की कला १६ पानी उत्पन्न करने की और शुद्ध करने की कला १७ वस्त्र बनाने की कला १८ शय्या निर्माण करने की कला १९ आर्या आदि छन्द बनाने की कला २० पहेली रचने बूझने की कला २१ मागध छन्द या मागधी भाषा जानने की कला २२ प्राकृत गाथा रचने की कला २३ श्लोक बनाने की कला २४ सुगंधित पदार्थ बनाने की कला २५ मधुरादिक छह रस बनाने की कला २६ अलंकार बनाने की कला २७ स्त्री को शिक्षा देने की कला २८ स्त्री लक्षण २९ पुरुष लक्षण ३० अश्व लक्षण ३१ हस्ति लक्षण ३२ गोलक्षण ३३ कुक्कुट लक्षण ३४ मेंढे का लक्षण ३५ चक्र लक्षण ३६ छत्र लक्षण ३७ दंड लक्षण ३८ तलवार लक्षण ३९ मणि लक्षण ४० काकिणी (चक्रवर्ती का रत्न विशेष) का लक्षण जानना ४१ चर्म लक्षण ४२ चन्द्र लक्षण ४३ सूर्य लक्षण—सूर्य की गति आदि जानना ४४ राहु की गति आदि जानना ४५ ग्रहों की गति जानना ४६ सौभाग्य का ज्ञान ४७ दुर्भाग्य का ज्ञान ४८ विद्या का ज्ञान ४९ मंत्र का ज्ञान ५० गुप्त वस्तु का ज्ञान ५१ हर वस्तु की हकीकत जानना ५२ सेना को युद्ध में उतारने की कला ५३ प्रतिचार सेना का मुकाबिला करने की कला ५४ व्यूह रचने की कला ५५ प्रतिव्यूह रचने की कला ५६ सेना के पड़ाव का प्रमाण जानना ५७ नगर का परिमाण ५८ वस्तु का प्रमाण जानना ५९ सेना के पड़ाव आदि का ज्ञान ६० हर वस्तु के स्थापन कराने का ज्ञान ६१ नगर बसाने का ज्ञान ६२ बाण विद्या ६३ तलवार की मूठ बनाने का ज्ञान ६४ अश्व शिक्षा ६५ हस्ति शिक्षा ६६ धनुर्वेद ६७ हिरण्यपाक, सुवर्णपाक,

मणिपाक, धातुपाक बनाने की कला ६८ बाहुयुद्ध, दण्डयुद्ध, मुष्टियुद्ध, अस्थियुद्ध, युद्धनियुद्ध, युद्धातियुद्ध, ६९ सूत बनाने की कला, नली बनाने की कला, गेंद खेलने की कला, वस्तु का स्वभाव जानने की कला, चमड़ा बनाने की कला ७० पत्र छेदन, वृक्षांग छेदने की कला ७१ संजीवन निर्जीवन ७२ पक्षियों के शब्द आदि से शुभाशुभ शकुन जानने की कला।

भरत ने अपने अन्य भाइयों को एवं प्रजाजनों को ७२ कलाएं सिखलाई। बाहुबली को प्रभु ने हाथी, घोड़े और स्त्री पुरुषों के अनेक प्रकार के भेदवाले लक्षण बतलाए।

बंभीए दाहिणहत्थेण लेहो दाईतो।

—आव० चू० पृ० १५६

ब्राह्मी को दाहिने हाथ से १८ प्रकार की लिपियां सिखलाई, उन अठारह प्रकार की लिपियों के नाम समवायांग के १८ वें समवाय में इस प्रकार आते हैं—

बंभी जवणालिया दोसाऊरिया खरोट्ठिया पुक्खरसारिया पहाराइया उच्चत्तरिया अक्खरपुट्ठिया भोगवयता वेणतिया णिण्हइया अंकलिवि गंधव्व लिवि–भूयलिवि आदंसलिवि माहेसरीलिवि दामिलिलिवी बोलिंदिलिवि॥

(समवायांग १८ वां)

१ ब्राह्मी २ यवनानी ३ दोसापुरिया ४ खरोष्ठी ५ पुक्खर सरिया ६ भोगवतिका ७ प्रहारातिका ८ अंतक्खरिया ९ अक्षरपृष्ठिका १० वैनयिकी ११ निहणविका १२ अंकलिपि १३ गणितलिपि १४ गंधर्वलिपि १५ आदर्शलिपि १६ माहेश्वरीलिपि १७ दामिललिपि १८ बोलिंदलिपि।

सुन्दरी को गणित विद्या का परिज्ञान कराया—

गणियं संखाण सुन्दरीए वामेण उवदिट्ठं।

—आव चू. पृ. १५६

व्यवहार साधन के लिए मान (माप) उन्मान (तोला मासा आदि वजन) अवमान (गज, फुट, इंच) व प्रतिमान (छटांक, सेर, मन आदि) सिखाये—

मानुम्माणवमाणं पमाण गणिमाइ वत्थूणं।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० २१३

सारी व्यवस्था चलाई, उसी तरह अब धर्म तीर्थ का प्रवतन करिये।" इस तरह भगवान को निवेदन कर देवगण अपने–अपने स्थान चले गये। देवताओं की प्रार्थना पर भगवान ने प्रव्रज्या ग्रहण करने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

दीक्षा का निश्चय कर भगवान ने अपने सौ पुत्रों को बुलाया और राज्य के सौ विभाग कर उन्हें पुत्रों में बाँट दिया और उन्हें अलग २ देशों का राजा बना दिया। उसमें विनीता का मुख्य राज्य भरत को दिया। तथा बाहुबलि को बहली देश में तक्षशिला का राज्य दिया। और शेष पुत्रों को अंग, बंग, कलिंग, गौड, चौल, कर्नाट, लाट, सौराष्ट्र काश्मीर, सौवीर आभीर, चीन, महाचीन, गुर्जर बंगाल, श्रीमाल, नेपाल, जठाल, कोशल, मालव सिंहल मरुस्थल आदि देशो का राजा बनाया। भगवान ऋषभदेव के सौ पुत्रों के नाम कल्पसूत्र की टीका में इस प्रकार है–

१ भरत २ बाहुबलि ३ शंख ४ विश्वकर्मा ५ विमल ६ सुलक्षण ७ अमल ८ चित्रांग ९ ख्यात कीर्ति १० वरदत्त ११ सागर १२ यशोधर १३ अमर १४ रथवर १५ कामदेव १६ ध्रुव १७ वत्स १८ नन्द १९ सूर २० सुनन्द २१ कुरु २२ अंग २३ बंग २४ कौशल २५ वीर २६ कलिंग २७ माधव २८ विदेह २९ संगम ३० दशार्ण ३१ गम्भीर ३२ वसुवर्मा ३३ सुवर्मा ३४ राष्ट्र ३५ सौराष्ट्र ३६ बुद्धिकर विविधकर ३७ सुयश ३८ यशकीर्ति ३९ यशस्कर ४० कीर्तिकर ४१ सूरण ४२ ब्रह्मसेन ४३ विक्रांत ४४ नरोत्तम ४५ पुरुषोत्तम ४६ चन्द्रसेन ४७ महासेन ४८ नभःसेन ४९ भानु ५० सुकान्त ५१ पुष्पयुत ५२ श्रीधर ५३ दुर्द्धर्ष ५४ सुंसुमार ५५ दुर्जय ५६ अजेयमान ५७ सुधर्मा ५८ धर्मसेन ५९ आनन्दन ६० आनन्द ६१ नन्द ६२ अपराजित ६३ विश्वसेन ६४ हरिषेण ६५ जय ६६ विजय ६७ विजयंत ६८ प्रभाकर ६९ अरिदमन ७० मान ७१ महाबाहु ७२ मेघ ७३ सुघोष ७४ विश्व ७५ वराह ७६ सुसेन ७७ सेनापति ७८ कपिल ७९ शैल विचारी ८० अरिंजय ८१ कुंजरबल ८२ जयदेव ८३ नागदत्त ८४ काश्यप ८५ बल ८६ वीर ८७ शुभमति ८८ सुमति ८९ पद्मनाभ ९० सिंह ९१ सुजाति ९२ सुमति ९३ संजय ९४ सुनाभ ९५ नरदेव ९६ चित्तहर ९७ सुस्वर ९८ दृढ़रथ ९९ दीर्घबाहु १०० प्रभंजन।

भगवान प्रातः सूर्योदय से लेकर भोजन के समय तक याचकों को उनकी मुंह मांगी चीजें देने लगे। सारी नगरी में जगह-जगह यह घोषणा करादी गई कि जिसको जिन चीजों की आवश्यकता हो वे ले जायें। वर्षीदान देते समय कोई ऐसी वस्तु न थी जो प्रभु को अदेय हो, इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने जृंभक देवों को भेजकर दान करने योग्य धन पूरा किया। वे देवता ऐसे व्यक्तियों की धन सम्पत्ति को, जिनका कोई उत्तराधिकारी न था, जो पहाड़ों, श्मशानों आदि स्थानों में गुप्त पड़ा था और जिनका स्वामी बहुत समय पहले खोया या नष्ट हो चुका था, ऐसे सुवर्ण आदि द्रव्यों को सब जगह से लाकर विनीता नगरी के चौक में, त्रिक में, बड़े-बड़े मार्गों और नगरी के दरवाजों और राजमार्ग व महल में शिखर की तरह ढेर लगाने लगे। उस धन से प्रभु ने सब की इच्छाओं को इस प्रकार तृप्त किया जिस प्रकार कल्प वृक्ष मनवांछित फल देते हैं। भगवान की कृपा से कोई निर्धन नहीं रहा।

इस प्रकार प्रतिदिन सूर्योदय से लेकर सवा पहर तक याचकों को उनकी प्रार्थनानुसार एक करोड़ आठ लाख सुवर्ण मुद्राएं प्रतिदिन दान देते थे। इस तरह भगवान ने एक वर्ष में तीन सौ अठासी करोड़ अस्सी लाख सुवर्ण मुद्राओं का दान दिया। कहा भी है—

तिण्णेव य कोडिसया अट्ठासीई अ होंति कोडीओ ।
असियं च सयसहस्सा एयं संवच्छरे दिण्णं ॥

(आवश्यक नियुक्ति गा० २४७)

दान देते हुए एक वर्ष पूर्ण हुआ तो इन्द्र का आसन चलायमान हुआ। इन्द्र ने अवधि ज्ञान द्वारा भगवान का दीक्षा समय जाना और शीघ्र ही अपने अन्तःपुर एवं परिवार सहित विनीता नगरी में आया। सब से पहले उसने भगवान के घर की प्रदक्षिणा की और फिर भूमि से चार अंगुल ऊंचा रह विमान से उतरा विनयी इन्द्र ने प्रभु को भक्ति से प्रदक्षिणा देकर सादर प्रणाम किया, तदन्तर अच्युतेन्द्र ने अभियोगिक देवताओं द्वारा लाये हुए जल के कुम्भों से जन्माभिषेक की तरह प्रभु का विधि पूर्वक दीक्षा सम्बन्धी अभिषेक कराया। तदनन्तर दूसरे इन्द्रों ने भी अनुक्रम से जगत्पति को दीक्षा कल्याणक सम्बन्धी स्नान कराया। सुरों और असुरों की तरह उनके पुत्र राजाओं ने भी

भगवान ऋषभदेव का दीक्षाभिषेक किया। इस प्रकार स्नान जल से भीगे हुए भगवान के शरीर को देवताओं ने देवदूष्य वस्त्र से पोंछा, गोशीर्ष चन्दन से प्रभु का विलेपन किया और उन्हें दिव्य वस्त्र पहनाये। रत्नों से जड़े हुए दिव्य मुकुट को उनके मस्तक पर रखा गया। सूर्य की किरणो की तरह चमकते हुए दो दिव्य कुण्डल भगवान के कानों में पहनाये गये। पुष्प मालाओं से उनके हृदय को सुशोभित किया गया।

इस प्रकार समस्त अलंकारों से भगवान के विभूषित हो जाने पर इन्द्र ने अपने आभियोगिक देवों से 'सुदर्शना' नामकी दिव्य शिबिका तैयार करवाई। यह शिबिका मनुष्यों द्वारा बनाई गई सुदर्शना नामकी शिबिका में अंतर्हित हो गई।

इसके बाद उस शिबिका पर जगतवंद्य भगवान इन्द्र के हाथ का सहारा लेकर आरुढ़ हुए। उस शिबिका को अग्रभाग से मनुष्यों ने और पिछले भाग से देवताओं ने उठाया। उस समय इन्द्र प्रभु के दोनों ओर चमर ढूलाने लगे। भगवान की शिबिका के पीछे पीछे उनके पुत्र चल रहे थे। उनके पीछे माता मरुदेवी पुत्रीं ब्राह्मी और सुन्दरी थी। शिबिका के आगे तरह तरह के बाजे बज रहे थे, नट लोग नृत्य करते जा रहे थे। बन्दी जन स्तुति पाठ कर रहे थे। कुल की वृद्ध स्त्रियाँ उँचे स्वर से मंगल आशीर्वाद दे रही थी, कुलीन कांताए मनोहर मंगल गा रही थी। उस समय सचमुच प्रभु ऐसे शोभित हो रहे थे जैसे किसी दूल्हे की बारात हो। भगवान पालकी मे बैठे हुए दुल्हे ही प्रतीत होते थे, हां ! वह शिवरमणी से पाणिग्रहण करने के लिए जाने वाले दूल्हे ही थे, इसमें सन्देह भी नहीं। इस प्रकार देव समूह मानव मेदनी की जय ध्वनि और मंगल आशीष को ग्रहण करते हुए प्रभु विनीता नगरी के मध्य भाग से होकर सिद्धार्थ वन में पहुचे। अशोक वृक्ष के नीचे भगवान शिबिका से उतरे। उतरकर उन्होंने अपने समस्त वस्त्र और अलकार उतार डाले। उस समय इन्द्र ने अपनी परम्परा के अनुसार प्रभु के पास आकर चन्द्र किरणों की तरह उज्जवल श्वेत देव दूष्य वस्त्र प्रभु के कंधे पर डाल दिया।

यह **चैत्र कृष्ण अष्टमी** का दिन था। चन्द्र उतराषाढा नक्षत्र में आया हुआ था। उस समय दिन के पिछले प्रहर में देवों और मनुष्यों की जय ध्वनि के साथ और सहस्त्रों देवों और मनुष्यों के सामने भगवान ने चार मुष्ठि लोच किया। सौधर्मेन्द्र ने भगवान के केशों को अपने

वस्त्र के आंचल में लिया। जब भगवान पांचवीं मुष्ठि से शिखा का लुंचन करने लगे तब इन्द्र ने प्रार्थना की-भगवान ! अब इतने केश तो रहने दीजिए, क्योंकि जब ये केश हवा से उड़ कर अपने कन्धे पर आ जाते हैं तब मरकत मणि की तरह शोभा देते हैं। प्रभु ने इन्द्र की बात मान ली। भगवान ने अपने केश वैसे ही रहने दिये। इन्द्र ने भगवान के लुंचित केशों को क्षीर सागर में डाल दिया।

इन्द्र ने समस्त बाजे बन्द कर दिये फिर नीरव शान्ति के बीच बेले के तप से युक्त भगवान ने देवों और मनुष्यों की परिषद् के समक्ष सिद्धकों नमस्कार कर इस प्रकार उच्चारण किया--

सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि'

मैं सभी सावद्य योगों का प्रत्याख्यान करता हूं। इस प्रकार उच्चारण करके चारित्र ग्रहण किया। भगवान इस अवसर्पिणी काल के सर्व प्रथम मुनि बने।

उग्गाणं भोगाणं राइन्नाणं च खत्तियाणं च चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं एगं देवदूसमादाय मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए।

कल्प सूत्र पृ० ५७

भगवान के प्रेम से प्रेरित होकर कच्छ महाकच्छ आदि उग्र वंश, भोग वंश, राजन्य वंश और क्षत्रिय वंश के चार हजार साथियों ने भी भगवान के साथ ही संयम ग्रहण किया। यद्यपि उन चार हजार साथियों को भगवान ने प्रव्रज्या नहीं दी फिर भी उन्होंने भगवान का अनुसरण कर स्वयं ही लोचकर चारित्र ग्रहण किया--

चउरो साहस्सीओ लोयं काऊण अप्पणा चेव।
जं एस जहा काही तं तह अम्हेवि काहामो ॥

आवश्यक निर्युक्ति गा० ३३७

जिस समय भगवान ने चारित्र ग्रहण किया उस समय नारक की जीवों को भी क्षण भर

के लिए शान्ति मिली। भगवान के चारित्र ग्रहण करते ही उन्हें मन: पर्याय ज्ञान उत्पन्न हो गया। इसके बाद इन्द्र और अन्य देवी देवता, भगवान को वन्दना नमस्कार करके चले गये और नंद श्वर द्वीप में जाकर अठाई महोत्सव करने लगे। भरत बाहुबलि आदि परिवार भगवान के वियोग में संतप्त होकर घर चले आये।

भगवान ने मौन धारण करके कच्छ महाकच्छ आदि चार हजार मुनियों के साथ विहार कर दिया। बेले के पारणे के दिन भगवान को कहीं भी भिक्षा नहीं मिली क्योंकि उस समय लोग आहार दान करना जानते भी नहीं थे। भिक्षार्थ आये प्रभु को पहले की तरह अपना राजा मानकर उनका स्वागत करते। कई लोग भगवान को बहुमूल्य जवाहारात भेट करते तो कई अप्सरा को भी लज्जित करने वाली रूपवती कन्या देते। कई वस्त्र और आभूषण प्रभु के आगे रखते। इस प्रकार आहार के स्थान पर लोग बहुमूल्य वस्तुएं भगवान को देते किन्तु भगवान उन्हें अग्राह्य समझकर लौट जाते। उनका अनुकरण करने वाले अन्य चार हजार मुनि भी वापस लौट आते।

इस प्रकार बिना आहार के कई दिन बीत गए। क्षुधा तृषा से पीड़ित एवं तत्वज्ञान से अनभिज्ञ मुनि आपस में विचार करने लगे–क्षुधा और तृषा से पीड़ित हम इस स्थिति में कब तक रहेंगे। भगवान तो कुछ बोलते भी नहीं हैं। भगवान की तरह हम लम्ब समय तक यह कष्ट भी नहीं उठा सकते। उन्होंने कच्छ महाकच्छ मुनियों से पूछा। उन्होंने कहा–भगवान को जब हम पूछते हैं तो वे कुछ भी जवाब नहीं देते। उनके मन की बात भी हम नहीं जानते। अब घर जाना भी हमारे लिये अयोग्य है क्योंकि हमने अपना-अपना राज्य भरत को दे दिया है। अब तो हमें वन में ही रहना चाहिए और वन के फल फूलों से अपना पेट भरना चाहिये। यह सोचकर वे गंगा के पास के वन में रहने लगे और कंद, मूल फल खाकर गंगा का जल पीकर वल्कल से शरीर को ढांक कर अपनी इच्छानुसार रहने लगे तभी से कंद मूल फल खाने वाले तापसों की परम्परा प्रारम्भ हुई।

कच्छ और महाकच्छ राजाओं के नमि और विनमि नाम के पुत्र थे। वे भगवान की दीक्षा के पूर्व ही कसी कार्य से अन्यत्र चले गये थे। जब वे वापस लौट रहे थे तब वन में फल मूल और कन्दों पर आजीविका करने वाले अपने पिता कच्छ महाकच्छ को देखा। उनकी यह शोचनीय

अवस्था देखकर वे महा दुःखी हुए। उन्होंने अपने पिता से पूछा–आपकी यह अवस्था क्यों हुई। उत्तर में उन्होंने कहा–हमने अपने समस्त राज्य को भरत को देकर प्रभु के समीप चारित्र ग्रहण किया किन्तु भगवान तो मौन होकर पृथ्वी पर अप्रमत्त अवस्था में विना आहार पानी के ही घूम रहे है। हम क्षुधा परीषह को नहीं सह सके अतः स्वेच्छा से यह तापस वृत्ति स्वीकार करली है। नमि विनमि अपने पिता के मुख से यह वात सुनकर भगवान की खोज में निकले। खोजते-खोजते वे भगवान ऋषभदव के पास पहुँचे। भगवान उस समय में एक वृक्ष के नीचे ध्यान कर रहे थे। भगवान के पास जाकर उन्होंने निवेदन किया–भगवन्! आपने भरत आदि पुत्रों को राज्य दिया किन्तु हम तो ऐसे ही रह गये। अब हमें भी राज्य दीजिये! भगवान तो अब अपरिग्रही मुनि थे। वे नमि विनमि के वात का उत्तर न देकर ध्यान ही में रहें। भगवान को मौन देखकर नमि–विनमि सोचने लगे–अब हम भगवान की ही सेवा करेंगे। जैसा उन्होंने भरत आदि को राज्य दिया वैसा ही हमें भी अवश्य देंगे। इन्हें छोड़कर राज्य की भीख मांगने के लिए भरत के पास नहीं जावेंगे। ऐसा सोचकर वे भगवान के पास ही रह गये। भगवान जहां भी जाते ये भी उनके पीछे २ ही जाते। भगवान जहां ध्यान में खड़े रहते वे उनके आसपास की भूमि को झाड़कर साफ करते और हाथ में नंगी तलवार लेकर भगवान का संरक्षण करते वे प्रतिदिन भगवान को त्रिकाल वन्दन कर उनसे राज्य की याचना करते और कहते–भगवन! हमें आप ही राज्य दें हम आपको छोड़कर अन्यत्र कही भी राज्य की याचना नहीं करेंगे। इस प्रकार वे भगवान की सेवा में रहकर अपना काल यापन करने लगे।

एकवार नाग कुमारों के इन्द्र धरण भगवान के दर्शन के लिए आये उन्होंने नमि विनमि को भगवान की भक्ति करते हुए और राज्य की याचना करते हुए देखा। धरणेन्द्र ने इन दोनों कुमारों से पूछा–आप लोग कौन हो? भगवान तो निर्ग्रन्थ हैं। वे अब किसी को कुछ भी नहीं देते और न उनके पास देने की कोई वस्तु है। इस पर दोनों कुमारो ने कहा–ये हमारे स्वामी हैं। हम विदेश गये थे और पीछे से आपने अपने भरतादि पुत्रों को राज दे दिया और अनगार बन गये। हम यों ही रह गये। अब हम भगवान से राज्य की याचना करते हैं।

इन्द्र ने कहा–कुमारो! ये तो अब मुनि बन गये। इनके पास अब कुछ भी नहीं है,

ऐसी अवस्था में अब ये आप लोगों को कुछ भी नहीं देगें। अब आप लोग भरत राजा के पास जाओ वे आपको राज्य का हिस्सा देंगे।

कुमारों ने कहा–जैसे इन्होंने भरत को राज्य दिया वैसे हमें भी देंगे। हम भरत से राज्य की याचना कदापि नहीं करेंगे। ये ही समर्थ महापुरुष हैं। इनसे की गई याचना कभी असफल नहीं होगी। आप यहां से जाइए। हम तो भगवान से राज्य लेकर ही रहेंगे।

कुमारों के इस भोलेपन पर इन्द्र को हंसी आई। वह उनकी भक्ति से बड़ा प्रसन्न हुआ। वह बोला–कुमारों! मैं नाग जाति के देवताओं का इन्द्र धरण हूं। आपकी भक्ति भावना से बहुत प्रसन्न हूँ। भगवान तो निर्ग्रन्थ साधु हैं। वे कुछ भी नहीं देंगे किन्तु मैं तुम्हें विद्याधरों की विद्या देता हूँ जिसे साध कर तुम बड़े राज्य का निर्माण कर सकते हो। धरणेन्द्र ने नमि विनमि को गौरी, विज्ञप्ति आदि अड़तालीस हजार विद्याएँ दी और कहा कि–तुम वैताढत्र पर्वत पर जाकर दोनों श्रेणी में नगर बसाकर राज्य करो"। नमि विनमि ने विद्या के बल से पुष्पक नाम का विमान बनाया और धरणेन्द्र के साथ विमान में बैठकर अपने पिता कच्छ महाकच्छ के पास आये। उन्हें सब बात कहीं। फिर भरत राजा के पास जाकर उन्हें भी सारी बात कहीं और वहां से अपने स्वजनादि को विमान में बैठाकर वे वैताढच पर्वत पर आये। नमि ने विद्या के बल से दक्षिण श्रेणी पर पचास नगर बसाए और रथनुपुर को राजधानी बनाई। विनमि ने उत्तर वैताढ्य की श्रेणी में साठ नगर बसायें और गगन वल्लभ नाम के नगर को राजधानी बनाया। वे दोनों न्याय नीति से राज्य का संचालन करने लगे।

भगवान ऋषभदेव अम्लानचित्त से अव्यस्थित मन से भिक्षा के लिए नगरों व ग्रामों में परिभ्रमण करते। श्रद्धालु जन भगवान को निहार कर भक्ति भावना से विभोर होकर अपनी रूपवती कन्याओं को, बढ़ियाँ वस्त्रों को, अमूल्य आभूषणों को और गज, तुरंग रथ सिंहासन आदि वस्तुओं को प्रस्तुत करते। ग्रहण करने के लिए प्रार्थना करते, पर कोई भी विधिवत् भिक्षा न देता। भगवान उन वस्तुओं को विना ग्रहण किये जब उलटे पैरों लौट जाते तो वे नहीं समझ पाते कि भगवान को किस वस्तु की आवश्यकता है? इस प्रकार भगवान का एक वर्ष बीत गया किन्तु कहीं भी शुद्ध आहार नहीं मिला। विचरते विचरते भगवान हस्तिनापुर पधारे। हस्तिनापुर

में 'सोमप्रभ' नाम का राजा राज्य करता था। वह भगवान ऋषभदेव का पौत्र और 'तक्षशिला' के राजा 'बाहुबलि' का पुत्र था। सोमप्रभ के 'श्रेयांस' नाम का युवराज पुत्र था। वह बहुत सुन्दर बुद्धिमान् और गुणी था।

एक दिन रात को उसने स्वप्न देखा—काले पड़ते हुए सुमेरु पर्वत को मैंने अमृत के घड़ों से सींचा और वह अधिक चमकने लगा। उसी रात को सुबुद्धि नाम के सेठ ने भी स्वप्न देखा कि अपनी हजारों किरणों से रहित होते हुए सूर्य को श्रेयांस कुमार ने किरण सहित कर दिया और वह पहले से भी अधिक प्रकाशित होने लगा। राजा सोम प्रभ ने भी स्वप्न देखा कि एक दिव्य पुरुष शत्रुसेना द्वारा हराया जा रहा है, उसने श्रेयांस कुमार की सहायता से विजय प्राप्त कर ली।

दूसरे दिन तीनों ने राजसभा में अपने अपने स्वप्न का वृत्तांत कहा। स्वप्न के वास्तविक फल को बिना जाने सभी अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ कहने लगे। इस बात में सभी का एक मत था कि श्रेयांसकुमार को कोई महान् लाभ होगा।

राजा, सेठ तथा सभी दरबारी अपने अपने स्थान पर चले गये। श्रेयांसकुमार अपने सतमंजले महल की खिड़की में आकर बैठ गया। जैसे ही उसने बाहर दृष्टि डाली, भगवान ऋषभ-देव को पधारते हुए देखा। वे एक वर्ष की कठोर तपस्या का पारणा करने के लिए भिक्षार्थ घूम रहे थे। शरीर एकदम सूख गया था। उस नगर के भोले लोग भगवान को अपना राजा समझकर अपने घर निमन्त्रित कर रहे थे। कोई उन्हें भिक्षा में धन देना चाहता था कोई कन्या। इस बात का किसी को ज्ञान नहीं था कि भगवान इन सब चीजों को त्याग चुके हैं। ये वस्तुएं उनके लिए व्यर्थ हैं। उन्हें लम्बे उपवास का पारणा करने के लिए शुद्ध आहार की आवश्यकता है।

श्रेयांसकुमार भिक्षार्थ घूमते हुए भगवान को देखकर विचार में पड़ गया। उसी समय उसे जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसने अपने पूर्व जन्म के भगवान के साथ के आठ जन्मों को देख लिया। वह सोचने लगा।

पूर्व विदेह क्षेत्र में भगवान वज्रनाभ जब चक्रवर्ती थे तब मैं उनका सारथी था। उनके पिता महाराज तीर्थंकर थे। उन्हें मैंने इसी रूप मे देखे थे। जब श्री वज्रनाभ चक्रवर्ती ने श्री

वज्रसेन तीर्थंकर के समीप दीक्षा ली, तब मैंने भी उनके साथ दीक्षा ली थी। उस समय तीर्थंकर भगवान के मुख से मैंने सुना था कि यह वज्रनाभ भरत क्षेत्र में प्रथम तीर्थंकर होगा। मैं वर्तमान भव से पहले नवें भव में मेरे प्रपितामह भगवान ऋषभदेव का जीव ईशान कल्प में ललितांग नाम के देव थे तब मैं उनकी स्वयं प्रभा नाम की स्नेहपात्री देवी थी। इस भव में ये मेरे प्रपितामह है। सद्भाग्य से ये आज मेरे यहां पधार गये हैं। यह विचार करता हुआ वह तत्काल भगवान के पास पहुंचा और विधिपूर्वक भगवान को वन्दन नमस्कार करने लगा। उसी समय कोई व्यक्ति श्रेयांसकुमार को भेंट देने के लिए इक्षुरस से भरे हुए घड़े लाया। श्रेयांसकुमार ने एक घड़ा हाथ में लिया और सोचने लगा–'मैं धन्य हूँ जिसे इस प्रकार की समस्त सामग्री मिल गई है। सुपात्रों में श्रेष्ठ भगवान ऋषभ स्वयं भिक्षुक बनकर मेरे घर पधारे हैं। निर्दोष इक्षुरस से भरे हुए घड़े तैयार हैं। इनके प्रति मेरी भक्ति भी उमड़ पड़ी है। यह कैसा शुभ अवसर है! यह सोचकर भगवान को प्रणाम करके उसने निवेदन किया–यह आहार सर्वथा निर्दोष है। अगर आपके अनुकूल हो तो ग्रहण कीजिए। भगवान ने मौन रहकर हाथ फैला दिये। श्रेयांसकुमार भगवान के हाथों में इक्षुरस डालने लगा। अतिशय के कारण रस की एक भी बूंद नीचे नहीं गिरी। भगवान को रसदान करते हुए श्रेयांस कुमार के हर्ष का पार नहीं रहा। इस अवसर्पिणी के आदि श्रमण ऋषभदेवजी ने दीक्षा लेने के बाद एक वर्ष एक महीना और दस दिन तक भूख प्यास का परिषह सहन करके पहली बार इक्षु रस का पान किया। बेले के तप के साथ चैत्र कृष्णा अष्टमी को दीक्षा ली थी, जिसका पारणा वैशाख शुक्ला ३ को हुआ। भगवान के पारने से मनुष्यों और देवों में हर्ष छा गया। आकाश में देवदुंदुभियां बजने लगी। देवगण गन्धोदक और पांच वर्णों के पुष्प बरसाने लगे। अहो दान! के दिव्य घोष से आकाश गूंज उठा। अपनी कान्ति से दशो दिशाओं को प्रकाशित करने वाले साढ़े बारह करोड़ रत्नों की वर्षा देवताओं नें की। तथा दिव्य वस्त्र आकाश से गिरायें। इस प्रकार पांच दिव्य प्रकट हुए। इस दान के कारण वह दिन अक्षय तृतीया के नाम से प्रसिद्ध हुआ। धर्मदान की प्रवृत्ति श्रेयांसकुमार से प्रारम्भ हुई।

प्रभु के पारणे की बात जानकार और रत्नादि की वृष्टि से विस्मित होकर राजा और नगर-जन श्रेयांसकुमार के पास आये। कच्छ और महाकच्छ भी भगवान के पारणा की बात सुनकर कुमार के पास आये और उसके भाग्य की तथा दानवृत्ति की खूब प्रशंसा करने लगे और पूछने लगे-कुमार, आपने आहार देने की विधि कैसी जानी? उत्तर में कुमार ने कहा–जाति स्मरण

ज्ञान से। लोगों ने फिर पूछा—जाति स्मरण किसे कहते हैं ? उसने उत्तर दिया—जाति स्मरण मति ज्ञान का भेद है। इस ज्ञान से मैंने अपने पिछले आठ भव जान लिए जिनमें मैं भगवान के साथ रहा था। मैंने पूर्व भव में वज्रसेन नामक तीर्थंकर से दीक्षा ग्रहण की थी। भगवान ऋषभदेव के जीव वज्रनाभ ने भी उनसे दीक्षा ली थी। उनके पास दीक्षित होने के कारण मैं दान आदि की विधि को जानता हूं। केवल इतने दिन मुझे पूर्व भव का स्मरण नहीं था आज भगवान को देखने से जाति-स्मरण (पूर्व भव का स्मरण) हो गया। पूर्व भव की सारी बातें प्रकट हो गई। इसीलिए आज भगवान का पारणा विधि पूर्वक हो गया।

मेरु पर्वत आदि के स्वप्न जो मैंने, पिताजी ने और सेठ ने देखे थे तथा जिसका सभा में विचार किया गया था उनका भी वास्तविक फल यही है कि एक वर्ष के अनशन के कारण भगवान का शरीर सूख रहा था। उनका पारणा कराकर कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने में सहायता की गई है यह सुनकर श्रेयांसकुमार की प्रशंसा करते हुए सभी अपने-अपने स्थान चले गये। भगवान भी पारणा करके अन्यत्र विहार कर गये।

भगवान ने वहां से बाहुबलि की राजधानी तक्षशिला की ओर विहार किया। ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भगवान तक्षशिला पधारे और नगर के बाहर उद्यान में ध्यान करने लगे। बाहुबलि को जब भगवान के आगमन का समाचार मिला तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने भगवान के आगमन की खुशी में सारे नगर को सजाने की आज्ञा दी। राजाज्ञा को पाकर नगर जनों ने सारे नगर को विविध भांति से सजाया। इसके बाद चतुरंगिनी सेना के साथ बाहुबलि भगवान के दर्शन के लिए निकला। जब उद्यान में पहुँचा तो वहां उसे भगवान नहीं मिले। उद्यान पालक से पूछा तो उसे ज्ञात हुआ कि भगवान ने अन्यत्र विहार कर दिया है। भगवान के दर्शन न होने से उसे अत्यन्त दुःख हुआ वह भगवान के वियोग में जोर-जोर से विलाप करने लगा। अन्त में मंत्री मंडल के समझाने पर वह शान्त हुआ।

उसभे णं अरहा कोसलिए संवच्छरं साहिअं चीवरधारी होत्था, तेण परं अचेलए। जप्पभिइं च णं उसभे अरहा कोसलिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, तप्पभिइं च णं उसभे अरहा कोसलिए णिच्चं वोसट्टकाए चियत्त देहे जे केइ उवसग्गा।

उप्पज्जंति तंजहा दिव्वा वा जाव पडिलोगा वा अणुलोमा वा, तत्थ पडिलोमा वेत्तेण वा वा जाव कसेण वा काए आउट्टेज्जा अणुलोमा वंदेज्ज वा जाव पज्जुवासेज्ज वा ते (उप्पन्न) सव्वे सम्मं सहइ जाव अहिआसेइ, तए णं से भगवं समणे जाए ईरिआसमिए जाव परिट्ठावणिआ समिए मन समिए वय समिए काय समिए मण गुत्ते जाव गुत्त बंभयारी, अकोहे जाव अलोहे संते पसंते उवसंते परिणिव्वुडे छिण्णसोए निरूवलेवे संखमिव निरंजणे जच्चकणगं व जायरूवे आदरिस पडिभागे इव पागडभावे कुम्मोइव गुत्तिदिए पुक्खरपत्तमिव निरूवलेवे गगणमिव निरालंबणे अणिले इव णिरालए चंदोइव सोमदंसणे सूरो इव तेअंसी विहग इव अपडिबद्धगामी सायरो इव गम्भीरे मंदरो इव अकंपे पुढवि विव सव्वफास विसहे जीवो विव अप्पडिहयगइ त्ति ।

णत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबन्धे से पडिबन्धे चउव्विहे भवति, तं जहा–दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ । दव्वओ इह खलु माया मे पिया मे भाया मे भगिणी मे जाव संगंथ संथुआ मे हिरण्णं मे सुवण्णं मे जाव उवगरणं मे अहवा समासओ सच्चित्ते वा अचित्ते वा मीसए वा दव्वजाए सेवं तस्स ण भवइ, खित्तओ गामे वा णगरे वा अरण्णे वा खेत्ते वा खले वा गेहे वा अंगणे वा एवं तस्स ण भवइ, कालओ थोवे वा मुहुत्ते वा अहोरत्ते वा पक्खेवा मासे वा उऊए वा अयणे वा दीह काल पडिबंधे एवं तस्स ण भवइ, भावओ कोहे वा जाव लोहे वा भए वा हासे वा एवं तस्स ण भवइ, सेणं भगवं वासावासवज्जं हेमंत गिम्हासु गामे एगराइए णगरे पंच राइए ववगयहाससोगअरइ भयपरित्तासे णिम्ममे णिरहंकारे लहुभूए अगंथे वासीतच्छणे अदुट्ठे चंदणाणुलेवणे अरत्ते लेट्ठुंमि कंचणंमि अ समे इह लोए अपडिबद्धे जीवियमरणे निरवकंखे संसार पारगामी कम्मसंगणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए विहरइ । तस्स णं भगवंतस्स एतेणं विहारेणं विहरमाणस्स एगे वाससहस्से विइक्कंते समाणे पुरिमतालस्स नगरस्स बहिआ सगडमुहंसि उज्जाणंसि णिग्गोहवरपायवस्स अहे झाणंतरिआए वट्टमाणस्स फग्गुण बहुलस्स इक्कारसीए पुव्वण्ह कालसमयंसि अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं उतरासाढाणक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अणुत्तरेणं नाणेणं जाव चरित्तेणं अणुत्तरेणं तवेणं बलेणं वीरिएणं आलएणं विहारेणं भावणाए खंतीए गुत्तीए मुत्तीए तुट्ठीए अज्जवेणं मद्दवेणं लाघवेणं सुचरिअ सोवचिअ फलनिव्वाण मग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाधाए निरावरणे कसिणे

पडिपुण्णे केवलवरणाण दंसणे समुप्पण्णे जिणे जाए केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी सणेरइअ-तिरिअनरामरस्स लोगस्स पज्जवे जाणइ पासइ, तं जहा–आगइं गइं ठिइं उववायं भुत्तं कडं पडिसेविअं आवीकम्मं रहोकम्मं तं तं कालं मण वय काये जोगे एवमादी जीवाणवि सव्वभावे अजीवाणवि सव्वभावे मोक्खमग्गस्स विसुद्धतराए भावे जाणमाणे पासमाणे एस खलु मोक्खमग्गे मम अण्णेसिं च जीवाणं हियसुहणिस्सेयस करे सव्वदुक्ख विमोक्खणे परम-सुहसमाणणे भविस्सइ।

तए णं से भगवं समणाणं निग्गंथाणं य निग्गंथीणं य पंच महव्वयाइं सभावणगाइं छच्च जीवणिकाए धम्मं देसमाणे विहरति, तं जहा–पुढविकाइए भावणागमेणं पंच मह-व्वयाइं सभावणगाइं भाणिअव्वाइं ति।

(जम्बू द्वीप प्र०)

इस प्रकार विहार करते हुए भगवान ऋषभदेव अरिहंत कुछ अधिक एक वर्ष वस्त्र सहित रहे, तत्पश्चात् वस्त्र रहित बने। जब से ऋषभदेव अरिहंत द्रव्य और भाव से मुण्डित बने तब से उन्होंने देह और काया के ममत्व का त्याग किया और जो कोई देवता सम्बन्धी यावत् प्रतिलोम अनुलोम आदि जो कोई उपसर्ग उत्पन्न होते थे वे सब समभाव से सहन करते थे। वेंत यावत् चाबुक से ताड़न करना इत्यादि प्रतिकूल उपसर्ग कहलाते हैं और वंदना नमस्कार करना उसे अनुकूल उपसर्ग कहते हैं। उन सब को समभाव से सहन किये।

तब वह भगवान ईर्या समिति वाले यावत् उच्चार प्रस्रवण समिति वाले हुए। मन समिति वचन समिति, काया समिति, मनगुप्ति, वचनगुप्ति और कायागुप्ति वाले यावत् गुप्त ब्रह्मचारी बने। क्रोध, मान, माया और लोभ रहित, शान्त, उपशांत, प्रशान्त व वैरागी हुए। उन्होंने शोक का छेदन किया, लेप रहित निर्मल बने। शंख समान अंजन रहित, जातिवंत सुवर्ण के समान मल आदि से रहित दर्पण के समान प्रतिबिम्ब जैसे प्रकट भाव वाले शुद्ध मन के परिणाम वाले, कछुए की तरह इन्द्रियों का गोपन करने वाले, कमल पत्र के समान निर्लेप, पक कर्दम रहित, आकाश जैसे अवलम्बन रहित, ग्राम नगर आदि से वायु की तरह अप्रतिबद्ध विहारी, समुद्र जैसे गंभीर, मेरु समान परिषह आदि से अकंप, पृथ्वी की तरह सब स्पर्श सहन करने वाले, जीव की तरह अप्रतिहत गमन करने वाले इत्यादि शुभ उपमाओं से युक्त थे।

उन भगवंत को किसी स्थान का प्रतिबंध नहीं होता था। ऐसे प्रतिबन्ध के चार प्रकार कहे गये हैं:-- द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य से यह मेरी माता है, यह मेरे पिता हैं। यह मेरी भगिनी है। यह मेरे भ्राता हैं, यावत् ये मेरे परिचय वाले हैं, यह मेरा हिरण्य सुवर्ण यावत् उपकरण हैं। अथवा संक्षेप से इसका वर्णन करते हैं:--वह सचित्त, अचित्त और मिश्र तीन प्रकार का परिग्रह है। क्षेत्र से ग्राम, नगर, अरण्य, खेत, खलिहान गृह आंगन आदि। काल से स्तोक लव, मुहूर्त, अहोरात्रि, पक्ष, मासऋतु, अयन संवत्सर अथवा अन्य कोई भी दीर्घ काल का प्रतिबन्ध, और भाव से क्रोध, मान, माया, लोभ भय और हास्य ये चारों ही प्रतिबन्ध भगवान को नहीं होते थे।

वे भगवंत वर्षा ऋतु का काल छोड़कर अन्य हेमंत-शीत काल व ग्रीष्म ऋतु (उष्ण काल) के आठ मासों में छोटे ग्राम में एक रात्रि और नगर में पाँच रात्रि रहते थ, हास्य, शोक, अरति, रति, भय, परित्रास, से रहित निर्ममत्त्व, निरहकार लघुता सहित और ग्रंथि रहित बनते थे। कोई वसूले से छेदन करे, कोई बावना चन्दन का लेपन करे तो उस पर भी राग भाव व द्वेष भाव धारण नहीं करते थे। इस लोक और पर लोक के प्रतिबन्ध से रहित जीवितव्य की वांछा व मृत्यु के भय से रहित, संसार से उत्तीर्ण होने के अभिलाषी कर्म समुदय का घात करने में तत्पर रहते थे।

इस तरह विहार से एक हजार वर्ष पर्यन्त विचरते हुए श्री ऋषभदेव भगवान पुरिमताल नगर के बाहिर शकटमुख उद्यान में न्यग्रोध (बट)वृक्ष के नीचे ध्यान युक्त बैठे थे। तब फाल्गुन वदी एकादशी के दिन के पूर्व भाग में पानी रहित चौविहार पूर्वक अष्टम भक्त तप से उतराषाढ़ा नक्षत्र में अनुत्तर ज्ञान दर्शन-चारित्र अनुत्तर तप बल वीर्य आलय विहार, उत्तम भावना क्षमा, मुक्ति, संतोष, ऋजुता सरलता, मृदुता, लघुता, सुचरित और उपचित निर्वाण रूप मार्ग में आत्मा को भावते हुए अनन्त अनुत्तर निर्वाघात, निरावरण, कृत्स्न प्रतिपूर्ण केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ तब वे जिन, केवली, सर्वज्ञ, व सर्वदर्शी हुए। नरक, तिर्यंच मनुष्य व देवलोक के पर्याय जानने देखने लगे वे पर्याय, आगति, स्थिति, उपपात् भोगा हुआ किया हुआ सेवा हुआ, प्रकट कर्म, रहस्य कर्म और उस काल के मन वचन और काया के योग आदि जीव के सब भाव जानने लगे वैसे ही अजीव के सब भाव जानने लगे। मोक्ष मार्ग के विशुद्धत्तर भाव जानते हुए देखते हुए यह मोक्ष मार्ग मुझे

व अन्य जीवों को हित, सुख, निस्तार व सब दुःख से मुक्त कराने वाला और परम सुख करने वाला होगा ऐसा जानने लग ।

तत्पश्चात् भगवान श्रमण निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों के लिए भावना सहित पांच महाव्रत और छह जीव निकाय का धर्मोपदेश देते हुए विचरने लगे । पृथ्वी काया यावत् त्रसकाया का रक्षण करो, इत्यादि भावना का कथन आचारांग सूत्र द्वि. श्रु. अ. १५ में जानना ।

धर्मचक्र प्रवर्तन—

भगवान को केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न होने से समस्त दिशाएं प्रसन्न हुई । सुखदाई हवा चलने और नारकीय जीवों को क्षण भर के लिए शान्ति मिली । इन्द्रों के आसन चलायमान हुए । सौधर्मेन्द्र ने अवधिज्ञान से भगवान के केवलज्ञान होने की घटना जान ली । वह ऐरावत हाथी पर आरूढ़ हुआ और समस्त ऋद्धि के साथ व अपने समस्त देवदेवी के परिवार से घिरा होकर भगवान के समीप पहुंचा । अच्युत आदि इन्द्र भी अपनी अपनी समस्त ऋद्धि के साथ भगवान के समीप पहुँचे । भगवान की वन्दना स्तुति कर सौधर्मेन्द्र ने अपने अधीनस्थ देवों को समवसरण रचने की आज्ञा दी । इन्द्र का आदेश पाते ही देव गण समवसरण की रचना करने में जुट गये । सर्व प्रथम वायुकुमार देवों ने समवसरण की आसपास की आठ मील भूमि साफ की । मेघ-कुमार देवों ने सुगन्धित जल की वर्षा कर उस भूमि की धूलि को शान्त किया–दवा दिया । व्यन्तर देवों ने सोने चांदी और रत्नों के पत्थर जमीन पर बिछा दिये । सुवर्ण मणि रत्नों के तोरण वनाये । उनको मगर आदि के विविध चित्रों से चित्रित किया । वे तोरण श्वेतछत्रों व विविध पताकाओं से शोभित किये गये । तोरणों के नीचे स्वतिक आदि आठ मंगल लगाये गये । वैमानिक देवों ने रत्नों का गढ़ बनाया । उस रत्न मय गढ़ पर नाना प्रकार की मणियों के कंगूरे बनाये । बीच का गढ़ ज्योतिषी देवों ने सोने का बनाया । तीसरा गढ़ भवनपति देवों ने चांदी का बनाया । उनमें से प्रत्येक गढ़ में चार चार दरवाजे थे । प्रत्येक दरवाजे पर व्यन्तरों ने धूप दानियां रखी थी । उन धूपदानियों से निकली हुई सुगन्धित धूप सारे वातावरण को महका रहा थो । उस समवसरण के प्रत्येक द्वार में गढ़ की तरह चार २ दरवाजों वाली, सोने के कमलों सहित वावड़ियां बनाई थी । दूसरे गढ़ में, प्रभु के आराम के लिए एक देव छंद बनाया था । भीतर के प्रथम कोट के पूर्व द्वार पर सुवर्ण वर्ण वाले

दो वैमानिक देव द्वारपाल के रूप में पहरा दे रहे थे। दक्षिण के द्वार पर व्यन्तर देव पहरा दे रहे थे, उत्तर द्वार पर भवनपति द्वारपाल थे तो पश्चिम दिशा में ज्योतिषी देव द्वारपाल के रूप में खड़े थे। दूसरे गढ़ के चारों द्वारों के दोनों तरफ अनुक्रमण से अभय, पास, अंकुश और मुद्गर धारण करने वाली–श्वेत मणि, शोण मणि, स्वर्ण मणि, और नील मणि की जैसी कान्तिवाली, पहले की तरह जया, विजया, अजिता और अपराजिता नाम की दो दो देवियां प्रतिहारी के रूप में खड़ी थी। तीसरे कोट के चारों दरवाजों पर तुम्बरू खटबांग धारी, मनुष्य मुण्डमाली, और जटा मुकुट मण्डित इन नामों वाले चार देव द्वारपाल के रूप में खड़े थे। समवसरण के मध्य में व्यन्तरों ने छः मील ऊंचा एक चैत्य वृक्ष बनाया। उस वृक्ष के नीचे रत्नों का एक पीठ बनाया। उस पीठ पर अप्रतिम मणिमय एक छंदक बनाया। छंदक के बीच में पूर्व दिशा की ओर मुख वाला पाद पीठ से युक्त एक रत्नमय सिंहासन बनाया और उसके उपर तीन छत्र बनाये। सिंहासन के दोनों ओर दो यक्ष हाथों में उज्जवल चँवर लिये खड़े थे। समवसरण के चारों दरवाजों पर अद्भुत कान्ति वाले धर्म चक्र सुवर्ण के कमल पर रखे हुए थे। इस प्रकार व्यन्तर आदि देवों ने अद्भुत व दिव्य समवसरण की रचना की।

प्रातःकाल के समय करोड़ों देवताओं के समूह के साथ भगवान ने समवसरण में प्रवेश किया। उस समय देव हजार हजार पंखुड़ियों वाले सुवर्ण के नौ कमल भगवाने के आगे-आगे रखने लगे। उनमें से दो-दो कमलों पर प्रभु पादन्यास करने लगे और और देवता उन कमलों को आगे आगे रखने लगे। भगवान ने पूर्व समवसरण के पूर्व दरवाजे से प्रवेश कर चैत्य वृक्ष की प्रदक्षिणा की और इसके बाद तीर्थों को नमस्कार कर सूर्य जिस तरह पूर्वाचल पर चढ़ता है उसी तरह भगवान पूर्वाभिमुख वाले सिंहासन पर चढ़कर सिंहासन पर आरूढ़ हुए। उस समय व्यन्तरों ने दूसरी तीन दिशाओं में तीन सिंहासन पर प्रभु के तीन प्रतिबिम्ब बनाये। उस समय चार भामंडल प्रकट हुए जो सूर्य के प्रकाश को भी मंद कर रहे थे। मेघ की तरह गम्भीर स्वर वाली दुंदुभि आकाश में वजने लगी और रत्नमय ध्वजा फरकने लगी।

इसके बाद वैमानिक देवियां पूर्व दिशा के द्वार से प्रवेश कर तीन प्रदक्षिणा कर तथा तीर्थ और तीर्थंकर को नमस्कार कर प्रथम गढ़ में साधु सध्वियों के लिए स्थान को छोड़कर अग्नि-

कोण में खड़ी हो गई। भवनपति, ज्योतिष्क और व्यन्तरों की देवियां दक्षिण द्वार से प्रवेश कर नैऋत्य कोण में तीर्थ और तीर्थंकर को नमस्कार करके खड़ी हो गई। भवनपति, ज्योतिषी और व्यन्तर देव पश्चिम दिशा के दरवाजे से प्रवेश कर वायव्यकोण में बैठ गये। वैमानिक देव, मनुष्य और स्त्रियां उत्तर दिशा के द्वार से प्रवेश कर ईशान कोण की दिशा में बैठ गये। दूसरे गढ़ में तिर्यंच प्राणी एक दूसरे के वैर को भूलकर समभाव से बैठ गये। तीसरे गढ़ में आने वाले लोगों की सवारियां रखी हुई थी।

इस प्रकार समवसरण की रचना हो जाने पर सौधर्मेन्द्र ने भगवान की स्तुति की।

हे विश्व संसार को अभय देने वाले ! हे प्रथम तीर्थंकर ! हे जगतारण ! आपकी जय हो'

अद्यावसर्पिणी लोक पद्माकर दिवाकर ।
त्वयि दृष्टे प्रभातं मे प्रनष्टतमसोऽभवत् ॥

अर्थ--आज इस अवसर्पिणी काल में जन्मे हुए लोग रूपी पद्माकर को सूर्य समान आपके दर्शनों से मेरा अंधकार नाश होकर प्रभात हुआ है।

भव्यजीवमनोवारि निर्मलीकारकर्मणि ।
वाणी जयति ते नाथ कतकक्षोदसोदरा ॥

'हे नाथ ! भव्यजीवों के मनरूपी जल को निर्मल करने की क्रिया में निर्मली जैसी आपकी वाणी की जय हो रही है।

तेषां दूरे न लोकाग्रं कारुण्य क्षीर सागर ।
समारोहंति ये नाथ ! त्वच्छासन महारथम् ॥

हे करुणा के क्षीर सागर ! आपके शासनरूपी महारथ में जो चढ़ते है उनके लिए लोकाग्र-मोक्ष दूर नहीं है ।

लोकाग्रतोऽपि संसारमग्रिमं देव मन्महे। निष्कारण जगद्बन्धुर्यत्र साक्षात्यमीक्ष्यसे।

निष्कारण जगत् बन्धु ! आप साक्षात् देखने में आते हैं इसलिए हम संसार को मोक्ष से भी अधिक मानते हैं।

सम्राट भरत इस तरह त्रिलोकवन्द्य भगवान की स्तुति करके अनुक्रम से पीछे सरक कर इन्द्रों के पीछे बैठ गये। तीर्थनाथ के प्रभाव से उस चार कोस के क्षेत्र में बारह प्रकार की परिषद् बिना किसी भेदभाव के बैठ गयी। उस समय समस्त भाषाओं को स्पर्श करने वाली पैंतीस अतिशय वाली एवं योजन गामिनी वाणी से देशना देना आरंभ किया।

सौधर्मेन्द्र भगवान की स्तुति कर विनम्र भाव से हाथ जोड़कर स्त्री मनुष्य और देवताओं के आगे भगवान के समीप बैठ गया।

माता मरूदेवी का निर्वाण

दीक्षा लेकर जब से भगवान विनीता नगरी से विहार कर गये थे तभी से माता मरुदेवी उनके कुशल समाचार प्राप्त न होने के कारण बहुत चिन्तातुर हो रही थीं। इसी समय भरत महाराज उनके चरण वन्दन करने के लिए गये। वह उनसे भगवान के विषय में पूछ ही रही थी कि इतने में यमक और शमक नाम के दो दूत भरत के पास आये उनमें से यमक नाम के दूत ने प्रणाम कर कहा–हे देव ! आज पुरिमताल नगर के शकटानन नाम के उद्यान में युगादिनाथ भगवान ऋषभ को केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न हुआ है।

शमक ने कहा–स्वामिन् ! आपकी आयुध शाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है।

तीसरे पुरुष ने आकर पुत्र जन्म की बधाई दी।

एक समय में तीन बधाइयां सुनकर भरत महाराज सोचने लगे–किस बधाई को प्राथमिकता देनी चाहिये ? फिर सब से पहले केवल ज्ञान मनाने का निश्चय कर भरत महाराज भगवान को वन्दन करने के लिए रवाना हुए। हाथी पर सवार होकर मरुदेवी माता भी साथ में पधारी।

समवसरण के नजदीक पहुँचने पर देवों के आगमन और केवल ज्ञान के साथ प्रकट होने वाले १ अशोक वृक्ष २ देवकृत अचित्त पुष्प वृष्टि ३ दिव्य ध्वनि ४ चँवर ५ सिंहासन ६ देव दुंदुभि और ७ भामण्डल ८ छत्र, इन अष्ट महाप्रातिहार्यों की विभूति को देखकर माता मरुदेवी को बहुत हर्ष हुआ। वह मन ही मन विचार करने लगी–मैं तो समझती थी कि मेरा ऋषभकुमार जंगल में गया

हैं। वह वन-वन में भटकता होगा, भूख प्यास सर्दी गर्मी का कष्ट उठाता होगा किन्तु मैं देख रही हूं कि ऋषभकुमार तो बड़े आनन्द में है और उसके पास तो बहुत ठाट लगा हुआ है। मैं वृथा मोह कर रही थी। इस प्रकार अध्यवसायों की शुद्धि के कारण माता मरुदेवी ने हाथी पर बैठे २ ही घाती कर्मों का क्षय करके केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त किया। उसी समय आयुकर्म भी क्षीण हो गया था अतः मां मरुदेवी ने वहीं निर्वाण प्राप्त कर लिया। देवों ने माता मरुदेवी का केवल ज्ञान और निर्वाण महोत्सव किया।

सम्राट भरत ने समवसरण में प्रवेश किया और भववान को वन्दन कर वह भगवान की इस प्रकार स्तुति करने लगे—

जयाखिलजगन्नाथ, जयविश्वाभयप्रद ।
जय प्रथमतीर्थेश, जयसंसारतारण ॥

अर्थः—हे अखिल विश्व के स्वामिन्, हे संसार को अभय देने वाले, हे प्रथम तीर्थंकर; हे जग के तारक आपकी जय हो।

भगवान की देशना सुनकर बहुत से मनुष्यों को वैराग्य उत्पन्न हो गया। उनमें भरत राजा के पुत्र ऋषभसेन आदि ८४ व्यक्ति मुख्य थे। इन्होंने भगवान से दीक्षा ग्रहण की। ब्राह्मी आदि अनेक स्त्रियों ने भी प्रव्रज्या ग्रहण की। सुन्दरी भी दीक्षा ग्रहण करना चाहती थी किन्तु भरत की आज्ञा न मिलने से उसने श्राविका व्रत ग्रहण कर प्रथम श्राविका पद प्राप्त किया। भरत पुत्र मरीचि ने भी भगवान से दीक्षा ग्रहण की। भरत ने श्रावक व्रत लिये। कइयों ने सम्यक्त्व ग्रहण किया तो कईयों ने श्रावक के व्रत ग्रहण किये। इसके बाद ऋषभसेन पुण्डरीक आदि ८४ गणधरों का उत्पाद, व्यय, और ध्रौव्य की त्रिपदी भगवान ने स्वयं सुनाई और उन्होंने भी त्रिपदी के अनुसार (८४ गणधरों ने) चौदह पूर्व सहित द्वादशांगी की रचना की। तदनन्तर भगवान ने द्रव्यगुण पर्याय और नय से अनुयोग तथा गण की आज्ञा प्रदान की। उस समय देव देवेन्द्रों मनुष्यों ने जय घोषणा की। आकाश में देव दुंदुभियां बज उठीं। इसके बाद गणधर भगवान की वाणी सुनने के लिए उद्यत हुए तब भगवान ने पूर्वाभिमुख दिव्य सिंहासन पर बैठकर गणधरों को उपदेश देना आरम्भ किया। प्रथम पहर तक भगवान ने अस्खलित रूप से उपदेश सुनाकर अपनी देशना समाप्त की। इसके बाद तीर्थंकर भगवान उठे और उत्तर द्वार से निकल कर दूसरे भाग

में बनाये गये देवछंद में जाकर विश्राम किया। इसके बाद गणधरों में मुख्य ऋषभसेन गणधर ने भगवान के चरणपीठ पर बैठकर तीर्थंकर प्रभु के प्रभाव से संशयों का विनाश करने वाली देशना आरम्भ की और दूसरी पौरुषी के पूर्ण होने पर ऋषभसेन गणधर ने देशना समाप्त की। इसके बाद देव मनुष्य और तिर्यंचों की विशाल परिषद् भगवान को वन्दन कर अपने-अपने घर चली गई।

इसके पश्चात् चौतीस अतिशयों से युक्त भगवान ऋषभदेव ने अपने विशाल साधु साध्वियों के परिवार सहित उस स्थान से दूसरी जगह विहार कर दिया। भगवान जहां भी पधारते थे सर्वत्र शान्ति छा जाती थी। हवा अनुकूल बहने लगती थी दुर्भिक्ष अतिवृष्टि स्वचक्र परचक्र महामारी आदि बीमारियों के कष्ट से जनता मुक्त रहती थी।

अठानवे पुत्रों की प्रव्रज्या—

यह पहले ही कहा जा चुका है कि भगवान ऋषभदेव ने अपने सौ पुत्रों को अलग २ राज्य देकर प्रव्रज्या ग्रहण की थी। भरत ने छहों खण्डों पर आधिपत्य प्राप्त कर लिया था। किन्तु अपने ९९ भाइयों के राज्य पर आधिपत्य न मिलने से वे चक्रवर्ती पद से वंचित हो रहे थे। अतः उन्होंने अपने ९९ भाइयों को आज्ञानुवर्ती बनाने का निश्चय किया। तदनुसार उन्होंने ९९ भाइयों को अपने अधीन करने के लिए अलग-अलग दूत भेजे। दूतों के मुख से भरत के आधिपत्य को स्वीकार करने की बात सुनकर वे सबके सब क्रुद्ध हुए। उन्होंने परस्पर मिलकर विचार किया कि हमें अपनी स्वतंत्रता के लिए भरत से युद्ध करना चाहिये या उनका आधिपत्य स्वीकार करना चाहिये। वे इस बात का निर्णय नहीं कर सके। अंततः उन्होंने यही विचार किया कि—हमें अपने पिता के पास पहुँचना चाहिये क्योंकि पिता ने ही हमें राज्य के हिस्से प्रदान किये हैं तो भरत को हमारे राज्य लेने का क्या अधिकार है? यह विचार कर ९९ भाई भगवान के पास पहुँचे।

"तेणं समएणं भगवं अट्ठावयमागओ विहरमाणो तत्थ सव्वे समोसरिया कुमारा"

आवश्यक मलयगिरि पृ० २३१

उस समय भगवान ऋषभदेव अष्टापद पर्वत पर विराजमान थे। उन कुमारों ने भगवान को वन्दन कर नम्र भाव से कहा—भगवन्! आपके द्वारा दिये गये राज्य पर भरत अपना अधिकार जमाना चाहता है।

"ताहे भणंति-तुब्भेहिं दिएणाति रज्जाइं हरति भाया तो किं करेमो किं जुज्झामो उदाउ आयाणामो ?

आवश्यक मलगिरि पृ० २३१

अतः भगवन् ! हमें क्या करना चाहिये ? क्या हम उससे युद्ध करें या उसकी आज्ञा को स्वीकार करलें ? बिना युद्ध किये उसकी आज्ञा को स्वीकार करना तो कायरता है और अपने बड़े भ्राता के साथ युद्ध करना भी तो अयोग्य है। भाई की राज्य लिप्सा बढ़ रही है। वह चक्रवर्ती बनने की लालसा में अपने लघु भ्राताओं के प्रति अपने कर्त्तव्य को भी भूल गया है। क्या दावाग्नि की तरह बढ़ रही उसकी राज्य लिप्सा को शान्त करने के लिये हम अपने राज्य को उसको दे दे। बताइए, ऐसी अवस्था में हमें क्या करना चाहिये ?

भगवान ने कहा–पुत्रो ! बाहरी शत्रुओं को जीतने की अपेक्षा आंतरिक शत्रुओं को जीतने वाला सबसे वीर योद्धा होता है। 'एगं जिणेज्ज अप्पाणं एस से परमो जओ' क्रोध, मान, माया और लोभ, ये ही हमारे भयंकर शत्रु हैं जो हमसे अविनाशी मोक्ष रूपी लक्ष्मी को सदा छीनने का प्रयत्न करते हैं। भौतिक राज्य लक्ष्मी तो अनेक बार मिल चुकी है। उसे पुनः पुनः प्राप्त करना आसान है किन्तु मोक्ष रूपी राज्य लक्ष्मी जब मानव को मिल जाती है तो वह कभी नष्ट नहीं होती। अतः भौतिक विनाशशील राज्य से अध्यात्मिक अविनाशी राज्य महान् है। सांसारिक क्षण भंगुर सुखों की अपेक्षा शाश्वत आध्यात्मिक सुख अधिक लाभ प्रद है। अतः हे पुत्रो ! दीर्घकालीन अपार स्वर्गीय सुखों से भी जब तृष्णा शान्त नहीं हुई तो इस तुच्छ अल्पकालीन राज्य से कैसे हो सकती है इस बात को समझाने के लिये मैं एक लकड़हारे का उदाहरण देता हूँ उसे ध्यान पूर्वक सुनो—

"ताहे इंगालदाहगदिट्ठंतं कहेति, जहा एगो इंगालदाहगो, सो एगं भायणं पाणियस्स भरेऊण गतो, तं तेण उदगं निट्ठवितं, उवरिं आदिच्चो पासे अग्गी पुणो परिस्समो दारुगाणि कोट्टेन्तस्स घरं गतो तत्थ पाणितं पीतो, एवं सव्वाणि पहुवगाणि कूवतलायनदिदहसमुद्दा य सव्वे पीता ण य तण्हा छिज्जति, ताहे एगम्मि जुण्णकूवे विरस-पाणिए जुण्णकूवभित्तिं तणपूलितं गहाय उस्सिंचति, जं पडितसेसं तं जीहाए लिहति, से

केस णं ! एवं तुब्भेहिवि अणंतरं सव्वट्ठे अणुत्तरा सव्वेऽवि सव्वलोए सद्दफरिसा अणुभूतपुव्वा तहवि तित्ति ण गता। तो णं इमे माणुस्साए असुइए तुच्छे अप्पकालिए विरसे काम भोगे अभिलसह. एवं वेयालियं णाम अज्झयणं भासंति "संबुज्झह किन्न बुज्झह"

आवश्यक चूर्णि पृ० २०९-२१०

एक लकड़हारा था। वह प्रतिदिन जंगल में जाकर लकड़ियां काटता और उन्हें जलाकर उनका कोयला बनाता था। बाजार में कोयला बेचकर अपनी आजीविका करता था।

एकबार वह भीषण गर्मी में थोड़ासा पानी लेकर जंगल में गया। वहां उसने सूखी लकड़ियां एकत्रित की। कोयला बनाने के लिए उन लकड़ियों में आग लगा दी। सूर्य भंयकर तप रहा था। धूप में दारूण परिश्रम करने के कारण उसे बड़ी प्यास लगी। साथ में जो थोड़ा सा पानी लाया था उसे पी गया पर प्यास शान्त नहीं हुई। अब वह जंगल में इधर उधर पानी की खोज करने लगा। खोज करने पर भी उसे पानी नहीं मिला। पास में कोई गांव भी नहीं था, प्यास से गला सूख रहा था। घबराहट बढ़ रही थी। कुछ विश्राम पाने के लिए वह एक वृक्ष की शीतल छाया में सो गया। उसे वहीं नींद आ गई। उसने स्वप्न में यह देखा कि वह घर पहुँच गया है। घर में जितना पानी था वह सब का सब पी गया। फिर भी उसकी प्यास न बुझी। तब वह कुए पर गया। कुए में जितना पानी था वह भी सब पी गया फिर भी प्यासा का प्यासा ही रहा। अन्त में वह तालाब नदी नाले के समस्त जल को पीते हुए समुद्र पर पहुँचा। समुद्र का भी उसने सारा जल पी लिया फिर भी उसकी तृषा शान्त नहीं हुई। तब वह जल रहित किसी पुराने कुए पर पहुचा। वहां पानी तो नहीं था किन्तु भीगे हुए तिनको को देख कर उसका मन ललचाया। उसने उन भीगे हुए तिनको को निचोड़ कर उसका पानी निकाला। जो पानी नीचे पड़ता था वह उसे जीभ से चाटता था और अपनी प्यास बुझाने का प्रयत्न करता इतने में उसकी नीद टूट गई।

भगवान ने इस कथा का सारांश बताते हुए कहा–पुत्रो ! जिस व्यक्ति की कुए, नदी, तालाब और समुद्र से भी प्यास शांत नहीं हो सकी तो क्या उन भीगे हुए तिनकों से उसकी प्यास शान्त हो सकती है ?

पुत्रों ने कहा—भगवन् कदापि नहीं। भगवान ने पुनः कहा—पुत्रों राज्य लक्ष्मी से तृषा को शांत करने का प्रयत्न उस लकड़हारे द्वारा भीगे हुए तिनकों को निचोड़कर उससे प्यास शांत करने के प्रयत्न के समान है। दीर्घकालीन अपार स्वर्गीय सुखों को अनंतवार भोगकर भी यह जीव तृप्त नहीं हुआ तो वह अल्पकालीन राज्य में कैसे तृप्त हो सकता है ? अतः सम्बोधि को प्राप्त करो। भगवान ने उस समय अपने पुत्रों को जो उपदेश दिया था वह सूत्रकृतांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध के द्वितीय 'वैतालीय' नामक अध्ययन में उल्लखित है। पाठक इस सारपूर्ण उपदेश को वहां देख लें ।

भगवान के इस उपदेश से ९८ पुत्रों को वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने भगवान के समीप प्रव्रज्या ग्रहण करली। प्रव्रज्या ग्रहण कर संयम की कठोर साधना में प्रवृत्त हो गये। अन्त में केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त कर मोक्षगामी बने ।

वाहुवली का भरत के साथ युद्ध और प्रवज्या—

भरत चक्रवर्ती का सन्देश तक्षशिला के राजा वाहुवलि के पास भी पहुंचा। वाहुवलि जैसे नाम वैसे ही गुण वाले अत्यन्त शूर वीर प्रतापी राजा थे। उन्होंने प्रजा के मन को जीत लिया था। उन्हें भरत के अधीन रहना पसंद नहीं था। वे दूत द्वारा संदेश पाकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और दूत को अपमानित कर कहा—पिताजी ने जिस प्रकार भरत को अयोध्या का राज्य दिया है उसी प्रकार मुझे तक्षशिला का राज्य दिया है। जो राज्य मुझे पिताजी से प्राप्त हुआ है उसे छिनने का भरत को क्या अधिकार है ? अगर भरत को अपनी शक्ति का इतना अभिमान है तो उसका जवाब तलवार से दिया जायगा। जाओ, तुम अपने स्वामी भरत को कह दो कि वाहुवलि भरत के शासन में रहने के लिए तैयार नहीं है ।

दूत भरत के पास पहुंचा। उसने वाहुवलि का सन्देश कह सुनाया। भरत वाहुवलि के संदेश से अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने अपनी सेना सजाई और वाहुवलि के राज्य पर आक्रमण करने के लिए प्रयाण कर दिया। वाहुवली ने भी अपनी सेना के साथ आकर सामना किया। एक दूसरे के रक्त की प्यासी बनकर दोनों सेनाएं मैदान में आकर डट गई। एक दूसरे पर आक्रमण करने लिए सेनाएं अपने-अपने सेनापतियों की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगी।

सौधर्मेन्द्र ने जब दोनों महाबलियों को युद्ध के मैदान में युद्ध के लिए तैयार देखा तो उनके पास आकर कहा—"आप दोनों निजी स्वार्थ के लिए सेना का संहार क्यों कर रहे हों ? यदि लड़ना ही है तो आपस में लड़कर हार-जीत का फेसला करलो । व्यर्थ मानव रक्त बहाने से क्या लाभ ? दोनों भाइयों को इन्द्र की बात पसन्द आई । दोनों के बीच दृष्टि युद्ध, वाक् युद्ध और मुष्टि युद्ध होना निश्चित हुआ । पहले युद्धों में बाहुबली की जीत हुई, फिर मुष्टि युद्ध की वारी आई । वाहुबली की भुजाओं में बहुत बल था । उसे अपनी विजय में विश्वास था । उसने भरत के प्रथम मुष्टि प्रहार को सह लिया । इसके बाद स्वयं प्रहार करने के लिए बाहुबली ने मुठ्ठी उठाई तो इन्द्र ने सोचा—बाहुबली बडे शक्तिशाली व्यक्ति हैं । बाहुबली के प्रहार से भरत जमीन में गढ़ जायेंगे और यह चक्रवर्ती पद के लिए लांछन होगा । यह सोच उन्होंने वाहुवली की मुट्ठी को ऊपर ही पकड़ लिया और कहा—"बाहुबली ! यह क्या कर रहे हो ! वडे भाई पर हाथ उठाना क्या तुम्हें शोभा देता है ? तुच्छ राज्य के लिए क्रोध के वशीभूत होकर तुम कितना बड़ा अनर्थ करने जा रहे हो, यह सोचो तो सही ।"

वाहुवली एक दम रुक गये । उनकी मुट्ठी उठी की उठी रह गई । वे सोचने लगे—"अरे भरतेश्वर की तरह मैं भी राज्य में लुब्ध होकर ज्येष्ठ बन्धु को मारने के लिए तत्पर हो रहा हूँ । हा इस पापिनी तृष्णा ने कितना अनर्थ कराया ! जिस पिता ने राज्य वैभव को तृण की तरह त्याग दिया है और जिन छोटे भाइयों ने इसे उच्छिष्ट की तरह छोड़ दिया, उसी के लिए मैं अपने वडे भाई को मारने के लिए झपट रहा हूँ । धिक्कार हैं मुझे ।"

इस प्रकार कह कर उठाये हुए मुक्के को अपने सिर पर उतारकर केशों का लोच कर लिया और संयम स्वीकार कर लिया । देवों ने जय ध्वनि के साथ पुष्प वर्षा की ।

वाहुवली का यह सहसा परिवर्तन देखकर और संयम मार्ग की ओर प्रवृत्त हुआ देखकर भरतेश्वर वडे लज्जित हुए और अश्रुपात करते हुए वाहुबली के चरणों में गिर पड़े और बार २ अपने दुष्कृत्य के लिए पश्चात्ताप करते हुए कहने लगे—

मुनि श्रेष्ठ ! आप सचमुच विजयी हैं । आपने केवल भौतिक शत्रु पर ही नहीं किन्तु आध्यात्मिक शत्रुओं पर भी विजय प्राप्त कर लिया है । आप सचमुच धन्य हैं । आप वय में मुझ

से छोटे होते हुए भी गुणों में सर्वश्रेष्ठ हो । मैं अपनी लोभ वृत्ति से लज्जित हूँ । आप महान् हैं । आपका त्याग महान् है । आपही महान् पिता के महान् पुत्र हैं । जो पिता के मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं । जिस दिन मैं आपके पथ का अनुगामी बनूंगा वह दिन मेरे लिए भी धन्य होगा ।"

इस प्रकार पश्चात्ताप करते हुए भरतेश्वर वहां से हटे और बाहुबली के पुत्र चन्द्रयश को उस पर स्थापित करके अपनी राजधानी लौट आये ।

प्रव्रज्या ग्रहण कर बाहुबलीजी तपस्या करने के लिए वन में चले गये । मार्ग में उन्होंने सोचा मेरे छोटे भाइयों ने भगवान के पास पहले से ही दीक्षा धारण कर रखी है । अभी मैं उनके पास जाऊँगा तो उनको वन्दन करना पड़ेगा, अतः मुझे केवली बनकर ही भगवान के समवसरण में पहुँचना चाहिये । इस अभिमान को लिए बाहुबलीजी वन में ध्यान करने लगे ।

निर्जल और निराहार ध्यान करते हुए एक वर्ष बीत गया । सारे शरीर पर लताएँ छा गईं । पंछियों ने उनके शरीर पर घोंसले बना डाले किन्तु अहंभाव लिए तपस्वी बाहुबली निश्चल ध्यान में लीन रहे ।

बाहुबली की यह अवस्था देखकर भगवान ऋषभदेव ने उन्हें समझाने के लिए साध्वी ब्राह्मी और सुन्दरी को उनके पास भेजा । दोनों साध्वियों ने लताओं से आच्छादित बाहुबलीजी को खोज निकाला और पास में आकर कहने लगी—

वीरा मारा गज थकी ऊतरो ।
गज चढ्या केवल न होसी रे ।। इत्यादि

अपनी बहनों के उपालंभपूर्ण शब्द सुन कर बाहुबली चौंक उठे, मन ही मन सोचने लगे—"क्या मैं सचमुच हाथी पर बैठा हूं । हाथी, घोड़े राज्य, स्वजन, परिजन आदि सबको छोड़कर ही मैंने दीक्षा ली है ? फिर हाथी की सवारी कैसी ? हाँ, समझ में आया । मैं अहंकार रूपी हाथी पर बैठा हूँ । मेरी बहिनें ठीक कह रही हैं । मैं कितने भ्रम में था । छोटे और बड़े की कल्पना तो सांसारिक जीवों में होती है । आध्यात्मिक जगत में वही बड़ा है जिसने आत्मा का पूर्ण विकास कर लिया है । मेरी आत्मा में अहंकार आदि अनेक दोष हैं और मेरे अनुज उनसे मुक्त हैं । अतः मुझे

भगवन् ! जैसे इस भरत खंड में आप जगत का हित करते हैं वैसे कितने तीर्थंकर और चक्रवर्ती इस भूमंडल पर होंगे ?

भगवान ने कहा–मेरे बाद इस भरत खंड में तेवीस अर्हत् और होंगे। और तुम्हारे बाद ग्यारह चक्रवर्ती होंगे। उनमें बीसवें और बाईसवें तीर्थंकर गौतम गोत्र के और शेष तीर्थंकर काश्यप गोत्र के होंगे। सभी चक्रवर्ती काश्यप गोत्र के और सुवर्ण की सी कान्तिवाले होंगे। तीन खंड पर आधिपत्य करने वाले नौ वलदेव और नौ वासुदेव होंगे।

यह सुनने के बाद पुनः चक्रवर्ती भरत ने पूछा–भगवन् ! इस समसरण में भी ऐसा कोई जीव हैं जो आपकी तरह धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाला तीर्थंकर होगा ?

भगवान ने कहा–भरत ! यह तुम्हारा पुत्र मरीचि, जो इस समय परिव्राजक धर्म का उपदेश करता है, अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान के नाम से होगा। त्रिपृष्ठ नामका प्रथम वासुदेव और प्रिय मित्र नाम का चक्रवर्ती होगा। यह सुनकर भरत बड़े प्रसन्न हुए और भावी तीर्थंकर को वन्दन करने के लिए मरीचि के पास पहुँचे। मरीचि को प्रणाम करते हुए भरत कहने लगे–मरीचि ! तुम त्रिपृष्ठ नाम के प्रथम वासुदेव और महाविदेह क्षेत्र में प्रिय मित्र नाम के चक्रवर्ती होओगे। यह जानकर मैं तुम्हारे वासुदेव पद को या चक्रवर्ती पद को वन्दन नहीं करता और न तुम्हारे परिव्राजकत्व को ही प्रणाम करता हूँ किन्तु तुम इस अवसर्पिणी काल के चौवीसवे तीर्थंकर बनोगे और भगवान ऋषभदेव की तरह ही तुम धर्म–तीर्थ का प्रवर्तन करोगे इसीलिए तुम्हें वन्दन करता हूँ। वन्दना कर भरत चक्रवर्ती अयोध्या लौट गये।

भरत चक्रवर्ती के मुख से यह वात सुनकर मरीचि बड़े प्रसन्न हुए और जोर-जोर से तालियाँ वजा वजाकर नाचने लगे और कहने लगे–में वासुदेवों में प्रथम वासुदेव और विदेह में चक्रवर्ती होऊँगा। सब अर्हन्तों में मेरे दादा प्रथम अरिहंत है। मेरे पिता प्रथम चक्रवर्ती हैं और मैं अन्तिम तीर्थंकर होऊँगा। मेरा कुल कैसा श्रेष्ठ है ! इस प्रकार अपने कुल का अभिमान करते हुए

परिभ्रमण करते हुए अपना निर्वाण काल समीप जानकर अष्टापद पर्वत पर पधारे। वहाँ दस हजार मुनियों के साथ चतुर्दश भक्त (छ उपवास) करके पादोपगमन अनशन किया।

उसभे णं अरहा वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता तेवट्ठि पुव्वसय-सहस्साइं महारज्जवासमज्झे वसित्ता तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगारवास मज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, उसभेणं अरहा एगं वाससहस्सं छउमत्थ परिआयं पाउणित्ता एगं पुव्वसयसहस्सं वाससहस्सूणं केवलिपरिआयं पाउणित्ता एग पुव्वसयसहस्सं बहुपडिपुण्णं सामण्ण परिआयं पाउणित्ता चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता जे से हेमंताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे माहबहुले तस्स णं माहबहुलस्स तेरसीपक्खेणं दसहिं अणगारसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे अट्ठावयसेलसिहरंसि चोद्दसमेणं भत्तेणं अपाणएणं संपलिअंकणिसण्णे पुव्वण्हकालसमयंसि अभीइणा णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं सुसमदूसमाए समाए एगूणणवउईहिं पक्खेहिं सेसेहिं कालगए वीइक्कंते जाव सव्वदुक्खपहीणे। तं समयं च णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणे चलिए पासइ पासित्ता ओहिं पउंजइ पउंजित्ता भयवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ आभोइत्ता एवं वयासी परिणिव्वुए खलु जंबुदीवे दीवे भरहेवासे उसहे अरहा कोसलिए, तं जीअमेयं तीअपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं तित्थगराणं परिणिव्वाणमहिमं करेत्तए, तं गच्छामि णं अहंपि भगवतो तित्थगरस्स परिणिव्वाणमहिमं करेमि त्तिकट्टु वंदइ णमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता चउरासीईए सामाणिअसाहस्सीहिं, तायत्तीसाए तायत्तीसएहिं, चउहिं लोगपालेहिं, जाव चउहिं चउरासीईहिं आयरक्ख देवसाहस्सीहिं अण्णेहिं अ बहूहिं सोहम्मकप्प-वासीहिं वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ सद्धिं संपरिवुडे ताए उक्किट्ठाए जाव तिरिअमसंखे-ज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं जेणेव अट्ठावयपव्वए जेणेव भगवओ तित्थगरस्स सरीरए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता विमणे णिराणंदे अंसुपुण्णणयणे तित्थयर सरीरयं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयहिणं करेइ करित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे जाव पज्जुवासइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया उत्तरद्धलोगाहिवई अट्ठावीस विमाणसयसहस्साहिवई सूलपाणी वसहवाहणे सुरिंदे अयरंबरवत्थधरे जाव विउलाइं भोग भोगाइं भुंजमाणे विहरइ, तए णं तस्स ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणं चलइ, तए णं

से ईसाणे देवराया आसणं चलियं पासइ पासित्ता ओहिं पउंजइ पउंजित्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ आभोइत्ता जहा सक्के निअगपरिवारेणं भाणेयव्वो जाव पज्जुवासइ। एवं सव्वे देविंदा जाव अच्चुए णिअग परिवारेणं आणेअव्वा एवं जाव भवणवासीणं इंदा वाणमंतराणं सोलस जोइसिआणं दोण्णि निअगपरिवारा णेअव्वा। तए णं सक्के देविंदे देवराया बहवे भवणवइवाणमंतर जोइसवेमाणिए देवे एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ णंदणवणाओ सरसाइं गोसीसवर चंदणकट्ठाइं साहरह साहरित्ता तओ चिइगाओ रएह- एगं भगवओ तित्थगरस्स एगं गणधराणं एगं अवसेसाणं अणगाराणं। तए णं ते भवणवइ जाव वेमाणिआ देवा णंदणवणाओ सरसाइं गोसीसवरचंदण कट्ठाइं साहरंति साहरित्ता तओ चिइगाओ रएंति एगं भगवओ तित्थगरस्स एगं गणहराणं एगं अवसेसाणं अणगाराणं। तए णं से सक्के देविंदे देवराया आभिओगे देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! खीरोदग समुद्दाओ खीरोदगं साहरह! तए णं ते आभिओगा देव खीरोदग समुद्दाओ खीरोदगं साहरंति तए णं से सक्के देविंदे देवराया तित्थगरसरीरगं खीरोदगेणं ण्हाणेति ण्हाणेत्ता सरसेणं गोसीसवर चंदणेणं अणुलिंपइ अणुलिंपइत्ता हंसलक्खणं पडसाडयं णिअंसेइ णिअंसित्ता सव्वालंकारविभूसियं करेंति तए णं ते भवणवइ जाव वेमाणिआ गणहर-सरीरगाइं अणगारसरीरगाइं पि खीरोदगेणं ण्हावंति ण्हावित्ता सरसेणं गोसीसवर चंदणेणं अणुलिंपति अणुलिंपित्ता अहताइं दिव्वाइं देवदूसजुअलाइं णिअंसंति णिअंसित्ता सव्वालंकार विभूसिआइं करेंति।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया ते बहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! ईहामिग उसभतुरय जाव वणलय भत्ति चित्ताओ तओ सिबियाओ विउव्वह एगं भगवओ तित्थगरस्स एगं गणहराणं, एगं अवसेसाणं अणगाराणं। तए णं ते बहवे भवणवइ जाव वेमाणिआ तओ सिबिआओ विउव्वंति, एगं भगवओ तित्थगरस्स एगं गणहराणं; एगं अवसेसाणं अणगाराणं।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया विमणे णिराणंदे अंसुपुण्णणयणे भगवओ तित्थगरस्स विणट्ठ जम्मजरामरणस्स सरीरगं सीअं आरुहेति आरुहित्ता चिइगाए ठवेइ। तए णं ते बहवे भवणवइ जाव वेमाणिआ देवा गणहराणं अणगाराण य विणट्ठ जम्मजरामरणाणं

सरीरगाइं सीअं आरुहेंति, आरुहित्ता चिइगाए ठवेंति। तए णं से सक्के देविंदे देवराया अग्गिकुमारे देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! तित्थगर चिइगाए जाव अणगार चिइगाए अगणिकायं विउव्वह-विउव्वित्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह, तए णं ते अग्गिकुमारा देवा विमणा णिराणंदा अंसुपुण्णणयणा तित्थगरचिइगाए जाव अणगारचिइगाए अ अगणिकायं विउव्वंति, तए णं से सक्के देविंदे देवराया वाउकुमारे देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! तित्थगर चिइगाए जाव अणगार चिइगाए अ वाउकायं विउव्वह विउव्वित्ता अगणिकायं उज्जालेह, तित्थगर सरीरगं गणहरसरीरगाइं अणगारसरीरगाइं च झामेह। तए णं ते वाउकुमारा देवा विमणा णिराणंदा अंसुपुण्णणयणा तित्थगरचिइगाए जाव विउव्वंति अगणिकायं उज्जालंति तित्थगरसरीरगं जाव अणगारसरीरगाणि अ झामेंति। तए णं से सक्के देविंदे देवराया ते बहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! तित्थगर चिइगाए जाव अणगारचिइगाए अगरु तुरुक्कघयमधुं च कुंभग्गसो अ भारग्गसो अ साहरह, तए णं ते भवणवइ जाव तित्थगर जाव भारग्गसो अ साहरंति, तए णं से सक्के देविंदे देवराया मेहकुमारे देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एव वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया। तित्थगरचिइगं जाव अणगारचिइगं च खीरोदगेणं णिव्वावेह। तए णं ते मेहकुमारादेवा तित्थगरचिइगं जाव णिव्वावेंति। तए णं से सक्के देविंदे देवराया भगवओ तित्थगरस्स उवरिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ, ईसाणे देविंदे देवराया उवरिल्लं वामं सकहं गेण्हइ, चमरे असुरिंदे असुरराया हिट्ठिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ, बली वइरोयणिंदे वइरोअणराया हिट्ठिल्लं वाम सकहं गेण्हइ, अवसेसा भवणवइ जाव वेमाणिआ देवा जहारिहं अवसेसाइं अंगमंगाइं, केई जिणभत्तीए, केई जीअमेअंति कट्टु केइ धम्मोत्तिकट्टु गेण्हंति। तए णं से सक्के देविंदे देवराया बहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे जहारिहं एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! सव्वरयणामए महइमहालए तओ चेइअथूभे करेह, एगं भगवओ तित्थगरस्स चिइगाए, एगं गणहरचिइगाए एगं अवसेसाणं अणगाराणं चिइगाए। तए णं ते बहवे जाव करेंति। तए णं ते बहवे भवणवइ जाव वेमाणिआ देवा तित्थगरस्स परिणिव्वाणमहिमं करेंति करित्ता जेणेव नंदिसरवरे दीवे तेणेव उवागच्छंति। तए णं से सक्के देविंदे देवराया पुरच्छिमिल्ले अंजणगपव्वए अट्ठाहियं महामहिमं करेति। तए णं सक्कस्स

देविंदस्स० चत्तारि लोगपाला चउसु दहिमुहग पव्वएसु अट्ठाहियं महामहिमं करेंति ईसाणे देविंदे देवराया उत्तरिल्ले अंजणगे अट्ठाहिअं, तस्स लोगपाला चउसु दहिमुहगेसु अट्ठाहिय। चमरो अ दाहिणिल्ले अंजणगे तस्स लोगपाला दहिमुहग पव्वएसु बली पच्चत्थिमिल्ले अंजणगे तस्स लोगपाला दहिमुहगेसु, तए णं ते बहवे भवणवइ वाणमंतर जाव अट्ठाहिआओ महामहिमाओ करेंति करित्ता तेणेव साइं साइं विमाणाइं जेणेव साइं साइं भवणाइं जेणेव साओ साओ सभाओ सुहम्माओ जेणेव सगा सगा माणवगा चेइअ खंभा तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु जिणसकहाओ पक्खिवंति पक्खिवित्ता अग्गेहिं वरेहिं मल्लेहिं अ गंधेहिं अ अच्चेति अच्चित्ता विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

भगवान का परिनिर्वाण—

अर्थ—उस काल और उस समय में अर्हन् कौशलिक ऋषभदेव भगवान बीस लाख पूर्व कुमारावस्था में रह कर, त्रेसठ लाख पूर्व राजावस्था में रहकर, तिरासी लाख पूर्व गृहस्थावस्था में रहकर, एक हजार एक वर्ष छद्मस्थ पर्याय को पाल कर, एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व तक केवली पर्याय पाल कर, एक लाख पूर्व चारित्र पर्याय पालकर और चौरासी लाख पूर्व का सर्वायु पालकर वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म के क्षय हो जाने पर इसी अवसर्पिणी में सुषमदुषम नामक तीसरा आरा बहुतसा बीत जाने पर तीन वर्ष और साढ़े आठ महीने शेष रहने पर अर्थात् तीसरे आरे के नवासी पक्ष शेष रहने पर, शरद ऋतु के तीसरे महीने और पांचवे पक्ष में माघ मास की कृष्ण त्रयोदशी के दिन अष्टापद पर्वत के शिखर पर दश हजार साधुओं के साथ चौविहार छह उपवास का तप करके अभिजित् नामक नक्षत्र में चन्द्रयोग प्राप्त होने पर प्रातः समय पल्यंकासन से बैठे हुए निर्वाण को प्राप्त हुए। यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

जिस समय ऋषभ अरिहंत कौशलिक काल धर्म को प्राप्त हुए, संसार के कार्य से निवृत्त हुए, जन्म जरा मरण के बन्धन से रहित हुए, सिद्ध बुद्ध मुक्त यावत् समस्त दुःखों से रहित बने, उस समय शक्र देवेन्द्र देवराज का आसन चलायमान हुआ आसन के चलायमान होने पर इन्द्र ने अवधि ज्ञान में तीर्थंकर भगवान को देखा और बोला जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में ऋषभ अर्हंत

कौशलिक परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये है अतः परिनिवृत्त भगवान का निर्वाण महोत्सव करना अतीत अनागत और वर्तमान के शक्र देवेन्द्र देवराज का जीताचार हैं। अतः मैं भी तीर्थंकर भगवान का परिनिर्वाण महोत्सव करने के लिए जाऊँ। ऐसा विचार करके उसने भगवान को वन्दन नमस्कार किया और चौरासी हजार सामानिक देव, तेतीस त्राय-स्त्रिंश देव चार लोकपाल यावत् ३६००० आत्म रक्षक देव और अन्य बहुत से सौधर्म देवलोक-वासी वैमानिक देव और देवियों के परिवार से घिरा हुआ वह उत्कृष्ट दिव्य देवगति से तिर्यंग लोक के असंख्यात द्वीप समुद्र को लांघता हुआ जहां अष्टापद पर्वत था और जहां तीर्थंकर भगवान का शरीर था वहां आया। और निरानन्द अश्रुपूर्ण नेत्र से भगवान के शरीर की तीन बार प्रदक्षिणा कर न अतिदूर और न अति निकट हाथ जोड़ भगवान की पर्युपासना करने लगा।

उस काल उस समय में उत्तरार्द्ध का अधिपति अट्ठाईस हजार विमान का स्वामी, हाथ में त्रिशूल धारण करने वाला, वृषभ वाहन वाला देवताओं का इन्द्र, रज रहित श्रेष्ठ वस्त्र धारण करने वाला देवों का इन्द्र, देवों का राजा ईशानेन्द्र यावत् विपुल भोग भोगता हुआ विचरता था। उस समय उसका भी आसन चलायमान हुआ। अपने आसन के चलायमान होने पर उसने अवधिज्ञान लगाया। अवधिज्ञान में उसने भगवान तीर्थंकर का परिनिर्वाण देखा। वह तत्काल शक्रेन्द्र की तरह अपने समस्त देव देवियों के परिवार के साथ अत्यन्त शीघ्र गति से अष्टापद पर्वत पर पहुंचा। वहां अश्रुपूर्ण नेत्रों से निरानन्दमय हो उसने भगवान के शरीर की तीन बार प्रदक्षिणा की और हाथ जोड़कर न अति दूर और न अति नजदीक भगवान के पास खड़ा होकर उनकी पर्युपासना करने लगा इसी तरह अच्युत तक के सभी इन्द्र भगवान के पास उपस्थित हुए और उनकी पर्युपासना करने लगे। इसी प्रकार भवनवासियों के बीस इन्द्र वाण व्यंतरों के सोलह इन्द्र, ज्योतिषी देवों के दो इन्द्र, ये सब अपने अपने परिवार के साथ भगवान के पास आये और उनके शरीर की तीन बार साश्रुपूर्ण नयनों से प्रदक्षिणा कर उनकी पर्युपासना करने लगे।

उस समय शक्र देवेन्द्र देवराज ने भवनपति वाणमंतर ज्योतिषी और वैमानिक देवों को बुलाकर कहा हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही नन्दन वन में जाकर श्रेष्ठ गोशीर्ष चन्दन के काष्ठ ले आओ और उनकी तीन चिताएँ बनाओ। जिनमे एक तीर्थंकर भगवान के लिए, दूसरी गणधरों के लिए

एवं तीसरी अन्य अनगारों के लिये हो। शक्रेन्द्र की आज्ञा पाते ही उन देवों ने नन्दन वन से गोशीष चन्दन के काष्ठ लाकर उसकी तीन चिताएं बनाई और यह आज्ञा उन्हें वापिस करदी। तदनन्तर शक्रेन्द्र ने अपने आभियोगिक देवों को बुलाया और उन्हें क्षीरोदक समुद्र में से क्षीरोदक लाने की आज्ञा दी। आभियोगिक देवों ने इन्द्र की आज्ञा से क्षीरोदक उपस्थित किया। इसके बाद इन्द्र ने क्षीरोदक से भगवान को नहलाया और उनके शरीर पर श्रेष्ठ गोशीर्ष चन्दन का लेप किया। हंस लक्षण वाला वस्त्र ओढ़ाया और सर्व अलंकारों से विभूषित किया। इसके बाद वैमानिक ज्योतिषी भवनपति आदि देवों ने गणधर शरीर को तथा अन्य साधुओ के शरीर को क्षीरोदक से स्नान कराया। और उनके शरीर पर गोशीर्ष चन्दन का लेप किया। उन्हें दिव्य देव दूष्य वस्त्र पहनाए और उन्हें दिव्य अलंकारों से अलंकृत किया।

इसके बाद शक्र देवेन्द्र देवराज ने भवनपति यावत् वैमानिक देवों को बुलाकर कहा— देवानुप्रियों! शीघ्र ही ईहा मृग, वृषभ तुरंग यावत् वनलता के चित्रों से चित्रित सुन्दर तीन शिविकाओं को बनाओ। जिनमें से एक तीर्थंकर भगवान् के लिए, दूसरी गणधरों के लिए एवं तीसरी अन्य साधुओं के लिए हो। देवों ने तत्काल तीन शिविकाओं का निर्माण किया। तब शक्र देवेन्द्र देवराज ने शोक सहित आनंद रहित अश्रूपूर्ण नयनों से जन्म जरा और मरण का नाश करने वाले तीर्थंकर भगवान के शरीर को शिविका में आरुढ़ किया और उसे चिता के पास ले गये। उसके बाद भवनपति आदि देवों ने गणधरों को गणधर शिबिका में और मुनियों को अणगार-शिविका में रखा और वहां से उठाकर उन्हें चिता के पास लाया गया। इन्द्र ने भगवान को शिबिका में से निकाल कर उन्हें चिता पर रखा। अन्य देवों ने भी गणधर और मुनियों को उनकी चिता पर रख दिया।

इसके बाद देवेन्द्र देवराज शक्र ने अग्निकुमार देव को बुलाया और उसे अग्नि प्रज्वलित करने की आज्ञा दी। इन्द्र के आदेश से अग्निकुमार देव ने आनन्द रहित चित्त से और अश्रूपूर्ण नयनों से अग्नि को उत्पन्न किया और उसे चिता में लगा दी। तदनन्तर इन्द्र ने वायुकुमार देव को वायु उत्पन्न करने की आज्ञा दी। इन्द्र के आदेश से वायुकुमार ने शीघ्र ही वायुकाया की विकुर्वणा की और चिता को जलाने में सहायता की। तीर्थंकर गणधर और अनगारों के शरीर जल जाने पर शक्र देवेन्द्र देवराज ने भवनपति यावत् वैमानिक देवों को बुलाकर कहा शीघ्र ही देवानुप्रियो!

तीर्थंकर की चिता में यावत् गणधर व मुनियों की चिता में अगर तुरुष्क, घृत, मधु इत्यादि द्रव्यों के घड़े भर भर कर डालो। देवों ने वैसा ही किया। तदनन्तर इन्द्र ने मेघकुमार देव को बुलाकर चिता पर क्षीरोदक की वर्षा करने की आज्ञा दी। मेघकुमार देव ने इन्द्र की आज्ञा से चिता पर क्षीरोदक की वर्षा की और चिता को शान्त किया।

उसके बाद शक्र देवेन्द्र देवराज ने तीर्थंकर भगवान की दाहिनी तरफ की ऊपर की दाढ़ ग्रहण की। ईशानेन्द्र ने बाईं तरफ की दाढ़ ग्रहण की। चमरेन्द्र ने नीचे की बाईं दाढ़ ग्रहण की। अन्य देवों ने भी किसी ने भक्ति भाव से किसी ने अपना आचार समझकर तो किसी ने धर्म मानकर भगवान के शेष अंगोपांग की अस्थियां ग्रहण की।

इसके बाद इन्द्र ने वैमानिक आदि देवों को बुलाकर कहा देवानुप्रियो शीघ्र ही सर्व रत्नमय महा आलय वाले तीन चैत्य स्तूप बनाओ। इनमें से एक तीर्थंकर भगवान के लिए, दूसरा गणधरों के लिए और तीसरा शेष अनगारों के लिए। भवनपति यावत् वैमानिक देवों ने शक्रेन्द्र के आदेश से चिता के स्थल पर सर्व रत्नमय महा आलय वाले तीन स्तूपों का निर्माण किया। एक तीर्थंकर स्तूप दूसरा गणधर स्तूप और तीसरा अणगार स्तूप। इस प्रकार स्तूप निर्माण करके भवनपति वाणव्यंतर ज्योतिषी और वैमानिक देवों ने भगवान का निर्वाण महोत्सव किया। निर्वाण महोत्सव करके वे नंदीश्वर द्वीप में आये। वहां शक्र देवेन्द्र देवराज ने पूर्व दिशा के अंजनगिरि पर्वत पर आठ दिन का आष्टाह्निक महा महोत्सव किया। शक्र देवेन्द्र के चार लोकपालों ने चार दधिमुख पर्वत पर आठ दिन का महा महोत्सव किया।

ईशान देवेन्द्र ने उत्तर दिशा के अंजनगिरि पर्वत पर आठ दिन की महा महिमा की। उनके लोक पालों ने चार दधिमुख पर्वतों पर आठ दिन का महोत्सव किया। चमरेन्द्र ने दक्षिण अंजनगिरि पर्वत पर व उनके लोकपालों ने दधिमुख पर्वत पर उसी तरह बलीन्द्र ने पश्चिम दिशा के अंजनगिरि पर्वत पर तथा उनके चार लोकपालों नें चार दधिमुख पर्वतों पर आठ दिन का अठाई महोत्सव किया।

उत्सव समाप्ति के बाद इन्द्र और देवगण अपने अपने स्वर्ग में अपने अपने विमानो या भवनों में आये। अपने अपने माणवक चैत्य स्तंभ में वज्र रत्नमय गोल डिब्बे में भगवान की दाढा

अस्थियों को रखा। और उनकी श्रेष्ठ मालाओं से सुगन्धित द्रव्यों से पूजा करते हुए विपुल भोग भोगते हुए विचरने लगे।

मूलम्—उसभस्स णं अरहओ कोसलिअस्स चउरासी गणहरा होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स उसभसेण पामोक्खाओ चउलसीइं समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था, उसभस्स णं बंभीसुन्दरी पामोक्खाओ तिण्णि अज्जियासय-साहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया संपया होत्था, उसभस्स णं सेज्जंसपामोक्खाओ तिण्णि समणोवासगसयसाहस्सीओ पंच य साहस्सीओ उक्कोसिया समणोवासग संपया होत्था, उसभस्स णं सुभद्दा पामाक्खाओं पंचसमणोवासियासय साहस्सीओ चउप्पण्ण च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासिआ संपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलिअस्स अजिणाणं जिण संकासाणं सव्वक्खर सन्निवाईणं जिणो विव अवितहं वागरमाणाणं चत्तारि चउद्दस-पुव्वी सहस्साणं अद्धट्ठमा य सया उक्कोसिया चउद्दस पुव्वी संपया होत्था., उसभस्स णं णव ओहिणाणी संपया होत्था., उसभस्स णं वीस जिण सहस्सा वीसं वेउव्विअ सहस्सा छच्च सया उक्कोसिया विउव्विय संपया होत्था, बारस विउलमई सहस्सा छच्च सया पण्णासा बारस वाइसहस्सा छच्च सया पण्णासा ॥ उसहस्स णं गइ कल्लाणाणं ठिइ कल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं बावीसं अणुत्तरोववाइआणं सहस्सा णवसया उक्कोसिया, उसभस्सणं वीसं समणसहस्सा सिद्धा। चत्तालीसं अज्जिया सहस्सा सिद्धा, सट्ठिं अन्तेवासी सहस्सा सिद्धा।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति—

अर्थ-कोशलिक ऋषभदेव अरिहंत के ८४ गणधर थे। ऋषभसेन प्रमुख ८४ हजार साधुओं की उत्कृष्ट संपदा थी। ब्राह्मी सुन्दरी प्रमुख तीन लाख साध्वियों की संपदा थी। श्रेयांस प्रमुख तीन लाख पचास हजार श्रावक थे। सुभद्रा प्रमुख पाँच लाख चोपन हजार श्राविकाएं थीं। ऋषभदेव अरिहंत के "जिन केवली" तो नहीं परन्तु जिन समान सब अक्षर शास्त्र के पारगामी, केवली जैसे यथार्थ सब भाव कहने वाले ऐसे ४७५० चौदह पूर्वो के ज्ञाताओं की संपदा थी। उनके नो हजार अवधिज्ञानी की संपदा थी। वीस हजार केवल ज्ञानी की संपदा थी। वीस हजार छसौ वैक्रिय लब्धि वाले थे। १२६५० विपुलमति वाले थे। १२६५० वादी विजय लब्धिवंत थे। श्री

ऋषभदेव स्वामी के कल्याणकारी गतिवाले, अंतभव में भद्रिक मांगलिक ऐसे अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले, लव सत्तम (जो मनुष्य के भव में ७ लव जितना आयुष्य अधिक होता तो मोक्ष में पधार जाते) आयुष्य वाले २२८०० साधु हुए। ऋषभदेव स्वामी के बीस हजार साधु सिद्ध हुए। चालीस हजार आर्याएँ सिद्ध हुई। इस प्रकार साठ हजार अंतेवासी सिद्ध हुए ॥ ४४

मूल–अरहस्स णं उसहस्स बहवे अन्तेवासी अणगारा भगवंतो अप्पेगइया मासं परिआया एवं जहा उववाइए सव्वओ अणगार वरणओ जाव उड्ढजाणु अहोसिरा, झाण कोट्ठोवगया संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ॥

अर्थ–ऋषभदेव अरिहंत के बहुत अंतेवासी अनगारों में से कितनेक एक मास की पर्याय वाले यावत् जैसे उववाई सूत्र में अणगार का वर्णन किया है वैसा यहां कह देना; यावत् उर्ध्व जानु व अधोसिर से ध्यान करके संयम तथा तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

उसभे णं अरहा कोसलीए पंच उत्तरासाढे अभीइ छट्ठे होत्था, तं-जहा- उत्तरासाढाहिं चुए, चइत्ता गब्भवक्कंते, उत्तरासाढाहिं जाए, उत्तरासाढाहिं रायाभिसेअं पत्ते उत्तरासाढाहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, उत्तरासाढाहिं अणंते जाव समुप्पण्णे अभीइणा परिणिव्वुडे ॥

कौशलिक ऋषभदेव स्वामी के पांच कल्याण उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में हुए और छठ्ठा कल्याण अभिजित नक्षत्र में हुआ; यथा–(१) उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में सर्वार्थ सिद्ध से चवे और चवकर गर्भ में आये (२) उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में जन्म लिया (३) उत्तराषाढ़ा में राज्याभिषेक हुआ (४) उत्तराषाढ़ा में प्रव्रज्या अंगीकार की (५) और उत्तराषाढ़ा में अनन्त केवल ज्ञान यावत् उत्पन्न हुआ और अभिजित नक्षत्र में मोक्ष गये।

भगवान अजितनाथ—

शुद्धं विशुद्धं शमितस्वदोषं, वन्देऽजितं कर्महरं जिनेशम् ।
भव्याय नित्यं सुखदं शरण्यं तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥२॥

अर्थ–जो अत्यन्त शुद्ध हैं, जो विशिष्ट रूप से विशुद्ध हैं, जिन्होंने सभी दोषों को क्षय कर दिया है, जो कर्मों का हरण करने वाले जिनेश हैं, जो भव्य प्राणियों के लिये नित्य सुख देने वाले हैं, और जो शरणागत को शरण देकर आनन्द देने वाले होने से शरण्य हैं, ऐसे "श्री अजितनाथजी" को मैं वन्दना करता हूँ। ये तीर्थंकर हैं इसलिए भव्यजनों को संसार सागर से पार करने हैं ॥ २ ॥

पूर्वभव—

जम्बूद्वीप के आभूषण रूप महाविदेह क्षेत्र में वत्स विजय में सुसीमा नामकी नगरी है। उसमें विमल वाहन नामका राजा राज्य करता था। उसने अरिदम नाम के मुनिराज के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रव्रज्या लेकर कठोर तप किया और तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में अनशन पूर्वक देह का त्याग कर विजय नामके अनुत्तर विमान में तेतीस सागरोपम उत्कृष्ट आयु वाला महर्दिक देव बना ।

तीर्थंकरभव

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में विनीता नाम की नगरी थी वहां इक्ष्वाकु कुल शिरोमणि जितशत्रु नाम के राजा राज्य करते थे। उनके लघु भ्राता का नाम सुमित्र विजय था। वह युवराज था। महाराजा जितशत्रु की रानी का नाम विजयादेवी एवं युवराज सुमित्र विजय की रानी का नाम वैजयन्ती था। दोनों रानियां अपने रूप और गुणों में अनुपम थीं।

वैशाख शुक्ला १३ को रोहिणी नक्षत्र के योग में विमलवाहन मुनि का जीव महारानी विजया की कुक्षि में विजय नामक अनुत्तर विमान से चवकर आया। गर्भ के प्रभाव से महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे। उसी रात को युवराज सुमित्र विजय की रानी वैजयन्ती ने भी चौदह महा-

पिता के द्वारा दिये राज्य का महाराज अजितनाथ न्याय नीति से संचालन करने लग। इस प्रकार राज्य संचालन करते हुए त्रेपन लाख पूर्व बीत गये। अपने भोगावली कर्म को समाप्त हुआ जान भगवान ने दीक्षा लेने का निश्चय किया। लौकान्तिक देवों ने भी भगवान से प्रव्रजित होने की प्रार्थना की। भगवान ने तीर्थंकरों की परम्परा के अनुसार वार्षिक दान दिया। सगर को राज्य प्रदान कर भगवान 'सुप्रभा' नाम की शिबिका मे बैठकर सहस्राम्र उद्यान में पधारे। माघ शुक्ला नवमी के दिन दिवस के पिछले प्रहर में जब चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र में आया तब भगवान ने प्रव्रज्या ग्रहण की।

अजितेणं अरहा एक्क सत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता जाव पव्वइएत्ति (सम० ७१)

अरिहंत अजितनाथ इकहत्तर लाख पूर्व गृहवास में रहकर मुण्डित हुए यावत् प्रव्रजित हुए। उस दिन भगवान के छठ (वेला) था। दूसरे दिन भगवान ने छठ का पारणा ब्रह्मदत्त के घर परमान्न से किया। भगवान ने अन्यत्र विहार कर दिया। बारह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में विचरने के बाद भगवान पुन: विनीता नगरी के सहस्राम्र उद्यान में पधारे और सप्तपर्ण नामक वृक्ष के नीचे ध्यान करने लगे। ध्यान की परमोच्च स्थिति में पौष शुक्ला एकादशी के दिन प्रातः काल में जब चन्द्र रोहिणी नक्षत्र में था तब छठ की तपश्चर्या में केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त किया। देवों ने, इन्द्रों ने भगवान का केवलज्ञान उत्सव मनाया। देवों ने समवसरण की रचना की। उद्यान पाल ने 'सगर' राजा को भगवान के केवलज्ञान होने की सूचना दी। राजा सगर अपने विशाल राजपरिवार के साथ भगवान के समवसरण में पधारे। भगवान ने समवसरण के बीच सिंहासन पर विराजमान होकर देशना दी। देशना सुनकर सिंहसेन आदि ९५ व्यक्तियों ने प्रव्रज्या ग्रहण कर गणधर पद प्राप्त किया। महाराज सुमित्रविजय जो भाव दीक्षित थे, उन्होंने भी प्रव्रज्या ग्रहण की। भगवान ने चतुर्विध संघ की स्थापना की। तदनन्तर भगवान ने विशाल मुनि समूह एवं गणधरों के साथ बाहर जनपद में विहार कर दिया। विहार करते हुए भगवान कोशांबी नगरी के निकट पहुंचे। वहां शालिग्राम के निवासी शुद्धभट और उसकी पत्नी सुलक्षणा ने भगवान के पास प्रव्रज्या ग्रहण की।

भगवान अजितनाथ के ९० गण और ९० गणधर थे (अजियस्स णं अरहओ नउई-गणा नउई गणहरा होत्था । सम० ९०) आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार ९५ गण और ९५ गणधर थे । एक लाख मुनि और तीन लाख तीस हजार साध्वियां थी । २७२० चौदह पूर्वधर थे । १२५५० मनः पर्यय ज्ञानी थे । तथा (अजियस्स णं अरहओ चउणउइ ओहिनाणी सया होत्था । समः (९४) अरिहंत अजितनाथ के चौरानवे सौ अवधिज्ञानी थे । २२०००, हजार केवली, १२४०० वादी, २०४०० वक्रियलब्धिधारी, २९८००० श्रावक, एवं ५४५००० श्राविकाएं थी ।

दीक्षा के बाद एक पूर्वा कम लाख पूर्व बीतने पर अपना निर्वाणकाल समीप जान कर भगवान सम्मेद शिखर पर्वत पर पधारे । वहां एक हजार मुनियों के साथ आपने अनशन ग्रहण किया ।

एक मास के अन्त में चैत्र शुक्ला पंचमी के दिन मृगशिर नक्षत्र में एक हजार मुनियों के साथ भगवान निर्वाण को प्राप्त हुए । इंद्रादि देवों ने भगवान का निर्वाण उत्सव किया । भगवान की उंचाई ४५० धनुष थी ।

[अजितेणं अरहा अद्धपंचमाइं धणु-सयाइं उड्ढंउच्चत्तेणं होत्था ।]

भगवान ने अठारह लाख पूर्व कौमार अवस्था में त्रेपन लाख पूर्व चौरासी लाख वर्ष राजा अवस्था में बारह वर्ष छदमस्थ अवस्था में, चौरासी लाख बारह वर्ष कम एक लाख पूर्व केवलज्ञान अवस्था में बिताये । इस तरह बहत्तर लाख पूर्व की आयु समाप्त कर भगवान अजितनाथ ऋषभदेव के निर्वाण के पचास लाख करोड़ सागरोपम वर्ष के बाद मोक्ष में गये ।

(अजियस्स णं अरहओ जाव पहीणस्स पन्नासं सागरोवमकोडिसय सहस्सा विइक्कंता,) कप्प २०४ ।

३–संभवनाथ

सेनासुतः सम्भवनाथदेवस्, त्यागीश्वरस्तीर्थकरोऽनुनेयः ।
दुःखाऽन्धकारप्रतिरोधनोऽर्कस्तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥ ३ ॥

श्री सेनादेवी के सुपुत्र महात्यागी भगवान संभवनाथजी ने चारों तीर्थों की स्थापना की है और सदा ही ये अनुगमनीय (अनुकरणीय) हैं; दुखःरूपी अंधकार को दूर करने में साक्षात् सूर्य के समान हैं; ऐसे ये महाप्रभु तीर्थंकर भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं ॥३॥

पूर्वभव

धातकी खण्ड के ऐरावत क्षेत्र में क्षेमपुरी नाम की सुन्दर नगरी थीं । वहां विपुलवाहन नाम के राजा राज्य करते थे । वे प्रजा का पुत्रवत् पालन करते थे । उनके राज्य में प्रजा सुख पूर्वक निवास करती थी ।

एक बार राज्य में भयंकर दुष्काल पड़ा । वर्षा के अभाव में नदी तालाब कुएं आदि सब सूख गये । धान्य के अभाव में प्रजा जन कंद, मूल और वृक्षों के पत्ते खाकर जीवन चलाने लगे । भूख तृषा से पीड़ित अनेक व्यक्ति काल कवलित हो गये । माता पिता अन्न के लिए अपने मासूम बच्चे को भी बेच डालते थे ।

राज्य की यह अवस्था देख कर राजा बड़ा चिन्तित हो गया । उसने अपने सारे धन–धान्य के भण्डार प्रजा के लिए खोल दिये । राजा अत्यन्त धार्मिक वृत्ति का था । उसने ऐसी भयंकर स्थिति में प्रजाजनों की सेवा में अपने आपको अर्पित कर दिया । वह चतुर्विध संघ की सेवा को अपना अहोभाग्य मानता था । एक दिन उसने सोचा–प्रजाजनों में साधर्मिक जन अधिक गुणवान होते हैं । धर्म के आधार स्तंभ मुनिजन तो अधिक रक्षणीय होते हैं, अतः मुनिजनों की विशेष रक्षा करना मेरा प्रथम कर्त्तव्य है । यह विचार कर उसने अपने रसोइए को बुलाया और कहा–'तुम मेरे लिए जो अन्न पानी तैयार करते हो वह सब साधु साध्वियों को वहराया जाय और अन्य आहार साधर्मिक बन्धुओं को दिया जाय । मुनिजनों को देने के देने के बाद जो आहार बचेगा उसे मैं काम में लूंगा ।

दुष्काल की विकट परिस्थिति में राजा तन मन से चतुर्विध संघ की सेवा करने लगा। निरन्तर चतुर्विध संघ की सेवा से उसने तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया।

एकबार राजा महल के झरोखे में बैठा हुआ था। उस समय आकाश बादलों से छाया हुआ था। बिजलियां चमक रही थी, बादल गरज रहे थे। अचानक जोरों से हवा चली और तमाम बादल बिखर गये। क्षण भर में आकाश बादलों से रहित स्वच्छ हो गया। क्षण भर मे बादलों का नभ-मण्डल में छा जाना और क्षण भर में बिखर जाना देखकर राजा विचार में पड़ गया। वह सोचने लगा—यह संसार भी बादलों की तरह नाशवान है। जो आज सुख-वैभव दिखाई दे रहा है वह बादलों की तरह ही कल नष्ट होने वाला हैं। स्वजन सम्बन्धी लोग केवल सुख के ही साथी है। मनुष्य अनेक पापों से लक्ष्मी का उपार्जन करता है और वैभव प्राप्त करने के लिये नानाविध कष्ट उठाता हैं। जब मृत्यु सामने आती हैं तब वह धन वैभव स्वजन सम्बन्धी उसके सहायक नहीं बनते। वह इन सब का परित्याग करके अन्त में मृत्यु के शरण में चला जाता है और सगे सम्बन्धी धन दौलत सदा के लिए उससे पृथक हो जाते हैं। इस प्रकार विचार करते-करते उसे संसार के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो गई। उसने अपने पुत्र विमलकीर्ति को राज्य दिया और स्वयं प्रभ नाम के आचार्य के पास दीक्षित हो गया। प्रव्रज्या ग्रहण करके विपुलवाहन मुनि कठोर तपस्या करने लगे।

परिणामों की उच्चता के कारण उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म को पुष्ट किया। अन्त में समाधि पूर्वक अनशन कर देह का त्याग किया। और मरकर 'आनत' नाम के देवलोक में महर्द्धिक देवत्व प्राप्त किया।

तीर्थंकरभव—

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में श्रावस्ती नाम की नगरी थी। वहां 'जितारि' नाम के शूर राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम सेनादेवी था।

फाल्गुन शुक्ला अष्टमी के दिन जब चन्द्रमा मृग नक्षत्र में था तब विपुलवाहन मुनि का जीव 'आनत कल्प से चवा और महारानी सेना की कुक्षि में अवतरित हुआ। गर्भ काल के पूर्ण होने पर मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशी के दिन मृग शीर्ष नक्षत्र में और मिथुन राशि मे चन्द्रमा

का योग होने पर अश्व लांछन से युक्त एवं सुवर्ण की कान्ति वाले, तृतीय तीर्थंकर भगवान को जन्म दिया। भगवान के जन्म से समस्त दिशाएँ आलोकित हो उठी। ५६ दिक्कुमारिकाओं ने प्रसूति कर्म किया। ६४ इन्द्रों ने भगवान को मेरु पर्वत पर ले जाकर जन्माभिषेक किया। माता पिता ने भी पुत्र का जन्मोत्सव किया। जब बालक गर्भ में था तब बहुत धान्य की उत्पत्ति हुई थी इसलिए बालक का नाम 'संभव' रखा। संभवनाथ युवा हुए। युवावस्था में उनका सुन्दर राजकुमारियों से विवाह किया। जन्म से १५ लाख पूर्व व्यतीत होने पर आपको पिता ने राज्य दिया। चार पूर्वांग अधिक चवालीस लाख पूर्व तक आप राज्य करते रहे। तदनन्तर मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन मृग शीर्ष नक्षत्र में जब चन्द्र का योग था तब आपने तीर्थंकर की परम्परा के अनुसार वार्षिक दान देकर सर्वार्थ नामक शिबिका में आरूढ़ होकर, सहस्राम्र वन में षष्ठ तपस्या के साथ दिन के पिछले प्रहर में हजार राजाओं के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। दूसरे दिन सुरेन्द्र नाम के राजा के घर परमान्न से पारणा किया। संयम की विशुद्ध आराधना करते हुए आप पुन: श्रावस्ती के सहस्राम्र उद्यान में पधारे और शाल वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए ध्यान की परमोच्च अवस्था में केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त किया। उस दिन आपको षष्ठ की तपस्या थी। और तिथि कार्तिक वदि पंचमी थी। चन्द्र मृग शीर्ष नक्षत्र में था। इन्द्रादि देवों ने केवल ज्ञान उत्सव किया। समवसरण की रचना हुई। प्रथम देशना में 'चारू' आदि एक सौ दो गणधर हुए। आपका चैत्य वृक्ष दो कोस और आठ सौ धनुष था। भगवान संभवनाथ के शासन में त्रिमुख नामका यक्ष हुआ। दुरितारि नाम की शासन देवी हुई। आपके विहार काल में संघ की संख्या इस प्रकार हुई:-

दो लाख साधू, तीन लाख छत्तीस हजार साध्वियां, एकवीस सौ पचास चौदह पूर्वी, ९६०० सौ अवधि ज्ञानी थे। १२१५० मन:पर्यव ज्ञानी, पंद्रह हजार केवल ज्ञानी अठारह सौ वैक्रिय लब्धि वाले, बारह हजार वाद लब्धि वाले, दो लाख ९३ हजार श्रावक, और छ: लाख छत्तीस हजार श्राविकाएं थी। दीक्षा के दिन से चार पूर्वांग न्यून एक लाख पूर्व के व्यतीत होने पर चैत्र शुक्ला पंचमी के दिन प्रातः काल एक मास के अनशन के साथ सम्मेद शिखर पर एक हजार साधुओं के साथ आपने निर्वाण प्राप्त किया।

भगवान कुमारावस्था में पन्द्रह लाख पूर्व, राज्यकाल में चार पूर्वांग सहित चवालीस लाख पूर्व, (समवायांग सूत्र में ५९, उणसाठ लाख पूर्व गृहस्थ अवस्था में रहने का उल्लेख है–

"संभवे णं अरहा एगूणसट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं आगार मज्झे वसित्ता मुंडे जाव पव्वइए" संभव अर्हत् उनसाठ लाख पूर्व गृहस्थ में रहने के बाद प्रव्रजित हुए। सम ५९) चार पूर्वांग कम एक लाख पूर्व तक चारित्र अवस्था में, इस प्रकार भगवान की कुल आयु साठ लाख पूर्व की थी। संभवे णं अरहा चत्तारि धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था" भगवान संभवनाथ की ऊंचाई चार सौ धनुष की थी।

अजितनाथ भगवान के निर्वाण से संभवनाथ का निर्वाण तीस लाख करोड़ सागरोपम बीतने पर हुआ था ।

४ भगवान अभिनन्दन—

तुर्योऽभवद्वा अभिनन्दनीय, ऊर्जस्वले संवरभूपगेहे ।
श्रीमानुदारोदययाऽतिपूर्णस्, तीर्थङ्करो पारकरो जनानाम् ॥ ४ ॥

तेजस्वी संवर राजा के घर में विश्व के द्वारा स्वागत करने योग्य, ऐसे चौथे तीर्थंकर भगवान अभिनन्दन स्वामी ने जन्म धारण किया। ये बाह्य और आभ्यन्तर लक्ष्मी से सम्पन्न और सुशोभित थे, उदार दान दाता दया गुण से ओत-प्रोत थे। ऐसे ये तीर्थंकर देव भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं। ॥ ४ ॥

पूर्वभव—

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में मंगलावती नामक विजय में 'रत्नसंचया' नामकी नगरी थी। महाबल नाम के वहां राजा थे। वे बड़े वीर और धार्मिक थे। उन्होंने एकबार विमलसूरि से उपदेश सुना और संसार से विरक्त होकर प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रव्रज्या लेकर वे संयम की विशुद्ध आराधना करने लगे। संयम की साधना करते हुए उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में अनशन पूर्वक देह का त्याग कर महाबल मुनि विजय नाम के अनुत्तर विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए।

तीर्थंकर भव

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में अयोध्या नाम की नगरी थी। वहाँ इक्ष्वाकु वंश के राजा 'संवर' राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम 'सिद्धार्था' था। वह कुल मर्यादा का पालन करने वाली आदर्श नारी थी।

महाबल मुनि का जीव विजय विमान से चवकर अर्थात् देवलोक का तेतीस सागरोपम का आयुष्य पूरा कर वैशाख शुक्ला चतुर्थी के दिन अभिजित नक्षत्र के योग में महारानी सिद्धार्था के उदर में महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे। गर्भकाल के पूर्ण होने पर माघ शुक्ला

द्वितीया के दिन अभिजित नक्षत्र के योग में, सुवर्ण की कान्ति वाले एवं वानर के चिन्ह से युक्त इक्ष्वाकु कुल श्रेष्ठ चतुर्थ तीर्थकर को महारानी ने जन्म दिया। भगवान के जन्म से समस्त दिशाओं में दिव्य प्रकाश फैल गया। नरक के जीवों को क्षण भर के लिए सुख मिला। देव देवियों के आसन चलायमान हुए। ५६ दिक्कुमारिकाओं ने प्रसूति कर्म किया। चौसठ इन्द्रों ने मेरु पर्वत पर भगवान को लेजाकर जन्मोत्सव किया। माता पिता ने भी बालक का जन्मोत्सव किया। जब बालक माता के गर्भ में था तब राजा का समस्त राज्य और कुल आनंदित हो उठा था इसलिए बालक का नाम अभिनन्दन रखा। बालक अभिनन्दन ने युवावस्था प्राप्त की। पिता ने सुन्दर राजकुमारियों के साथ उनका विवाह किया। साढ़े बारह लाख पूर्व के बीतने पर पिता ने अभिनन्दन कुमार का राज्याभिषेक किया। इसके बाद संवर राजा ने दीक्षा ग्रहण की। आठ पूर्वांग सहित साढ़े छत्तीस लाख पूर्व तक भगवान अभिनन्दन ने प्रजा का पुत्रवत् पालन करते हुए उस पर शासन किया।

अपना दीक्षा का काल समीप जानकर भगवान ने वार्षिक दान दिया। माघ शुक्ला द्वादशी के दिन जब चन्द्र अभिजित नक्षत्र में था तब, 'अर्थसिद्धा' नामकी शिविका में बैठकर भगवान सहस्राम्र उद्यान में पधारे। उस दिन भगवान ने बेला का तप किया था। दिन के पिछले प्रहर में एक हजार राजाओं के साथ आपने प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रव्रज्या लेते ही आपको मन:पर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ।

दूसरे दिन 'विनीता' नगरी के राजा 'इन्द्रदत्त' के घर परमान्न से पारणा किया।

अठारह वर्ष तक आप छदमस्थ काल में रहे। पौष शुक्ला चतुर्दशी के दिन अभिजित् नक्षत्र से जब चन्द्र का योग था तब आपने विनीता नगरी के सहस्राम्र उद्यान में 'प्रियाल' वृक्ष के नीचे छठ की तपस्या में ध्यान की उत्कृष्ट अवस्था में केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त किया। भगवान का केवल ज्ञान उत्सव इन्द्रादि देवों ने किया। समवसरण की रचना हुई। प्रथम देशनामें 'वज्रनाभ आदि एक सौ सोलह गणधर हुए। भगवान का चैत्यवृक्ष दो कोस और दो सौ धनुष ऊंचा था। भगवान के शासन में श्याम वर्ण वाला और हस्ती वाहन वाला 'यक्षेश्वर' नामका यक्ष तथा कमल आसन वाली श्याम वर्णी 'कालिका' नाम की शासनरक्षिका देवी हुई। भगवान केवल ज्ञान प्राप्त कर भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हुए ग्रामानुग्राम विचरने लगे। आपके विचरण काल में निम्न परिवार हुआ—

तीन लाख साधु, छः लाख तीस हजार साध्वियां, पन्द्रह सौ चौदह पूर्व धर, ९८०० अवधि ज्ञानी, ग्यारह हजार साढ़े छह सौ मनःपर्यवज्ञानी चौदह हजार केवल ज्ञानी, उन्नीस हजार वैक्रिय लब्धि वाले, ग्यारह हजार वादी, दो लाख अठयासी हजार श्रावक एवं तथा पांच लाख सत्तावीस हजार (कहीं कहीं ७५००० का भी उल्लेख है) श्राविकाएँ हुई ।

अपना निर्वाण काल समीप जानकर भगवान सम्मेत शिखर पर पधारे। वहां वैशाख शुक्ला अष्टमी के दिन शाम को एक मास का अनशन कर एक हजार साधुओं के साथ निर्वाण प्राप्त किया। आपने साढ़े बारह लाख पूर्व कुमारावस्था में, आठ पूर्वांग सहित साढ़े छत्तीस लाख पूर्व राज्य में, और आठ पूर्वांग कम एक लाख पूर्व चारित्र अवस्था में व्यतीत किये। इस प्रकार आपकी कुल आयु पचास लाख पूर्व की थी। शरीर की अवगाहना साढ़े तीन सौ धनुष की थी। (अभिनंदणे णं अरहा अद्धुट्ठाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था-स० सूत्र १४४) श्री संभवस्वामी के निर्वाण से दस लाख करोड़ सागरोपम के बीतने पर श्री अभिनन्दन भगवान का निर्वाण हुआ।

५–भगवान् सुमतिनाथ

गर्भे स्थितस्याऽपि शिशोः प्रभावात्, सुमङ्गला न्यायमकार्यतर्य्यें ।
तस्याः सुपुत्रः सुमतिर्जगत्यां, तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥ ५ ॥

'तीर्थंकर सुमतिनाथजी" जब गर्भ में थे तब गर्भ में रहे हुए उनके प्रभाव से ही इनकी माता सुमंगलादेवी का चित्त न्यायोचित कार्यो की ओर ही निर्देश करने लग गया था ऐसी माता के सुपुत्र के रूप में इस पृथ्वी पर "श्री सुमतिनाथ" भगवान् ने जन्म ग्रहण किया है। ये तीर्थंकर प्रभु है और भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं ॥ ५ ॥

पूर्वभव

इस जम्बू द्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती नाम के विजय में शंखपुर नाम का भव्य और मनोहर नगर था। वहां राजाओं में श्रेष्ठ 'जयसेन' नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम सुदर्शना था। उन दोनों के सुकृत के स्थान रूप 'पुरुषसिंह' नाम का पुत्र हुआ। उसने कुमार अवस्था में ही विजयनन्दन नाम के मुनि के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेकर कठोर तपस्या करने लगे। कठोर तपस्या करते हुए और बीस स्थानों की आराधना करते हुए पुरुषसिंह मुनि ने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में अनशन कर देह का त्याग किया और वैजयन्त नाम के अनुत्तर विमान में महर्द्धिक देवत्व प्राप्त किया।

तीर्थंकर भव

जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में अयोध्या नाम की नगरी थी। वहां 'मेघ' नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम 'मंगला' था। 'पुरुषसिंह' मुनि का जीव 'वैजयन्त' विमान से चवकर श्रावण शुक्ला द्वितीया के दिन मघा नक्षत्र में जब चन्द्र का योग था तब महारानी की कुक्षि में अवतरित हुआ। महारानी ने गर्भ के प्रभाव से १४ महास्वप्न देखे। गर्भ काल के पूर्ण होने पर वैशाख शुक्ला अष्टमी के दिन जब चन्द्रमा मघा नक्षत्र में था उस समय क्रौंच पक्षी के चिन्ह वाले सुवर्णसी कान्ति वाले इक्ष्वाकु कुलोद्धारक पुत्र रत्न को जन्म दिया। भगवान के जन्म से

५–भगवान् सुमतिनाथ

गर्भे स्थितस्याऽपि शिशोः प्रभावात्, सुमङ्गला न्यायमकार्यतर्क्ये ।
तस्याः सुपुत्रः सुमतिर्जगत्यां, तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥ ५ ॥

'तीर्थंकर सुमतिनाथजी" जब गर्भ में थे तब गर्भ में रहे हुए उनके प्रभाव से ही इनकी माता सुमंगलादेवी का चित्त न्यायोचित कार्यों की ओर ही निर्देश करने लग गया था ऐसी माता के सुपुत्र के रूप में इस पृथ्वी पर "श्री सुमतिनाथ" भगवान् ने जन्म ग्रहण किया है। ये तीर्थंकर प्रभु हैं और भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं ॥ ५ ॥

पूर्वभव

इस जम्बू द्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती नाम के विजय में शंखपुर नाम का भव्य और मनोहर नगर था। वहां राजाओं में श्रेष्ठ 'जयसेन' नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम सुदर्शना था। उन दोनों के सुकृत के स्थान रूप 'पुरुषसिंह' नाम का पुत्र हुआ। उसने कुमार अवस्था में ही विजयनन्दन नाम के मुनि के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेकर कठोर तपस्या करने लगे। कठोर तपस्या करते हुए और बीस स्थानों की आराधना करते हुए पुरुषसिंह मुनि ने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में अनशन कर देह का त्याग किया और वैजयन्त नाम के अनुत्तर विमान में महर्द्धिक देवत्व प्राप्त किया।

तीर्थंकर भव

जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में अयोध्या नाम की नगरी थी। वहां 'मेघ' नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम 'मंगला' था। 'पुरुषसिंह' मुनि का जीव 'वैजयन्त' विमान से चवकर श्रावण शुक्ला द्वितीया के दिन मघा नक्षत्र में जब चन्द्र का योग था तब महारानी की कुक्षि में अवतरित हुआ। महारानी ने गर्भ के प्रभाव से १४ महास्वप्न देखे। गर्भ काल के पूर्ण होने पर वैशाख शुक्ला अष्टमी के दिन जब चन्द्रमा मघा नक्षत्र में था उस समय क्रौंच पक्षी के चिन्ह वाले सुवर्णसी कान्ति वाले इक्ष्वाकु कुलोद्योतक पुत्र रत्न को जन्म दिया। भगवान के जन्म से

हजार श्रावक तथा पांच लाख सोलह हजार श्राविकाएं थीं । भगवान की उंचाई तीनसौ धनुष थी

"सुमई णं अरहा तिण्णि-सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था । सम. १०३"

अपना निर्वाणकाल समीप जानकर भगवान सम्मेत शिखर पर पधारे और वहां एक मास का अनशन ग्रहण किया । चैत्र शुक्ला नवमी के दिन दिवस के पूर्व भाग में पुनर्वसु नक्षत्र का जब चन्द्र काक्ष । तब एक हजार मुनियों के साथ निर्वाण प्राप्त किया । भगवान ने दस लाख पूर्व कुमार अवस्था में, बारह पूर्वांग सहित उनतीस लाख पूर्व दीक्षा में व्यतीत किये । इस प्रकार भगवान की कुल आयु चालीस लाख पूर्व की थी । अभिनन्दन स्वामी के निर्वाण से नौ लाख करोड़ सागरोपम के बीतने पर सुमतिनाथ भगवान का निर्वाण हुआ ।

६–भगवान पद्म प्रभु

पद्मप्रभो धर्म विशुद्धि हेतुः, विख्यात तीर्थंकर देव षष्ठः ।
अज्ञानध्वान्तस्य विनाशनेऽर्कः, तीर्थंकरः पारकरो जनानाम् ॥ ६ ॥

छठे तीर्थंकर महाप्रभु "श्री पद्मप्रभुजी" हुए हैं, जो धर्म की उन्नति करने कराने में विख्यात हुए हैं। जो अज्ञानरूपी अंधकार को नष्ट करने में साक्षात् सूर्य के समान हैं। ऐसे ये तीर्थंकरदेव भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं ॥ ६ ॥

पूर्वभव

धातकीखण्ड द्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र में 'वत्स' नामक विजय में 'सुसीमा नामकी नगरी थी। वहां 'अपराजित' नाम के राजा राज्य करते थे। उन्होंने 'पिहिताश्रव' नाम के आचार्य के समीप दीक्षा ग्रहण करके विशुद्ध संयम और तप की आराधना करते हुए तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में समाधि-मृत्यु के साथ मरकर नौवे ग्रैवेयक विमान में देव रूप से उत्पन्न हुए।

तीर्थंकर भव

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में वत्स देश में कोशाम्बी नाम की रमणीय नगरी थी। वहां 'धर' नामके शूर राजा राज्य करते थे। उनकी 'सुसीमा' नामकी रानी थी।

'अपराजित मुनि' का जीव इकतीस सागरोपम की आयु पूर्ण कर माघ कृष्णा षष्ठी के दिन चित्रा नक्षत्र के योग में सुसीमा देवी के गर्भ में पुत्र रूपसे उत्पन्न हुआ। गर्भ के प्रभाव से महारानीं ने चौदह महास्वप्न देखे। गर्भकाल के पूर्ण होने पर कार्तिक कृष्णा द्वादशी के दिन चित्रा नक्षत्र के योग मे इक्ष्वाकु कुलश्रेष्ठ पद्मचिन्ह से चिन्हित सुवर्णवर्णी पुत्र को महारानी ने जन्म दिया। कमल जैसा कोमल बालक होने से उनका नाम पद्मप्रभ रखा। देव देवियों, इन्द्रों और मनुष्यों ने भगवान का जन्मोत्सव किया। जन्म से साढे सातलाख पूर्व के बीतने पर पद्मप्रभ को पिता ने राज्यगद्दी पर स्थापित किया। भ० पद्मप्रभ ने सोलह पूर्वांग सहित साढे इक्कीस लाख पूर्व तक राज्य किया।

दीक्षाकाल समीप जानकर भगवान ने वार्षिक दान दिया। पश्चात् कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी के दिन चित्रा नक्षत्र के योग में निवृत्तिकरा नाम की शिविका मे बैठकर सहस्राम्र उद्यान में षष्ठ की तपस्या के साथ एक हजार राजाओं के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रव्रज्या ग्रहण करते ही भगवान को मन.पर्यव-ज्ञान उत्पन्न हुआ। दूसरे दिन भगवान ने कौशांबी नगर के राजा 'सोमदेव' के घर परमान्न मे पारणा किया। भगवान ने अन्यत्र विहार कर दिया। छह महीने तक छद्मस्थ काल में विचरण कर भगवान पुनः कौशाम्बी नगर के सहस्राम्र उद्यान में पधारे। चैत्र पूर्णिमा के दिन चित्रा नक्षत्र के योग में वटवृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए भगवान को केवलज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ। प्रथमदेशना में 'सुव्रत' आदि एकसौ सात व्यक्तियों ने प्रव्रज्या ग्रहण कर गणधर पद प्राप्त किया। भगवान के शासन का रक्षक कुसुम नाम का यक्ष हुआ। और 'अच्युता' नामकी शासन रक्षिका देवी हुई।

भगवान के दीक्षा काल मे निम्न परिवार हुआ-:तीन लाख तीस हजार साधु, चार लाख बीस हजार साध्वियां, तेईससौ चौदह पूर्व धर, दस हजार अवधिज्ञानी, दस हजार तीनसौ मनः पर्यवज्ञानी, बारह हजार केवल ज्ञानी सोलह हजार आठसौ वैक्रिय लब्धिधर, नौ हजार ६ सौ वादी, दो लाख सड़सठ हजार श्रावक एवं पांच लाख पांच हजार श्राविकाएँ।

भगवान केवल ज्ञान से सोलह पूर्वांग और छ महीने कम एक लाख पूर्व तक भव्यों को प्रतिबोध देते रहे। अपना निर्वाण काल समीप जान कर भगवान सम्मेत शिखर पर पधारे। वहां आपने एक मास का अनशन ग्रहण किया। मार्ग शीर्ष कृष्णा एकादशी के दिन प्रातः काल के समय चित्रा नक्षत्र के योग में एक हजार मुनियों के साथ निर्वाण प्राप्त किया।

"पउमप्पमे णं अरहा अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था" सम १०३ ॥ अरहन्त पद्मप्रभ ढाई सौ धनुष ऊंचे थे। आपने कुमारावस्था में साढे सात लाख पूर्व राज्यावस्था में सोलह पूर्वांग सहित साढ़े इक्कीस लाख पूर्व, और व्रत में सोलह पूर्वांग कम एक लाख पूर्व व्यतीत किये, भगवान की कुल आयु तीस लाख पूर्व की थी। सुमतिनाथ के निर्वाण से नव्वे हजार करोड़ सागरोपम के बीतने पर पद्म प्रभु का निर्वाण हुआ।

७–भगवान् सुपार्श्वनाथ

मातुः पृथिव्या जठरादवतीर्य, लेभे जिनो यः स सुपार्श्वनाथः ।
ददत्परेभ्योऽमृत मोक्ष मार्गं, तीर्थङ्करः तारको जनानाम् ।७॥

महादेवी पृथ्वी माता के गर्भ से जिसने जन्म धारण किया है वह जिन प्रभु "श्री सुपार्श्वनाथजी" है। इन्होंने दूसरे के लिए अमृत समान मोक्ष मार्ग को प्रदान किया है। एवं ये तीर्थंकर देव भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं।७।

घातकी खण्ड द्वीप के पूर्व महाविदेह पूर्वभव में 'रमणीय'नाम के विजय में 'क्षेमपुरी' नामकी सुन्दर नगरी थी। वहां नंदिषेण नाम का राजा राज्य करता था एक बार नगर में 'अरिदमन' नाम के मुनिराज का आगमन हुआ। राजा 'नंदिषेण' मुनि के दर्शन के लिए गया। मुनि ने उसे संसार की असारता का उपदेश दिया, मुनि का उपदेश सुनकर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। धन वैभव का परित्याग कर उसने मुनिराज के समीप प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रव्रज्या ग्रहण कर कठोर साधना प्रारम्भ कर दी। कठोर तपस्या करते हुए उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में अनशन पूर्वक शरीर त्याग करके छठे ग्रैवेयक विमान मे उत्कृष्ट स्थिति वाले देव बने।

जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में वाराणसी तीर्थंकर नाम की नगरी थी। वहां 'प्रतिष्ठ' नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम 'पृथ्वी' था। नन्दिषेण मुनि का जीव अट्ठाईस सागरोपम की आयु पूरी कर भाद्र पद कृष्णा अष्टमी के दिन अनुराधा नक्षत्र में महारानी पृथ्वी के उदर में अवतरित हुआ। गर्भ के प्रभाव से महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे। गर्भ काल के पूर्ण होने पर ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन विशाखा नक्षत्र में इक्ष्वाकु कुल भूषण सुवर्ण वर्णी स्वस्तिक लांछन वाले सुन्दर पुत्र को महारानी ने जन्म दिया। इन्द्रों ने भगवान का मेरु पर्वत पर जन्माभिषेक किया जब भगवान माता के गर्भ में थे तब पृथ्वी देवी ने एक फण वाले पांच फण वाले और नौ फण वाले सर्प के ऊपर अपने आप को सोते हुए देखा। इसी कारण बालक नाम 'सुपार्श्वनाथ' रखा। जन्म से पांच लाख पूर्व बीतने पर दो सौ धनुष ऊँचे भगवान का पिता ने राज्याभिषेक किया। सुपार्श्व प्रभु के राज्य पालन करते हुए बीस पूर्वांग सहित चौदह लाख पूर्व व्यतीत हो गये। अपने भोगावली कर्म समाप्त जान भगवान ने दीक्षा लेने का विचार किया। लोकान्तिक देवों ने भी निवेदन किया। तीर्थंकर की परम्परा के अनुसार भगवान ने एक वर्ष तक सांवत्सरिक दान दिया। तदनन्तर ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी के दिन विशाखा नक्षत्र के योग में छठ की तपस्या के साथ 'मनोहरा'

नाम की शिबिका पर आरूढ़ हुए। और सहस्राम्र नाम के उद्यान में पधारे। वहां एक हजार राजाओं के साथ दिन के पिछले प्रहर में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेते ही भगवान को चौथा मन पर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ दूसरे दिन 'पाटली खण्ड' नाम के नगर में 'महेन्द्र' राजा के घर परमान्न से भिक्षा ग्रहण की। नौ महीने तक छद्मस्थ रहने के बाद भगवान विहार करते हुए पुनः वाराणसी के सहस्राम्र उद्यान में पधारे और छठ की तपस्या कर शिरीष वृक्ष के नीचे ध्यान करने लगे। वहां फाल्गुन कृष्णा अष्टमी के दिन प्रथम प्रहर में विशाखा नक्षत्र के योग में महा-मोहनीय आदि चार घन घाति कर्म के क्षय होने पर केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ। भगवान को केवल ज्ञान होते ही चौसठ इन्द्रों के आसन चलायमान हुए। उन्होंने भगवान के दर्शन व स्तुति कर केवल ज्ञान उत्सव मनाया और समवसरण की रचना की। भगवान ने एक कोस चार सौ धनुष्य ऊँचे चैत्य वृक्ष के नीचे और समवसरण में विराज कर देशना दी। देशना सुनकर विदर्भ आदि ९५ व्यक्तियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की और गणधर पद प्राप्त किया।

भगवान के शासन में नील कमल जैसे वर्ण वाला और हाथी के वाहन वाला मातंग नाम का यक्ष और शांता नाम की यक्षिणी हुई। भगवान केवल ज्ञान प्राप्त कर भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हुए पृथ्वी पर विचरने लगे।

भगवान के शासन में निम्न परिवार हुआ—तीन लाख साधु, चार लाख तीस हजार साध्वियाँ, दो हजार तीस चौदह पूर्व धर, नौ हजार अवधि ज्ञानी, नौ हजार १५० मन पर्यवज्ञानी ग्यारह हजार केवल ज्ञानी, पंद्रह हजार तीन सौ वैक्रियलब्धि धारी, आठ हजार चार सौ वादी, दो लाख सतावन हजार श्रावक, पांच लाख और सात हजार श्राविकाएं। केवलज्ञान में भगवान ने बीस पूर्वांग नौ मास कम लाख पूर्व व्यतीत किये। निर्वाण काल समीप जानकर भगवान सम्मेत शिखर पर पधारे और वहां एक मास का अनशन ग्रहण किया। फाल्गुन कृष्णा सप्तमी के दिन मूल नक्षत्र में चन्द्र का जब योग था तब पांच सौ मुनियों के साथ भगवान ने निर्वाण प्राप्त किया।

कुमार अवस्था में पांच लाख, राज्यावस्था में बीस पूर्वांग सहित चौदह लाख पूर्व और चारित्रावस्था में बीस पूर्वांग कम एक लाख पूर्व व्यतीत किये। इस प्रकार कुल बीस लाख पूर्व की भगवान की आयु थी। पद्मप्रभु के निर्वाण के बाद नौ हजार करोड़ सागरोपम के बीतने पर सुपार्श्वनाथ प्रभु का निर्वाण हुआ।

८—भगवान् चन्द्र प्रभ

जातो महासेन कुले प्रसिद्धे, चन्द्रप्रभः सोऽष्टम तीर्थकर्ता।
आत्मप्रकाशोऽतिशये युतस्तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥८॥

आठवें तीर्थंकर "श्री चन्द्रप्रभ हुए और ये प्रसिद्ध कुल के स्वामी महासेन राजा के घर में उत्पन्न हुए जो चौतीस अतिशयों के स्वामी हैं और जिन्होंने आत्मा का पूर्ण प्रकाश कर लिया है, ऐसे ये महाप्रभु तीर्थंकर देव भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं।

पूर्वभव

धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व महाविदेह में मंगलावती विजय में 'रत्न संचया' नाम की नगरी थी। वहाँ 'पद्म' नाम का राजा राज्य करता था। उसने 'युगन्धर' मुनि के पास चारित्र ग्रहण कर अद्‌भुत तप कर तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। आयुष्य पूर्ण होने पर वैजयंत नाम के विमान में देव रूप से उत्पन्न हुआ।

तीर्थंकर भव

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में तीर्थंकर भव 'चन्द्रा नाना' नाम की नगरी थी। वहाँ महासेन नाम के राजा राज्य करते थे। उसकी रानी का नाम 'लक्ष्मणा' था। पद्म राजा का जीव तेतीस सागरोपम की आयु पूरी कर वैजयंत नाम के विमान से चवकर चैत्र कृष्णा पंचमी के दिन अनुराधा नक्षत्र में लक्ष्मणा रानी के उदर में आया। गर्भ काल के पूर्ण होने पर पौष कृष्णा द्वादशी के दिन अनुराधा नक्षत्र में इक्ष्वाकुवंश रूपी समुद्र के लिए चन्द्र के समान चन्द्र जैसे शरीर वाले एवं चन्द्रलांछन से युक्त भगवान को लक्ष्मणादेवी ने जन्म दिया। देवों मनुष्यों और इन्द्रों ने भगवान का जन्मोत्सव किया। जब भगवान माता के गर्भ में थे तब माता को चन्द्रपान करने का दोहद उत्पन्न हुआ था, इस कारण बालक का नाम 'चन्द्रप्रभ' रखा। जन्म से ढाई लाख पूर्व बीतने पर डेढ़ सौ धनुष ऊँची काया वाले प्रभु का पिता ने राज्याभिषेक किया। चौवीस पूर्वांग सहित साढ़े छह लाख पूर्व के बीतने पर भगवान ने दीक्षा लेने का निश्चय किया।

पौष कृष्णा त्रयोदशी के दिन अनुराधा नक्षत्र में मनोरमा नाम की शिविका में आरूढ़ हो भगवान छठ की तपस्या के साथ सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहां एक हजार राजाओं के साथ दिन के पिछले प्रहर में प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रव्रज्या लेते ही भगवान को चौथा मनः पर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ। दूसरे दिन भगवान ने पद्मखण्ड नाम के नगर में सोमदत्त नाम के राजा के घर परमान्न से पारणा किया। तदनन्तर भगवान ने तीन महीने तक छद्मस्थ काल में विहार किया और पुनः चन्द्रानना नाम की नगरी में सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहां 'पुन्नाग' नाम के वृक्ष के नीचे ध्यान करने लगे। फाल्गुन कृष्णा सप्तमी के दिन अनुराधा नक्षत्र में छठ की तपस्या में ध्यान की परमोच्च अवस्था में भगवान ने केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त किया। भगवान का चैत्य वृक्ष अठारह सौ धनुष ऊँचा था। भगवान ने समवसरण के बीच उपदेश दिया। 'दत्त' आदि ९३ व्यक्तियों ने भगवान का उपदेश सुनकर प्रव्रज्या ग्रहण की और गणधर पद प्राप्त किया। भगवान ने अन्यत्र विहार कर दिया। भगवान के शासन में 'विजय' नामक देव और 'भृकुटी' नामकी देवी हुई। भगवान का परिवार इस प्रकार था :–

ढाई लाख साधु, तीन लाख अस्सी हजार साध्वियां, दो हजार चौदह पूर्व धर, अवधि और मनः पर्यवज्ञानी आठ हजार, केवल ज्ञानी दस हजार, वैक्रिय लब्धि वाले चौदह हजार व वाद लब्धि वाले सात हजार छह सौ, ढाई लाख श्रावक, एवं पांच लाख नेउ हजार से कम यानी चार लाख दस हजार श्राविकाएं थी। केवल ज्ञान के बाद तीन महीने कम एक लाख पूर्व तक केवली अवस्था में विचर कर भगवान भव्यों को प्रतिबोध देते रहे। अपना निर्वाण काल समीप जानकर भगवान सम्मेत शिखर पर्वत पर पधारे और वहां एक मास का अनशन ग्रहण किया। भाद्रपद कृष्णा सप्तमी के दिन श्रवण नक्षत्र में भगवान ने एक हजार मुनियों के साथ निर्वाण प्राप्त किया। भगवान ने कुमारावस्था में ढाई लाख पूर्व, राज्य अवस्था में चौबीस पूर्वांग सहित साढे छह लाख पूर्व तथा चौबीस पूर्वांग कम एक लाख पूर्व चारित्रावस्था में व्यतीत किए। इस प्रकार भगवान की कुल आयु दस लाख पूर्व की थी [चंदप्पभे णं अरहा दस पुव्वसतसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जावप्पहीणे स्थानांग. ७३५] आवश्यक निर्युक्ति में भगवान का छद्मस्थ काल तीन मास का है और स्थानांग सूत्र में छद्मस्थ काल छमास का लिखा है (चंदप्पभे णं अरहा छम्मासे छउमत्थे होत्था स्थानांग सूत्र ५२०) भगवान की ऊंचाई १५० धनुष थी (चंदप्पभे

णं अरहा दिवड्ढं धनुसयं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ।

भगवान के ६३ गण और गणधर थे (चंदप्पहस्स णं अरहओ तेणउइ गणा तेणउइ गणहरा होत्था सम. ६३)

भगवान सुपार्श्व स्वामी के निर्वाण से नो सौ करोड़ सागरोपम के बीतने पर भ० चन्द्रप्रभ का निर्वाण हुआ ।

६—भगवान सुविधिनाथ

श्री पुष्पदन्तः सुविधिस्त्वमात्रा स्वदोहदे पुष्पतलं चकांक्षे ।
सम्पालनाद् गर्भविधे र्यथावत् तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ।।१।।

नववें तीर्थंकर 'श्री सुविधिनाथजी' हैं, इनका दूसरा नाम 'श्री पुष्पदंतजी' भी है, इसका यह कारण है कि जब ये गर्भ में आये थे तब इनकी माता को पुष्प शय्या का दोहला उत्पन्न हुआ था। ऐसे ये तीर्थंकर देव भव्य जनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं ।।९।।

पूर्वभव

पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व महाविदेह में 'पुष्पकलावती' नाम के विजय में 'पुंडरीकिणी' नामकी नगरी थी। उसमें 'पद्म' नामका राजा राज्य करता था। उसने 'जगन्नंद' नाम के आचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेकर पद्ममुनि ने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त समय में अनशन पूर्वक देहोत्सर्ग कर 'वैजयन्त' नाम के अनुत्तर विमान में देव रूप से उत्पन्न हुए वहां उन्होंने तेतीस सागरोपम की आयु प्राप्त की।

तीर्थंकर भव

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे 'काकंदी' नामकी रमणीय नगरी थी। वहां 'सुग्रीव' नाम के पराक्रमी राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम 'रामा' था। उस समय 'पद्म' मुनि का जीव वैजयंत विमान से चवकर फाल्गुन सुदी नवमी के दिन मूल नक्षत्र के योग में रानी की कुक्षि मे अवतरित हुआ। गर्भ के प्रभाव से रानी ने चौदह महास्वप्न देखे। गर्भकाल के पूर्ण होने पर मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी के दिन मूल नक्षत्र के योग मे इक्ष्वाकु कुल दीपक श्वेतवर्णी व मकर के चिन्ह से युक्त पुत्र को महारानी ने जन्म दिया। भगवान के जन्मते ही समस्त दिशाएँ आलोकित हो उठी। दिक्कुमारियों ने भगवान का प्रसूति कर्म किया। इंद्रो, देवों और मनुष्यों ने तीन ज्ञान के धारक भगवान का जन्मोत्सव किया। जन्म से पचास हजार पूर्व के बीतने पर पिता ने भगवान को राज्य गद्दी पर स्थापित किया। अट्ठाईस पूर्वांग सहित अर्द्ध लाख पूर्व तक भगवान ने राज्य का पालन किया। तदनन्तर भगवान ने प्रव्रज्या लेने का विचार किया। लोकान्तिक देवों ने भी भगवान को निवेदन किया। तीर्थंकर की परम्परा के अनुसार भगवान ने वार्षिक दान दिया। इसके बाद मार्ग-

शीर्ष कृष्णा छठ के दिन मूल नक्षत्र के योग में 'सूर प्रभा' नाम की शिविका पर आरूढ़ हो सहस्राम्र उद्यान मे पधारे वहां षष्ठ तपस्या से युक्त भगवान ने एक हजार राजाओं के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। दीक्षा के समय भगवान को चौथा मनःपर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ। दूसरे दिन भगवान ने 'श्वेतपुर' नगर के राजा पुष्प के घर परमान्न से पारणा किया। चार मास तक छद्मस्थ काल में विचरण कर भगवान पुनः काकंदी नगरी में पधारे और वहां सहस्राम्र उद्यान में मालूर वृक्ष के नीचे ध्यान करने लगे। उस दिन भगवान को छठ की तपस्या थी। कार्तिक शुक्ला तृतीया के दिन मूल नक्षत्र मे आपने घनघाति कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त किया। देवों ने केवलज्ञान उत्सव मनाकर समवसरण की रचना की। समवसरण में विराज कर भगवान ने धर्म देशना दी। धर्म देशना सुन 'वराह' आदि अट्ठासी व्यक्तियों ने प्रव्रज्या ग्रहण कर गणधर पद प्राप्त किया। भगवान ने चतुर्विध संघ की स्थापना की। वहां से भगवान ने अन्यत्र विहार कर दिया। समवायांग सूत्र में भगवान के छयासी गण और छयासी गणधर होने का उल्लेख है। [सुविहिस्स णं पुप्फदंतस्स अरहओ छलसीइ गणा, छलसीइ गणहरा होत्था समवा० ८६]

भगवान का शासन रक्षक देव 'अजित' और देवी 'सुतारा' थी। भगवान का चैत्यवृक्ष बारह सौ धनुष ऊंचा था। भगवान का समस्त परिवार इस प्रकार था:- दो लाख साधु, एक लाख बीस हजार साध्वियां, चौरासी सौ अवधि ज्ञानी, पन्द्रह सौ चौदह पूर्वधर, सात हजार पांच सौ मनः पर्यव ज्ञानी व पचहत्तर सौ केवल ज्ञानी थे। सुविहिस्स णं पुप्फदंतस्स अरहओ पन्नत्तरि जिनसया होत्था समम० ७५ तेरह हजार वैक्रियलब्धि वाले थे, छ हजार वाद लब्धि वाले थे। दो लाख उनतीस हजार श्रावक एवं चार लाख बहत्तर हजार श्राविकाएं थी। भगवान की उंचाई सौ धनुष थी। (सुविही पुप्फदंते ण अरहा एगं धणूसयं उड्ढं उच्चत्तेण होत्था। समम० १००)

अपना निर्वाण काल समीप जान भगवान समेत शिखर पर पधारे वहाँ एक मास का अनशन ग्रहण किया। भाद्रपद शुक्ला नवमी के दिन मूल नक्षत्र में एक हजार मुनियों के साथ भगवान निर्वाण को प्राप्त हुए। भगवान ने पचास हजार पूर्व कुमार अवस्था में, पचास हजार पूर्व और अट्ठाईस पूर्वांग राज्य में अट्ठाईस पूर्वांग कम एक लाख पूर्व चारित्रावस्था में व्यतीत किये। इस प्रकार भगवान की कुल आयु दो लाख पूर्व की थी। चन्द्रप्रभ स्वामी के निर्वाण से नव्वे करोड़ सागरोपम के बीतने पर सुविधिनाथ स्वामी का निर्वाण हुआ।

१०–भगवान् शीतलनाथ

अचिन्त्य माहात्म्यनिधिः शरण्यः श्रीशीतलः स्वात्मगुण प्रकाशात् ।
आनन्ददाता भवसिन्धुपोतस्तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥१०॥

दसवें तीर्थंकर 'श्री शीतलनाथजी' है। ये अकल्पनीय महामानवता के भंडार है। इन्होंने अपनी आत्मा में सर्वोच्च गुणों का संविकास कर लिया था। इससे ये संसार समुद्र के लिए जहाज के समान हैं, ये विश्व के लिए आनन्ददाता है, ऐसे तीर्थंकर भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले है ॥१०।

पूर्वभव

पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व विदेह के 'वत्स' नाम के विजय में 'सुसीमा' नाम की नगरी थी। वहां 'पद्मोत्तर नाम के राजा राज्य करते थे। उन्होंने 'अस्ताघ' नाम के आचार्य के समीप प्रव्रज्या ग्रहण की। दीक्षा लेकर वे कठोर तप करने लगे। तपश्चर्या करते हुए उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में वे संथारा ग्रहण कर 'प्राणत' नाम के देवलोक में देव रूप से उत्पन्न हुए।

तीर्थंकर भव

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में 'भद्दिलपुर' नाम का रमणीय नगर था। वह धन धान्य से समृद्ध था। वहां 'दृढरथ' नाम के वीर राजा राज्य करते थे। उनकी मुख्य रानी का नाम 'नंदा था। पद्मोत्तर राजा का जीव प्राणत देवलोक से चवकर वैशाख कृष्णा छठ के दिन पूर्वाषाढा नक्षत्र के योग में महारानी 'नन्दा' की कुक्षि में अवतरित हुआ। गर्भ काल के पूर्ण होने पर इक्ष्वाकुवंश शिरोमणि सुवर्ण कान्ति वाले एवं 'वत्स' चिन्ह से युक्त पुत्र को माघ कृष्णा द्वादशी के दिन पूर्वाषाढा नक्षत्र के योग में महारानी ने जन्म दिया। जब भगवान गर्भ में थे उस समय दाह ज्वर से पीड़ित पिता 'नन्दा' रानी के स्पर्श से शीतलता को प्राप्त हुए। अतः बालक का नाम 'शीतलनाथ' रखा। जन्म से पच्चीस हजार पूर्व के बीतने पर नव्वे धनुष ऊंचे भगवान ने पिता का राज्य स्वीकार किया। पचास हजार पूर्व तक राज्य पद भोगकर भगवान ने दीक्षा लेने का विचार किया। भगवान का विचार जानकर लोकान्तिक देवों ने दीक्षा लेने की प्रार्थना की। भगवान ने नियमानुसार वर्षी दान दिया। माघ कृष्णा १२ के दिन पूर्वाषाढा नक्षत्र के योग में देवों द्वारा बनायी गई चन्द्रप्रभा

नाम की शिविका पर आरूढ़ होकर भगवान सहस्राम्र उद्यान में आए। दिन के अन्तिम प्रहर में छठ तप के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। भगवान के साथ एक हजार राजाओं ने दीक्षा ग्रहण की। भगवान को उसी दिन मन: पर्यवज्ञान उत्पन्न हो गया।

तीसरे दिन भगवान ने छठ तप का पारणा 'रिष्ट' नगर के राजा पुनर्वसु के घर परमान्न से किया। तीन महीने तक छद्मस्थ काल में विचर कर भगवान भद्दिलपुर नगर के सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहां पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान करने लगे। पौष कृष्णा चतुर्दशी के दिन पूर्वाषाढा नक्षत्र के योग में घनघाती कर्मों का क्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त किया। देवताओं ने प्रभु का केवल ज्ञान उत्सव मनाया। भगवान ने समवसरण के बीच एक हजार अस्सी धनुष ऊँचे चैत्यवृक्ष के नीचे रत्न सिंहासन पर विराज कर उपदेश दिया। भगवान का उपदेश सुन आनन्द आदि ८१ व्यक्तियों ने प्रव्रज्या ग्रहण कर गणधर पद प्राप्त किया। भगवान ने चार तीर्थ की स्थापना की। भगवान के शासन का अधिष्ठायक ब्रह्मयक्ष और अशोका नाम की शासन देवी थी।

भगवान शीतलनाथ ने विशाल संघ के साथ अन्यत्र विहार कर दिया। तीन मास कम पच्चीस हजार वर्ष तक केवल अवस्था में विचर कर अनेक भव्यों को प्रतिबोध देते रहे।

अपना निर्वाण काल समीप जानकर भगवान सम्मेत शिखर पर पधारे। वहां एक हजार मुनियों के साथ आपने अनशन ग्रहण किया। एक मास के अन्त में वैशाख कृष्ण द्वितीया के दिन पूर्वाषाढा नक्षत्र में अवशेष कर्मों को खपाकर हजार मुनियों के साथ निर्वाण प्राप्त किया। इन्द्रादि देवों ने भगवान का निर्वाण उत्सव मनाया।

भगवान के परिवार में एक लाख साधु, एक लाख छह हजार साध्वियां, १४०० (चौदह सौ) चौदह पूर्वधर, सात हजार दो सौ अवधि ज्ञानी, साढे सात हजार मन: पर्यय ज्ञानी, सात हजार केवल ज्ञानी, बारह हजार वैक्रियलब्धि वाले, पांच हजार आठ सौ वाद लब्धि वाले, दो लाख नवासी हजार श्रावक एवं चार लाख अट्ठावन हजार श्राविकाएँ थी।

भगवान ने कुमारावस्था में पच्चीस हजार पूर्व, राज्यत्वकाल में पचास हजार पूर्व और दीक्षा पर्याय में पच्चीस हजार पूर्व व्यतीत किये इस प्रकार भगवान की कुल आयु एक लाख पूर्व की थी।

भगवान सुविधिनाथ के निर्वाण के बाद नौ कोटी सागरोपम बीतने पर भगवान शीतलनाथ निर्वाण को प्राप्त हुए।

११–भगवान श्रेयांसनाथ

श्रेयांसनाथो प्रविशुद्धि पूर्वं, श्री विष्णुदेव्याः परया सुभक्त्या ।
समस्त संसारिजनाऽनुकम्पी, तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥

ग्यारहवें तीर्थंकर "श्री श्रेयांसनाथजी" हुए हैं, श्री विष्णु राजा की धर्मपत्नी की विशुद्धि पूर्वक की हुई उत्कृष्ट भक्ति के कारण से ऐसा पुत्र जन्मा, ये विश्व के सभी जीवों पर दया-अनुकम्पा करने वाले हुए, ऐसे ये तीर्थंकर देव भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं।११।

पूर्वभव

पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व विदेह के कच्छ विजय में 'क्षेमा' नाम की नगरी थी। वहां नलिनी गुल्म नाम का प्रतापी राजा राज्य करता था। वह अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति वाला था। एक बार 'क्षेमा' नगरी में 'वज्रदत्त' नाम के आचार्य का आगमन हुआ। महाराजा नलिनि गुल्म आचार्य का आगमन सुनकर उनके दर्शन के लिए गया। आचार्य का उपदेश सुनकर उसने प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रव्रज्या ग्रहण करके कठोर तप किया और तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में बहुत काल तक चारित्र का पालन कर आयु पूर्ण की और मरकर महाशुक्र नामक देवलोक में महर्द्धिक देव हुए।

तीर्थंकर भव

जम्बू द्वीप के भरत खण्ड में 'सिंहपुर' नाम का रमणीय नगर था। वहां 'विष्णु' नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम विष्णुदेवी था। नलिनी गुल्म मुनि का जीव महाशुक्र विमान से चवकर जेठ वदि छठ के दिन श्रवण नक्षत्र के योग में विष्णुदेवी के उदर में अवतरित हुआ। गर्भ के प्रभाव से महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे। गर्भकाल के पूर्ण होने पर भाद्र पद कृष्णा द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र के योग में गेंडे के चिन्ह से युक्त सुवर्णवर्णी पुत्र को जन्म दिया। भगवान के जन्मते ही समस्त दिशाएँ दिव्य प्रकाश से प्रकाशित हो उठी। देव देवियों एवं इन्द्रों ने भगवान का जन्मोत्सव किया। माता पिता ने भी जन्मोत्सव मनाकर बालक का नाम श्रेयांसकुमार रखा। श्रेयांसकुमार क्रमशः देव देवियों एवं धात्रियों के संरक्षण में बड़े होने लगे। भगवान युवा

हुए । युवावस्था में भगवान की ऊंचाई ८० धनुष थी सेज्जंसे णं अरहा असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था (सम० ८०) भगवान का विवाह अनेक देश की सुन्दर राजकन्याओं के साथ हुआ । भगवान सुख पूर्वक रहने लगे । भगवान ने जन्म से इक्कीस लाख वर्ष बीतने पर पिता के आग्रह से राज्यग्रहण किया । बयालीस लाख वर्ष राज्य काल मे बीतने पर भगवान ने प्रव्रज्या लेने का विचार किया । भगवान का दीक्षा का विचार जानकर लोकान्तिक देव भी आये और दीक्षा के लिए भगवान से निवेदन किया । भगवान ने वर्षीदान दिया । देवो द्वारा निर्मित 'विमल प्रभा' नाम की शिबिका पर आरूढ़ होकर भगवान सहस्राम्र उद्यान में पधारे वहां फाल्गुन वदी तेरस के दिन पूर्वाह्न के समय श्रवण नक्षत्र का चन्द्र के साथ योग आने पर षष्ठ तप के साथ भगवान ने एक हजार राजाओं के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की ।

तीसरे दिन 'सिद्धार्थ' नगर के राजा 'नन्द' के घर भगवान ने परमान्न से पारणा किया । उस समय देवों ने पांच दिव्य प्रकट किये । दो मास तक छद्मस्थ काल में रहकर भगवान सिंहपुरी में पधारे । वहां सहस्राम्र उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे ध्यान करने लग । शुक्ल ध्यान की परमोच्च अवस्था में माघ मास की अमावस्या के दिन श्रवण नक्षत्र में षष्ठतप के साथ समस्त घनघाति कर्मों को खपाकर केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त किया । देव देवियों एवं इन्द्रों ने भगवान का केवल ज्ञान उत्सव मनाया । देवों ने समवसरण की रचना की । उसमें विराजकर भगवान ने देशना दी । देशना सुनकर 'गोशुभ' आदि ७६ गणधर हुए । अनेक राजाओं ने भगवान के पास दीक्षा ग्रहण की । भगवान ने चतुर्विध संघ की स्थापना करके विहार कर दिया । समवायांग सूत्र के अनुसार भगवान श्रेयांस के ६६ गण और ६६ गणधर थे (सेज्जंसस्स णं अरहओ छावट्ठी गणा छावट्ठी गणहरा होत्था सम० ६६)

भगवान के परिवार में चौरासी हजार साधु, एक लाख तीन हजार साध्वियां तेरह सौ चौदह पूर्वधारी, छः हजार अवधिज्ञानी छ हजार मनः पर्यवज्ञानी, साढ़े छहजार केवली, ग्यारह हजार वैक्रिय लब्धिधारी, पांच हजार वादी, २ लाख ७६ हजार श्रावक एवं ४ लाख ४८ हजार श्राविकाएं थी ।

अपना निर्वाण काल समीप जानकर भगवान सम्मेत शिखर पर पधारे। वहां एक हजार मुनियों के साथ अनशन ग्रहण किया। श्रावण मास की कृष्णा तृतीया के दिन धनिष्ठा नक्षत्र में एक मास का अनशन कर एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया। भगवान का निर्वाण उत्सव इन्द्रादि देवों ने किया।

भगवान ने कौमार वय में २१ लाख वर्ष, राज्य पद पर ४२ लाख वर्ष, दीक्षा पर्याय में २१ लाख वर्ष, इस प्रकार भगवान ने ८४ लाख वर्ष की अवस्था मे सिद्धत्व प्राप्त किया। (सिज्जंसे णं अरहा चउरासीइं वास सयसहस्साइं सव्वाउयं पालयित्ता सिद्धे जावप्पहीणे सम० ८४) भगवान शीतलनाथ के बाद ६६ लाख ३६ हजार वर्ष तथा सौ सागरोपम कम एक कोटी सागरोपम बीतने पर भ० श्रेयांसनाथ ने निर्वाण प्राप्त किया।

१२—भगवान वासुपूज्य

श्रीवासुपूज्यः सकलार्थसिद्धे द्वारं भवेत् मोक्षदिशोपदेष्टा ।
देवाधिदेवो जगतामधीशस्तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥१२॥

बारहवें तीर्थंकर "श्री वासुपूज्यजी" है । सभी प्रकार के अर्थों को सिद्धि के ये द्वार समान हैं । ये मोक्ष रूप मार्ग के उपदेश देने वाले हैं, ये देवों के देव हैं, तीनों लोकों के अधीश्वर हैं, ऐसे ये तीर्थंकर देव भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं ।

पूर्वभव

पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र के मंगलावती विजय में रत्नसंचया नाम की नगरी थी । वहां के शासक का नाम पद्मोत्तर था । वज्रनाभ मुनि के समीप चारित्र ग्रहण किया । संयम और तप की उत्कृष्ट भावों से आराधना करते हुए उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया । अन्तिम समय में समाधि पूर्वक देह का त्याग कर वे प्राणतकल्प में महर्द्धिक देव बने ।

तीर्थंकर भव

जम्बू द्वीप के दक्षिण भरतार्द्ध में चम्पा नाम की एक समृद्ध नगरी थी । वहां वसुपूज्य नाम के महायशस्वी राजा राज्य करते थे । उनकी मुख्य पट्टरानी का नाम 'जया' था । प्राणत कल्प का आयु पूर्ण कर पद्मोत्तर मुनिराज का जीव ज्येष्ठ शुक्ला नवमी के दिन शतभिषा नक्षत्र में जया रानी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ, गर्भ के प्रभाव से महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे । गर्भ का महारानी विधि पूर्वक पालन करने लगी । गर्भकाल की समाप्ति पर महारानी ने फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी के दिन शतभिषा नक्षत्र मे रक्त वर्णीय एवं महिषलांछन से युक्त सुन्दर पुत्र रत्न को जन्म दिया । भगवान के जन्म से समस्त दिशाएं प्रकाश से आलोकित हो उठीं । इन्द्रादि देवों ने मेरु पर्वत पर भगवान को लेजाकर जन्मोत्सव किया । माता-पिता ने भी पुत्र का जन्मोत्सव किया । पिता के नाम पर ही पुत्र का नाम वासुपूज्य रखा । भगवान ने बाल्यकाल पार कर यौवन अवस्था को प्राप्त किया । यौवनवय के प्राप्त होने पर भगवान की उंचाई ७० धनुष को थी ।

(वासुपुज्जे णं अरहा सत्तरिं धनूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था (सम० ७०)

भगवान बाल्य काल से ही वैराग्य रंग में रंगे हुए थे। यौवनवय में उनके रूप यौवन और पराक्रम की गाथा सुनकर अपनी अपनी राजकुमारियों का वासु पूज्य के साथ विवाह करने के लिए महाराजा वसुपूज्य के पास अनेक सन्देश आने लगे। महाराजा वसुपूज्य भी अपने पुत्र को विवाहित देखना चाहते थे। उन्होंने वासुपूज्य को अपने पास बुलाकर कहा–पुत्र ! गृहस्थ जीवन में राजाओं का विवाह अनिवार्य होता है क्यों कि उनकी सन्तान ही राज्य की उत्तराधिकारी बनती हैं। निर्वंश राजा का राज्य लंबे समय तक नहीं चल सकता। अतः राज्य की सुरक्षा व अपने सुख को सामने रखकर तू विवाह करले। पिता अपने पुत्र को सुखी देखना चाहता है।

भगवान वासुपूज्य ने कहा पिताजी ! पौद्गलिक सुख सुख नहीं किन्तु वास्तव में दुःख ही है। बाह्य राज्य तो विनश्वर और अल्प सुख का कारण है। आत्मिक राज्य ही वास्तविक सुख देता है। मैं ऐसी स्त्री के साथ विवाह करना चाहता हूँ जिसके साथ रहने से मेरी सुख और शान्ति अमर रहे। मैं इसी मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए संयम लेना चाहता हूँ। आप भी मेरे इस पुण्य कार्य में सहायक होकर अपने आप को पुण्य शाली बनावे। पिता के बहुत समझाने पर भी वासुपूज्य विवाह के लिए तैयार न हुए। अन्त में वासुपूज्य के उत्कृष्ट वैराग्य के सामने उन्हें हार खानी पड़ी और पुत्र को दीक्षा की आज्ञा प्रदान करदी।

पिता की आज्ञा प्राप्त कर भगवान ने वार्षिक दान दिया। और छ सौ पुरुषों के साथ (वासुपुज्जे णं अरहा छहिं पुरिससएहि सद्धिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए सम० १४८) पृथ्वी नाम की शिविका पर आरुढ़ हो विहार गृह नाम के उद्यान में भगवान पधारे उस दिन भगवान ने उपवास किया था। फाल्गुनी अमावस्या के दिन वरुण नक्षत्र में दिवस के अपरान्हने पंच मुष्ठि लोच कर भगवान प्रव्रजित हुए। छ सौ राजाओं ने प्रव्रज्या ग्रहण की। उसी दिन भगवान को चौथा मनः पर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ। इन्द्र द्वारा दिये गये देव दूष्य वस्त्र को धारण कर भगवान ने अन्यत्र विहार कर दिया। दूसरे दिन भगवान ने उपवास का पारणा महापुर के राजा सुनन्द के घर परमान्न से किया।

एक मास तक छद्मस्थ काल में विचर कर भगवान पुनः चंपा के विहार गृह उद्यान में पधारे। वहां पाटल वृक्ष के नीचे ध्यान कर माघ शुक्ला द्वितीया के दिन शतभिषा नक्षत्र के योग

में केवलज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त किया। देवों ने भगवान का केवलज्ञान उत्सव किया। देव निर्मित समवसरण में रत्न सिंहासन पर विराज कर भगवान ने देशना दी। भगवान का उपदेश सुनकर सूक्ष्म आदि ६६ व्यक्तियो ने प्रव्रज्या ग्रहण कर गणधर पद प्राप्त किया। समवायांग आदि के अनुसार भगवान के ६२ गण और गणधर थे।

(वासु पुज्जस्स णं अरहओ बासट्ठि गणा बासट्ठि गणहरा होत्था सम० ६२)

भगवान के परिवार में ७२ हजार साधु, १ लाख साध्वियां, १२०० चौदह पूर्व धर, ५४०० अवधिज्ञानी, छ हजार एक सौ मनः पर्यव ज्ञानी, छ हजार केवल ज्ञानी, दस हजार वैक्रियलब्धि धारी, चार हजार सात सौ बादलब्धिधारी, दो लाख १५ हजार श्रावक एवं चार लाख ३६ हजार श्राविकाएँ हुई। इस प्रकार अपने विशाल परिवार के साथ एक मास कम चौवन लाख वर्ष तक केवली अवस्था में भव्यों को प्रतिबोध देते हुए पृथ्वी पर विचरे।

अपना निर्वाण काल समीप जानकर भगवान 'चंपा' नगर पधारे। वहां आपने छ सौ मुनिराजों के साथ एक मास का अनशन ग्रहण किया। आषाढ शुक्ला चतुर्दशी के दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में आपने निर्वाण प्राप्त किया।

भगवान ने कुमारावस्था में अठारह लाख वर्ष एवं व्रत में ५४ लाख वर्ष व्यतीत किये। इस प्रकार कुल ७२ लाख वर्ष की आपकी आयु थी।

भगवान श्रेयांसनाथ के निर्वाण के बाद चौवन सागरोपम बीतने पर भगवान का निर्वाण हुआ।

१३–भगवान विमलनाथ

काम्पिल्यपुर्यां कृतवर्मराज्ञः, श्यामाख्यदेवी मनसः प्रियाऽऽसीत् ।
तयोः सुपुत्रो विमलो विशुद्धो, तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥१३॥

काम्पिल्य पुरी का राजा कृतवर्म देव था, इनकी रानी का नाम श्यामा था, जो राजा के मन को प्रिय लगती थी उनके सुपुत्र 'भगवान विमलनाथजी अति पवित्र हैं। ऐसे तीर्थंकर देव भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं ॥१३॥

पूर्वभव

धातकी खण्ड द्वीप के प्राग् विदेह क्षेत्र के भरत विजय में महापुरी नाम की प्रसिद्ध नगरी थी। वहां पद्मसेन नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे। उन्होंने सर्वगृप्त मुनिराज से उपदेश सुनकर प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रव्रज्या लेकर उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। समाधि मरण से मृत्यु को प्राप्त कर वे सहस्रार देवलोक में महर्द्धिक देव रूप में उत्पन्न हुए।

तीर्थंङ्कर भव

इसी जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में कांपिल्यपुर नाम का नगर था। वहां 'कृतवर्मा' नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम 'श्यामा' था। 'पद्मसेन' राजा का जीव सहस्रार देवलोक से च्युत होकर वैशाख शुक्ला द्वादशी के दिन उत्तरा भाद्र पद नक्षत्र के योग में श्यामादेवी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे। गर्भकाल के पूर्ण होने पर माघ मास की शुक्ला तृतीया के दिन शूकर चिन्ह से चिन्हित तप्त सुवर्ण की कान्ति वाले सुन्दर पुत्र रत्न को जन्म दिया। देवी देवताओं एवं इन्द्रों ने भगवान का जन्मोत्सव मनाया। माता पिता ने बालक का जन्मोत्सव कर विमल कान्ति वाले भगवान का नाम 'विमलनाथ' रखा। युवा होने पर भगवान विमलनाथ का अनेक सुन्दर राजकुमारियों के साथ विवाह हुआ। भगवान की उस समय साठ धनुष की ऊंचाई थी। (विमलस्स णं अरहा सट्ठि धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था) सम० ६०]

एक सौ आठ लक्षण से युक्त भगवान का पिता ने राज्याभिषेक किया। ३० लाख वर्ष तक राज्य पद पर रहने के बाद भगवान ने वर्षीदान देकर देवों द्वारा तैयार की गई देवदत्ता नाम की शिविका पर आरूढ़ होकर माघ मास की शुक्ला चतुर्थी के दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में छठ तप सहित सहस्राम्र उद्यान में दीक्षा ग्रहण की। साथ में एक हज़ार राजाओं ने भी दीक्षा ग्रहण की। भगवान को उसी दिन मन: पर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ। भगवान ने इन्द्र प्रदत्त देव दूष्य को धारण कर अन्यत्र विहार कर दिया। भगवान ने छठ का पारणा धान्यकूट नगर के राजा 'जय' के घर परमान्न से किया। पारने के समय पांच दिव्य प्रकट हुए।

दो वर्ष तक छद्मस्थकाल में विचर कर भगवान पुन: काम्पिल्यपुर के सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहां जम्बू वृक्ष के नीचे षष्ठ तप के साथ कायोत्सर्ग करने लगे। उस समय ध्यान की परमोच्च अवस्था में पौष शुक्ला षष्ठी के दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त किया। देवों ने केवल ज्ञान महोत्सव मनाया। तदनन्तर भगवान ने देव निर्मित समवसरण में विराजकर धर्मोपदेश दिया। भगवान का उपदेश सुनकर मन्दर आदि ५७ पुरुषों ने प्रव्रज्या ग्रहण की और भगवान से त्रिपदी सुनकर द्वादशांगी की रचनाकर गणधर पद प्राप्त किया (समवायांग सूत्र में विमल अर्हत् के ५६ गण और ५६ गणधर थे "विमलस्स णं अरहओ छप्पन्नं गणा छप्पण्णं गणहरा होत्था" सम० ५६) भगवान का शासन रक्षक षण्मुख नाम का यक्ष और विदिता नाम की शासन रक्षक देवी हुई।

विमलस्स ण अरहओ अडसट्ठी समण साहस्सीओ उक्कोसिया समण संपया होत्था (सम० ६८) भगवान के परिवार में ६८ हजार साधु, १ लाख आठ सौ साध्वियां, ग्यारह सौ चौदह पूर्वधर, ४ हजार ८०० सौ अवधि ज्ञानी, ५ हजार ५०० सौ मन: पर्यव ज्ञानी, ५५०० केवल ज्ञानी, नौ हजार वैक्रिय लब्धिधारी, दो लाख आठ हजार श्रावक एवं ४ लाख ३४ हजार श्राविकाएं थी। केवल ज्ञान के बाद दो वर्ष कम १५ लाख वर्ष तक भव्यों को प्रतिबोध देते हुए आप पृथ्वी पर विचरते रहे।

अपना निर्वाण काल समीप जानकर भगवान सम्मेत शिखर पर पधारे। वहां छह हजार साधुओं के साथ एक मास का अनशन ग्रहण किया। आषाढ़ कृष्णा सप्तमी के दिन पुष्य नक्षत्र के

योग में छः हजार मुनियों के साथ निर्वाण प्राप्त किया। देवों ने भगवान का निर्वाण उत्सव मनाया। भगवान विमलनाथ के पश्चात् ४४ पुरुष युग शिष्यों प्रशिष्यों ने क्रमशः सिद्ध गति को प्राप्त किया। (विमलस्स णं अरहओ चोयालीसं पुरिसजुगाइं अणुपिट्ठिसिद्धाइं जावप्पहीणाइं (सम० ४४)

भगवान ने १५ लाख वर्ष कौमार अवस्था में, ३० लाख वर्ष राज्य काल में, एवं १५ लाख वर्ष चारित्र में व्यतीत किये। भगवान की कुल आयु ६० लाख वर्ष की थी। भगवान वासुपूज्य के निर्वाण के तीस लाख सागरोपम बीतने पर भगवान विमलनाथ मोक्ष में पधारे।

स्वयंभू वासुदेव और भद्र बलदेव भगवान विमलनाथ के परम भक्त थे।

१४–भगवान अनन्तनाथ

संसारसिन्धौ तरणीसमानः, कैवल्यलक्ष्मी सहितो जिनेन्द्रः ।
अनन्तनाथो गुणरत्नराशिस्तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥ १४ ॥

भगवान "अनन्तनाथजी" संसाररूपी समुद्र में जहाज के समान है, वे केवल ज्ञान रूपी लक्ष्मी से शोभायमान हैं। केवलियों के इन्द्र हैं। गुण रत्नों के समूह रूप हैं, ऐसे तीर्थंकर देव भव्य. जीवों को संसार सागर से पार करने वाले हैं। १४ ॥

पूर्वभव

धात की खण्ड द्वीप के प्राग् विदेह में ऐरावत नाम के विजय में अरिष्टा नाम की सुन्दर नगरी थी। वह धन धान्य से समृद्ध थी। वहां राजा 'पद्मरथ' बड़े वीर और धार्मिक मनोवृत्ति के थे। एकबार नगर में 'चित्तरक्ष' नाम के शासन प्रभावक आचार्य पधारे। राजा आचार्य का आगमन सुनकर राज वैभव के साथ उनके दर्शन के लिए गया। आचार्य का उपदेश सुन उसके मन में वैराग्य भाव जाग्रत हुआ। घर आकर उन्होंने अपने पुत्र को राजगद्दी पर बैठाया और वह आचार्य के समीप जाकर प्रव्रजित हो गये। प्रव्रज्या ग्रहण कर उन्होंने आचार्य के समीप श्रुत का अध्ययन किया। आगमों का ज्ञान प्राप्त कर पद्मरथ मुनि कठोर तप करने लगे। तप संयम की उत्कृष्ट साधना करते हुए उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन के बीस बोलों की आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। तप से अपने शरीर को क्षीण किया और आत्मा को उज्ज्वल बनाया। अपना आयुष्य अल्प जानकर उन्होंने अनशन ग्रहण किया। समाधि पूर्वक देह का परित्याग कर वे प्राणत देवलोक में उत्पन्न हुए और महर्द्धिक देव बने।

तीर्थंकर भव

इसी जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में अयोध्या नाम की नगरी थी। इस नगरी में इक्ष्वाकुवंश के अनेक शूर वीर व धार्मिक मनोवृत्ति के राजा हो गये। उन्हीं की वंश परम्परा में 'सिंहसेन' नाम के प्रतापी राजा वहां राज्य करते थे। वे धर्मात्मा एवं अत्यन्त न्याय प्रिय थे। उनकी पट्टरानी का

नाम 'सुयशा' था। वह यथा नाम तथा गुण वाली थी। 'पद्मरथ' मुनि का जीव प्राणत देवलोक से च्युत होकर महारानी सुयशा की कुक्षि में श्रावण कृष्णा सप्तमी की रात को रेवती नक्षत्र के योग में अवतरित हुआ। गर्भ के प्रभाव से महारानी ने चौदह महा स्वप्न देखे। गर्भकाल के पूर्ण होने पर महारानी ने वैशाख कृष्ण त्रयोदशी के दिन मध्य रात्रि में रेवती नक्षत्र में बाज चिह्न से चिन्हित तप्त सुवर्ण के समान सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। देव देवियों और इन्द्रों ने मेरु पर्वत पर भगवान को लेजाकर वहां उनका जन्मोत्सव किया। माता पिता ने भी उनका जन्मोत्सव किया। गुण के अनुसार भगवान का नाम 'अनन्तनाथ' रखा। युवा होने पर भगवान् अनन्तनाथ का विवाह अनेक सुन्दर राजकुमारियों के साथ हुआ। भगवान् की उस समय उंचाई ५० धनुष की थी (**अणंते णं अरहा पन्नासं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था**-सम० ५०) कुमारावस्था के साढ़े सात लाख वर्ष के व्यतीत होने पर पिता ने भगवान् का राज्याभिषेक किया। १५ लाख वर्ष तक राज्य करने के बाद भगवान् ने प्रव्रज्या लेने का विचार किया। भगवान् के मनोगत भावों को जान कर लौकान्तिक देवों ने भगवान् से प्रव्रज्या की प्रार्थना की। भगवान् नियमानुसार वार्षिक दान देकर वैशाख वदी चौदस के दिन देवनिर्मित "सागरदत्ता" नाम की शिविका पर आरूढ़ होकर षष्ठभक्त तप सहित सहस्राम्र उद्यान में आये। वहां एक हजार राजाओं के साथ आपने प्रव्रज्या ग्रहण की। इन्द्र द्वारा दिये देव दूष्य वस्त्र को धारण कर भगवान् ने वहां से विहार कर दिया।

दूसरे दिन भगवान् ने छठ का पारणा वर्द्धमान नगर के राजा विजय के घर परमान्न से किया। उसके घर देवों ने पांच दिव्य प्रकट किये।

तीन वर्ष तक छद्मस्थकाल में विचरने के बाद भगवान् अयोध्या नगरी के सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहां अशोक वृक्ष के नीचे ध्यान करने लगे। वैशाख कृष्ण १४ के दिन रेवती नक्षत्र में घनघाती कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त किया। देवों ने भगवान् का केवलज्ञान उत्सव मनाया। भगवान् ने देवनिर्मित समवसरण में विराज कर धर्मदेशना दी। भगवान की देशना सुन कर यश आदि ५० व्यक्तियों ने प्रव्रज्या ग्रहण कर गणधर पद प्राप्त किया। भगवान् के शासन का अधिष्ठायक 'पाताल' नाम का यक्ष था और अधिष्ठात्री 'अंकुशा' नाम की देवी थी।

भगवान ने चतुर्विध संघ की स्थापना की और अपने विशाल साधु समूह के साथ जनपद

विहार कर दिया। भगवान के विहार काल में छयासठ हजार साधु, ६२ हजार सांध्वियां ६०० चौदह पूर्व धर, ४३०० सौ आवधिज्ञानी ४५०० मन: पर्यवज्ञानी, पांच हजार केवल ज्ञानी, आठ हजार वैक्रिय लब्धिधारी, तीन हजार दो सौ वादी, २ लाख ६ हजार श्रावक, एवं ४ लाख चौदह हजार श्राविकाएँ हुई।

व्रत ग्रहण करने के पश्चात् साढ़े सात लाख वर्ष बीतने पर चैत्र शुक्ला पंचमी के दिन रेवती नक्षत्र में सम्मेत शिखर पर एक मास का अनशन ग्रहण कर सात हजार मुनियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया।

भगवान् ने कुमारावस्था में साढ़े सात लाख वर्ष, राज्यकाल में १५ लाख वर्ष एवं व्रत पालन में साढ़े सात लाख वर्ष व्यतीत किये। इस प्रकार भगवान की कुल आयु तीस लाख वर्ष की थी।

भगवान विमलनाथ के निर्वाण से नौ सागरोपम व्यतीत होने पर अनन्तनाथ भगवान् ने निर्वाण प्राप्त किया।

आपके पुरुषोत्तम वासुदेव और सुप्रभ नाम के बलदेव परम भक्त थे।

१५–भगवान धर्मनाथ

रत्नाख्यपुर्यां खलु भानुभूपः, श्रीसुव्रतानाम सती सुदेवी ।
तयोःसुपुत्रः प्रबभूव धर्मस्तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥१५॥

रत्नपुरी का राजा भानु नामक था, इनकी रानी का नाम श्री सुव्रतदेवी था, जो कि सती और पतिव्रता थी । इन्हीं के पुत्र के रूप में भगवान "धर्मनाथजी" उत्पन्न हुए, ऐसे ये पन्द्रहवें तीर्थंकर भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं ॥१५॥

पूर्वभव

धातकी खंड द्वीप में पूर्व विदेह में भरत विजय में भद्दिलपुर नाम का नगर था । वहां दृढ़रथ नाम का प्रतापी न्यायप्रिय राजा राज्य करता था । उसने विमलवाहन मुनि के समीप प्रव्रज्या ग्रहण की । प्रव्रज्या ग्रहण कर वे कठोर तप करने लगे । अन्तिम समय में उन्होंने अनशन किया और कालकर वैजयन्त विमान में महर्द्धिक देव बने ।

तीर्थंकर भव

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में 'रत्नपुर' नाम का नगर था । वहां 'भानु' नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे । उनकी रानी का नाम 'सुव्रता' था । 'दृढ़रथ' मुनि का जीव वैजयन्त विमान से चवकर वैशाख शुक्ला सप्तमी के दिन पुष्य नक्षत्र में महारानी के उदर में अवतरित हुआ । महारानी ने तीर्थंकरत्व के सूचक चौदह महास्वप्न देखे । गर्भ काल के पूर्ण होने पर माघ शुक्ला तृतीया के दिन पुष्य नक्षत्र में महारानी ने वज्र चिन्ह से चिन्हित सुवर्णवर्ण पुत्र को जन्म दिया । उसी समय भोगंकरा आदि दिक्कुमारियों ने आकर प्रभु का जन्मोत्सव किया । सौधर्म आदि इन्द्रों ने भगवान को मेरु पर्वत पर लेजाकर अति पाण्डुक शिला पर उनका जन्माभिषेक किया । जन्माभिषेक होने पर इन्द्र ने प्रभु को माता की गोद में रख दिया । माता पिता ने बालक का जन्मोत्सव किया । जब भगवान् गर्भ में थे तब माता को धर्म करने का दोहद उत्पन्न हुआ था । इस कारण बालक का नाम धर्मनाथ रखा । बाल्यकाल को पारकर भगवान युवा हुए । युवावस्था में भगवान की ऊंचाई

४५ धनुष थी । (धम्मे णं अरहा पणयालीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था–सम० ४५) भगवान का अनेक सुन्दर राजकुमारियों के साथ विवाह हुआ। जन्म से अढाई लाख वर्ष बीतने पर पिता के आग्रह से राज्य ग्रहण किया। पांच लाख वर्ष तक राज्य करने के बाद भगवान ने प्रव्रज्या लेने का विचार किया । तदनुसार लौकान्तिक देवों ने भी भगवान से प्रव्रज्या लेने की प्रार्थना की। भगवान ने तीर्थंकर की परम्परा के अनुसार वार्षिकदान दिया। इसके बाद देव और मानव निर्मित 'नागदत्ता' नाम की शिबिका पर आरूढ़ होकर भगवान वप्रकांचन उद्यान में पधारे। वहां षष्ठ तप के साथ माघ शुक्ला त्रयोदशी के दिन पुष्य नक्षत्र के योग में एक हजार राजाओं के साथ आपने प्रव्रज्या ग्रहण की। उसी समय भगवान को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ । इन्द्र द्वारा दिये गये देवदूष्य को धारण कर भगवान ने विहार कर दिया। दूसरे दिन छठ का पारणा सोमनसपुर के राजा धर्मसिंह के घर परमान्न से किया। वहां देवों ने पाँच दिव्य प्रकट किये।

दो वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में रहने के बाद भगवान् अपने दीक्षा स्थल वप्रकांचन उद्यान में पधारे। वहां दधिपर्ण वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए पौष मास की पूर्णिमा के दिन पुष्य नक्षत्र के योग में केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया । देवों ने भगवान का केवलज्ञान उत्सव मनाया। समवसरण की रचना हुई। उसमें भगवान ने रत्न सिंहासन पर बैठकर उपदेश दिया। उपदेश सुनकर पुरुषसिंह वासुदेव ने सम्यक्त्व ग्रहण किया। सुदर्शन बलदेव ने श्रावक व्रत ग्रहण किये। अरिष्ट आदि ४३ व्यक्तियों ने प्रव्रज्या ग्रहणकर गणधर पद प्राप्त किया। भगवान् ने चतुर्विध संघ की स्थापना की। भगवान का चैत्यवृक्ष पांच सौ चालीस धनुष ऊंचा था। भगवान के शासन का अधिष्ठायक किन्नर यक्ष हुआ और कंदर्पा नाम की शासन देवी हुई।

भगवान ने श्रमण संघ के साथ अन्यत्र विहार कर दिया।

भगवान के परिवार में ६४ हजार साधु, ६२ हजार चार सौ साध्वियां, ९०० चौदह पूर्व धर, ३ हजार ६ सौ अवधि ज्ञानी, ४५ सौ मनःपर्यवज्ञानी, ४५ सौ केवलज्ञानी, ७ हजार वैक्रिय लब्धिधारी, दो हजार आठ सौ वाद लब्धि वाले, दो लाख चालीस हजार श्रावक, एवं चार लाख तेरह हजार श्राविकाएँ थी। भगवान अढाई लाख वर्ष तक भव्यों को प्रतिबोध देते रहे।

अपना निर्वाण काल समीप जानकर भगवान् सम्मेत शिखर पर पधारे। वहां आठ सौ मुनियों के साथ आपने एक मास का अनशन ग्रहण किया। ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन पुष्य नक्षत्र के योग में भगवान ने निर्वाण प्राप्त किया। निर्वाण उत्सव देवों ने किया।

भगवान ने कुमारावस्था में ढाई लाख वर्ष, राज्य में पांच लाख वर्ष, एवं व्रत पालन में ढाई लाख वर्ष व्यतीत किये। इस प्रकार भगवान की कुल आयु दस लाख वर्ष की थी। (धम्मे णं अरहा दसवाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जाव पहीणे। स्था० १०-१-६१) अनन्तनाथ भगवान के निर्वाण के बाद ४ सागरोपम बीतने पर भगवान धर्मनाथ मोक्ष में गये।

१६–भगवान शान्तिनाथ

पूर्वे भवे रक्षणरुक्मदानात् तीर्थङ्करत्वं पदमाप शान्तेः ।
लोकेषु शान्ति वितरन् जिनेन्द्रस्तीर्थंकरः पारकरो जनानाम् ॥१६॥

चइत्ता भारहं वासं चक्कवट्टी महिड्ढिओ ॥
संती संतिकरे लोए पत्तो गइमणुत्तरं ॥

—उत्तराध्ययन अ० १८ गा० ३८।

"श्री शान्तिनाथ भगवान्" ने पूर्वभव में अनुकंपा दया करूणा का तथा विविध प्रकार का दानादि दिया था, इससे इन्होंने तीर्थंकर गोत्र प्राप्त किया था, उन्होंने शांति का प्रसार किया था। और ये जिनेन्द्र रूप से विख्यात हुए थे, ये भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं।।१६।।

अखिल विश्व में शान्ति स्थापित करने वाले चक्रवर्ती, महान ऋद्धि सिद्धि धारक सोलहवें शान्तिनाथ नामके तीर्थंकर भरत क्षेत्र का राज्य छोड़कर उत्तम गति-मोक्ष को प्राप्त हुए।

प्रथम द्वितीय और तृतीय भव

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में रत्नपुर नाम का नगर था। वहां श्रीषेण नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी अभिनन्दिता और शिखिनन्दिता नाम की दो रानियां थी। महारानी अभिनन्दिता ने एक रात्रि में स्वप्न में अपनी गोद में चन्द्र और सूर्य को खेलते हुए देखा। उसके फलस्वरूप महारानी अभिनन्दिता ने इन्दुषेण और विन्दुषेण नाम के दो पुत्रों को जन्म दिया।। योग्य वय होने पर दोनो ने कलाचार्य के पास विद्याध्ययन किया। वे युवा हुए।

मगध देश के अचल ग्राम में धरनिजट नाम का एक विद्वान ब्राह्मण रहता था। उसकी यशोभद्रा नाम की पत्नी थी। उसने नन्दिभूति और शिवभूति नाम के दो पुत्रों को जन्म दिया। नन्दिभूति ज्येष्ठ था। धरनिजट की कपिला नाम की दासी थी। वह उसकी रखैल थी। उस दासी से एक पुत्र हुआ जिसका नाम कपिल रखा गया था। कपिल बुद्धिमान था। जब धरनिजट अपने पुत्रों नन्दिभूति और शिवभूति को पढ़ाता था तब कपिल भी उनके पास आकर बैठ जाता

था और उनके पाठ सुनकर मन ही मन याद कर लेता था। वह थोड़े ही दिनों में नन्दिभूति शिवभूति की तरह विद्वान हो गया। उसने वेद वेदांग का सांगोपांग अध्ययन कर लिया। विद्वान बन जाने के बाद उसने एक दिन सोचा-यदि मैं यहां रहूंगा तो मेरा सम्मान नहीं बढ़ेगा, अतः मुझे परदेश जाकर सम्मान प्राप्त करना चाहिये। ऐसा सोचकर वह परदेश रवाना हो गया। उसने गले में यज्ञोपवीत डाल ली और अपने आपको श्रेष्ठ ब्राह्मण बताकर गांव गांव में प्रतिष्ठा प्राप्त करने लगा।

वह घूमता हुआ रत्नपुर आया, वहां उसने महोपाध्याय सत्यकी को अपनी विद्वत्ता से खूब प्रभावित किया। धीरे-धीरे दोनों का संपर्क गाढ़ हो गया। उसने उसकी विद्वत्ता से और कार्य करने के ढंग से प्रभावित होकर अपनी सुन्दर कन्या सत्यभामा का विवाह उसके साथ कर दिया। इस सम्बन्ध से कपिल की प्रतिष्ठा में विशेष वृद्धि हुई।

एक समय रात में कपिल नाटक देखने गया। नाटक से लौटते समय अचानक वर्षा प्रारंभ हो गई। कपिल वस्त्रों के भीगने के भय से सोचने लगा-अन्धेरी रात में कौन देखता है? फिर क्यों नये वस्त्रों को भिगोकर खराब करूं।? उसने कपड़े उतार लिये और समेट कर बगल में दबा लिये और नंग धडंग ही भीगता हुआ घर पहुंच गया और कपड़े पहन कर दरवाजा खटखटाने लगा। सत्यभामा अपने पति की प्रतीक्षा कर ही रही थी। उसने दरवाजे के खटखटाने आवाज सुनकर किवाड़ खोल दिये। घनघोर वर्षा में भी पति को सूखे कपड़ों में देखकर अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुई। उसने पति से पूछा-इस जोरदार वर्षा में भी आपके कपड़े कैसे नहीं भीगे?

कपिल ने कहा-प्रिये! मंत्र के प्रभाव से मैं घनघोर वर्षा में सूखा का सूखा आया हूं।

कपिल के इस उत्तर से सत्यभामा सोचने लगी-यदि मंत्र के प्रभाव से कपड़े सूखे रह सकते हैं तो शरीर क्यों नहीं रह सकता है? अवश्य ही यह नंगा ही घर आया है। नग्न होकर आने वाला मेरा पति कुलवान नहीं हो सकता। सत्यभामा के मन में उसके कुल की श्रेष्ठता के विषय में संदेह उत्पन्न हो गया। अपने पति की इस कुलहीन निर्लज्जता पर उसे अत्यन्त दुःख हुआ। वह अपने को दुर्भागिनी मानकर मन ही मन घुलने लगी। उसने अपने पति के कुल को जानने का निश्चय किया।

इधर धरणीजट विशेष धन प्राप्ति की इच्छा से परदेश रवाना हुआ। वह घूमता हुआ रत्नपुर पहुंचा। उसने सुना कि कपिल यहां के प्रसिद्ध विद्वान ब्राह्मण सत्यकी का जामाता बना है तो वह उसके पास पहुंचा। कपिल ने पिता का स्वागत किया। भोजन का जब समय आया तो धरणिजट अपने पुत्र कपिल से अलग भोजन के लिए बैठ गया। पिता पुत्र को अलग भोजन करते हुए देखकर सत्यभामा का सन्देह और भी दृढ़ हो गया। उसने एकान्त में अपने श्वसुर धरणिजट से कपिल के बारे में पूछा तो धरणिजट ने कह दिया कि यह रखैल दासी का पुत्र है। यह सुनकर सत्यभामा को बड़ा दुःख हुआ। वह महाराजा श्रीषेण के पास पहुंची और प्रणाम कर कहने लगी–

राजन्! मेरा पति कुलहीन है। वह एक रखैल दासी का पुत्र है। मैं अब कुलहीन पति के साथ नहीं रहना चाहती। अतः आप मुझे कपिल से मुक्ति दिला दीजिए–

राजा ने कपिल को बुलाया और उसे सत्यभामा का परित्याग करने के लिए समझाया। सत्यभामा को महाराजा ने अपनी रानियों के साथ रखा। सत्यभामा तपोमय जीवन बिताती हुई महाराजा के महल में रहने लगी।

इन्दुसेन और बिन्दुसेन का युद्धः—

कौशाम्बी नगरी में बल नाम के राजा राज्य करते थे। उसको श्रीकांता नाम की युवा पुत्री थी। महाराजा बल ने श्रीकान्ता का विवाह श्रीषेण राजा के पुत्र इन्दुसेन के साथ करने का निश्चय किया। राजा ने अपनी पुत्री श्रीकान्ता को बड़े वैभव के साथ रत्नपुर भेजा। साथ में अनन्तमती नाम की एक अत्यन्त रूपवती वेश्या को भी भेजा। श्रीकान्ता का विवाह बड़े उत्सव के साथ इन्दुसेन के साथ हो गया।

अनन्तमती अत्यन्त रूपवती वेश्या थी। उसके उत्कृष्ट रूप और यौवन को देखकर इन्दुसेन और विन्दुसेन दोनों उस पर आसक्त हो गये। दोनों उसे पाने के लिये प्रयत्न करने लगे। अन्त में इस बात के लेकर दोनों में भयंकर लड़ाई प्रारम्भ हो गई। दोनों एक दूसरे के रक्त के प्यासे बनकर आपस में लड़ने लगे। जब महाराज श्रीषेण को इस बात का पता लगा तो वे भागकर दोनों के पास आये और युद्ध न करने के लिए खूब समझाने लगे। किन्तु महाराज का समझाना निरर्थक गया। वे महाराज की बात को उपेक्षा करके लड़ते ही रहे। यह देख महाराज

निराश होकर अपने अन्तःपुर लौट आये। उन्हें अपने पुत्रों की हालत पर अत्यन्त दुःख हुआ। अपने निर्लज्ज पुत्रों के साथ रहने के बजाय उन्होंने मरण ही पसन्द किया। अन्त में तालपुट विष से व्याप्त कमल सूंघ कर उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। दोनों रानियों ने अपने पति का अनुसरण किया। जब इस बात का पता सत्यभामा को लगा तो वह सोचने लगी—यदि मैं जीवित रहूंगी तो कपिल मुझे नहीं छोड़ेगा अतएव कुलहीन पति के साथ रहने की अपेक्षा मरना ही मेरे लिये श्रेयस्कर है। यह विचार कर उसने भी जहर से व्याप्त कमल सूंघ लिया और अपने प्राण त्याग दिये।

ये चारों जीव मरकर जम्बूद्वीप के उत्तर कुरु क्षेत्र में युगलिया के रूप में उत्पन्न हुए। जिनमें श्रीषेण और अभिनन्दिता का एक युगल तथा शिखिनंदिता और सत्यभामा का दूसरा युगल हुआ। ये सुख पूर्वक रहने लगे।

इधर देवरमण उद्यान में इन्दुसेन और बिन्दुसेन आपस में लड़ ही रहे थे कि इतने में एक विद्याधर वहां आ पहुँचा और उन लडते हुए भाइयों से कहा—अरे मूर्खो! आप जिस सुन्दरी के लिये लड़ रहे हो वह तो आपकी ही बहन है। एक बहिन को पत्नी बनाने के लिए लड़ना उचित नहीं है। विद्याधर की यह बात सुनते ही इन्दुसेन और बिन्दुसेन लड़ना छोड़कर विद्याधर के पास आये और बोले—भाई! आपको यह कैसे मालूम है कि यह हमारी बहिन है। उत्तर में विद्याधर ने कहा-सुनोः—

जम्बूद्वीप के महाविदेह में पुष्कलावती नाम का विजय है। उसके मध्य में वैताढ्य नाम का पर्वत है। उस पर्वत के उत्तर में आदित्याभ नाम का नगर है। वहां सुकुण्डली नाम के राजा राज्य करते हैं। उसकी रानी का नाम अजितसेना है। मैं उसी का पुत्र मणिकुण्डली हूँ। मैं एकबार आकाश में घूमता हुआ पुंडरिकिणि नाम की नगरी में पहुँचा और जिनेश्वर भगवान का उपदेश सुना। उपदेश समाप्ति के बाद मैंने भगवान से पूछा—

भगवन्! मैं किस पुण्य के प्रभाव से विद्याधर बना हूँ।

भगवान् ने कहा—सुन, पुष्करवर द्वीप के पश्चिम द्वीपार्द्ध में शीतोदा नदी के दक्षिण में सलिलावती विजय में वीत शोका नाम की नगरी थी। वहां रत्नध्वज नाम के पराक्रमी राजा राज्य

करते थे। उनके कनकश्री और 'हेममालिनी' नाम की दो रानियां थी। महारानी कनकश्री की दो पुत्रियां थी। एक का नाम कनकलता और दूसरी का नाम पद्मलता था। दूसरी रानी हेमामालिनी के भी एक कन्या थी। उसका नाम पद्मा था। ये तीनों राजकुमारियां अनुपम सुन्दरी और विविध कलाओं में कुशल थी। राजकुमारी पद्मा ने साध्वी अजितसेना का उपदेश सुनकर दीक्षा ग्रहण करली। दीक्षा ग्रहण कर कठोर साधना करने लगी। एकबार वह स्थंडिल भूमि जा रही थी। रास्ते में मदन मंजरी नामक वेश्या के लिए दो राजकुमारों को आपस में लड़ते देखा। उन्हें देख वह सोचने लगी—यह वेश्या कितनी भाग्यशालिनी है जिसको पाने के लिए ये राजकुमार एक दूसरे से लड़ रहे हैं। यदि मेरे तप संयम का फल हो, तो मैं भी ऐसा ही सौभाग्य प्राप्त करू। इस प्रकार पद्मा साध्वी ने निदान किया और बिना आलोचना के ही मरकर सौधर्म कल्प में महती ऋद्धिवाली देवी बनी।

रानी कनक सुन्दरी दान, तप आदि शुभ योगों से मरकर मणिकुण्डली नाम के राजा हुए। कनकलता और पद्मलता मरकर रत्नपुर नरेश के इन्दुसेन बिन्दुसेन नाम के राजकुमार के रूप में जन्मे हैं और वे देवरमण नाम के उद्यान में अनन्तमती के लिये युद्ध कर रहे हैं।

भगवान के मुख से यह बात सुनकर मैं पूर्व जन्म के स्नेहवश आप लोगों को युद्ध से रोकने के लिए यहां आया हूँ। मैं तुम्हारी पूर्वभव की माता हूँ और अनन्तमती तुम्हारे पूर्वभव की बहिन है।

विद्याधर के मुख से अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनकर वे स्तब्ध हो गये और अपनी विषय मूढ़ता को धिक्कार ने लगे। उनको संसार के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। इधर अपनी उद्दण्डता के कारण माता-पिता ने भी आत्म हत्या करली है, यह जब उन्हें मालूम हुआ तो उनका वैराग्य और तीव्रतर हो गया। अन्त में दोनों राजकुमारों ने चार हजार राजाओं के साथ दीक्षा ली और निर्वाण प्राप्त किया।

इधर श्रीषेण आदि युगलियों ने अपना युगलिक आयुष्य पूरा किया और मरकर सौधर्म देवलोक में देव बने।

चतुर्थ पंचम भव—

वैताढ्य पर्वत की उत्तर श्रेणी में रथनूपुर चक्रवाल नाम के नगर में ज्वलनजटी नाम का विद्याधरों का राजा राज्य करता था। उसके अर्ककीर्ति नाम का पुत्र और स्वयंप्रभा नामकी पुत्री थी। वह अत्यन्त रूपवती थी। उसका विवाह त्रिपृष्ठ वासुदेव के साथ हुआ। वासुदेव ने प्रसन्न होकर अपने श्वसुर ज्वलनजटी को दोनों श्रेणियों का राजा बनाया। विद्याधरों के राजा मेघवन की पुत्री ज्योतिमाला का विवाह अर्ककीर्ति के साथ हुआ।

इधर श्रीषेण राजा का जीव सौधर्म कल्प से चवकर ज्योतिमाला की कुक्षि में आया और पुत्र रूप से जन्म ग्रहण किया। उसके तेजस्वी रूप को देखकर उसका नाम अमित तेज रखा गया। अर्ककीर्ति को राज्यगद्दी पर बिठलाकर महाराजा ज्वलनजटी ने चारण मुनियों से दीक्षा ग्रहण की। सत्यभामा का जीव भी प्रथम स्वर्ग से चवकर ज्योतिमाला के गर्भ में उत्पन्न हुआ। उसने कन्या के रूप में जन्म ग्रहण किया। उसका नाम सुतारा रक्खा गया। महारानी अभिनन्दिता का जीव भी सौधर्म कल्प से चवकर त्रिपृष्ठ वासुदेव की रानी स्वयंप्रभा के उदर से पुत्र रूप में जन्मा। उसका नाम श्रीविजय रक्खा : उसका विवाह सुतारा से हुआ। रानी शिखिनन्दिता का जीव भी वासुदेव की स्वयंप्रभा रानी की कुक्षि से ज्योतिप्रभा नाम की पुत्री रूप से उत्पन्न हुआ। इसका विवाह अर्ककीर्ति के पुत्र अमिततेज से हुआ।

कपिल का जीव अनेक योनियों में परिभ्रमण कर चमरचंचा नाम की नगरी में अश्विनीघोष नाम का विद्याधरों का राजा हुआ।

एकबार रथनूपुर चक्रवाल नगर में अभिनन्दन, जगनन्दन और ज्वलनजटी मुनियों का आगमन हुआ। महाराज अर्ककीर्ति ने उनका उपदेश सुनकर दीक्षा ग्रहण की।

त्रिपृष्ठ वासुदेव की मृत्यु के बाद उसके पुत्र श्रीविजय राजा बने और अचल बलदेव ने दीक्षा ग्रहण करली।

एकबार अमिततेज अपनी बहिन सुतारा और बहनोई श्रीविजय से मिलने के लिए पोतनपुर गये। वहाँ जाकर उसने देखा कि सारे शहर में उत्सव मनाया जा रहा है। अमिततेज ने पूछा—आज अकारण ही शहर में उत्सव किस लिये मनाया जा रहा है ?

श्री विजय ने कहा–दस दिन पहले एक भविष्यवक्ता यहां आया था। उसने कहा था कि आज से सातवें दिन पोतनपुर के राजा पर बिजली गिरेगी। यह सुनकर मंत्रियों की सलाह से मैंने सात दिन के लिए राज्य छोड़ दिया और राज्यसिंहासन पर एक यक्ष की मूर्ति को बैठा दिया। मैं आयंबिल तप करता हुआ धर्म ध्यान में समय बिताने लगा। सातवें दिन बिजली गिरी और यक्ष की मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े हो गये। मेरी प्राण रक्षा हुई। इसी लिए सारे शहर में उत्सव मनाया जा रहा है।"

यह सुनकर अमिततेज और ज्योतिप्रभा को बड़ी खुशी हुई। कुछ दिन वहां ठहरकर वे अपने नगर लौट आये।

एक समय श्रीविजय अपनी रानी सुतारा के साथ वनक्रीड़ा के लिए ज्योतिर्वन गये। वे वन क्रीड़ा कर ही रहे थे कि इतने में कपिल का जीव अशनिघोष विद्याधर आकाश मार्ग से उधर से निकला। उसकी दृष्टि सुतारा पर पड़ी। पूर्व जन्म के स्नेह वश वह उस पर आसक्त हो गया। उसने सुतारा का अपहरण करने का निश्चय किया। उसने विद्या के बल से एक सुन्दर सुवर्ण मृग बनाया। वह मृग सुतारा के पास से निकला। सुन्दर सुनहरी मृग देखकर सुतारा उस पर मोहित हो गई। उसने अपने पति से मृग को पकड़ने का आग्रह किया। सुतारा के कहने से श्रीविजय मृग को पकड़ने के लिये उसके पीछे भागे। मृग आगे आगे भागता गया और श्रीविजज उसका पीछा करते हुए बहुत दूर निकल गया। यह मौका देखकर अशनिघोष ने सुतारा को अपने विमान में जबर्दस्ती बैठाकर और उसके स्थान पर प्रतारिणी विद्या से नकली सुतारा बनाकर वहां से भाग निकला।

इधर नकली सुतारा जोर से चिल्लाती हुई कहने लगी–बचाओ! बचाओ!! मुझे कुक्कुट सर्प ने डस लिया है। रानी की यह आवाज सुनकर श्रीविजय भागता हुआ रानी के पास आया। उसने देखा सर्पदंश से उसकी प्रिया सुतारा छटपटा रही है। उसने अनेक उपचार किये किन्तु अन्त में सुतारा मरगई। रानी के वियोग में महाराजा जोर जोर से विलाप करने लगे और मूर्छित हो गये। शीतल पवन के झोकों से महाराजा की मूर्छा दूर हुई। उन्होंने जंगल से लकड़ियां इकट्ठी करके और उनपर रानी के शव को रखकर आग लगा दी। महाराजा श्रीविजय भी अपनी रानी

चिता में मरने के लिए कूदने लगा। इतने में दो विद्याधरों ने उन्हें पकड़ लिया और कहा—महाराज ! आप यह क्या कर रहे हैं ? असली सुतारा को तो उठाकर अशनिघोष भाग गया है। उसने उसकी जगह प्रतारिणी विद्या से नकली सुतारा बनायी है। यह कहकर विद्याधरों ने मन्त्रित जल चिता पर डाला तो चिता तुरन्त शान्त हो गई और सुतारा के रूप में प्रतारिणी विद्या अट्टहास करती हुई भाग गई।

अपनी प्रिया का अपहरण हुआ जानकर श्रीविजय अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। वह वहां से उन विद्याधरों के साथ अपने साले अमिततेज के पास वैताढ्य पर्वत पर आया। उसने सारी बात कही।

अमिततेज को जब अपनी बहिन के अपहरण का पता लगा तो वह भी बड़ा क्रुद्ध हुआ उसने अपनी विशाल सेना श्रीविजय के साथ भेजी। श्रीविजय ने महाज्वाला नाम की विद्या की सहायता से अशनिघोष की तमाम सेना नष्ट करदी। अशनिघोष अपने प्राण बचाने के लिए वहां से भागा। महाज्वाला विद्या भी उसके पीछे पड़ गई। अशनिघोष भरतार्द्ध में सीमंत गिरि पर केवल ज्ञान प्राप्त अचल बलदेव मुनि के शरण में पहुँचा। अशनिघोष को केवली की सभा में बैठा देख महाज्वाला वापिस लौट आई। महाज्वाला ने आकर श्रीविजय से कहा—अचलबलदेव को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। अशनिघोष उन्हीं की सभा में बैठा है, अतः मैं वापिस लौट आई हूँ। महा ज्वाला के मुख से अचलबलदेव को केवल ज्ञान होने की बात सुनकर श्रीविजय अत्यन्त प्रसन्न हुए। वह सुतारा को व अमिततेज को विमान में बैठाकर अचलबलदेव के दर्शन के लिए सीमंतगिरी पर आया। केवली को वन्दन कर उनका उपदेश सुनने लगा।

उपदेश समाप्ति के बाद अशनिघोष ने अचल केवली से पूछा—भगवन् ! मेरे मन में कोई पाप नहीं था। फिर भी मैं सुतारा की ओर इतना क्यों आकृष्ट हुआ ? और मैंने उसका क्यों अपहरण किया।

अचलकेवली ने सत्यभामा और कपिल का पूर्ववृत्तान्त सुनाया और कहा कि—पूर्वभव का स्नेह ही इसका मुख्य कारण है।

अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनकर अशनिघोष को वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने अचल केवली के समीप दीक्षा ग्रहण करली।

इसके बाद अमिततेज ने पूछा–भगवन् ! मैं भव्य हू या अभव्य हूँ ? अचल केवली ने कहा–अमिततेज ! तुम आज से नौवें भव में सोलहवें तीर्थंकर और पांचवें चक्रवर्ती बनोगे और श्रीविजय तुम्हारा प्रथम पुत्र तथा प्रथम गणधर होगा ।

केवली के मुख से अपना भविष्य सुनकर अमिततेज और श्रीविजय अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने राज्य वैभव का परित्याग कर दिया और दीक्षा ग्रहण करली । अपना अन्त समय नजदीक आया जानकर संथारा ग्रहण किया । संथारे में श्रीविजय मुनि के मन में अपने पिता के अपूर्व बल और वैभव का स्मरण हो आया । उसने निदान किया कि मेरी तपस्या का फल अगले भव में वासुदेव के रूप में मिले । अमिततेज मुनि ने अपनी भावना को स्थिर रखा । अन्त में दोनों ने अपने देह का परित्याग किया और वे प्राणत देवलोक में सुस्थितावर्त और नन्दितावर्त विमान में मणिचूल दिव्यचूल नाम के देव बने उनकी आयु बीस सागरोपम की हुई ।

छठा और सातवां भव–

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह के रमणीय विजय में 'शुभा' नाम की नगरी थी । वहां स्तिमित सागर नाम के राजा राज्य करते थे । उनकी वसुन्धरा और अनुद्धरा नाम की दो रानियां थी । अमिततेज का जीव देवलोक से चवकर रानी वसुन्धरा की कुक्षि में उत्पन्न हुआ । रानी ने बलदेव गर्भ में होने की सूचना देने वाले चार महास्वप्न देखे । बालक ने जन्म लिया और उसका नाम अपराजित रखा ।

दूसरी रानी अनुद्धरा ने भी सात महास्वप्न देखें । श्रीविजय का जीव स्वर्ग से चवकर रानी के उदर में आया । नौ मास और साढ़े सात रात्रि दिन के बीतने पर पुत्र को जन्म दिया । बालक का नाम अनन्तवीर्य रखा गया । दोनों ७२ कलाओं में पारंगत हो गये ।

एकबार महाराजा स्तिमितसागर घोड़े पर बैठकर वन विहार के लिए गये वहां उन्होंने एक प्रतिमाधारी मुनि को देखा । मुनि को वन्दना कर उनके पास बैठ गया । ध्यान समाप्ति के बाद उन्होंने राजा को उपदेश दिया । मुनि का उपदेश सुन राजा को वैराग्य उत्पन्न हुआ । उसने अपने पुत्रों को राज्यगद्दी पर स्थापित कर प्रव्रज्या ग्रहण की । बहुत समय तक संयम पालन कर मरा और भवनपतियों का इन्द्र चमरेन्द्र बना ।

राजा का आदेश सुनकर अनन्तवीर्य व अपराजित ने विचार कर दूत से कहा–

'तुम जाओ ! हम स्वयं ही नर्तकियों को लेकर महाराज दमितारि की सभा में उपस्थित हो रहे है । दूत चला गया ।

इसके बाद दोनों भाइयों ने विचार किया कि दमितारि विद्याओं के बल से ही हम पर राज्य कर रहा है । मित्र विद्याधर द्वारा दी गई प्रज्ञप्ति आदि विद्याओं की हमें भी साधना करनी चाहिये । यह सोचकर उन्होंने प्रज्ञप्ति आदि विद्याओं की साधना कर उन्हें सिद्ध किया । दोनों भाई बलवान् थे ही, विद्याओं की सिद्धि से वे अधिक बलवान् बन गये ।

जब दोनों नर्तकियां दमितारि के पास नहीं पहुंची तो उसने पुनः दूत को भेजा और कहलवाया कि यदि आप लोगों ने दासियां नहीं भेजी तो इसकी सजा मृत्युदण्ड होगी । दूत अनन्तवीर्य के पास पहुंचा और उसने दमितारि की आज्ञा सुना दी ।

दूत की बात सुनकर अनन्तवीर्य को अत्यन्त क्रोध आया किन्तु क्रोध प्रकट करने का अवसर न जानकर शान्त भाव से बोला–

महाराज दमितारि की भेट के योग्य तो मूल्यवान् हीरे, रत्न, उत्तम जाति के अश्व, हाथी होने चाहिये. दासियां नहीं । फिर भी महाराज की यही इच्छा है तो आज रात्रि में ही आपके पास नर्तकियां पहुँच जाएंगी । ऐसा कहकर दूत को विदा कर दिया । दूत अपने निवास स्थान पर चला आया ।

दोनों भाई दमितारि को प्रत्यक्ष देखना चाहते थे । उन्होंने तत्काल मंत्रिमंडल को बुलाया और उन्हें सारी योजना समझा कर अपना समस्त राज्यभार मंत्रिमंडल को सौंप दिया । फिर दोनों ने विद्या के बल से बर्बरी और किराती का रूप बनाया और दूत के पास आकर कहा–

महाराज अनन्तवीर्य ने हमें आपके पास भेजा है और यह आदेश दिया है कि तुम राज दूत के साथ दमितारि के पास पहुँचो राजदूत यह बात सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ । वह दासियों को साथ में लेकर दमितारि की सेवा में पहुँचा । नर्तकियों को आया देख महाराजा दमितारि बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने नर्तकियों को रहने की व्यवस्था कर दी ।

दूसरे दिन महाराजा ने नर्तकियों को नृत्य बताने का आदेश दिया।

महाराजा का आदेश पाकर नर्तकियों ने अपनी नाट्य कला का अपूर्व प्रदर्शन किया। रंगमंच पर नाना प्रकार के अभिनय दिखाकर महाराज दमितारि को एवं दर्शकों को मुग्ध कर दिया। उनके कला-कोशल को देखकर दमितारि ने उत्साह के साथ कहा-सचमुच तुम कला जगत् की रत्न हो। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ तुम आनंद से मेरी पुत्री कनकश्री की सखियां बन कर रहो और उसे नृत्य गान आदि की शिक्षा दो।

महाराज की आज्ञा से वे कपटवेशी दासियां राजकुमारी कनकश्री के पास रहने लगी और उसे नाट्य कला सिखाने लगी। बीच बीच में वे अपराजित और अनंतवीर्य के रूप गुण और शौर्य की प्रशंसा भी कर दिया करती थी।

अपराजित और अनन्तवीर्य की प्रशंसा सुनकर बर्बरी दासी के रूप में अपराजित से पूछा नर्तकी तुम जिस अनन्तवीर्य की प्रशंसा करती हो, वह कैसा है? नर्तकी ने कहा-अनन्तवीर्य शुभा नगरी का महापराक्रमी राजा है। उसका रूप कामदेव को भी लज्जित करता है। शत्रुओं का काल है। अधिक क्या कहूं, उसके समान इस पृथ्वी पर दूसरा कोई नहीं है।

अनन्तवीर्य के रूप गुणों की प्रशंसा सुनकर कनकश्री अनन्तवीर्य पर मुग्ध हो गई। वह मन ही मन उस पर आसक्त हो गई। वह अब प्रतिदिन उसी के विचार में रहने लगी। विचार मग्न कनकश्री को देखकर एकदिन बर्बरी ने पूछा-राजकुमारी! आजकल आप बहुत चिंतित नजर आती हो। लगता है आपने अनन्तवीर्य को अपना पति मान लिया है और उसे पाने के लिये मन ही मन विचार करती हो!

बर्बरी के मुख से यह सुनकर कनकश्री लज्जित होकर बोली-बर्बरी! तुम सच कहती हो! किन्तु मेरा ऐसा भाग्य कहां है जो मैं पति के रूप में अनन्तवीर्य को पा सकूं।

बर्बरी ने कहा-यदि ऐसा ही है तो मैं अनन्तवीर्य से तुम्हारी मुलाकात करा सकती हूँ। मैं विद्या के बल से उन दोनों कुमारों को आपकी सेवा में उपस्थित कर सकती हूँ।

कनकश्री ने कहा-बर्बरी! यदि तुम दर्शन करा दोगी तो मैं सचमुच भाग्यशालिनी होऊंगी और जीवन भर तुम्हारा उपकार नहीं भूलूंगी।

राजकुमारी की यह बात सुनते ही दोनों कुमारों ने अपना असली रूप प्रकट कर दिया। राजकुमारी अचानक अपने सामने दो राजकुमारों को देखकर चकित हो गई ! इतने में अपराजित कुमार ने कहा–राजकुमारी ! यही अनन्तवर्य शुभा नगरी के राजा है। मैं उनका भाई अपराजित हूं।

राजकुमारी तो यह सब दृश्य देखकर दिग्मूढ़ हो गई। क्षण भर अपने आपको सम्भालने के बाद वह अनन्तवीर्य की तरफ देखने लगी। उसके अद्भुत रूप को देखकर वह उस पर मोहित हो गई। अनन्तवीर्य राजकुमारी के अपूर्व रूप को देखकर उस पर पहले से ही मुग्ध था।

इसके बाद अनन्तवीर्य ने कहा–शुभा नगरी की साम्राज्ञी बनने की इच्छा हो तो तुम मेरे साथ चलो।

कनकश्री ने कहा–प्राणनाथ ! मैं सचमुच भाग्यशालिनी हूँ कि आप मुझे अपने चरणों में रखना चाहते हैं। किन्तु मेरे पिता बड़े वीर और दुर्दान्त हैं। वे जब यह सुनेंगे तो अवश्य ही आप को मार डालेंगें।

अनन्तवीर्य बोला–प्रिये घबराने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे पिता चाहे जितने शक्ति शक्तिशाली हों किन्तु वे हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। यदि उन्होंने युद्ध की स्थिति पैदा की तो उसका परिणाम उन्हें ही भुगतना पड़ेगा। तुम निर्भय होकर हमारे साथ चलो।

राजकुमारी कनकश्री उनके साथ हो गई। अपराजित और अनन्तवीर्य कनकश्री को साथ में ले दमितारि की राजसभा में उपस्थित हुए। अनन्तवीर्य को और अपराजित को राजकुमारी के साथ देख दमितारि और सभासद आश्चर्य चकित हो गये। अनन्तवीर्य गंभीरवाणी में बोला–राजन् ! हम अपराजित और अनन्तवीर्य राजकुमारी को अपने साथ ले जा रहे हैं। मैं अनन्तवीर्य राजकुमारी के साथ पाणिग्रहण करना चाहता हूँ। तुमने हमारी दासियां चाही थी वे तुम्हें नहीं मिली ! बदले में हम राजकुमारी ले जा रहे हैं। जिसमें साहस हो वे हमारा मार्ग रोकें। तुम्हें हमने सूचना दी है। बाद में यह मत कहना कि महाराज अनन्तवीर्य राजकुमारी को चुराकर भाग गये हैं। इतना कहकर अनन्तवीर्य राजकुमारी को उठाकर एकदम वहां से चल दिया। अपराजित भी उन्हीं के साथ हो गया।

अनन्तवीर्य की यह धृष्टता देख दमितारि अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने तत्काल सुभटों को पीछे दौड़ाया और स्वयं विशाल सेना के साथ दोनों कुमारों के पीछे भागा। विशाल सेना के साथ दमितारि को अपने पीछे आता देख वे भी युद्ध के लिए तैयार हो गये। उन्होंने विद्या के बल से विशाल सेना तैयार की और दमितारि की सेना के साथ लड़ने लगे। दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध होने लगा। दमितारि की सेना अपराजित के सामने हार गई और तितर बितर हो गई। सेनाओं को इधर उधर भागता हुआ देख दमितारि ने पुनः सेनाओं को संगठित किया और बड़ी ताकत से दोनों कुमारों के साथ लड़ने लगा। सभी शस्त्रों का उपयोग करने के बाद दमितारि ने अनन्तवीर्य को मारने के लिए अन्त में चक्र फेंका। चक्र को अनन्तवीर्य ने झेल लिया और उसी को दमितारि का शिरच्छेद करने लिए फेंका चक्र ने दमितारि का शिरच्छेद कर दिया। प्रति वासुदेव दमितारि की मृत्यु पर देवों ने अनन्तवीर्य को वासुदेव और अपराजित को बलदेव घोषित किया। कोटिशिला को धारण कर अनन्तवीर्य बलदेव बने। सर्वत्र जय घोष हुआ। सभी राजाओं ने और विद्याधरों ने अनन्तवीर्य का आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

वासुदेव अनन्तवीर्य एवं बलदेव अपराजित कनकश्री के साथ शुभा नगरी के लिए रवाना हुए। मार्ग में कीर्तिधर केवली के दर्शन हुए। कीर्तिधर केवली के मुख से अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनकर कनकश्री को वैराग्य उत्पन्न हो गया। शुभा नगरी में आने के बाद कनकश्री ने दीक्षा ग्रहण करली।

अनन्तवीर्य वासुदेव और अपराजित बलदेव सुख पूर्वक भरत के तीन खण्ड पर शासन करने लगे। दीर्घकाल तक काम भोग को भोगते हुए अनन्तवीर्य वासुदेव मरे और प्रथम नरक में उत्पन्नहुए। बलदेव अपराजित भाई के वियोग में दुःखी होकर विरक्त हुए और गणधर जयस्वामी के पास सोलह हजार राजाओं के साथ प्रव्रजित हो गये। प्रव्रज्या लेकर संयम का विशुद्ध रूप से पालन किया और अन्त में अनशन पूर्वक देह का त्याग कर के अच्युतेन्द्र बने।

वासुदेव का जीव प्रथम नरक से निकलकर भरत क्षेत्र के वैताढ्य पर्वत पर के गगनवल्लभ नगर के अधिपति मेघवान की रानी के उदर में पुत्र रूप से जन्मे। उनका नाम मेघनाद रखा। यौवनवय के प्राप्त होने पर मेघवान राजा ने उन्हें गगनवल्लभ नगर का राजा बनाया और स्वयं

प्रव्रजित हो गये। राजा बनने के बाद मेघनाद ने अपने राज्य का विस्तार किया और वे दोनों श्रेणियों के राजा बन गये।

एकबार अच्युतेन्द्र अपने पूर्वभव के भाई मेघनाद को प्रतिबोध देने आया। प्रतिबोध पाकर मेघनाद ने अपने पुत्र को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेकर उन्होंने कठोर तप किया अन्त में अनशन पूर्वक मरकर वे अच्युतेन्द्र के सामानिक देव बने।

आठवां और नौवां भव

जम्बू द्वीप के पूर्व महाविदेह में सीता नदी के दक्षिण में मंगलावती विजय में रत्नसंचया नाम की समृद्ध नगरी थी। वहां क्षेमंकर नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम रत्नमाला था। अपराजित का जीव जो अच्युतेन्द्र था, अच्युत देवलोक की आयु पूरी कर महारानी रत्नमाला के गर्भ में उत्पन्न हुआ। गर्भ के प्रभाव से महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे और १५ वाँ वज्र देखा। गर्भकाल के पूर्ण होने पर महारानी ने सुन्दर बालक को जन्म दिया। स्वप्न में वज्र देखा था इसलिये बालक का नाम वज्रायुध रखा। बालक ने बुद्धि वैभव से अल्प-काल में ही ७२ कलाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया। वज्रायुध युवा हुआ। माता-पिता ने युवा होने पर वज्रायुध का विवाह लक्ष्मीवती नाम की सुन्दर राजकुमारी के साथ किया। कालान्तर में अनन्तवीर्य का जीव अच्युत कल्प से चवकर महारानी लक्ष्मीवती के उदर में गर्भ रूप से उत्पन्न हुआ। गर्भकाल के पूर्ण होने पर महारानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम सहस्रायुध रखा गया। वह बड़ा हुआ उसका विवाह कनकश्री नाम की सुन्दर राजकुमारी के साथ हुआ। कनकश्री की कुक्षि से एक महान पराक्रमी पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम शतबल रखा गया। वह महा शक्तिशाली था।

राजा क्षेमकर को लोकान्तिक देवों ने आकर दीक्षा लेने की सूचना की। उन्होंने वज्रायुध को राज्य देकर दीक्षा ली और तप से घनघाति कर्मों का क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त किया। चार तीर्थ की स्थापना कर वे तीर्थंकर बने।

वज्रायुध के शस्त्रागार में चक्र रत्न उत्पन्न हुआ। फिर अन्य तेरह रत्न भी प्राप्त हुए। वज्रायुध ने रत्नों की सहायता से षट् खण्ड पर विजय प्राप्त की और चक्रवर्ती बने।

कालान्तर में वज्रयुध ने अपने पुत्र सहस्रायुध को राज्य देकर क्षेमंकर तीर्थंकर के पास दीक्षा ग्रहण की। सहस्रायुध ने भी कुछ समय के बाद पिहिताश्रव नाम के मुनि से उपदेश सुन दीक्षा ले ली। अन्त में दोनों पिता पुत्र मुनियों ने ईषत्प्राग्भार पर्वत पर पादोपगमन अनशन किया। आयु पूर्ण होने पर दोनों मुनि तीसरे ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुए और वहां पच्चीस सागरोपम की आयु प्राप्त की।

दसवां और ग्यारहवां भव

जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह में पुष्कलावती विजय में सीता नदी के किनारे पुंडरीकिणी नाम की नगरी थी। धनरथ नाम का पराक्रमी राजा राज्य करता था। उसकी प्रियमती और मनोरमा नाम की दो गुणवती और रूपवती रानियां थी। वज्रायुध का जीव ग्रैवेयक विमान से चवकर महारानी प्रियमती की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। महारानी ने गर्भ के प्रभाव से गर्जन करता हुआ बिजली चमकाता हुआ और बरसता हुआ मेघ देखा। गर्भकाल के पूर्ण होने पर महारानी ने सुन्दर बालक को जन्म दिया। मेघ का स्वप्न आने से बालक का नाम 'मेघरथ' रखा गया। सहस्रायुध का जीव भी ग्रैवेयक विमान से चवकर मनोरमा के उदर में आया। जन्म लेने पर उसका नाम दृढ़रथ रखा। दोनों बालकों ने कलाचार्य के पास रहकर समस्त कलाओं का अध्ययन किया।

सुमन्दिरपुर के राजा निहतशत्रु की प्रियमित्रा, मनोरमा और सुमित्रा नाम की तीन पुत्रियां थी। ये तीनों गुणवती, विदुषी एवं देवकन्या के समान रूपवती थी। महाराजा निहतशत्रु के आग्रह से प्रियमित्रा और मनोरमा का विवाह मेघरथ के साथ किया तथा सुमित्रा का दृढ़रथ के साथ हुआ।

कालान्तर में लोकान्तिक देवों ने आकर महाराजा घनरथ से निवेदन किया--स्वामिन्! अब आप धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करें। महाराज घनरथ तो स्वयं प्रतिबुद्ध थे ही। लोकान्तिक देवों के निवेदन से उन्होंने प्रव्रज्या लेने का निश्चय किया। वार्षिक दान देकर प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रव्रज्या लेकर तप किया और घनघाती कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त किया। चतुर्विध धर्म–तीर्थ की स्थापना कर वे अवनि पर भव्य जीवों को प्रतिबोध देने लगे।

राजा मेघरथ अपने पिता के द्वारा प्रदत्त राज्य का न्याय नीतिपूर्वक संचालन करने लगे। उनके राज्य में समस्त प्रजा सुखपूर्वक रहती थी। महाराजा स्वयं धार्मिक होने से प्रजा में भी

धार्मिक वातावरण फैला हुआ था। महाराजा मेघरथ अत्यन्त दयालु थे। उनकी दयालुता से सारे देश में अहिंसा की प्रतिष्ठा बढ़ गई थी।

एक समय महाराज मेघरथ पौषधशाला में पोषध कर रहे थे। सहसा एक भयभीत कबूतर उनकी गोद में आकर बैठ गया और भय से कांपने लगा। वह मनुष्य की बोली में बोला- 'महाराज ! मेरी रक्षा करो ! मुझे भय से मुक्त करो !!' इतना कहकर वह चुप हो गया।

महाराज ने उसे आश्वासन देते हुए कहा'-कबूतर मत घबरा, यहां तुझे कोई मार नहीं सकता ! तेरी सब प्रकार से रक्षा होगी !' महाराजा मेघरथ की यह बात सुनकर कबूतर के मन में शान्ति उत्पन्न हो गई। वह बड़े शान्त भाव से नरेश की गोद में स्थिर हो गया। इतने में एक बाज पक्षी आया और महाराजा से बोला-राजन् ! महाराज ! यह कबूतर मेरा भक्ष्य है मैं अत्यन्त भूखा हूँ। मैं इसे खाकर अपनी क्षुधा शान्त करना चाहता हूं।

महाराज ने उत्तर दिया-अरे वाज ! यह कबूतर मेरी शरण में आया है। शरणागत की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। अतः तुम कबूतर के सिवाय जो भी चीज चाहो, मुझ से मांग सकते हो। किन्तु तुम्हें कबूतर नहीं दे सकता। मैंने इसे प्राण रक्षा का वचन दे दिया है।

वाज-महाराज ! मैं भूखा हूँ। अगर मैं इसे नहीं खाऊंगा तो मेरी मृत्यु अवश्य होगी। एक को बचाकर दूसरे को मारना कौनसा धर्म है। मैं तो मांसभक्षी हूँ। मांस ही मेरा प्रधान भोजन है। मैं इसके बिना जीवित नहीं रह सकता। अतः मेरा भक्ष्य मुझे दीजिए !

राजा-वाज ! यदि तुझे मांस ही चाहिए तो तुझे मिल सकता है। मैं अपने शरीर का मांस तुझे दे सकता हूँ. किन्तु कबूतर नहीं।

वाज-महाराज ! मुझे केवल मांस चाहिए, वह कबूतर का हो या आपका हो !

महाराज मेघरथ ने उसी समय छूरी और तराजू मंगायी। तराजू के एक पल्ले में कबूतर को रखा और दूसरे पल्ले में अपने शरीर का मांस काट काट कर रखने लगे। यह भयंकर दृश्य देख सारा राज परिवार हाहाकार कर उठा। रानियां रुदन करने लगी। यह खबर सारे नगर में फैल गई। बात की बात में सारा नगर राजमहल की ओर उमड़ पड़ा। महाराज को ऐसा करने से सभी ने रोका किन्तु महाराज अडिग रहे और अपने वचन के अनुसार शरीर के अवयव काट २

कर तराजू मे रखने लगे। कबूतर तो देव ही था। उसने अपनी माया से शरीर का वजन बढ़ाना शुरु किया। ज्यों ज्यों महाराज अंग काट कर उसमें रखते थे त्यों त्यों कबूतर का पल्ला नीचे झुकता ही जाता था। अंत में महाराज स्वयं पलड़े में बैठ गये। यह दृश्य देखते ही देवता अपने असली रूप में प्रकट होकर बोले–

शरणागत प्रतिपाल महामानव, दया के अवतार महाराज मेघरथ की जय हो, विजय हो। आपकी दयालुता की प्रशंसा स्वयं ईशानेन्द्र ने अपनी सभा में की थी। मैं उसी देव सभा में था। मुझे इन्द्र की प्रशंसा पर विश्वास नहीं हुआ। इसलिए परीक्षा करने के लिये यहां आया। मार्ग में मैंने इन दोनों पक्षियों को लड़ता देखा तो मैं उनमें प्रवेश कर आपके पास आया, आपकी महान् अनुकम्पा, शरणागत प्रतिपालकता एवं दृढ़ आत्मबल की परीक्षा की। देवेन्द्र ने आपके गुणों की जैसी प्रशंसा की थी, सचमुच आप वैसे ही हैं। आपको मैंने जो कष्ट दिया उसके लिए मुझे क्षमा कीजिये। इतना कहकर देव ने मेघरथ राजा को पूर्ववत् स्वस्थ कर दिया और उनकी बार बार प्रशंसा करता हुआ अपने स्थान में चला गया।

महाराज मेघरथ ने प्रजाजनों के पूछने पर कबूतर और बाज रूपधारी देव का पूर्वभव बताया।

एकबार मेघरथ राजा पौषध कर रहे थे। उन्हें अष्टम भक्त तप था। धर्म ध्यान में निमग्न देखकर ईशानेन्द्र मेघरथ राजा को प्रणाम करने लगा। हाथ जोड़ते हुए इन्द्र को देखकर इन्द्रानियों ने पूछा–स्वामिन् आप किस को प्रणाम कर रहे है? इन्द्र ने कहा–पुण्डरीकिणी नगरी के महान् दृढ़धर्मी राजा एवं धर्म ध्यान में निमग्न मेघरथ को मैं प्रणाम कर रहा हूँ। महाराज मेघरथ आगामी भव में सोलहवें तीर्थंकर भगवान होंगे। उनका ध्यान इतना निश्चल है कि उन्हें चलायमान करने में कोई भी देव या देवी समर्थ नहीं है।

इन्द्र की इस बात पर सुरूपा और प्रतिरूपा नाम की दो इन्द्रानियों को विश्वास नहीं हुआ। वे मेघरथ राजा को ध्यान से विचलित करने के लिए वहां आई और अनुकूल प्रतिकूल उपसर्ग करने लगी। रात भर उपसर्ग करने के बाद भी जब मेघरथ राजा को अपने धर्म ध्यान में दृढ़ देखा तो वे हार गई। अन्त में इन्द्रानियों ने अपना असली रूप प्रकट किया और अपराध की क्षमा याचना करते हुए कहा–राजन्! आपकी धार्मिक दृढ़ता की इन्द्र ने जैसी प्रशंसा की थी,

वस्तुतः आप वैसे ही हैं। आप जैसे धार्मिक लोगों से ही यह पृथ्वी धन्य है। इस प्रकार राजा की प्रशंसा करती हुई इन्द्रानियां अपने अपने स्थान पर चली गई।

एकबार तीर्थंकर भगवान घनरथ स्वामी का समवसरण हुआ। महाराज मेघरथ ने अपने समस्त राजपरिवार के साथ भगवान के दर्शन किये। भगवान घनरथ स्वामी ने उपदेश दिया। उपदेश सुनकर मेघरथ को वैराग्य उत्पन्न हो गया। युवराज दृढ़रथ ने भी दीक्षा लेने की भावना प्रकट की। महाराज मेघरथ ने अपने पुत्र मेघसेन को शासन का भार सौंप दिया और युवराज दृढ़रथ के पुत्र रथसेन को युवराज पद पर अधिष्ठित किया।

महाराज मेघरथ ने अपने सात सौ पुत्रों, चार हजार राजाओं एवं अपने लघु भ्राता दृढ़रथ के साथ तीर्थंकर घनरथ स्वामी के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। एक लाख पूर्व तक विशुद्ध संयम का पालन कर और तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन कर अनशन पूर्वक काल करके सर्वार्थ सिद्ध विमान में देव रूप से उत्पन्न हुए। दृढ़रथ मुनि भी विशुद्ध संयम की आराधना कर सर्वार्थसिद्ध विमान में तेतीस सागरोपम की आयु वाले महर्द्धिक देव बने।

तेरहवां भव

भगवान् शान्तिनाथ—

कुरु देश में हस्तिनापुर नाम का धन धान्य से समृद्ध नगर था। वहां विश्वसेन नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे। वे अत्यन्त न्यायी और प्रजावत्सल थे। उनकी रानी का नाम अचिरा था। उसका सौंदर्य रति को भी लज्जित करता था। वह पति परायणा सतीशिरोमणि थी।

मेघरथ राजा का जीव सर्वार्थसिद्ध विमान से चवकर भाद्रपद कृष्ण सप्तमी के दिन भरणी नक्षत्र में जब चन्द्रमा का योग आया तब महारानी अचिरा की कुक्षि में अवतरित हुए। उस समय महारानी ने अर्ध जागृत अवस्था में चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्नों को देखकर महारानी जागी। उसने अपने स्वप्न पति से कहे! पति ने स्वप्न का वृतान्त सुनकर कहा—देवी! तुम महान् त्रिलोक-पूज्य पुत्र को जन्म दोगी। इस पुत्र के जन्म से तुम्हारी कोख धन्य बनेगी।

पति के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुई और गर्भ का विधि पूर्वक पालन करने लगी।

उस समय सारे कुरु जनपद में महामारी की बीमारी फैली हुई थी। भगवान् के गर्भ में पदार्पण होते ही महामारी शान्त हो गई। भगवान के पुण्य प्रभाव से राजा और प्रजा का आरोग्य सुख चैन और समृद्धि बढ़ने लगी।

गर्भकाल के पूर्ण होने पर ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी के दिन भरणी नक्षत्र में जब सभी ग्रह उच्च स्थान पर थे, तब भगवान् ने जन्म ग्रहण किया। उस समय तीनों लोक में उद्योत हुआ।। नारक जीवों को भी कुछ समय के लिए शान्ति का अनुभव हुआ। दिशाकुमारिकाओं ने सूतिका कर्म किया। ६४ इन्द्रों ने मेरु पर्वत पर जाकर भगवान् का जन्माभिषेक किया। महाराजा विश्वसेन ने भी जन्मोत्सव किया और प्रजाजनों को कर मुक्त किया। पुत्र के गर्भ में आते ही महामारी शान्त हो गई थी। अतः बालक का नाम 'शान्तिनाथ' रखा गया। भगवान् जन्म से ही तीन ज्ञान के धारक थे। भगवान बाल्य काल से युवा हुए। युवावस्था में भगवान् शान्तिनाथ का अनेक सुन्दर राजकुमारियों साथ विवाह हुआ। शान्तिनाथ जब २५ हजार वर्ष की अवस्था में आये तब महाराज विश्वसेन ने राज्यभार उन्हें सौंप दिया और वे प्रव्रज्या ग्रहण कर आत्म साधना करने लगे।

भगवान् शान्तिनाथ पितृदत्त राज्य को न्याय पूर्वक चलाने लगे। उनके यशोमती नामकी पट्टरानी थी। उसने एक रात्रि में स्वप्न में सूर्य के समान तेजस्वी एक चक्र को मुख में प्रवेश करते हुए देखा। दृढरथ मुनि का जीव सर्वार्थसिद्ध विमान से चवकर उनकी कुक्षि में उत्पन्न हुआ। स्वप्न देखकर महारानी जागी उसने भगवान शान्तिनाथ से अपने स्वप्न का वृत्तान्त कहा। भगवान् ने अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर कहा—प्रिये! मेरे पूर्व भव का भाई दृढ़रथ अनुत्तर विमान से चवकर तुम्हारे गर्भ में आया है। गर्भकाल के पूर्ण होने पर महारानी ने पुत्र को जन्म दिया। स्वप्न में माता ने चक्र देखा था, इसलिये बालक का नाम चक्रायुध रखा गया। चक्रायुध युवा हुआ और उसका अनेक कन्याओं के साथ विवाह किया गया।

राज्य का संचालन करते हुए जब पच्चीस हजार वर्ष बीत गए तब भगवान् शान्तिनाथ को

आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। महाराजा ने चक्ररत्न का अठाई महोत्सव किया। इसके बाद अन्य तेरह रत्न भी उत्पन्न हुए। इन रत्नों की सहायता से भगवान ने भरत के छहों खण्ड पर आधिपत्य स्थापित किया।। भरत के छह खण्डों पर विजय करने में भगवान् को आठ सौ वर्ष लगे। दिग्विजय कर भगवान् शान्तिनाथ हस्तिनापुर नगर लौटे। देवों और राजाओं ने भगवान् शान्तिनाथ का चक्रवर्तीत्व का उत्सव किया। महाराज शान्तिनाथ को इस अवसर्पिणी काल के पांचवे चक्रवर्ती घोषित किया। इसके बाद आठ सौ वर्ष कम पच्चीस हजार वर्ष तक आपने चक्रवर्ती पद का पालन किया। तदनन्तर दीक्षा लेने का निश्चय किया। तदनुसार लौकान्तिक देव आए और तीर्थं प्रवर्ताने की प्रार्थना कर गये। भगवान् वर्षीदान देकर और अपने पुत्र राजकुमार चक्रायुध को राज्य सौंप कर दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए। इन्द्रादि देवों ने तथा महाराजा चक्रायुध ने भगवान् का दीक्षा महोत्सव किया। ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी के दिन भरणी नक्षत्र में दिन के अन्तिम प्रहर में बेले के तप से एक हजार राजाओं के साथ सिद्धों को वन्दन कर दीक्षा ग्रहण की। उसी समय भगवान् को मनः पर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए और संयम की उत्कृष्ट आराधना करते हुए भगवान् एक वर्ष के बाद हस्तिनापुर के सहस्राम्र उद्यान में पधारे और नन्दी वृक्ष के नीचे ध्यान करने लगे। ध्यान की उत्कृष्ट अवस्था में पौष शुक्ला नवमी के दिन भरणी नक्षत्र में घनघाती कर्मों का क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रादि देवों ने भगवान का केवल ज्ञान उत्सव किया। समवसरण की देवों ने रचना की। भगवान् ने देशना दी। भगवान की देशना सुनकर महाराजा चक्रायुध अपने पुत्र कुरुचन्द्र को राज्य प्रदान कर पैंतीस राजाओं के साथ प्रव्रजित हुए। इस देशना के बाद चक्रायुध आदि ३६ राजमुनियों ने गणधर पद प्राप्त किया। अनेक स्त्री पुरुषों ने मुनिव्रत, गृहस्थ व्रत, सम्यक्त्व आदि ग्रहण किये।

भगवान् ने चतुर्विध संघ की स्थापना की। इसके बाद अपने विशाल शिष्य समूह के साथ भगवान् ने अन्यत्र विहार कर दिया।

भगवान् पुनः हस्तिनापुर पधारे। राजा कुरुचन्द ने भगवान् का उपदेश सुना। उपदेश के बाद राजा कुरुचन्द ने पूछा—भगवन्! मैंने पूर्व जन्म में ऐसा कौनसा सुकृत्य किया था जिससे इस भव में राजा बना हूँ? मुझे प्रतिदिन पांच वस्त्र और फल आदि भेट स्वरूप प्राप्त होते हैं,

वह किस पुण्य के उदय से ? मैं इन वस्तुओं का उपभोग नहीं करके अन्य प्रियजनों के लिए रख छोड़ सकता हूँ, किन्तु दूसरों को दे नहीं सकता, यह किस कर्म का उदय है ?

भगवान् ने कहा–कुरुचन्द ! पूर्वभव में किये हुए दान के फल स्वरूप तुम्हें राज्य मिला है। नित्य पांच वस्तु की भेंट भी इसी पुण्य का परिणाम है। किन्तु इसका उपभोग नहीं करते, यह साधारण पुण्य का फल है। इत्यादि कहकर भगवान ने कुरुचन्द्र का पूर्वभव कह सुनाया। अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनकर कुरुचन्द को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। तदनन्तर परिवार सहित भगवान का दर्शन कर राजा कुरुचन्द अपने नगर में लौट आया ।

केवल ज्ञान के बाद भगवान् २४९९९ वर्ष तक पृथ्वी पर विचरण कर भव्यों को प्रतिबोध देते रहे। अपना निर्वाण काल समीप जानकर भगवान् सम्मेद शिखर पर पधारे। यहां नौ सो मुनियों के साथ अनशन कर एक मास के अन्त में मोक्ष पधारे।

भगवान् शान्तिनाथ का च्यवन, जन्म, दीक्षा. केवल ज्ञान और निर्वाण भरणी नक्षत्र में हुआ था।

संतीणो भरणी

स्थानांग सूत्र ४११

संती णं अरहा पन्नत्तरि–वास सहस्साइं अगारवास मज्झे वसित्ता मुण्डे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए।

(समवायांग ७५)

अरहंत शान्तिनाथ पचहत्तर हजार वर्ष गृहवास में रहकर मुण्डित एवं प्रव्रजित हुए अगार से अनगारत्व को प्राप्त हुए ।

धम्मातो णं अरहाओ संती अरहा तिहिं सागरोवमेहिं तिचउब्भागपलिओवम–ऊणेहिं वीतिक्कंतेहिं समुप्पण्णे ।

भगवान् शान्तिनाथ धर्मनाथ तीर्थंकर से पौन पल्योपम कम तीन सागरोपम के व्यतिक्रान्त होने पर उत्पन्न हुए थे।

स्थानांग, सूत्र २२८

संती अरहा चत्तालीसधणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ।

(समवायांग

अरहंत शान्तिनाथ चालीस धनुष ऊँचे थे ।

भगवान् शान्तिनाथ के श्रमण बासठ हजार थे ।

संतिस्स णं अरहओ एगूणनउई अज्जासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जि संपया होत

(समवायांग ८

अरहंत शान्तिनाथ की आर्या उत्कृष्ट नवासी हजार थी । किन्तु आवश्यक सूत्र में ६१६ साध्वियां बताई गई है ।

संतिस्स णं अरहओ नउई गणा नउई गणहरा होत्था ।

अरहंत शान्तिनाथ के नब्बे गण और नब्बे गणधर थे । (आवश्यक निर्युक्ति में ३६ ग और ३६ गणधर बताये हैं)

संतिस्स णं अरहओ तिणउई चउद्दसपुव्वि-सया होत्था ।

समवायांग सूत्र ९३

अरहन्त शान्तिनाथ के तिरानवे सौ चौदह पूर्वी मुनि थे । (त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरि में तथा आवश्यक निर्युक्ति में ८०० चौदह पूर्वधरों की संख्या बताई है ।

३००० हजार अवधि ज्ञानी, ४००० मन: पर्यवज्ञानी, ४३०० केवल ज्ञानी ६००० वैक्रि लब्धिवाले, २४०० वादी, २९०००० श्रावक, ३९३००० श्राविकाएँ थीं ।
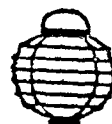
१७–भगवान् कुन्थुनाथ

किं नामदुःसाध्यममुष्यलोके, श्रीकुन्थुनाथःशरणं शरण्यः ।
भूयादमुष्मात्परपारनेता, तीर्थंकरः पारकरो जनानाम् ॥ १७ ॥

"श्रीकुन्थुनाथ भगवान" की शरण ग्रहण करने योग्य है, और इनकी शरण में गये हुए पुरुष के लिए इह पर लोक में कुछ भी असाध्य नहीं हैं। ये महाप्रभु हमारे लिये इस लोक से पार करने वाले नेता सिद्ध हों। ऐसे तीर्थंकर देव भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं।

इक्खागुरायवसभो, कुन्थु नाम नरेसरो ।
विक्खायकित्ती धिइमं मुक्खं गओ अणुत्तरं ॥

उत्तरा० अ० १८ गा० ३९

इक्ष्वाकुवंश के राजाओं में श्रेष्ठ विख्यात कीर्ति वाले, धैर्यशाली भगवान् कुन्थुनाथ छठे चक्रवर्ती–संयम का आराधन कर के मोक्ष रूप प्रधान गति को प्राप्त हुए।

पूर्व भव

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में आवर्त्त विजय में खड्गि नाम का रमणीय नगर था। वहां सिंहावह नाम का राजा राज्य करता था। वह अत्यन्त धर्मपरायण था। एकबार संवर नाम के ज्ञानी आचार्य का आगमन हुआ। सिंहावह राजा उनके दर्शन के लिए गया आचार्य ने उसे उपदेश दिया। राजा धर्मात्मा तो था ही, आचार्य के उपदेश से उसे दृढ़ वैराग्य हो गया। उसने अपने पुत्र को राज्य देकर प्रव्रज्या ली और वह कठोर संयम का पालन करने लगा। उच्चकोटि की तप साधना करते हुए उसने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में अनशन पूर्वक देह का त्याग कर सर्वार्थ सिद्ध विमान में तेतीस सागरोपम की आयु वाला देव बना।

तीर्थंकर भव

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में हस्तिनापुर नाम का नगर था। वहां शूरसेन नाम के महा-पराक्रमी राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम 'श्रीदेवी' था।

सर्वार्थसिद्ध विमान से चवकर सिद्धारथ मुनि का जीव श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की नवमी को कृतिका नक्षत्र में महारानी श्रीदेवी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। (भगवान कुन्थुनाथ के पांचों कल्याणक कृतिका नक्षत्र में हुए-कुन्थुस्स कत्तियाश्रो । स्थानांग सूत्र ४११) महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे। गर्भकाल के पूर्ण होने पर वैशाख कृष्णा चतुर्दशी को कृतिका नक्षत्र के योग में महारानी 'श्रीदेवी' ने पुत्र रत्न को जन्म दिया। भगवान् के जन्म से तीनों लोक प्रकाशित हो उठे। ५६ दिक् कुमारिकाओं ने एवं चौसठ इन्द्रों ने भगवान का जन्मोत्सव किया। महाराजा शूरसेन ने भी पुत्र जन्मोत्सव किया।

गर्भ काल में माता ने 'कुन्थु' नाम का रत्न संचय देखा था, इसलिए बालक का नाम भी 'कुन्थुनाथ' रखा। भगवान बाल से युवा हुए। युवावस्था में अनेक सुन्दर राजकुमारियों के साथ विवाह हुआ। जन्म से २३७५० वर्ष तक युवराज अवस्था में रहे। तदनंतर महाराज शूरसेन ने अपना राज्य भार कुन्थुनाथ को दिया। २३७५० वर्ष तक मांडलिक अवस्था में रहने के बाद आयुध शाला में चक्र रत्न उत्पन्न हुआ। चक्ररत्न का आठ दिन महोत्सव किया। इसके बाद उसकी सहायता से कुन्थुनाथ ने भरत के छहों खण्डों पर विजय प्राप्त कर चक्रवर्ती पद पाया। दिग्विजय में ६०० वर्ष लगे। देवों और मनुष्यों ने चक्रवर्ती पद का उत्सव मनाया। २३७५० वर्ष तक आप चक्रवर्ती पद पर अधिष्ठित रहे। अन्त में आपने दीक्षा लेने का विचार किया। लोकान्तिक देवों ने भी निवेदन किया। फिर वार्षिक दान देकर भगवान् वैशाख कृष्ण पंचमी को दिन के अन्तिम प्रहर में कृतिका नक्षत्र के योग में एक हजार राजाओं के साथ दीक्षित हुए। इन्द्रादि देवों ने भगवान का दीक्षा महोत्सव किया। उस दिन भगवान को परिणामों की उच्चता के कारण मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ। दूसरे दिन षष्ठ भक्त का पारणा चक्रपुर के राजा व्याघ्रसिंह के घर परमान्न से किया। देवों ने पुष्प वृष्टि आदि पांच दिव्य प्रकट किये।

भगवान सोलह वर्ष तक छद्मस्थ काल में विचरते रहे। विहार करते हुए आप पुनः हस्तिनापुर के सहस्राम्र उद्यान में पधारे और तिलक वृक्ष के नीचे बेले का तप कर ध्यान करने लगे। शुक्ल ध्यान की उत्कृष्ट अवस्था में चार घनघाति कर्मों का क्षय कर चैत्र शुक्ला तृतीया के दिन कृतिका नक्षत्र के योग में केवल ज्ञान और केवल दर्शन को प्राप्त किया। इन्द्रादि देवों ने भगवान् का केवल ज्ञान उत्सव मनाया। समवसरण की रचना हुई भगवान् ने देशना दी। देशना सुनकर

स्वयंभू आदि पैंतीस व्यक्तियों ने दीक्षा ली और गणधर पद प्राप्त किया।

केवलज्ञान के पश्चात् २३७३४ वर्ष तक भव्य प्राणियों को प्रतिबोध देते हुए भगवान् विचरण करते रहे। निर्वाण काल समीप जानकर भगवान् एक हजार मुनियों के साथ सम्मेद शिखर पर पधारे। वहां उन्होंने हजार मुनियों के साथ अनशन किया। एक मास के अन्त में वैशाख कृष्णा प्रतिपदा के दिन कृतिका नक्षत्र में निर्वाण प्राप्त किया। इन्द्रादि देवों ने भगवान का निर्वाण उत्सव किया।

भगवान् की कुल आयु ९५००० वर्ष की थी [कुंथू णं अरहा पंचाणउइ वाससहस्साइं परमाउयं पालइत्ता सिद्धे जाव सव्व दुक्खप्पहीणे-सम. ९५)

अरहंत कुन्थूनाथ पंचानवे हजार वर्ष का आयु पूर्ण करके सिद्ध यावत् सर्व दुखों से मुक्त हुए।

भगवान की ऊँचाई ३५ धनुष थी। [कुंथू णं अरहा पणतीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था-सम. ३५]

भगवान् शान्तिनाथ के निर्वाण के बाद आधा पल्योपम बीतने पर भगवान कुन्थुनाथ ने निर्वाण प्राप्त किया।

(कुन्थुस्सणं अरहओ जाव सव्व दुक्खप्पहीणस्स एगे चउभाग पलिओवमे विइक्कंते पंचसट्ठि वाससय सहस्सा सेसं जहा मल्लिस्स। कप्प सुत्त १८९)

भगवान् कुन्थुनाथ के ६०००० साधु, ६०६०० साध्वियां, ६७० चौदह पूर्वधारी थे। (कुन्थुस्स णं अरहओ एकाणउई आहोहियसया होत्था-सम ९१) अरहंत कुन्थुनाथ के एकानवे सो अवधि ज्ञानी थे। (आवश्यक निर्युक्ति एवं त्रिषष्ठी श० पु० च० में २५०० अवधिज्ञानी थे, ऐसा उल्लेख है) कुन्थुस्स णं अरहओ एक्कासीतिं मणं पज्जवनाणिसया होत्था-सम० ८१) अरहंत कुन्थुनाथ के इक्यासी सो मन: पर्यवज्ञानी थे। (आवश्यक निर्युक्ति में ३३४० मन: पर्यवज्ञानी होने का उल्लेख है)

(कुंथुस्स णं अरहओ बत्तीसहिया बत्तीसं जिणसया होत्था सम० ३२)

कुन्थुनाथ अरहंत के बत्तीस सौ बत्तीस सामान्य केवली थे।

(कुंथुस्स णं अरहओ सत्तीसं गणा सतत्तीसं गणहरा होत्था–सम० ३७)

अरहंत कुन्थुनाथ के सैंतीस गण और सैंतीस गणधर थे।

त्रिषष्ठि शलाका पु० च० व आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार भगवान् कुन्थु के ३२०० केवलज्ञानी, ५१०० वैक्रिय लब्धिवाले, २००० वादी, १७९००० श्रावक और ३८१००० श्राविकाएं हुई। आपके शासन में गंधर्व नाम का यक्ष और बला नाम की शासन देवी हुई। भगवान् कुन्थुनाथ के पांचों कल्याणक कृतिका नक्षत्र में हुए ('कुन्थुस्स कत्तियाओ स्था० ४११)

१८ भगवान अरनाथ

अरो जिनो मे त्वर कर्मजालं, छिनत्तु सर्वं भ्रमणैकहेतुम् ।
ददातु बोधं च जिनेन्द्रदेवस्तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥ १८ ॥

सारे संसार में आत्मा के लिये भ्रमण करने के कारण रूप मेरे घोर कर्म रूप जाल को 'भगवान् अरनाथजी' काट दें या नष्ट करदें तथा मुझे केवल ज्ञान रूप बोध लब्धि को प्रदान करें। ऐसे जिनेन्द्र देव भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं ॥ १८ ॥

सागरंतं जहित्ताणं भरहं वासं नरीसरो ॥
अरो य अरयं पत्तो पत्तो गइमनुत्तरं ॥ ४० ॥

नरेश्वर अरनामा चक्रवर्ती, सागर पर्यन्त अर्थात् सम्पूर्ण भारत वर्ष के साम्राज्य को त्याग कर विषय विकार से रहित होकर—अथवा कर्मरज से रहित होकर मोक्ष गति को प्राप्त हुए।

पूर्व भव

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में सुसीमा नाम की रमणीय नगरी थी। वहां धनपति नाम के वीर राजा राज्य करते। उन्होंने संवर नाम के आचार्य के पास उपदेश सुनकर दीक्षा ग्रहण की। चारित्र ग्रहण कर तीर्थंकर नाम कर्म के बीस स्थानों की आराधना करते हुए तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में अनशन पूर्वक देह का त्याग कर नौवें ग्रैवेयक विमान में देव रूप से उत्पन्न हुए।

तीर्थंकर भव

भारतवर्ष में हस्तिनापुर नाम का नगर था। वहां सुदर्शन नाम के प्रजावत्सल राजा राज्य करते थे। उनकी मुख्य रानी का नाम महादेवी था। धनपति मुनि का जीव ग्रैवेयक विमान से चवकर फाल्गुन सुदी तीज के दिन, चन्द्र जब रेवती नक्षत्र के योग में था महादेवी की कुक्षि में अवतरित हुआ।

गर्भकाल के पूर्ण होने पर महारानी महादेवी ने मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी के दिन रेवती नक्षत्र में नन्द्यावर्त लांछन वाले कनकवर्णी पुत्र को जन्म दिया। भगवान के जन्म से तीनों लोकों

में प्रकाश हुआ। नरक के जीवों को क्षण भर के लिए शान्ति मिली। दिक्कुमारिकाओं ने प्रसूति कार्य किया। इन्द्रों ने भगवान को मेरु पर्वत पर लेजाकर जन्माभिषेक किया। महाराजा सुदर्शन ने भी भगवान् का जन्मोत्सव किया। गर्भकाल में माता ने स्वप्न में आरा चक्र देखा था इस कारण बालक का नाम अरनाथ रखा। अरनाथ युवा हुए। उनका अनेक सुन्दरी राजकुमारियों के साथ विवाह हुआ।

इक्कीस हजार वर्ष की आयु में सुदर्शन राजा ने आपको राज्यगद्दी पर स्थापित किया। उतने ही वर्ष तक अर्थात् २१००० वर्ष तक राज्य करने के बाद आपकी आयुध शाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। चारसो वर्षों में आपने चक्ररत्न की सहायता से भरत के छह खण्डों पर विजय प्राप्त की। २१००० वर्ष तक चक्रवर्ती की अवस्था में रहने के बाद आपने दीक्षा देने का निश्चय किया। लोकान्तिक देवों ने भी निवेदन किया। इसके बाद आपने वार्षिक दान दिया। तदनन्तर माघ शुक्ला ११ के दिन रेवती नक्षत्र में छठ का तप कर देव निर्मित वैजयन्ती नाम की शिबिका में बैठकर सहस्राम्र उद्यान में राजपरिवार के एक सहस्र पुरुषों सहित प्रव्रज्या ग्रहण की। उसी समय भगवान् को मन: पर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ। इन्द्रों ने भगवान् का दीक्षा महोत्सव मनाया। दूसरे दिन छठ का पारणा गजपुर नगर के राजा अपराजित के घर परमान्न से किया।

तीन वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था म रहने के बाद भगवान् हस्तिनापुर के सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहां कार्तिक शुक्ला द्वादशी के दिन शुक्ल ध्यान की उच्च अवस्था में आम्र वृक्ष के नीचे केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ। इन्द्रादि देवों ने भगवान् का केवल ज्ञान उत्सव मनाया। समवसरण की रचना हुई। भगवान् ने समवसरण में विराज कर धर्म देशना दी। भगवान् का उपदेश सुनकर कुंभ आदि ३३ पुरुषों ने प्रव्रज्या ग्रहण कर गणधर पद प्राप्त किया। भगवान् ने चार तीर्थ की स्थापना की। प्रभु भव्यों को उपदेश देने अन्यत्र विहार कर गये।

निर्वाण का समय सन्निकट जानकर भगवान् एक हजार मुनियों के साथ सम्मेत शिखर पर्वत पर पधारे। वहां आपने अनशन ग्रहण किया। एक मास के अन्त में एक हजार मुनियों के साथ मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी के दिन रेवती नक्षत्र में निर्वाण प्राप्त किया। इन्द्रादि देवों ने भगवान् का निर्वाणोत्सव किया।

(अरे णं अरहा तीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था-सम० ३१)

अरहंत अरनाथ तीस धनुष ऊंचे थे ।

भगवान् अरनाथ के विचरणकाल में ५०००० साधु, एवं ६०००० साध्वियां, ६१० चौदह पूर्वधर, २६०० अवधिज्ञानी, २५५१ मनः पर्यवज्ञानी २८०० केवली, ७ हजार ३ सौ वैक्रिय-लब्धिवाले, एक हजार छ सौ वादी, १८४००० श्रावक और ३७२००० श्राविकाएँ हुईं ।

भगवान् अरनाथ के पांचों कल्याणक रेवती नक्षत्र में हुए (अरस्स तह रेवतीतो-स्थानांग ४११)

१६ भगवान मल्लीनाथ

मल्लीजिनेन्द्रो मिथिलानगर्यामुत्पद्यजन्मान्तरमित्रषटकम् ।
यदाऽऽदिशत् चोटितकर्मबन्धास्तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥१६॥

मिथिला नगरी में जिन्होंने जन्म ग्रहण किया था और पूर्वभव के छह मित्रों को जिन्होंने उपदेश दिया था, कर्म–शत्रुओं का बन्धन काटा ऐसे "श्री मल्लीनाथजी" भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं ॥ १९ ॥

पूर्व भव

एवं खलु जम्बू ते णं कालेणं ते णं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं निसढस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, सीयोयाए महाणईए दाहिणेणं सुहावहस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरच्छिमेणं एत्थ णं सलिलावती नामं विजए पण्णत्ते ।

हे जम्बू ! उसकाल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, महाविदेह नामक वर्ष क्षेत्र में, मेरु पर्वत से पश्चिम में, निषध नामक वर्षधर पर्वत से उत्तर में, शीतोदा महानदी से दक्षिण में, सुखावह नामक वक्षस्कार पर्वत से पश्चिम में और पश्चिम लवण समुद्र से पूर्व में सलिलावती नामक विजय कहा गया है ।

तत्थ णं सलिलावती विजए वीयसोगा नामं रायहाणी पण्णत्ता-नव जोयणवित्थिण्णा जाव पच्चक्खं देवलोग भूया ।

तीसेणं वीयसोगाए रायहाणीए उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए एत्थणं इंदकुंभे नामं उज्जाणे होत्था ।

तत्थणं वीयसोगाए रायहाणीए बले नामं राया होत्था । तस्सेव धारिणीपामोक्खं देविसहस्सं उवरोहे होत्था ।

उस सलिलावती विजय में वीतशोका नामक राजधानी कही गई है। वह नौ योजन चौड़ी यावत् प्रत्यक्ष देवलोक के समान थी।

उस वीतशोका राजधानी के उत्तर पूर्व में अर्थात् ईशान कोन में इंद्रकुभ नामका उद्यान था।

उस वीतशोका राजधानी में वल नाम का राजा राज्य करता। उसकी धारिणी प्रमुख एक हजार रानियां थी।

तए णं सा धारिणीदेवी अन्नया कयाइं सीहं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा जाव महब्बले नामं दारए जाव उम्मुक्क जाव भोगसमत्थे ॥

तदन्तर वह धारिणीदेवी किसी समय अपनी शय्या पर सुख पूर्वक सोयीं हुई थी। उस उस समय उसने रात्रि के पश्चिम प्रहर में सिंह का स्वप्न देखा। देखकर वह जाग उठी और वल राजा के पास पहुंची। उसने अपने स्वप्न का सारा वृत्तांत राजा से कहा। उत्तर में राजा ने कहा— देवी! तुमने उत्तम स्वप्न देखा है। इस स्वप्न को देखने से तुम्हें अर्थ लाभ होगा। तुम कुल की वृद्धि करने वाले, यशस्वी बालक को जन्म दोगी। इसके बाद वह अपने शयन कक्ष में आ गई और धर्म ध्यान में रात्रि का शेष भाग बिताने लगी। नौ मास साढ़े सात रात्रि के बीतने पर रानी ने सुकोमल अंग वाले बालक को जन्म दिया। पांच धात्रियों के संरक्षक में बालक युवा हुआ। उसने कलाचार्य के पास शिक्षा प्राप्त की। वह पंचेन्द्रियों के भोग भोगने योग्य हुआ।

तए णं तं महब्बलं अम्मापियरो सरिसियाणं कमलसिरि–पामोक्खाणं पचण्हं रायवरकन्नासयाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेंति, पंचपासायसया पंचसयदाओ जाव विहरइ, थेरागमणं, इंदकुंभे उज्जाणे समोसढे। परिसा निग्गया, वलो वि निग्गओ, धम्मं सोच्चा निसम्म जं नवरं महब्बलं कुमारं रज्जे ठावेइ जाव एक्कारसंगवी वहूणी वासाणि सामण्ण-परियायं पाउणित्ता जेणेव चारुपव्वए मासिएणं भत्तेणं सिद्धे ॥

इसके वाद उस महावल के माता-पिता ने एक ही दिन में समान कुल वय आदि वाली कमलश्री आदि पांच सौ श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ विवाह कर दिया। और पांच सौ प्रासाद उन पांच सौ वधुओं के निवास के लिये बनवा दिये। विवाह में पांच सौ हिरण्य कोटि, पांच सौ

सुवर्णकोटि आदि पांचसौ पांचसौ वस्तुएं इन्हें श्वसुर पक्ष की ओर से दहेज में मिली। वह महाबल कुमार अपनी पांच सौ स्त्रियों के साथ उच्च महल में सुखोपभोग करता हुआ रहने लगा।

एकबार वीतशोका नगरी के बाहर इन्द्र कुम्भ नामक उद्यान में स्थविरों का आगमन हुआ। जनसमुदाय रूप परिषद् धर्म कथा सुनने के लिये अपने घर से निकली। उस जनसमुदाय के कोलाहल को सुनकर बल राजा ने भी अपने महल से निकलकर स्थविर के पास जाकर धर्म कथा सुनी। धर्म कथा को सुनकर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने अपने पुत्र महाबल कुमार को राज्य पर स्थापित कर स्थविरों के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। दीक्षित होने के बाद उसने ग्यारह अंगसूत्रों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर चारु पर्वत पर मासिक संलेखना के साथ सिद्ध हुआ।

तए णं सा कमलसिरी अन्नया सीहं सुमिणे जाव बलभद्दो कुमारो जाओ। जुवराया यावि होत्था। तस्स णं महाबलस्स रण्णो इमे छप्पियबालवयंसगा रायाणो होत्था। तं जहा–अयले, धरणे, पूरणे, वसू, वेसमणे, अभिचंदे, सहजायया सहवड्ढिया जाव अम्हेहिं एगयओ समेच्चा णित्थरियव्वं त्ति कट्टु अन्नमन्नस्सेयमट्ठं पडिसुणेंति।

इसके बाद कमलश्री ने किसी समय रात्रि में सिंह का स्वप्न देखा। उसने बलभद्र नाम के कुमार को जन्म दिया। बलभद्र कुमार युवा हुआ। उसने युवराज पद प्राप्त किया। उस महाबल राजा के छह बाल मित्र राजा थे। जिनके नाम ये हैं–(१) अचल (२) धरण (३) पूरण (४) वसु (५) वैश्रमण (६) और अभिचन्द्र। ये सब महाबल राजा के साथ उत्पन्न हुए थे और उन्हीं के साथ बड़े हुए थे। एक समय ये सब एक स्थान पर एकत्रित हुए और आपस में ऐसा विचार किया–सुख, दुःख, देश विदेश गमन या प्रव्रज्या आदि जो भी कार्य हो उन सबको हम लोग मिलकर ही करेंगे। इस प्रकार परस्पर वचनबद्ध हो रहने लगे।

तेणं कालेणं तेणं समएणं इंदकुंभे उज्जाणे थेरा समोसढा। परिसा निग्गया। महब्बले णं धम्मं सोच्चा जं नवरं छप्पिय बालवयंसए आपुच्छामि। बलभद्दं च कुमारं रज्जे ठावेमि, जाव छप्पिय बालवयंसए आपुच्छामि तएणं ते छप्पिय बालवयंसगा महब्बलं रायं एवं वयासी–जइ णं देवाणुप्पिया! तुब्भे पव्वयह अम्हे के अन्ने आहारे वा जाव

पव्वयामो । तए णं से महब्बले राया ते छप्पिय बालवयंसए एवं वयासी—जइ णं तुब्भे मए सद्धिं जाव पव्वयह तो णं गच्छह जेट्ठे पुत्ते सएहिं सएहिं रज्जेहिं ठावेह–पुरिससहस्स-वाहिणीओ सीयाओ दुरुढा जाव पाउब्भवंति । तए णं से महब्बले राया छप्पिय बालवयंसए पाउब्भूते पासइ । पासित्ता, हट्ठतुट्ठे कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता बलभद्दस्स अभिसेओ । आपुच्छइ, तएणं से महब्बले जाव महिड्ढिए जाव पव्वइए एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ बहूहिं चउत्थ जाव भावेमाणे विहरइ ॥

उस काल उस समय इंद्रकुम उद्यान में स्थविरों का आगमन हुआ । स्थविरों का आगमन सुनकर परिषद् स्थविरों का उपदेश सुनने के लिए उद्यान में गई। महाबल राजा भी गया। स्थविरों से धर्म श्रवण कर महाबल राजा ने स्थविरों से कहा–मैं आपके पास प्रव्रजित होना चाहता हूँ। परन्तु अपने बाल मित्रों को पूछकर एवं बलभद्रकुमार को राज्य पर स्थापित कर फिर आपके पास दीक्षा लूंगा। ऐसा कह महाबल राजा अपने स्थान लौट आया। उसने अपने छहों बाल सखा राजाओं को बुलाया और कहा–मित्रो ! मैं स्थविरों के पास दीक्षा लेना चाहता हूं। कहो, आप लोगों की क्या इच्छा है ? इस पर मित्रों ने कहा–यदि आप प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहते हैं तो फिर हमारा कौन आश्रयदाता रहेगा ? अतः हम भी आपके साथ प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे। तब महाबल राजा ने उन मित्रों से कहा यदि ऐसा ही है तो जाओ अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्रों को राज्यगद्दी पर स्थापित कर शीघ्र ही यहां चले आओ। इसके बाद उन छहों राजाओं ने वैसा ही किया। वे अपने-अपने को पुत्र राज्यगद्दी पर स्थापित कर सहस्र पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविकाओं पर आरुढ़ होकर महाबल राजा के पास उपस्थित हो गये । इसके बाद महाबल राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उन्हें कुमार बलभद्र के राज्या-भिषेक की तैयारी करने की आज्ञा दी। तदनंतर कौटुम्बिक पुरुषों ने राज्याभिषेक की समस्त तैयारियां कर राजा की आज्ञा को वापिस किया। राजा ने बड़ी ऋद्धि के साथ कुमार बलभद्र का राज्याभिषेक किया और उसे राजा बनाया। इसके बाद बलभद्र राजा ने अपने पिता महाबल आदि छहों राजाओं का दीक्षोत्सव किया। वे छहों राजा व महाबल राजा सहस्र पुरुष वाहिनी शिविका पर आरुढ़ होकर स्थविरों के पास आये और उनसे प्रव्रज्या ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण कर महाबल आदि सातों अनगारों ने ग्यारह अंग सूत्रों का अध्ययन किया। और चतुर्थ भक्त आदि अनेक प्रकार की तपश्चर्या करते हुए विचरने लगे ।

तए णं तेसिं महब्बलपामोक्खाणं सत्तण्हं अणगाराणं अन्नया कयाइं एगयओ सहियाणं इमेयारूवे मिहो कहा समुल्लावे समुप्पज्जित्था-जण्हं अम्हं देवाणुप्पिया ! एगे तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं अम्हेहिं सव्वेहिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तएत्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता बहूहिं चउत्थ जाव विहरंति। तएणं से महब्बले अणगारे इमेणं कारणेणं इत्थिणामगोयं कम्मं निव्वत्तिसु ॥

इसके बाद उन महाबल प्रमुख सात अनगारों की किसी एक समय, जबकि ये सब एक जगह बैठे हुए थे, इस प्रकार की बात हुई-हे देवानुप्रियो ! हम लोगों में से जो भी कोई तप कर्म को अंगीकार करके अपने आपको भावित करेगा-हम सब भी उसी तपकर्म को अंगीकार करेंगे। इस प्रकार विचार कर उन्होंने परस्पर में इस विचार को स्वीकार कर लिया। स्वीकार कर फिर उन सबने साथ ही साथ चतुर्थभक्त आदि की तपश्चर्या करना प्रारम्भ कर दी। महाबल अनगार ने इस वक्ष्यमाण कारण से स्त्रीनाम गोत्र कर्म का उपार्जन किया।

जइ णं ते महब्बलवज्जा छ अणगारा चउत्थं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति, तओ से महब्बले अनगारे छट्ठं उवसंपज्जिताणं विहरइ। जइणं ते महब्बलवज्जा अणगारा छट्ठं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति तओ से महब्बले अणगारे अट्ठमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। एवं अट्ठमं तो दसमं, अह दसमं तो दुवालसं।

उसके बाद उन महाबल अनगार ने इस कारण से स्त्री नाम गोत्र कर्म का उपार्जन किया-यदि वे महाबल को छोड़कर शेष छह अनगार चतुर्थ भक्त उपवास ग्रहण करके विचरते तो वह महाबल अनगार उन्हें बिना कहे षष्ठ-भक्त बेला ग्रहण करके विचरते, अगर महाबल के सिवाय छह अनगार षष्ठ भक्त अंगीकार करके विचरते तो महाबल अनगार अष्टम भक्त-तेला ग्रहण करके विचरते। इसी प्रकार वे अष्टम भक्त करते तो महाबल दशम भक्त चोला करते, वे दशम भक्त करते तो महाबल द्वादश भक्त-पंचोला कर लेते। इस प्रकार अपने साथी मुनियों से छिपाकर-कपट करके महाबल अधिक तप करते थे।

इमेहि य वीसाएहि य कारणेहिं आसेवियबहुलीकएहिं तित्थयर नामगोयं कम्मं निव्वत्तिंसु, तंजहा-

अरिहंत–सिद्ध–पवयण–गुरु–थेर–बहुस्सुए–तवस्सीसु ।
वल्लभया य तेसिं, अभिक्ख णाणोवओगे य ॥ १ ॥
दंसण–विणए आवस्सए य सीलव्वए निरइयारं ।
खणलव–तवच्चयाए, वेयावच्चे समाहि य ॥ २ ॥
अपुव्वनाण गहणे सुयभत्ती पवयणे पभावणया ।
एएहिं कारणेहिं, तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥ ३ ॥

स्त्री नामगोत्र के अतिरिक्त इन कारणों के एक बार और बार–बार सेवन करने से तीर्थंकर नाम गोत्र कर्म का भी उपार्जन किया। वे कारण यह हैं–

(१) अरिहंत (२) सिद्ध (३) प्रवचन–श्रुत ज्ञान (४) गुरु धर्मोपदेशक (५) स्थविर अर्थात् साठ वर्ष की उम्र वाले जाति स्थविर, समवायांग के ज्ञाता श्रुत स्थविर और बीस वर्ष की दीक्षा वाले पर्याय स्थविर, यह तीन प्रकार के स्थविर साधु (६) बहुश्रुत–दूसरों की अपेक्षा अधिक श्रुत के ज्ञाता (७) तपस्वी इन सातों के प्रति वात्सलता धारण करना अर्थात् इनका यथोचित सत्कार–सम्मान करना, गुणोत्कीर्तन करना (८) बारंबार ज्ञान का उपयोग करना (९) दर्शन–सम्यक्त्व (१०) ज्ञानादिक का विनय करना (११) छह आवश्यक करना (१२) उत्तरगुणों और मूलगुणों का निरतिचार पालन करना (१३) क्षणलव अर्थात् क्षण–लव प्रमाण काल में भी संवेग, भावना एवं ध्यान का सेवन करना (१४) तप करना (१५) त्याग–मुनियों को उचित दान देना (१६) वैयावृत्य करना (१७) समाधि–गुरु आदि को साता उपजाना (१८) नया–नया ज्ञान ग्रहण करना (१९) श्रुत की भक्ति करना २० और प्रवचन की प्रभावना करना। इन बीस करणों से जीव तीर्थंकरत्व को प्राप्ति करता है। तात्पर्य यह है कि इन बीस कारणों से महाबल मुनि ने तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया।

तए णं से महब्बलपामोक्खा सत्त अनगारा मासिअं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति, जाव एगराइअं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति ॥

उसके बाद महाबल आदि सातों अनगार एक मास की पहली भिक्षु प्रतिमा अंगीकार करके विचरने लगे यावत् बारहवीं एक रात्रि की भिक्षु प्रतिमा अंगीकार करके विचरने लगे। (यहां

'यावत्' शब्द से बीच की दस प्रतिमाएं इस प्रकार समझनी चाहिए-दूसरी दो मास की, तीसरी तीन मास की, चौथी चार मास की, पांचवी पांच मास की, छठी छह मास की, सातवीं सात मास की, आठवीं सात अहोरात्र की, नौवी सात अहोरात्र की, दसवी सात अहोरात्र की, ग्यारहवीं एक अहोरात्र की और बारहवीं एक रात्रि की)

तएणं से महब्बल पामोक्खा सत्त अनगारा खुड्डागं सीह-निक्कीलियं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति, तंजहा-चउत्थं करेंति करित्ता सव्वकाम-गुणियं पारेंति, पारित्ता छट्ठं करेंति, करित्ता चउत्थं करेंति करित्ता अट्ठमं करेंति, करित्ता छट्ठं करेंति, करित्ता दसमं करेंति करित्ता अट्ठमं करेंति, करित्ता दुवालसमं करेंति करित्ता दसमं करेंति, करित्ता चाउद्दसमं करेंति, करित्ता दुवालसमं करेंति, करित्ता सोलसमं करेंति, करित्ता चोद्दसमं करेंति, करित्ता अट्ठारसमं करेंति, करित्ता सोलसमं करेंति, करित्ता वीसइमं करेंति, करित्ता अठारसमं करेंति, करित्ता वीसइयं करेंति, करित्ता सोलसमं करेंति, करित्ता अट्ठारसमं करेंति, करित्ता चोद्दसमं करेंति, करित्ता सोलसमं करेंति, करित्ता दुवालसमं करेंति करित्ता चाउद्दसमं करेंति, करित्ता दसमं करेंति, करित्ता दुवालसमं करेंति, करित्ता अट्ठमं करेंति, करित्ता दसमं करेंति, करित्ता छट्ठं करेंति, करित्ता अट्ठमं करेंति, करित्ता चउत्थं करेंति करित्ता छट्ठं करेंति, करित्ता चउत्थं करेंति। सव्वत्थ सव्व कामगुणिएणं पारेंति।

उसके बाद महाबल आदि सातों अनगार क्षुल्लकसिंहनिष्क्रीड़ित नामक तपःकर्म अंगीकार करके विचरते हैं-वह तप इस प्रकार है-

सर्व प्रथम उन्होंने उपवास किया और उपवास करके सर्वकामगुणित (विगय आदि सभी पदार्थों को ग्रहण करने रूप) पारणा किया। पारणा करके उन्होंने दो उपवास किये फिर एक उपवास किया, फिर तीन उपवास-अष्टम भक्त किया। पुनः दो उपवास किये, फिर चार उपवास कये, फिर तीन उपवास किये। तीन उपवास करके पांच उपवास किये फिर चार उपवास किये, चार उपवास करके छह उपवास किय, फिर पांच उपवास किये, फिर सात उपवास करके पुनः छह उपवास किये। छह उपवास करके आठ उपवास किये। आठ उपवास के बाद पुनः सात उपवास किये फिर नौ उपवास किये। नौ उपवास करके सात उपवास किये। सात उपवास करके आठ उपवास किये, फिर छह उपवास करके सात उपवास किये। सात उपवास करके फिर पांच उपवास किये। फिर

पांच उपवास किये, फिर छह उपवास किये, करके चार उपवास किये, फिर पांच उपवास किये, करके तीन उपवास किये, करके चार उपवास किये, करके दो उपवास किये, करके उपवास किये, करके दो उपवास किये, करके फिर एक उपवास किया। सब जगह पारणा के दिन सर्वकाम गुणित सभी विगय का सेवन रूप) पारणा करके उपवासों के पारणा किये जिसका यंत्र इस प्रकार है–

१	२	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९
१	२	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९

(सिंह की क्रीड़ा के समान तप सिंह निष्क्रीडित कहलाता है। जैसे सिंह चलता–चलता पीछे देखता है, इसी प्रकार जिस तप में पीछे के तप की आवृत्ति करके आगे का तप किया जाता है और इसी क्रम से आगे बढ़ा जाता है, वह सिंह निष्क्रीडित तप कहलाता है।)

एवं खलु एसा खुड्डागसीह निक्कीलियस्स तवोकम्मस्स पढमा परिवाडी छहिं मासेहिं सत्तहिं य अहोरत्तेहिं य अहासुत्ता जाव आराहिया भवइ।

इस प्रकार इस क्षुल्लक सिंहनिष्क्रीडित तप की पहली परिपाटी छह मास और सात अहो–रात्रों में सूत्र के अनुसार यावत् आराधित होती है। (इसके १५४ उपवास और तेतीस पारणा किये जाते हैं)।

तयानंतरं दोच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेंति नवरं विगइवज्जं पारेंति, एवं तच्चा वि परिवाडी, नवरं पारणए अलेवाडं पारेंति। एवं चतुत्था वि परिवाडी, नवरं पारणए आयंबिलेणं पारेंति।

तत्पश्चात् दूसरी परिपाटी में एक उपवास करते हैं, इत्यादि सब पहले के समान समझना विशेषता यह है कि इसमें विकृति (विगय) रहित पारणा करते हैं, अर्थात् पारणा में विगय का सेवन नहीं करते। इसी प्रकार तीसरी परिपाटी भी समझनी चाहिए। इसमें विशेषता यह है कि अलेपकृत से पारणा करते हैं। चौथी परिपाटी में भी ऐसा ही करते हैं उसमें आयंबिल से पारणा की जाती है।

तएणं से महब्बलपामोक्खा सत्त अणगारा खुड्डागं सीहनिक्किलियं तवोकम्मं दोहिं संवच्छरेहिं अट्ठावीसाए अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव आणाए आराहेत्ता, जेणेव थेरे भगवंते तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी– "इच्छामो णं भंते ! महालयं सीहनिक्कीलियं तवोकम्मं तहेव जहा खुड्डागं, नवरं चोत्तीस-इमाओ नियत्तए, एगाए चेव परिवाडीए कालो एगेणं संवच्छरेणं छहिं मासेहिं अट्ठारसेहिं य अहोरत्तेहिं समप्पेइ । सव्वं पि सीहनिक्कीलियं छहिं वासेहिं, दोहि य मासेहिं बारसेहि य अहो-रत्तेहिं समप्पेइ ।

उसके बाद महाबल आदि सातों अनगार क्षुल्लक (लघु) सिंह निष्क्रीडित तप को (चारों परिपाटी सहित) दो वर्ष और अट्ठाईस अहोरात्र में सूत्र के अनुसार यावत तीर्थंकर की आज्ञा से आराधन करके जहां स्थविर भगवान् थे, वहां आये । आकर उन्होंने वन्दना की, नमस्कार किया । वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले–

"भगवान् ! हम महत्–बड़ा सिंह–निष्क्रीडित नामक तपकर्म करना चाहते हैं । यह तप क्षुल्लक सिंह निष्क्रीडित तप के समान ही जानना चाहिए । विशेषता यह है कि इसमें चौतीस भक्त अर्थात् सोलह उपवास तक पहुंच कर वापिस लौटा जाता है । एक परिपाटी एक वर्ष छह मास और अठारह अहोरात्र में समाप्त होती है । सम्पूर्ण महानिष्क्रीडित तप छह वर्ष दो मास और बारह अहोरात्र में समाप्त होता है । (प्रत्येक परिपाटी में ५५८ दिन लगते हैं, ४९७ उपवास और ६१ पारणा होते है ।)

तएणं ते महब्बल पामोक्खा सत्त अनगारा महालयं सीहनिक्कीलियं अहासुत्तं जाव आराहेत्ता जेणेव थेरे भगवंते तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवन्ते वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूणि चउत्थ जाव विहरंति ।

उसके बाद वे महाबल आदि सातों अनगार महत्सिंहनिष्क्रीडित तप का सूत्र के अनुसार आराधन करके जहां स्थविर भगवान् थे वहां आते हैं । आकर स्थविर भगवान् को वन्दना–नमस्कार करते हैं । वन्दना–नमस्कार करके बहुत से चतुर्थ–उपवास बेला आदि करते हुए विचरते हैं ।

तए णं ते महब्बल पामोक्खा सत्त अनगारा तेणं उरालेणं सुक्का भुक्खा जहा खंदओ, नवरं थेरे आपुच्छित्ता चारुपव्वयं (वक्खारपव्वयं) दुरुहंति । दुरुहित्ता जाव दो मासियाए संलेहणाए सवीसं भत्तसयं अणसणं चउरासीइं वाससयसहस्साइं सामण्णपरियागं पाउणंति, पाउणित्ता चुलसीइं पुव्वसय सहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता जयंते विमाणे देवत्ताए उववन्ना ।

तदनन्तर वे महाबल आदि सप्त अनगार उस उदार तप के कारण शुष्क (मांस रक्त से हीन) रूक्ष (निस्तेज) यावत् [1]खंदक अनगार की तरह (हो गये) विशेषता यह है कि इन मुनियों ने स्थविर भगवान् से आज्ञा ली । आज्ञा लेकर चारु पर्वत (चारु नामक वक्षस्कार पर्वत) पर चढ़े । चढ़ कर यावत्, दो मास की संलेखना करके—एक सौ बीस. भक्त का अनशन करके चौरासी लाख वर्षों तक सयम का पालन करके चौरासी लाख पूर्व का कुल आयुष्य भोग कर जयंत नामक तीसरे अनुत्तर विमान में देव रूप से उत्पन्न हुए ।

तत्थणं अत्थेगइयाणं देवाणं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता । तत्थेणं महब्बल-वज्जाणं छण्हं देवाणं देसूणाइं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई, महब्बलस्स देवस्स पडिपुण्णाइं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता

वहां पर कितनेक देवों की बत्तीस सागरोपम की स्थिति कही गई हैं । उनमें से महाबल को छोड़कर छह देवों की कुछ कम बत्तीस सागरोपम की स्थिति और महाबल देव की पूरे बत्तीस सागरोपम की स्थिति कही गई है ।

तए णं ते महब्बलवज्जा छप्पि य देवा जयंताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ठिइक्ख-एणं भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे विसुद्धपिइमाइ वंसेसु रायकुलेसु पत्तेयं पत्तेयं कुमारत्ताए पच्चायासी । तं जहा पडिबुद्धी इक्खागराया १ चंदच्छाए अंगराया २ संखे कासिराया ३ रुप्पी कुणालाहिवई ४ अदीणसत्तू कुरुराया ५ जियसत्तू पंचालाहिवई ६ ।

---

१ खंदक अनगार का वर्णन भगवती सूत्र में आता है ।

उसके बाद महाबल देव के सिवाय छहों देव जयंत देवलोक से, देव सम्बन्धी आयु का क्षय होने से, देवलोक में रहने रूप स्थिति का क्षय होने पर और देव सम्बन्धी भव का क्षय होने पर अन्तर रहित शरीर का त्याग करके अथवा च्युत होकर इसी जम्बूद्वीप में भरत वर्ष (क्षेत्र) में विशुद्ध माता-पिता के वंश वाले राजकुलों में अलग अलग कुमार के रूप में उत्पन्न हुए। वे इस प्रकार १-पहला मित्र प्रतिबुद्धि इक्ष्वाकुवंश का अथवा इक्ष्वाकु देश का राजा हुआ (इक्ष्वाकु देश को कौशल देश भी कहते हैं, जिसकी राजधानी अयोध्या थी।) २-दूसरा चन्द्रच्छाय अंगदेश का राजा हुआ, जिसकी राजधानी चम्पा थी। ३-तीसरा मित्र शंख काशी देश का राजा हुआ, जिसकी राजधानी वाणारसी थी। ४-चौथा रुक्मि कुणाल देश का राजा हुआ, जिसकी नगरी श्रावस्ती थी। ५-पांचवां अदीन शत्रु कुरुदेश का राजा हुआ, जिसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। ६-छठा जितशत्रु पांचाल देश का राजा हुआ जिसकी राजधानी कान्पिल्यपुर थी।

तए णं से महब्बलदेवे तिहिं णाणेहिं समग्गे उच्चट्ठाणट्ठिएसु गहेसु, सोमासु दिसासु वितिमिरासु विसुद्धासु, जइएसु सउणेसु, पयाहिणाणु कूलंसि, भूमिसप्पिंसि, मारुतंसि पवायंसि, निप्फन्नसस्समेइणीयलंसि कालंसि. पमुइयपक्कीलिएसु जणवएसु अद्धरत्तकालसमयंसि अस्सिणी नक्खत्तेणं जोग मुवागएणं जे से हेमताणं चउत्थे मासे, अट्ठमे पक्खे फग्गुणसुद्धे तस्सणं फग्गुण सुद्धस्स चउत्थिपक्खेणं जयंताओ विमाणाओ बत्तीस सागरोवमट्ठिइयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे मिहिलाए रायहाणीए कुंभगस्स रण्णो पभावईए देवीए कुच्छिंसि आहारवक्कंतीए सरीरवक्कंतीए भववक्कंतीए गब्भत्ताए वक्कंते।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत क्षेत्र में मिथिला नामक राजधानी में, कुंभराजा की प्रभावती देवी की कूख में देवगति सम्बन्धी आहार का त्याग करके, वैक्रिय शरीर का त्याग करके एवं देव भव का त्याग करके गर्भ रूप में उत्पन्न हुआ।

तं रयणिं च णं पभावई देवी तंसि तारिसगंसि वासभवणंसि सयणिज्जंसि जाव अद्धरत्तकालसमयंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेया रूवे उराले कल्लाणे सिवे धण्णे मंगले सस्सिरीए चउद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा तं जहा—

गय-वसह-सीह-अभिसेय-दाम-ससि-दिणयरज्झय कुंभे।

पउमसर-सागर-विमाण रयणुच्चय सिहिं च ॥१॥

तए णं सा पभावई देवी जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जाव भत्तारकहणं सुमिए पाढगपुच्छा जाव विहरइ।

उस रात्रि में प्रभावती देवी उस प्रकार के उस पूर्ववर्णित वास भवन में पूर्व वर्णित शय्या पर यावत् अर्द्धरात्रि के समय, जब न गहरी सोई थी और न जाग ही रही थी, बार-बार ऊंघ रही थी, तब इस प्रकार के प्रधान, कल्याण रूप-शिव-उपद्रव रहित, धन्य मांगलिक और सश्रीक चौदह महा स्वप्न देख कर जागी। वे चौदह स्वप्न इस प्रकार हैं:-१ गज २ वृषभ ३ सिंह ४ अभिषेक ५ पुष्पमाला ६ चंद्रमा ७ सूर्य ८ ध्वजा ९ कुम्भ १० पद्मयुक्त सरोवर ११ सागर १२ विमान १३ रत्नों की राशि १४ धूम रहित अग्नि।

यह चौदह स्वप्न देखने के पश्चात् प्रभावती रानी जहाँ राजा कुम्भ थे वहाँ आई आकर पति से स्वप्नों का वृत्तान्त कहा। कुम्भ राजा ने स्वप्न पाठकों को बुलाकर स्वप्नों का फल पूछा। यावत् प्रभावती देवी हर्षित एव संतुष्ट होकर विचरने लगी।

तए णं तीसे पभावईए देवीए तिण्हमासाणं बहुपडिपुण्णाणं इमेयारूवे डोहले पाउब्भूए धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ जाओ णं जल थलय भासुरप्पभूएणं दसद्धवण्णेणं मल्लेणं अत्थुय पच्चत्थुयंसि सयणिज्जंसि सन्निसन्नाओ सण्णिवण्णाओ य विहरंति। एगं

उसके बाद प्रभावती देवी ने जल और थल में उत्पन्न यावत् फूलों की माला से अपना दोहद पूर्ण किया। तब प्रभावती देवी प्रशस्त दोहला होकर विचरने लगी।

उसके बाद प्रभावती देवी ने नौ मास और साढ़े सात दिवस पूर्ण होने पर हेमन्त के प्रथम मास में, दूसरे पक्ष में अर्थात् मार्ग शीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में, मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन, मध्यरात्रि में अश्विनी नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग होने पर, सभी ग्रहों के उच्चस्थान पर स्थित होने पर, जब देश के सब लोग प्रमुदित होकर क्रीड़ा कर रहे थे, ऐसे समय में आरोग्य-आरोग्य पूर्वक अर्थात् बिना किसी बाधा के उन्नीसवे तीर्थंकर को जन्म दिया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ महयरियाओ जहा जम्बुद्दीवपन्नत्तीए जम्मणं सव्वं भाणियव्वं, नवरं मिहिलाए नयरीए कुम्भरायस्स भवणंसि पभावईए देवीए अभिलाओ संजोएव्वो जाव नंदीसरवरे दीवे महिमा।

उस काल और उस समय में अधोलोक में बसने वाली महत्तरिका दिशाकुमारिकाएँ आई, इत्यादि जन्म का जो वर्णन जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति में आया है, वह सब यहां समझ लेना चाहिये। विशेषता यह है कि-मिथिला नगरी में कुंभराजा के भवन में, प्रभावती देवी का अलापक कहना-नाम आदि कहना चाहिए। यावत् देवों ने जन्माभिषेक करके नंदीश्वर द्वीप में जाकर अठाई महोत्सव किया।

तएणं कुंभए राया बहूहिं भवणवइवंतर-जोइसिय-वेमाणिय देवा तित्थयर जन्मणाभिसेयं जायकम्मं जाव नामकरणं जम्हाणं अम्हे इमीए दारियाए माउगब्भंसि वक्कममाणंसि मल्लसयणिज्जंसि डोहले विणीए, तं होउणं णामे णं मल्ली, नामं ठवेइ, जहा महाबले नाम जाव परिवड्ढिया।

उसके बाद कुम्भराजा ने एवं बहुत से भवनपति, वाणव्यंतर, जोतिष्क और वैमानिक देवों ने तीर्थंकर का जन्माभिषेक किया। फिर जातकर्म आदि संस्कार किये यावत् नाम करण किया कि-क्योंकि हमारी यह पुत्री माता के गर्भ में थी, तब माल्य (पुष्प) की शय्या में सोने का दोहद उत्पन्न हुआ था और वह पूर्ण हुआ था अतएव इसका नाम 'मल्ली' हो। ऐसा कहकर उसका नाम 'मल्ली' रक्खा। जैसे भगवती सूत्र में महाबल नाम रखने का वर्णन है वैसा ही यहां जानना। यावत् मल्ली कुमारी वृद्धि को प्राप्त हुई।

सा वड्ढई भगवई दियलोयचुया अणोपमसिरिया ।
दासीदास परिवुडा, परिकिन्ना पीढमद्देहिं ॥ १ ॥
असियसिरया सुनयना बिंबोट्ठी धवलदंतपंतीया ।
वरकमलगब्भगोरी, फुल्लुप्पलगंधनीसासा ॥ २ ॥

देवलोक से आई हुई (च्युत हुई) वह भगवती वृद्धि को प्राप्त होती हुई अनुपम शोभा वाली हुई। दास दासियों एवं पीठमर्दकों से सदा घिरी हुई रहने लगी। उसके मस्तक के केश काले थे, आंखें सुन्दर थीं, अधर-होठ बिम्बफल के समान लाल थे। दांत—पंक्तियां शुभ्र थीं। शरीर श्रेष्ठ कमल के गर्भ के समान गौर वर्ण वाला था। (भगवती मल्ली का वर्ण प्रियंगु के समान श्याम था, अतः यहां वर कमल गब्भ का अर्थ कस्तूरी भी हो सकता है।)

तए णं सा मल्ली विदेहवर रायकन्ना उम्मुक्कबालभावा जाव रूवेण जोव्वणेण य जाव लावण्णेण य अईव अईव उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था।

उसके बाद विदेहराज की वह श्रेष्ठ कन्या बाल्यावस्था से मुक्त हुई यावत् रूप यौवन लावण्य से अतीव अतीव उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर वाली हुई।

तए णं सा मल्ली विदेहवर रायकन्ना देसूणवाससयजाया। ते छप्पिय रायाणो विपुलेण ओहिणा आभोएमाणी आभोएमाणी विहरइ, तंजहा- पडिबुद्धिं जाव जियसत्तुं पंचालाहिवइं।।

उसके बाद विदेहराज की वह श्रेष्ठ राजकन्या मल्ली कुछ कम सौ वर्ष की हो गई। तब वह उन (पूर्व जन्म के बालमित्र) छहों राजाओं को अपने विपुल अवधिज्ञान से देखती हुई रहने लगी वे इस प्रकार— प्रतिबुद्धि यावत् पंचाल देश का राजा जितशत्रु।

तए णं सा मल्ली विदेहवर रायकन्ना कोडुम्बिय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी गच्छह णं देवाणुप्पिया! असोगवणियाए एगं महं मोहण घरं करेह अणेय खंभसय सन्निविट्ठं। तत्थ णं मोहनघरस्स बहुमज्झदेसभाए छ गब्भघरए करेह। तेसि णं गब्भघराणं बहुमज्झदेसभाए जालघरयं करेह। तस्स णं जालघरयस्स बहुमज्झदेसभाए मणिपेढियं करेह। ते वि तहेव जाव पच्चप्पिणंति ।

उसके बाद विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर कहा– देवानुप्रियो ! जाओ और अशोक वाटिका में एक बड़ा मोहन घर (मोह उत्पन्न करने वाला अतिशय रमणीय घर) बनाओ, जो अनेक सैकड़ों खंभों से बना हुआ हो। उस मोहनगृह के ठीक मध्यभाग में छह गर्भ गृह (कमरे) बनाओ। उन छहों गर्भगृहों के ठीक बीच में एक जालगृह (जिसके चारों ओर जाली लगी हो और जिसके भीतर की वस्तु बाहर वाले देख सकते हों, ऐसा घर) बनाओ। उस जालगृह के मध्य में एक मणिमय पीठिका बनाओ। यह सुनकर कौटुम्बिक पुरुषों ने उसी प्रकार बना कर आज्ञा वापिस सौंपी।

तए णं मल्ली मणिपेढियाए उवरिं अप्पणो सरिसयं सरिसत्तयं सरिसव्वयं सरिसलावण्ण जोव्वणगुणोववेयं कणगमइं मत्थयच्छिड्डं पउमुप्पलप्पिहाणं पडिमं करेइ, करित्ता जं विपुलं असणं असणं पाणं खाइमं साइमं आहारेइ, तओ मणुन्नाओ असणपाण खाइम साइमाओ कल्लाकल्लि एगमेगं पिण्डं गहाय तीसे कणगमइए मत्थयच्छिड्डाए जाव पडिमाए मत्थयंसि पक्खिवमाणी पक्खिवमाणी विहरइ।

उसके बाद उस मल्ली कुमारी ने मणिपीठिका के ऊपर अपनी जैसी, अपनी जैसी त्वचा वाली, अपनी जैसी उम्र वाली, समान लावण्य, यौवन और गुणों से युक्त एक सुवर्ण की प्रतिमा बनवाई। उस प्रतिमा के मस्तक पर छिद्र था और उस पर कमल का ढक्कन था। इस प्रकार की प्रतिमा बनवा कर जो विपुल अशन पान खाद्य और स्वाद्य वह खाती थी, उस मनोज्ञ अशन पान खाद्य और स्वाद्य में से प्रतिदिन एक एक पिंड (कवल) लेकर उस स्वर्णमयी, मस्तक में छेदवाली यावत् प्रतिमा में मस्तक में से डालती रहती थी।

तए णं तीसे कणगमईए जाव मत्थयछिड्डाए पडिमाए एगमेगंसि पिंडे पक्खिप्पमाणे पक्खिप्पमाणे पउमुप्पलपिहाणं पिहेइ। तओ गंधे पाउब्भवइ, से जहानामए अहिमडेइ वा जाव एत्तो अणिट्ठतराए अमणामत्तराए।

उसके बाद उस स्वर्णमयी यावत् मस्तक में छिद्रवाली प्रतिमा में एक एक पिंड डाल-डाल कर कमल का ढक्कन ढंक देती थी। इससे उसमें ऐसी दुर्गन्ध उत्पन्न होती थी जैसे सर्प के मृत-कलेवर की हो, यावत् उससे भी अधिक अनिष्ट गन्ध उत्पन्न होती थी।

तेणं कालेणं तेणं समयेणं कोसले नाम जणवए होत्था। तत्थ णं सागेए नाम नयरे होत्था। तस्सणं उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं महं एगे णागघरए होत्था दिव्वे सच्चे सच्चोवाए संनिहिय पाडिहेरे।

उस काल उस समय में कोशल नाम का देश था। उसमें साकेत नाम का नगर था। उस नगर के उत्तर पूर्व में (ईशान कोन में) एक नागगृह (नागदेव की प्रतिमा से युक्त चैत्य) था। वह प्रधान था, सत्य था अर्थात् नागदेव का कथन सत्य सिद्ध होता था, उसकी सेवा सफल होती थी और वह देवाधिष्ठित था।

तत्थणं नयरे पडिबुद्धीणामं इक्खागुराया परिवसइ, तस्स पउमावई देवी, सुबुद्धी अमच्चे साम दंड जाव रज्जधुराचितए होत्था।

उस साकेत नगरर में प्रतिवुद्धि नामक इक्ष्वाकु वंश का राजा था। उसकी पट्टरानी का नाम पद्मावती और अमात्य का नाम सुबुद्धि था। सुबुद्धि अमात्य साम दाम भेद और दण्ड नीतियों में कुशल था यावत् राज्य धुरा की चिन्ता करने वाला था।

तएणं पउमावईए अन्नया कयाइं नागजन्नए यावि होत्था। तएणं सा पउमावई नागजन्नमुवट्ठियं जाणित्ता जेणेव पडिबुद्धी राया तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी—एवं खलु सामी! मम कल्लं नागजन्नए यावि भविस्सइ, तं इच्छामि णं सामी! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी नागजन्नयं गमित्तए, तुब्भे वि णं सामी! मम नागजन्नंसि समोसरह।

किसी समय पद्मावती देवी की नागपूजा का उत्सव आया। तब पद्मावती देवी नागपूजा का उत्सव आया जानकर प्रतिवुद्धि राजा के पास गई। जाकर दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोली—स्वामिन्! कल मुझे नागपूजा करनी है। अतएव आपकी अनुमति पाकर मैं नागपूजा करने के लिये जाना चाहती हूँ। स्वामिन् आपभी मेरी नागपूजा में पधारो। ऐसी मेरी इच्छा है।'

तएणं पडिबुद्धी पउमावइए देवीए एयमट्ठं पडिसुणेइ। तएणं पउमावई पडिबुद्धिणा रण्णा अब्भणुन्नाया हट्ठतुट्ठा जाव कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया! मम कल्लं नागजन्नए भविस्सइ, तं तुब्भे मालागारे सद्दावेह, सद्दावित्ता एवं वयह—

तब प्रतिबुद्धि राजा ने पद्मावती देवी की यह बात स्वीकार की। उसके बाद पद्मावती देवी प्रतिबुद्धि राजा की अनुमति पाकर हृष्ट-तुष्ट हुई। उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा हे देवानुप्रियो ! कल मेरे नाग पूजा होगी सो तुम मालाकारों को बुलाओ और उन्हें इस प्रकार कहो—

एवं खलु पउमावईए देवीए कल्लं नागजन्नए भविस्सइ, तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! जल-थलय० दसद्धवण्णं मल्लं नागघरयंसि साहरह, एगं च णं महं सिरिदामगंडं उवणेह। तएणं जल-थलय० दसद्धवन्नेणं मल्लेणं णाणाविह भत्तिसुविरइयं करेह। तंसि भत्तिसि हंस-मिय-मउर-कोंच-सारस-चक्कवाय-मयणं साल कोइलकुलोववेय ईहामिय जाव भत्तिचित्तं महग्घं महरिहं विपुलं पुप्फमंडवं विरएह। तस्सणं बहुमज्झदेसभाए एगं महं सिरिदामगंडं जाव गंधद्धुणि मुयंतं उल्लोयसि ओलंवेह। ओलंबित्ता पउमावइं देविं पडिवालेमाणा पडिवालेमाणा चिट्ठह। तए णं ते कोडुंबिया जाव चिट्ठंति।

इस प्रकार निश्चय ही पद्मावती देवी के कल नाग पूजा होगी। अतएव हे देवानुप्रियो तुम जल और थल में उत्पन्न हुए पांच रंगों के फूल नागगृह में ले जावो और एक श्री दामकांड (शोभित मालाओं का समूह) बनाकर लाओ। तत्पश्चात् जल और थल में उत्पन्न होने वाले पांच वर्णों के फूलों से विविध प्रकार की रचना करके उसे सजाओ। उस रचना में हंस, मृग, मयूर, क्रौंच, सारस, चक्रवाक, मदनशाल (मैना) और कोकिल के समूह से युक्त तथा महान्जनों के योग्य और विस्तार वाला एक पुष्प मण्डप बनाओ। उस पुष्प मण्डप के मध्य भाग में एक महान् और गन्ध के समूह को छोड़नेवाला श्रीदामकांड उल्लोच (छत) से लटकाओ। लटकाकर पद्मावतीदेवी की प्रतीक्षा करो उसके बाद वे कौटुम्बिक पुरुष इसी प्रकार कार्य करके यावत् पद्मावती देवी की राह देखते हुए नागगृह में ठहरते है।

तए णं सा पउमावई देवी कल्लं. कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी खिप्पा-मेव भो देवाणुप्पिया ! सागेयं नयरं सब्भितर बाहिरियं आसित्तसम्मज्जियोवलित्तं० जाव पच्चप्पिणंति।

उसके बाद पद्मावती देवी ने दूसरे दिन प्रातः काल सूर्योदय होने पर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही साकेत नगर में भीतर और बाहर पानी सींचो, सफाई

करो और लिपाई करो। यावत् वे कौटुम्बिक पुरुष उसी प्रकार कार्य करके आज्ञा वापिस लौटाते है।

तए णं सा पउमावईदेवी दोच्चंपि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी खिप्पामेव देवाणुप्पिया! लहुकरणजुत्तं जाव जुत्तामेव उवट्ठवेह। तए णं ते वि तहेव उवट्ठावेंति।

तए णं सा पउमावई अंतो अंतेउरंसि ण्हाया जाव धम्मियं जाणं दुरुढा।

तदनन्तर पद्मावती देवी ने दूसरी बार कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार-कहा-देवानुप्रियो! शीघ्र ही लघु करण से युक्त यानी शीघ्रगामी अश्वों वाले यावत् रथ को जोड़कर उपस्थित करो। तब वे भी उसी प्रकार रथ उपस्थित करते है।

उसके बाद पद्मावती देवी अंतपुर के अन्दर स्नान करके यावत् धार्मिक यान पर आरूढ हुई।

तए णं सा पउमावईदेवी नियगपरियाल संपरिवुडा सागेयं नयरं मज्झं मज्झेणं णिज्जइ, णिज्जित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता पुक्खरिणिं ओगाहइ। ओगाहित्ता जलमज्जणं जाव परमसुइभूया उल्लपडसाडया जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव गेण्हइ। गेण्हित्ता जेणेव नाग घरए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

उसके बाद पद्मावती देवी अपने परिवार से परिवृत होकर साकेत नगर के बीच में होकर निकली। निकलकर जहां पुष्करिणी थी वहां आई। आकर पुष्करिणी में प्रवेश किया। प्रवेश करके स्नान किया। यावत् अत्यन्त शुचि होकर गीली साड़ी पहनकर वहां जो कमल आदि थे उन्हें यावत् ग्रहण किया। ग्रहण करके जहां नागगृह था वहां जाने के लिये विचार किया।

तए णं पउमावईए दासचेडीओ बहूओ पुप्फपडलगहत्थगयाओ धूवकडुच्छुगहत्थगयाओ पिट्ठओ समणुगच्छंति।

तए णं पउमावई सव्विड्ढिए जेणेव णागघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नागघरयं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता लोमहत्थगं जाव धूवं डहइ, डहित्ता पडिवुद्धिरायं पडिवालेमाणी पडिवालेमाणी चिट्ठइ।

इसके बाद पद्मावती देवी की बहुत-सी दास चोटियां (दासियां) फूलों की छाबड़ियां लेकर तथा धूप की कुड़छियां हाथ में लेकर पीछे चलने लगीं।

तदनंतर पद्मावतीदेवी सर्वऋद्धि के साथ-पूरे ठाठ के साथ-जहां नागगृह था, वहां आई। आकर नागगृह में प्रविष्ट हुई। प्रविष्ट होकर रोमहस्तक (पींछी) लेकर प्रतिमा पूंजी यावत् धूप खेई। धूप खेकर प्रतिबुद्धि राजा की राह देखती हुई ठहरी।

तए णं पडिबुद्धिराया ण्हाए हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धारिज्जमाणेणं जाव सेयवरचामराहिं महयाहयगय-रह-जोह-महया भडचडगरपहकरेहिं साकेयनगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव नागघरे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ। पच्चोरुहित्ता आलोए पणामं करेइ। करित्ता पुप्फमंडवं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता पासइ तं एगमहं सिरिदामगंडं।

उसके बाद प्रतिबुद्धि राजा स्नान करके श्रेष्ठ हाथी के स्कंध पर आरूढ़ हुआ। कोरंट के फूलों सहित अन्य पुष्पों की मालाएं जिसमें लपेटी हुई थी, ऐसा छत्र उसके मस्तक पर धारण किया गया। यावत् उत्तम श्वेत चामर ढोरे जाने लगे। उसके आगे आगे विशाल घोड़े, हाथी, रथ और पैदल योद्धा- यह चतुरंगी सेना चली। सुभटों के समूह के समूह चले। वह साकेत नगर के मध्य भाग में होकर निकला। निकलकर जहां नागगृह था, वहां आया। आकर हाथी के स्कंध से नीचे उतरा। उतरकर प्रतिमा पर दृष्टि पड़ते ही उसे प्रणाम किया। प्रणाम करके पुष्प-मंडप में प्रवेश किया। प्रवेश करके वहां एक महान् श्रीदाम काण्ड देखा।

संनिवेशों आदि में घूमते हो और बहुत से राजाओं एवं ईश्वरों आदि के गृहों में प्रवेश करते हो; तो क्या तुमने ऐसा सुन्दर श्रीदामकाण्ड कहीं पहले देखा है, जैसा पद्मावती देवी का यह श्रीदामकाण्ड है ?

तए णं सुबुद्धी पडिबुद्धिरायं एवं वयासी-एवं खलु सामी ! अहं अन्नया कयाइं तुब्भं दोच्चेणं मिहिलं रायहाणिं गए, तत्थ णं मए कुंभगस्स रण्णो धूयाए पभावईएदेवीए अत्तयाए मल्लीए विदेहवररायकन्नाए संवच्छरपडिलेहणगंसि दिव्वे सिरिदामगंडे दिट्ठपुव्वे । तस्स णं सिरिदामगंडस्स इमे पउमावईए सिरिदामगंडे सयसहस्सइमं वि कलं न अग्घइ ।

तब सुबुद्धि अमात्य ने प्रतिबुद्धि राजा से कहा—हे स्वामिन् ! मैं एकबार किसी समय आपके दौत्यकार्य से मिथिला राजधानी गया था । वहां मैंने कुम्भ राजा की पुत्री और प्रभावती देवी की आत्मजा विदेह की उत्तमराजकुमारी मल्ली के संवत्सरप्रतिलेखन उत्सव (जन्म गांठ के महोत्सव) के समय दिव्य श्रीदामकाण्ड देखा था । उस श्रीदामकाण्ड के सामने पद्मावतीदेवी का यह श्रीदाम-कांड लाखवां अंश भी नहीं है ।

तए णं पडिबुद्धिराया सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी—'केरिसिया णं देवाणुप्पिया ! मल्ली विदेहवररायकन्ना जस्सणं संवच्छर पडिलेहणयंसि सिरिदामगंडस्स पउमावईए देवीए सिरिदाम-गंडे सयसहस्सइमं वि कलं न अग्घइ ?

तए णं सुबुद्धी अमच्चे पडिबुद्धिं इक्खागुरायं एवं वयासी—'एवं खलु सामी ! मल्ली-विदेहवररायकण्णगा सुपइट्ठियकुम्मुन्नयचारुचरणा, वन्नओ ।

उसके बाद प्रतिबुद्धि राजा ने सुबुद्धि मंत्री से इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रिय, विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली कैसी है जिसकी जन्म गांठ के उत्सव में बनाये गये श्री दामकाण्ड के सामने पद्मावतीदेवी का यह श्री दामकाण्ड लाखवां अंश भी नहीं पाता ?

तब सुबुद्धि मंत्री ने इक्ष्वाकुराज प्रतिबुद्धि से कहा—इस प्रकार स्वामिन् ! विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली सुप्रतिष्ठित और कछुवे के समान उन्नत एवं सुन्दर चरण वाली है । यहां उसका पूरा वर्णन समझ लेना चाहिए ।

मूलम्-तएणं पडिबुद्धि राया सुबुद्धिस्स अमच्चस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म सिरिदामगंड जणियहासे दूयं सद्दावेइ. सद्दावित्ता एवं वयासी गच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिया ! मिहिलं रायहाणिं. तत्थ णं कुंभगस्स रण्णो धूयं पउमावईए देवीए अत्तयं मल्लिं विदेहवररायकण्णगं मम भारियत्ताए वरेहि, जइ वि णं सा सयं रज्जसुंका।

मूलार्थ-उसके बाद प्रतिबुद्धि राजा ने सुबुद्धि अमात्य के पास से यह अर्थ सुनकर और हृदय में धारण करके और श्रीदामकाण्ड की बात से हर्षित होकर दूत को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रिय ! तुम मिथिला राजधानी जाओ। वहां कुम्भ राजा की पुत्री पद्मावतीदेवी की आत्मजा और विदेह की प्रधान राजकुमारी मल्ली को मेरी पत्नी के रूप में मंगनी करो। फिर भले ही उसके लिए सारा राज्य शुल्क-मूल्य में देना पड़े।

मूलम्-तएणं से दूए पडिबुद्धिणा रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे पडिसुणेइ। पडिसुणेत्ता जेणेव सए गिहे जेणेव चाउघंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउघंटं आसरहं पडिकप्पाविता दुरूढे जाव हयगयमहया भडचडगरेणं साएयाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव विदेहे जणवए जेणेव मिहिला रायहाणी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

मूलार्थ-तदनन्तर उस दूत ने प्रतिबुद्धि राजा के इस प्रकार कहने पर हर्षित और संतुष्ट होकर उसकी आज्ञा अंगीकार की। अंगीकार करके जहां अपना घर था और जहां चार घंटों वाला अश्वरथ था, वहां आया। आकर (आगे पीछे और अगल बगल में) चार घंटों वाले अश्वरथ को तैयार करवाया। तैयार करवाकर उस पर आरूढ़ हुआ। यावत् घोड़ों हाथियों और बहुत से सुभटों के समूह के साथ साकेत नगर से निकला। निकलकर जहां विदेह जनपद था और जहां मिथिला राजधानी थी, वहां जाने के लिये उद्यत हुआ-चल दिया।

मूलम्-ते णं कालेणं तेणं समएणं अंगे नाम जनवए होत्था। तत्थ णं चंपानाम णयरी होत्था। तत्थ णं चंपाए नयरीए चंदच्छाए अंगराया होत्था।

तत्थणं चंपाए नयरीए अरहन्नक पामोक्खा बहवे संजत्ता णावावाणियगा परिवसंति अड्ढा जाव अपरिभूया तए णं से अरहन्नके समणोवासए यावि होत्था। अहिगयजीवाजीवे, वण्णओ।

मूलार्थ—उसकाल और उस समय में अंग नामक जनपद था। उसमें चंपा नाम की नगरी थी। उस चंपा नगरी में चन्द्रच्छाय नामक अंगराज—अंगदेश का राजा था।

उस चंपा नगरी में अर्हन्नक प्रभृति बहुत से सांयात्रिक (परदेश जाकर व्यापार करने वाले) नौवणिक (नौकाओं से व्यापार करने वाले) रहते थे। वे ऋद्धि सम्पन्न थे और किसी से पराभूत होने वाले नहीं थे। उनमें अरहन्नक श्रमणोपासक (श्रावक) भी था, वह जीव अजीव आदि तत्वों का ज्ञाता था। यहां श्रावक का वर्णन जान लेना चाहिए।

मूलम्-तए णं तेसिं अरहन्नग पामोक्खाणं संजत्ताणावावाणियगाणं अन्नयाकयाइ एगयओ सहियाणं इमे एयारूवे मिहो कहासंलावे समुप्पज्जित्था—

सेयं खलु अम्हं गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च भंडगं गहाय लवणसमुद्दं पोयवहणेण ओगाहित्तए त्ति कट्टु अन्नमन्नं एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च भंडगं गेण्हइ गेण्हित्ता सगडिसागडियं च सज्जेंति, सज्जित्ता गणिमस्स च धरिमस्स च मेज्जस्स च पारिच्छेज्जस्स च भंडगस्स सगडसागडियं भरेंति, भरित्ता सोहणंसि तिहि करण नक्खत्त मुहुत्तंसि विपुल असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेंति, मित्तनाई भोयणवेलाए भुंजावेंति जाव आपुच्छंति, आपुच्छित्ता सगडिसागडियं जोयंति, चंपाए नयरीए मज्झं मज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव गंभीरए पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति।

मूलार्थ—उसके बाद वे अर्हन्नक आदि सांयात्रिक नौवणिक् किसी समय एक बार एक जगह इकट्ठे हुए, तब उनमें आपस में इस प्रकार कथासंलाप (वार्तालाप) हुआ—

बनवाया। बनवा कर भोजन की वेला में मित्रों ज्ञातिजनों को जिमाया। यावत् उनकी अनुमति ली। अनुमति लेकर गाड़ी गाड़े जोते। जोत कर चंपा नगरी के बीचों बीच होकर निकले, निकल कर जहां गम्भीर नामक पोतपट्टन (बन्दरगाह) था वहां आये।

मूलम्-उवागच्छित्ता सगडि सागडियं मोयंति मोइत्ता पोयवहणं सज्जेति सज्जित्ता गणिमस्स य धरिमस्सय मेज्जस्स य पारिच्छेज्जस्स य चउव्विहस्स भंडगस्स भरेंति भरित्ता तण्डुलाण य समियस्स य तेल्लस्स य गुलस्स य घयस्सेय गोरसस्स य उदयस्स उदय भायणाण य ओसहाण य भेसज्जाण य तणस्स य कट्ठस्स य आवरणाण य पहरणाण य अन्ने-सिंच बहूणं पोयवहण पाउग्गाणं दव्वाणं पोयवहणं भरेंति। भरित्ता सोहणंसि तिहिकरण नक्खत्तमुहुत्तंसि विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेंति। उवक्खडावित्ता मित्तणाइ० आपुच्छंति, आपुच्छित्ता जेणेव पोयट्ठाणे तेणेव उवागच्छंति।

तएणं तेसिं अरहन्नगपामोक्खाणं जाव वाणियगाणं परियणो जाव तारिसेहिं वग्गूहिं अभिनंदंता य अभिसंथुणमाणा य एवं वयासी 'अज्ज! ताय! भाय! माउल! भाइणेज्ज! भगवया समुद्देणं अभिरक्खिज्जमाणा अभिरक्खिज्जमाणा चिरंजीवह भद्दं च भे पुणरवि लद्धट्ठे कयकज्जे अणहसमग्गे नियगं घरं हव्वमागए पासामो' त्ति कट्टु ताहिं सोमाहिं निद्धाहिं दीहाहिं सप्पिवासाहिं पप्पुयाहिं दिट्ठीहिं निरीक्खमाणा मुहुत्तमेत्तं संचिट्ठंति।

मूलार्थ-गंभीर नामक पोतपट्टन में आकर उन्होंने गाड़ी गाड़े छोड़ दिये। छोड़कर जहाज सज्जित किये। सज्जित करके गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य चार प्रकार का भांड भरा। भरकर उसमें चावल आटा तेल घी गोरस (दही) पानी, पानी के बरतन औषध भेषज घास, लकड़ी, वस्त्र शस्त्र और भी जहाज में रखने योग्य वस्तुएं जहाज में भरी। भरकर प्रशस्त तिथि करण नक्षत्र और मुहूर्त में विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाया। तैयार करवाकर मित्रों एवं ज्ञातिजनों आदि को जिमाकर उनसे अनुमति ली। अनुमति लेकर जहां नौका का स्थान था, वहां (समुद्र किनारे) आये।

उसके बाद उन अर्हन्नक आदि यावत् नौका वणिकों के परिजन (परिवार के लोग) यावत् उस प्रकार के मनोहर वचनों से अभिनन्दन करते हुए और उनकी प्रशंसा करते हुए इस प्रकार बोले-

'हे आर्य (पितामह) ! हे तात ! हे भ्रात ! हे मामा ! हे भागिनेय ! आप इस भगवान् समुद्र द्वारा पुनः पुनः रक्षण किये जाते हुए चिरजीवी हो ! आपका मंगल हो ! हम आपको अर्थ लाभ करके इष्ट कार्य करके निर्दोष और ज्यों के त्यों घर पर आया शीघ्र देखें।' इस प्रकार कह कर निर्विकार स्नेहमय, दीर्घ पिपासावाली सतृष्णा और अश्रुप्लावित दृष्टि से देखते देखते वे लोग मुहूर्त मात्र थोड़ी देर वहीं खड़े रहे।

मूलम्—तओ समाणिएसु पुप्फवलिकम्मेसु, दिन्नेसु सरसरत्तचंदणदद्दरपंचंगुलितलेसु, अणुक्खित्तंसि धूवंसि, पूइएसु समुद्दवाएसु, संसारियासु वलयबाहासु ऊसिएसु सिएसु सव्वसउणेसु गहिएसु रायवरसासणेसु, महया उक्किट्ठसीहनाय जाव रवेण पक्खुभिय महासमुद्दरवभूयं पिव मेइणिं करेमाणा एगदिसिं जाव वाणियगा णावं दुरूढा।

तओ पुस्समाणवो वक्कमुदाहु—'हं भो सव्वेसिमवि अत्थसिद्धी, उवट्ठियाइं कल्लाणाइं, पडिहयाइं सव्वपावाइं, जुत्तो पूसो विजओ मुहुत्तो अयं देसकालो।

तओ पुस्समाणवेण वक्कमुदाहिए हट्ठतुट्ठे कुच्छिधार कण्णधारगब्भिज संजत्ता, णावा वाणियगा वावारिंसु, तं नावं पुन्नुच्छंगं पुण्णमुहिं बंधणेहिंतो मुंचति।

मूलार्थ–तत्पश्चात् नौका में पुष्पबलि (पूजा) कार्य समाप्त होने पर सरस रक्त चंदन का पांचों उंगलियों का थापा (छापा) लगाने पर, धूप खेई जाने पर, समुद्र की वायु की पूजा हो जाने पर, वलयवाहा (लम्ब काष्ठ-वल्ले) यथा स्थान सम्भाल कर रख लेने पर, श्वेत पताकाएं ऊपर फहरा देने पर, वाद्यों की मधुर ध्वनि होने पर विजयकारक सब शकुन होने पर, यात्रा के लिए राजा का आदेश-पत्र प्राप्त होने पर, महान् और उत्कृष्ट सिंहनाद यावत् ध्वनि से अत्यन्त क्षुब्ध हुए महासमुद्र की गर्जना के समान पृथ्वी को शब्दमय करते हुए यावत् वे वणिक् एक तरफ से नौका पर चढ़े।

उसके बाद बंदीजनों द्वारा इस प्रकार वाक्य कहने पर हृष्ट तुष्ट हुए कुक्षि धार नौका की बगल में रहकर बल्ले चलाने वाले कर्णधार (खिवेया) गर्भज नौका के मध्य में रहकर छोटे मोटे कार्य करने वाले और वे सांयात्रिक नौका बणिक अपने अपने कार्य में लग गये। फिर भाण्डों से परिपूर्ण मध्य भागवाली और मंगल से परिपूर्ण अग्रभाग वाली उस नौका को बन्धनों से मुक्त किया।

मूलम्-तए णं सा णावा विमुक्क बंधणा पवणबलसमाहया उस्सियसिया विततपक्खा इव गरुडजुवई गंगासलिलतिक्खसोयवेगेहिं संखुब्भमाणी संखुब्भमाणी उम्मीतरंगमाला-सहस्साइं समतिच्छमाणी समतिच्छमाणी कइवएहिं अहोरत्तेहिं लवण समुद्दं अणेगाइं जोयण-सयाइं ओगाढा ।

मूलार्थ तत्पश्चात् वह नौका बन्धनों से मुक्त हुई, एवं पवन के बल से प्रेरित हुई। उस पर सफेद कपड़े का पाला चढ़ा हुआ था, अतएव ऐसी जान पड़ती थी जैसे पंख फैलाए कोई गरुड़ युवती हो! वह गगा के जल के तीव्र प्रवाह के वेग से क्षुब्ध होती होती, हजारों मोटी तरंगों और छोटी तरंगों के समूह को उल्लंघन करती करती वह कुछ अहोरात्रों में लवण समुद्र में कई सौ योजन दूर चली गई।

मूलम्-तएणं तेसिं अरहन्नग पामोक्खाणं संजत्तानावावाणियगाणं लवण समुद्दं अणेगाइं जोयण सयाइं ओगाढाणं समाणाणं बहूइं उप्पाइयसयाइं पाउब्भूयाइं। तं जहा-अकाले गज्जिए, अकाले विज्जुए, अकाले थणियसद्दे अभिक्खणं आगासे देवताओ नच्चंति एगंच णं महं पिसायरूवं पासंति।

मूलार्थ-तत्पश्चात् कई सौ योजन लवण समुद्र में पहुँचे हुए उन अर्हन्नक आदि सांयात्रिक नौकावणिकों को बहुत से सैकड़ों उत्पात प्रादुर्भूत हुए-होने लगे। वे उत्पात इस प्रकार थे:-

अकाल मे गर्जना होने लगी, अकाल में बिजली चमकने लगी, अकाल में गम्भीर गड़-गड़ाहट होने लगी। बार-बार आकाश में देवता (मेघ) नृत्य करने लगे। एक महान पिशाच का रूप दिखाई दिया।

मूलम्-तालजंघं दिवं गयाहिं बाहाहिं मसिमूसगमहिस कालगं, भरिय मेहवण्णं लंबोट्ठं निग्गयग्गदंतं, निल्लालिय-जमल-जुयलजीहं, आऊसिय वयणगंडदेसं, चीणचिपिटनासियं,

विगय भुग्ग भुमयं, खज्जोयगदित्त चक्खु रागं, उत्तासणगं विसाल वच्छं, विसाल कुच्छिं पहसिय पयलिय पयडियगत्तं, पणच्चमाणं, अप्फोडंतं, अभिवयंतं, अभिगज्जंतं बहुसो बहुसो अट्टट्टहासे विणिम्मुयंतं नीलुप्पलगवल गुलिय अयसिकुसुमप्पगासं खुरधारं असिं गहाय अभिमुहमावयमाणं पासंति ।

मूलार्थ—वह पिशाच ताड़ के समान लम्बी जांघोंवाला था और उसकी बाहु आकाश तक पहुँची हुई थीं। वह कज्जल, काले चूहे और भैंसे के समान काला था। उसका वर्ण जल भरे मेघ के समान था। उसके होठ लम्बे थे और दांतों के अग्रभाग बाहर निकले थे। उसने अपनी एक सी दोनों जीभें मुँह से बाहर निकाल रक्खी थी। उसके गाल मुँह में धँसे हुए थे। उसकी नाक छोटी चपटी थी। भृकुटी डरावनी और अत्यन्त वक्र थी। नेत्रों का वर्ण जुगनू के समान चमकता हुआ लाल था। देखने वाले को घोर त्रास पहुँचाने वाला था। छाती चौड़ी था। कुक्षि विशाल और लम्बी थी। हँसते और चलते समय उसके अवयव ढीले दिखाई देते थे। वह नाच रहा था, आकाश को मानो फोड़ रहा था, सामने आ रहा था, गर्जना कर रहा था, और बहुत-बहुत ठहाका मार रहा था। काले कमल, भैंस के सींग, नील, अलसी के फूल के समान काली छुरी की धार के समान तीक्ष्ण तलवार लेकर आते हुए पिशाच को देखा।

मूलम्—तए णं ते अरहण्णगवज्जा संजत्ताणावावाणियगा एगं च णं महं तालपिसायं पासंति। तालजंघं, दिवं गयाहिं बाहाहिं फुट्टसिरं भमरनिगरवरमासरासि महिसकालगं, भरियमेहवण्णं, सुप्पनहं, फालसरिसजीहं, लंबोट्ठं धवलवट्टअसिलिट्ठतिक्खथिरपीण कुडिल दाढोवगूढवयणं ....
सरस रुहिरगयचम्मवितत उसविय बाहु जुयलं, ताहिं य खरफरुसअसिणिद्ध अणिट्ठ दित्त असुभ अप्पिय अकंतवग्गूहिं य तज्जयंतं पासंति।

मूलार्थ (पूर्व वर्णित लाल पिशाच का ही यहां विशेष वर्णन किया है। यह दूसरा गम है)

उसके बाद अर्हन्नक के सिवाय दूसरे सांयात्रिक नौका वणिकों ने एक बड़े ताल पिशाच को देखा। उसकी जांघे ताड़वृक्ष के समान लम्बी थीं और बाहुएँ आकाश तक पहुँची हुई खुब लम्बीं थीं। उसका मस्तक फूटा हुआ था। अर्थात् मस्तक के केश बिखरे थे। वह भ्रमरों के समूह,

उत्तम उड़द के ढेर और भैंस के समान काला था। जल से परिपूर्ण मेघों के समान श्याम था। उसके नाखून सूप (छाजले) के समान थे। उसकी जीभ हल के समान थी। अर्थात् बावन पल प्रमाण अग्नि में तपाये गये लोहे के फाल के समान लाल, चमचमाती और लम्बी थी। उसके होंठ लम्बे थे उसका मुख धवल गोल, पृथक्-पृथक् तीखी, स्थिर मोटी और टेढ़ी दाढ़ों से व्याप्त था। उसके दो जिह्वाओं के अग्रभाग बिना म्यान की धारदार तलवार-युगल के समान थे, पतले थे, चपल थे, उनमें से निरन्तर लार टपक रही थी। वह रस-लोलुप थे, चंचल थे, लपलपा रहे थे और मुख से बाहर निकले हुए थे। मुख फटा होने से उसका लाल-लाल तालु खुला दिखाई देता था। और वह बड़ा, विकृत बीभत्स, और लार झराने वाला था। उसके मुख से अग्नि की ज्वालाएँ निकल रही थी। अतएव वह ऐसा जान पड़ता था जैसे हिंगलु से व्यास अंजनगिरि की गुफा रूप बिल हो सिकुड़े हुए मोठ (चरस) के समान उसके गाल सिकुड़े हुए थे, अथवा उसकी इन्द्रियां शरीर की चमड़ी, होंठ और गाल सब सल वाले थे। उसकी नाक छोटी थी, चपटी थी। टेढ़ी थी और भग्न थी। अर्थात् ऐसी जान पड़ती थी जैसे लोहे के घन से कूटपीट दी गई हो, उसके दोनों नथुनों (नासिका) पुटों मे क्रोध के कारण निकलता हुआ श्वास वायु निष्ठुर और अत्यन्त कर्कश था। उसका मुख मनुष्य आदि के घात के-लिए रचित होने से भीषण दिखाई देता था। उसके दोनों कान चपल और लम्बे थे उनकी शष्कुली ऊँचे मुख वाली थी, उन पर लम्बे लम्बे और विकृत बाल थे और वे कान नेत्र के पास की हड्डा (शंख) तक को छूते थे। उसके नेत्र पीले और चमकदार थे। उसके ललाट पर भ्रकुटि चढ़ी थी जो बिजली जैसी दिखाई देती थी। उसकी ध्वजा के चारों ओर मनुष्यों के मुंडों की माला लिपटी हुई थी। विचित्र प्रकार के गोनस जाति के सर्पों का उसने बक्खर बना रखा था। उसने इधर उधर फिरते और फुफकारने वाले सर्पों, बिच्छुओं, गोहों, चूहों नकुलों और गिरगिटों की विचित्र प्रकार की उत्तरासंग जैसी माला पहनी थी। उसने भयानक फन वाले और धमधमाते हुए दो काले सांपों के लम्बे लटकते कुण्डल धारण किये थे। अपने दोनों कंधों पर बिलाव और सियार रख थे। अपने मस्तक पर देदीप्यमान एवं घू-घू ध्वनि करने वाले उल्लू का मुकुट बनाया था। वह घन्टा के शब्द के कारण भीम और भयंकर प्रतीत होता था। कायर जनों के हृदय को दलन करने वाला था। वह देदीप्यमान अट्टहास कर रहा था। उसका शरीर चर्बी, रक्त, मवाद, मांस और मल से मलिन और लिप्त था, वह प्राणियों को त्रास उत्पन्न करता था, उसकी छाती चौड़ी थी। उसने श्रेष्ठ व्याघ्र का ऐसा चित्र विचित्र चमड़ा पहन रखा

था, जिसमें (व्याघ्र) के नाखून (रोम) मुख, नेत्र और कान आदि अवयव पूरे और साफ दिखाई पड़ते थे। उसने ऊपर उठाये हुए दोनों हाथों पर रस और रुधिर से लिए हाथी का चमड़ा फैला रक्खा था। वह पिशाच नौका पर बैठ हुए लोगों की अत्यन्त कठोर स्नेह हीन अनिष्ठ उत्तापजनक स्वरुप से ही अशुभ अप्रिय तथा अकान्त अनिष्ट स्वर वाली (अमनोहर) वाणी से तर्जना कर रहा था। ऐसा भयावक पिशाच उन लोगों को दिखाई दिया।

मूलम्-तं तालपिसायरूवं एज्जमाणं पासंति पासित्ता भीया संजायभया अन्नमन्नस्स कायं समतुरंगेमाणा समतुरंगेमाणा बहूणं इंदाण य खंदाण य रुद्दसिववेसमणणागाणं भूयाण य जक्खाण य अज्जकोट्टकिरियाण य बहूणि उवाइयसयाणि ओवाइयमाणा ओवाइयामाणा चिट्ठंति।

मूलार्थ-उन लोगो ने तालापिशाच के रूप को नौका की ओर आता देखा। देखकर वे डर गये, अत्यंत भयभीत हुए। एक दूसरे के शरीर से चिपट गये, और बहुत से इन्द्रों की स्कन्दों (कार्तिकेय) की तथा रुद्र शिव, वैश्रमण और नागदेवों की, भूतों की, यक्षों की, दुर्गा की तथा (महिष वाहिनी दुर्गा) देवी की बहुत-बहु सैकड़ों मनौतियां मनाने लगे।

मूलम्-तए णं से अरहन्नए समणोवासए तं दिव्वं पिसायरूवं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अभीए अतत्थे अचलिए असंभंते अणाउले अणुव्विग्गे अभिण्णमुहरागणयणवण्णे अदीणविमणमाणसे पोयवहणस्स एगदेसम्मि वत्थंतेणं भूमि पमज्जइ। पमज्जित्ता ठाणं ठाइ, ठाइत्ता करयलओ एवं वयासी।

णमोऽत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं जाव ठाणं संपत्ताणं। जइ णं अहं एत्तो उवसग्गाओ मुंचामितो मे कप्पइ पारित्तए, अह णं एत्तो उवसग्गाओ ण मुंचामि तो मे तहा पच्चक्खाए यव्वे त्ति कट्टु सागारं भत्तं पच्चक्खाइ।

मूलार्थ-उस समय अरहन्नक श्रमणोपासक ने उस दिव्य पिशाच रूप को आता देखा। उसे देखकर वह तनिक भी भयभीत नहीं हुआ, त्रास को प्राप्त नहीं हुआ, चलायमान नहीं हुआ, संभ्रांत नहीं हुआ, व्याकुल नहीं हुआ, उद्विग्न नहीं हुआ। उसके मुख का राग और नेत्रों का वर्ण बदला नहीं। उसके मन में दीनता या खिन्नता उत्पन्न नहीं हुई। उसने पोतवहन के एक भाग में जाकर वस्त्र के छोर से भूमि का प्रमार्जन किया। प्रमार्जन करके उस स्थान पर बैठ गया और दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला-

"अरिहंत भगवंत यावत् सिद्धि को प्राप्त प्रभु को नमस्कार हो (इस प्रकार णमोऽत्थुणं का पूरा पाठ उच्चारण किया) फिर कहा 'यदि मैं इस उपसर्ग से मुक्त हो जाऊँ तो मुझे यह कायोत्सर्ग पारना कल्पता है और यदि इस उपसर्ग से मुक्त न होऊं तो यही प्रत्याख्यान कल्पता है, अर्थात् कायोत्सर्ग पारणा नहीं कल्पता" इस प्रकार कह कर उसने सागारी अनशन को ग्रहण किया।

मूलम्-तए णं से पिसाय रुवे जेणेव अरहन्नए समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहन्नगं एवं वयासी-

'हं भो अरहन्नगा! अपत्थियपत्थिया! जाव परिवज्जिया! णो खलु तव सीलव्वयगुण वेरमण पच्चक्खाणं पोसहोववासाइं चालित्तए वा एवं खोभेत्तए वा खंडित्तए वा भंजित्तए वा उज्झित्तए वा परिच्चइत्तए वा। तं जइणं तुमं सील व्वयं जाव ण परिच्चयसि तो ते अहं एयं पोयवहणं दोहि अंगुलियाहि गेण्हामि गेण्हेत्ता सत्तट्ठतलप्पमाणमेत्ताइं उड्ढं वेहासे उव्विहामि उव्विहित्ता अंतो जलंसि णिच्छोलेमि जेणं तुमं अट्टदुहट्टवसट्टे असमाहिपत्ते अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।

मूलार्थ:- उसके बाद वह पिशाच रूप वहां आया, जहां अर्हन्नक श्रमणोपासक था। आकर अर्हन्नक से इस प्रकार बोला :--

अरे अप्रार्थित मौत की प्रार्थना (इच्छा) करने वाले! यावत् लज्जा कीर्ति बुद्धि और लक्ष्मी से परिवर्जित मुझ शीलव्रत अणुव्रत, गुणव्रत विरमण रागादि की विरति का प्रकार नवकारसी आदि प्रत्याख्यान और पोषधोपवास से चलायमान होना अर्थात् जिस भांगे से जो व्रत ग्रहण किया हो उसे बदल कर दूसरे भांगे से कर लेना क्षोभ युक्त होना अर्थात 'इस व्रत को इसी प्रकार पालूं या त्याग दूँ' ऐसा सोचकर क्षुब्ध होना, एक देश से खंडित करना, पूरी तरह भंग करना, देश विरति का सर्वथा त्याग करना अथवा सम्यक्त्व का परित्याग करना कल्पता नहीं है। परन्तु यदि तू शीलव्रत आदि का परित्याग नही करता तो मैं तेरे इस पोतवहन को दो उंगलियों पर उठाए लेता हूं और सात-आठ तल की ऊँचाई तक आकाश में उछाल देता हूं। उछाल करके इसे जल के अन्दर डुबाएँ देता हूँ जिससे तू आर्त ध्यान के वशीभूत होकर असमाधि को प्राप्त होकर जीवन से रहित हो जायगा।

मूलम्-तए णं से अरहन्नए समणोवासए तं देवं मणसा चेव एवं वयासी-'अहं णं देवाणुप्पिया ! अरहन्नए णामं समणोवासए अहिगय जीवाजीवे, नो खलु अहं सक्का केणइ देवेण वा जाव निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा, खोभित्तए वा, विपरिणामित्तए वा, तुमं णं जा सद्धा तं करेहि त्ति कट्टु अभीए जाव अभिन्न मुहरागणयणवन्ने अदीणविमणमाणसे निच्चले निप्फंदे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

मूलार्थ:-तब अर्हन्नक श्रमणोपासक ने उस देव को मन ही मन इस प्रकार कहा-देवानुप्रिय ! मैं अर्हन्नक नामक श्रावक हूं और जड़ चेतन के स्वरूप का ज्ञाता हूं (मुझे कुछ ऐसा वैसा अज्ञानी या कायर मत समझना।) निश्चय ही मुझे कोई देव या दानव निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलायमान नहीं कर सकता क्षुब्ध नहीं कर सकता और विपरीत भाव नहीं उत्पन्न कर सकता। तुम्हारी जो श्रद्धा (इच्छा) हो सो करो।

इस प्रकार कह कर अर्हन्नक निर्भय अपरिवर्तित मुख के और नेत्रों के रंग वाला, दैन्य और मानसिक खेद से रहित, निश्चल, निस्पंद, मौन और धर्म ध्यान में लीन बना रहा।

मूलम्-तए णं से दिव्वे पिसायरूवे अरहन्नगं समणोवासयं दोच्चंपि तच्चं पि एवं वयासी हंभो अरहन्नगा जाव अदीण विमणमाणसे निच्चले निप्फंदे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

तए णं से दिव्वे पिसायरूवे अरहन्नगं धम्मज्झाणोवगयं पासइ, पासित्ता बलियतरागं आसुरुत्ते तं पोयवहणं दोहि अंगुलयाहि गिण्हइ। गिण्हित्ता सत्तट्ठतालाइं जाव अरहन्नगं एवं वयासी-हं भो अरहन्नगा ! अपत्थिय पत्थिया ! णो खलु कप्पइ तव सीलव्वय० तहेव जाव धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

मूलार्थ-तदनंतर वह दिव्य पिशाच रूप अर्हन्नक श्रमणोपासक से दूसरी बार और तीसरी बार कहने लगा 'अरे अर्हन्नक ! इत्यादि पूर्ववत्। यावत् अर्हन्नक ने वही उत्तर दिया और वह दीनता एवं मानसिक खेद से रहित निश्चल, निस्पंद, मौन और धर्म ध्यान में लीन बना रहा।

तत्पश्चात् उस दिव्य पिशाच रूप ने अर्हन्नक को धर्म ध्यान में लीन देखा। देखकर उसने और अधिक कुपित होकर उस पोत वहन को दो उंगलियों से ग्रहण किया। ग्रहण करके सात आठ

मंजिल की या ताड़ वृक्षों की उचाई तक ऊपर उठाकर अर्हन्नक से कहा–'अरे अर्हन्नक ! मौत की इच्छा करने वाले ! तुझे शील व्रत आदि का त्याग करना नहीं कल्पता है, इत्यादि पूर्ववत्। इस प्रकार कहने पर भी अर्हन्नक किंचित भी चलायमान न हुआ और धर्म ध्यान में ही लीन बना रहा।

मूलम्–तए णं से पिसायरूवे अरहन्नगं जाहे नो संचाएइ निग्गंथाओ० चालित्तए वा० ताहे उवसंते जाव निव्विएणे तं पोयवहणं सणियं उवरि जलस्स ठवेइ, ठवित्ता तं दिव्वं पिसायरूवं पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता दिव्वं देवरूवं विउव्वइ विउव्वित्ता अंतलिक्खपडिवण्णे सखिंखिणियाइं जाव परिहिए अरहन्नगं समणोवासयं एवं वयासी–

हं भो अरहन्नगा ! धन्नोऽसि णं तुमं देवाणुप्पिया ! जाव जीवियफले जस्स णं तव निग्गंथे पावयणे इमेयारूवा पडिवत्ती लद्धा पत्ता अभिसमएणागया। एवं खलु देवाणुप्पिया सक्के देविंदे देवराया सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिसए विमाणे सभाए सुहम्माए बहूणं देवाणं मज्झगए महया सद्देणं आइक्खइ एवं खलु जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे चंपाए नयरीए अरहन्नए समणोवासए अहिगय जीवाजीवे नो खलु सक्का केणइ देवेण वा दाणवेण वा निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्त वा जाव विपरिणामित्तए वा।

तए णं अहं देवाणुप्पिया ! सक्कस्स देविंदस्स एयमट्ठं णो सद्दहामि नो रोययामि। तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था गच्छामि णं अरहन्नयस्स अंतियं पाउब्भवामि जाणामि ताव अहं अरहन्नगं किं पियधम्मे ? णो पियधम्मे ? दढधम्मे ? नो दढधम्मे ? सीलव्वयगुणे किं चालेइ जाव परिच्चयइ ? णो परिच्चयइ ? त्ति कट्टु एवं संपेहेमि संपेहित्ता ओहिं पउंजामि पउंजित्ता देवाणुप्पिया ! ओहिणा आभोएमि, आभोइत्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं उत्तरवेउव्वियं समुग्घामि, ताए उक्किट्ठाए जाव जेणेव लवणसमुद्दे जेणेव देवाणुप्पिए तेणेव उवागच्छामि। उवागच्छित्ता देवाणुप्पियाणं उवसग्गं करेमि। नो चेव णं देवाणुप्पिया भीया वा तत्था वा, तं जं णं सक्के देविंदे देवराया वदइ, सच्चे णं एसमट्ठे तं दिट्ठे णं देवाणुप्पियाणं जुई जसे बले जाव परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागए। तं खामेमि णं देवाणुप्पिया खमंतुमरहंतु णं देवाणुप्पिया ! णाइ भुज्जो भुज्जो एवं करणयाए त्ति कट्टु पंजलिउडे पायवडिए एयमट्ठं भुज्जो २ खामेइ खामित्ता अरहन्नयस्स दुवे कुंडल जुयले दलयइ, दलइत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव पडिगए।

मूलार्थ—उसके बाद वह पिशाच रूप देव अर्हन्नक को निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलायमान करने में समर्थ न हुआ, तब वह उपशान्त हो गया। यावत् मन में खेद को प्राप्त हुआ। फिर उसने उस पोतवहन को धीरे-धीरे उतार कर जल के ऊपर रक्खा। रख कर पिशाच के दिव्य रूप का संहरण किया और दिव्य देव के रूप की विक्रिया की। विक्रिया करके अधर स्थिर होकर घुंघरुओं की छम छम की ध्वनि से युक्त वस्त्राभूषण धारण करके अरहन्नक श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा :—

हे अर्हन्नक ! तुम धन्य हो ! हे देवानुप्रिय ! तुम्हारा जीवन सफल है कि जिसको अर्थात् तुम को निर्ग्रन्थ प्रवचन में इस प्रकार की प्रतिपत्ति लब्ध हुई है, प्राप्त हुई है और आचरण में लाने के कारण सम्यक् प्रकार से सन्मुख आई है। हे देवानुप्रिय ! देवों के राजा शक्र ने सौधर्म कल्प में सौधर्मावतंसक नामक विमान में और सुधर्मा सभा में बहुत से देवों के मध्य में स्थित होकर महान शब्दों से इस प्रकार कहा—इस प्रकार निस्संदेह जम्बू द्वीप नामक द्वीप में भरत क्षेत्र में चंपा नगरी में अर्हन्नक नामक श्रमणोपासक जीव अजीव आदि तत्वों का ज्ञाता है। उसे निश्चय ही कोई देव या दानव निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलायमान करने में यावत् सम्यक्त्व से च्युत करने में समर्थ नहीं है।

तब हे देवानुप्रिय ! देवेन्द्र शक्र की इस बात पर मुझे श्रद्धा नहीं हुई। यह बात रुची नहीं। तब मुझे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ मैं जाऊँ और अर्हन्नक के समीप प्रकट होऊँ। जानूं कि अर्हन्नक को धर्मप्रिय है अथवा धर्मप्रिय नहीं है। वह दृढ धर्मा है अथवा दृढ धर्मा नहीं है ? वह शीलव्रत और गुणव्रत आदि से चलायमान होता है यावत् उनका परित्याग करता अथवा नहीं करता है ? मैंने इस प्रकार विचार किया। विचार करके अवधिज्ञान का उपयोग लगाया। उपयोग लगाकर हे देवानुप्रिय ! मैंने जाना। जानकर ईशान कोण में जाकर उत्तर वैक्रिय करने के लिए वैक्रिय समुद्घात किया। तत्पश्चात् उत्कृष्ट यावत् शीघ्र गति से जहां लवण समुद्र था और जहां देवानुप्रिय (तुम) थे वहां मैं आया। आकर मैंने देवानुप्रिय को उपसर्ग किया। किन्तु देवानुप्रिय भयभीत न हुए त्रास को प्राप्त नहीं हुए। अतः देवेन्द्र देवराज ने जो कहा था, वह अर्थ सत्य सिद्ध हुआ। मैंने देखा कि देवानुप्रिय को ऋद्धि-गुण रूप समृद्धि, धृति तेजस्विता यश शारीरिक बल यावत् पराक्रम लब्ध हुआ है, प्राप्त हुआ है और उसका भली भांति सेवन किया गया है। तो हे देवानुप्रिय ! मैं आपको खमाता हूं। आप क्षमा करें। हे देवानुप्रिय ! पुनः मैं ऐसा नहीं करूंगा।

इस प्रकार कह कर दोनों हाथ जोड़कर देव अर्हन्नक के पावों में गिर गया और इस घटना के लिए बार बार विनय पूर्वक क्षमा याचना करने लगा। क्षमा याचना करके अर्हन्नक को दो कुण्डल युगल भेंट किये। भेंट करके जिस दिशा से प्रकट हुआ था उसी दिशा में लौट गया।

मूलम्—तएणं से अरहन्नए निरुवसग्गमिति कट्टु पडिमं पारेइ। तए णं ते अरहन्नग पामोक्खा जाव वाणियगा दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरए पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता पोयं लंबेंति, लंबित्ता सगडिसागडं सज्जेंति, सज्जित्ता तं गणिमं धरिमं मेज्जं पारिच्छेज्जं सगडिसागडं संकामेंति संकामेत्ता सगडिसागडं जोएंति जोइत्ता जेणेव मिहिला नगरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मिहिलाए रायहाणीए बहिया अग्गुज्जाणंसि सगडिसागडं मोएइ, मोइत्ता मिहिलाए रायहाणीए तं महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायरिहं पाहुडं कुंडलजुयलं च गेण्हंति, गेण्हित्ता मिहिलाए रायहाणीए अणुपविसंति, अणुपविसित्ता जेणेव कुंभराया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव कट्टु त महग्घं महत्थं दिव्वं कुंडलजुयलं उवणेंति जाव पुरओ ठवेंति।

तत्पश्चात् अर्हन्नक ने उपसर्ग रहित जानकर प्रतिमा पारी अर्थात् कायोत्सर्ग पारा। तदनंतर वे अर्हन्नक आदि यावत् नौका वणिक् दक्षिण दिशा के अनुकूल पवन के कारण जहां गम्भीर नामक पोत पट्टन था, वहां आये। आकर उस पोत (नौका या जहाज) को रोक कर गाड़ी-गाड़ी तैयार किये। तैयार करके वह गणिम, धरिम, मेय और पारिच्छेद्य भांड को गाड़ी गाड़ों में भरा। भरकर गाड़ी गाड़े जोते। जोत कर मिथिला नगरी के बाहर उत्तम उद्यान में गाड़ी गाड़े छोड़े। छोड़-कर मिथिला नगरी में जाने के लिए वह महान् अर्थ वाला, महामूल्य वाला महान्जनों के योग्य विपुल और राजा के योग्य भेंट और कुंडलों की जोड़ी ली। लेकर मिथिला नगरी में प्रवेश किया। प्रवेश करके जहां कुंभ राजा था वहां आये। आकर दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अंजलि करके यावत् वह महान् अर्थ वाली भेंट और वह दिव्य कुण्डल युगल राजा के समीप ले गये यावत् राजा के सामने रख दिया।

मूलम्-तए णं कुंभए राया तेसिं संजत्तगाणं जाव पडिच्छइ, पडिच्छित्ता मल्ली विदेहवररायकण्णं सद्दावेइ सद्दावित्ता तं दिव्वं कुंडलजुयलं मल्लीए विदेहवररायकण्णगाए पिणद्धइ, पिणद्धित्ता पडिविसज्जेइ।

मूलार्थ–उसके बाद वह पिशाच रूप जब अर्हन्नक को निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलायमान करने में समर्थ न हुआ, तब वह उपशांत हो गया। यावत् मन में खेद को प्राप्त हुआ। फिर उसने उस पोतवहन को धीरे-धीरे उतार कर जल के ऊपर रखा। रख कर पिशाच के दिव्य रूप का संहरण किया और दिव्य देव के रूप की विक्रिया की। विक्रिया करके अधर स्थिर होकर घुंघरुओं की छम छम की ध्वनि से युक्त वस्त्राभूषण धारण करके अरहन्नक श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा :—

हे अर्हन्नक ! तुम धन्य हो ! हे देवानुप्रिय ! तुम्हारा जीवन सफल है कि जिसको अर्थात् तुम को निर्ग्रन्थ प्रवचन में इस प्रकार की प्रतिपत्ति लब्ध हुई है, प्राप्त हुई है और आचरण में लाने के कारण सम्यक् प्रकार से सन्मुख आई है। हे देवानुप्रिय ! देवों के राजा शक्र ने सौधर्म कल्प में सौधर्मावतंसक नामक विमान में और सुधर्मा सभा में बहुत से देवों के मध्य में स्थित होकर महान शब्दों से इस प्रकार कहा–इस प्रकार निस्संदेह जम्बू द्वीप नामक द्वीप में भरत क्षेत्र में चंपा नगरी में अर्हन्नक नामक श्रमणोपासक जीव अजीव आदि तत्वों का ज्ञाता है। उसे निश्चय ही कोई देव या दानव निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलायमान करने में यावत् सम्यक्त्व से च्युत करने में समर्थ नहीं है।

तब हे देवानुप्रिय ! देवेन्द्र शक्र की इस बात पर मुझे श्रद्धा नहीं हुई। यह बात रुची नहीं। तब मुझे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ मैं जाऊँ और अर्हन्नक के समीप प्रकट होऊँ। जानूं कि अर्हन्नक को धर्मप्रिय है अथवा धर्मप्रिय नहीं है। वह दृढ धर्मी है अथवा दृढ धर्मी नहीं है? वह शीलव्रत और गुणव्रत आदि से चलायमान होता है यावत् उनका परित्याग करता अथवा नहीं करता है? मैंने इस प्रकार विचार किया। विचार करके अवधिज्ञान का उपयोग लगाया। उपयोग लगाकर हे देवानुप्रिय ! मैंने जाना। जानकर ईशान कोण में जाकर उत्तर वैक्रिय करने के लिए वैक्रिय समुद्घात किया। तत्पश्चात् उत्कृष्ट यावत् शीघ्र गति से जहां लवण समुद्र था और जहां देवानुप्रिय (तुम) थे वहां मैं आया। आकर मैंने देवानुप्रिय को उपसर्ग किया। किन्तु देवानुप्रिय भयभीत न हुए त्रास को प्राप्त नहीं हुए। अतः देवेन्द्र देवराज ने जो कहा था, वह अर्थ सत्य सिद्ध हुआ। मैंने देखा कि देवानुप्रिय को ऋद्धि-गुण रूप समृद्धि, धृति तेजस्विता यश शारीरिक बल यावत् पराक्रम लब्ध हुआ है, प्राप्त हुआ है और उसका भली भांति सेवन किया गया है। तो हे देवानुप्रिय ! मैं आपको खमाता हूं। आप क्षमा करें। हे देवानुप्रिय ! पुनः मैं ऐसा नहीं करुंगा।

इस प्रकार कह कर दोनों हाथ जोड़कर देव अर्हन्नक के पावों में गिर गया और इस घटना के लिए बार बार विनय पूर्वक क्षमा याचना करने लगा। क्षमा याचना करके अर्हन्नक को दो कुण्डल युगल भेंट किये। भेंट करके जिस दिशा से प्रकट हुआ था उसी दिशा में लौट गया।

मूलम्—तएणं से अरहन्नए निरुवसग्गमिति कट्टु पडिमं पारेइ। तए णं ते अरहन्नग पामोक्खा जाव वाणियगा दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरए पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता पोयं लंबंति, लंबित्ता सगडिसागडं सज्जेंति, सज्जित्ता तं गणिमं धरिमं मेज्जं पारिच्छेज्जं सगडिसागडं संकामेंति संकामेत्ता सगडिसागडं जोएति जोइत्ता जेणेव मिहिला नगरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मिहिलाए रायहाणीए बहिया अगुज्जाणंसि सगडिसागडं मोएइ, मोइत्ता मिहिलाए रायहाणीए तं महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायरिहं पाहुडं कुंडल-जुयलं च गेण्हंति, गेण्हित्ता मिहिलाए रायहाणीए अणुपविसंति, अणुपविसित्ता जेणेव कुंभ-राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव कट्टु त महग्घं महत्थं दिव्वं कुंडलजुयलं उवणेंति जाव पुरओ ठवेंति।

तत्पश्चात् अर्हन्नक ने उपसर्ग रहित जानकर प्रतिमा पारी अर्थात् कायोत्सर्ग पारा। तदनंतर वे अर्हन्नक आदि यावत् नौका वणिक् दक्षिण दिशा के अनुकूल पवन के कारण जहां गम्भीर नामक पोत पट्टन था, वहां आये। आकर उस पोत (नौका या जहाज) को रोक कर गाड़ी-गाड़ी तैयार किये। तैयार करके वह गणिम, धरिम, मेय और पारिच्छेद्य भांड को गाड़ी गाड़ों में भरा। भरकर गाड़ी गाड़े जोते। जोत कर मिथिला नगरी के बाहर उत्तम उद्यान में गाड़ी गाड़े छोड़े। छोड़-कर मिथिला नगरी में जाने के लिए वह महान् अर्थ वाला, महामूल्य वाला महान्‌जनों के योग्य विपुल और राजा के योग्य भेंट और कुडलों की जोड़ी ली। लेकर मिथिला नगरी में प्रवेश किया। प्रवेश करके जहां कुंभ राजा था वहां आये। आकर दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अंजलि करके यावत् वह महान् अर्थ वाली भेंट और वह दिव्य कुण्डल युगल राजा के समीप ले गये यावत् राजा के सामने रख दिया।

मूलम्-तए णं कुंभए राया तेसिं संजत्तगाणं जाव पडिच्छइ, पडिच्छित्ता मल्लीं विदेह-वररायकण्णं सद्दावेइ सद्दावित्ता तं दिव्वं कुंडलजुयलं मल्लीए विदेहवररायकण्णगाए पिणद्धइ, पिणद्धित्ता पडिविसज्जेइ।

तए णं से कुंभए राया ते अरहन्नग पामोक्खे जाव वाणियगे विपुलेणं असण० वत्थ-गंधमल्लालंकारेणं जाव उस्सुक्कं वियरेइ वियरित्ता रायमग्गमोगाढे आवासे वियरइ पडिविसज्जेइ।

तए णं अरहन्नगसंजत्तगा जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता भंडववहरणं करेंति करित्ता पडिभंडं गेण्हंति, गेण्हित्ता सगडिसागडं भरेंति जेणेव गंभीरए पोय-पट्टणे तेणेव उवागच्छंति. उवागच्छित्ता पोयवहणं सज्जेंति सज्जित्ता भंडं संकामेंति दक्खिणाणु० जेणेव चंपापोयट्ठाणे तेणेव पोयं लंबेंति लंबित्ता सगडि सागडं सज्जेंति सज्जित्ता तं गणिमं धरिमं मेज्जं पारिच्छेज्जं सगडिसागड संकामेंति संकामित्ता जाव महत्थं पाहुडं दिव्वं च कुंडल जुयलं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव चंदच्छाए अंगराया तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता तं महत्थं जाव उवणेंति।

मूलार्थ—उसके बाद कुंभराजा ने उन नौका वणिकों की वह भेंट यावत् अंगीकार की। अंगीकार करके विदेह की उत्तम राजकुमारी मल्ली को बुलाया। बुलाकर वह दिव्य कुंडलयुगल विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली को पहनाया। पहना कर उसे विदा किया।

तदनंदर कुंभराजा ने उन अर्हन्नक आदि यावत् वणिकों का विपुल अशन आदि से तथा वस्त्र गंध माला और अलंकार से सत्कार किया। उनका शुल्क माफ कर दिया राजमार्ग के मध्य में उतारा दिया। और फिर उन्हें विदा किया।

उसके बाद वे अर्हन्नक आदि सांयात्रिक वणिक् जहां राज मार्ग के मध्य में आवास था, वहां आये। आकर भाण्ड का व्यापार करने लगे। व्यापार करके उन्होंने प्रतिभाण्ड (सोदे के बदले में दूसरा सौदा) खरीदा। खरीद कर उसके गाड़ी गाड़े भरे। भर कर जहां गंभीर पोत पट्टन था वहां आये। आकर के पोतवहन तैयार किया। तैयार करके उसमें सब भाण्ड भरा। भरकर दक्षिण दिशा कि वायु के कारण जहां चम्पा नगरी का पोतस्थान (बंदरगाह) था, वहां आ`। आकर पोत को रोक कर गाड़ी-गाड़े ठीक किये। ठीक करके गणिम धरिम मेय और परिच्छेद चार प्रकार का भांड उनमें भरा। भरकर यावत् बड़ी भेंट और दिव्य कुण्डल युगल ग्रहण किया। ग्रहण करके जहां अंगराज चन्द्रच्छाय था, वहां आये। आकर। आकर वह बड़ी भेंट यावत् राजा के सामने रक्खी।

मूल-तए णं चंदच्छाए अंगराया तं दिव्वं महत्थं च कुंडलजुयलं पडिच्छइ, पडि-

च्छित्ता ते अरहन्नग पामोक्खे एवं वयासी तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! बहूणि गामागर० जाव आहिंडह लवणसमुदं च अभिक्खणं अभिक्खणं पोयवहणेहिं ओगाहेह । तं अत्थियाइं भे केइ कहिंचि अच्छेरए दिट्ठपुव्वे ?'

तए णं ते अरहन्नगपामोक्खा चंदच्छायं अंगरायं एवं वयासी एवं खलु सामी ! अम्हे इहेव चंपाए नयरीए अरहन्नगपामोक्खा बहवे संजत्तगा णावावाणियगा परिवसामो । तए णं अम्हे अन्नया कयाइं गणिमं च धरिमं च मेज्जं च परिच्छेज्जं च तहेव अहीण मतिरित्तं जाव कुंभगस्स रण्णो उवणेमो । तए णं से कुंभए मल्लीए विदेहरायवर कन्नाए तं दिव्वं कुंडल-जुयलं पिणद्धेइ पिणद्धित्ता पडिविसज्जेइ । तं एस णं सामी ! अम्हेहिं कुंभराय भवणंसि मल्ली विदेहवररायकण्णा अच्छेरए दिट्ठे, तं णो खलु अन्ना का वि तारिसिया देवकन्या वा जाव जारिसिया णं मल्ली विदेहरायवरकण्णा ।

मूलार्थ—उसके बाद चन्द्रच्छाय अंगराज ने उस दिव्य एवं महार्थ कुंडल युगल (आदि) को स्वीकार किया । स्वीकार करके उन अर्हन्नक आदि से इस प्रकार कहा हे देवाणुप्रियो ! आप बहुत से ग्रामों आकरों आदि में भ्रमण करते हो तथा बार-बार लवण समुद्र में जहाज द्वारा प्रवेश करते हो तो आपने किसी जगह कोई भी आश्चर्य पहले देखा है ?

तब उन अर्हन्नक आदि वाणिकों ने चन्द्रच्छाय नामक अंगदेश के राजा से इस प्रकार कहा—हे स्वामिन् ! हम अर्हन्नक आदि बहुत से सांयात्रिक नौकावणिक इसी चम्पा नगरी में निवास करते हैं । एक बार किसी समय हम गणिम, धरिम मेय और परिच्छेद्य भाण्ड भरकर इत्यादि सब पहले की भांति ही न्यूनता अधिकता के बिना कहना,—यावत् कुम्भ राजा के पास पहुँचे और भेंट उसके सामने रक्खी । उस समय कुम्भ राजा ने मल्ली नामक विदेहराजा की श्रेष्ठ कन्या को वह दिव्य कुण्डल युगल पहनाया । पहनाकर उसे विदा कर दिया । हे स्वामिन् ! हमने कुम्भ राजा के भवन में विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली आश्चर्य रूप में देखी है । मल्ली नामक विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या जैसी सुन्दर है, वैसी दूसरी कोई देव कन्या आदि भी नहीं है ।

मूलम्—तए णं चंदच्छाए ते अरहन्नगपामोक्खे सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ । तए णं चंदच्छाए वाणियगजणियहासे दूतं सद्दावेइ, जाव जइ वि य णं

सा सयं रज्जसुक्का। तए णं से दूते हट्ठे जाव पहारेत्थ गमणाए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं कुणालाणामं जणवए होत्था। तत्थ णं सावत्थी नामं नयरी होत्था। तत्थ णं रुप्पी कुणालाहिवई नामं राया होत्था तस्स णं रुप्पिस्स धूया धारिणीय देवीए अत्तया सुबाहूणामं दारिया होत्था। सुकुमाल०रूवेण य जोव्वणेणं लावण्णेणं य उक्किट्ठा उक्किट्ठ-सरीरा जाया यावि होत्था। तीसे णं सुबाहूए दारियाए अन्नया चाउम्मासियमज्जणए जाए यावि होत्था।

मूलार्थ--तत्पश्चात् चन्द्रच्छाय राजा ने अर्हन्नक आदि का सत्कार--सन्मान किया। सत्कार-सम्मान करके विदा किया। तदनंतर वणिकों के कथन से उत्पन्न हुआ है हर्ष जिसको ऐसे चन्द्रच्छाय ने दूत को बुलाकर कहा--इत्यादि सब पहले के समान कहना। यावत् भले ही वह कन्या मेरे सारे राज्य के मूल्य की हो तो भी स्वीकार करना। दूत हर्षित होकर मल्लीकुमारी की मँगनी के लिए चल दिया

उस काल उस समय में कुणाल नामक जनपद था। उस जनपद में श्रावस्ती नामक नगरी थी। उसमें कुणाल देश का अधिपति रुक्मि नामक राजा था। उस रुक्मि राजा को पुत्री और धारिणी देवी की कूँख से जन्मी सुबाहु नामक कन्या थी। उसके हाथ पैर आदि सब अवयव सुन्दर थे। वह रूप में, यौवन में, लावण्य में उत्कृष्ट थी और उत्कृष्ट शरीर वाली थी। उस सुबाहू बालिका का किसी समय चातुर्मासिक स्नान--जलक्रीड़ा का उत्सव आया।

मूलम्--तए णं से रुप्पी कुणालाहिवई सुबाहूए दारियाए कल्लं चाउम्मासियमज्जणए भविस्सइ, तं कल्लं तुब्भे णं रायमग्गमोगाढंसि चउक्कंसि पुप्फमंडवंसि जलथलयदसद्धवण्ण-मल्लं साहरेह, जाव सिरिदामगंडं ओलइंति।

तए णं रुप्पी कुणालाहिवई सुवण्णगारसेणिं सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! रायमग्गमोगाढंसि पुप्फमंडवंसि णाणाविहपंचवण्णेहि तंदुलेहिं णगरं आलिहह। तस्स बहुमज्झ देसभाए पट्टयं रएह। रइत्ता जाव पच्चप्पिणंति।

मूलार्थ--तब कुणालाधिपति रुक्मी राजा ने सुबाहु बालिका के चातुर्मासिक स्नान का उत्सव आया जाना। जानकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--हे देवानुप्रिय!

कल सुबाहु बालिका के चातुर्मासिक स्नान का उत्सव होगा। अतएव तुम राजमार्ग के मध्य में चौक (पुष्प मण्डप में) जल और थल में उत्पन्न होने वाले पाँच वर्णों के फूल लाओ और एक श्रीदामकाण्ड (सुशोभित मालाओं का समूह) लटकाओ। यह आज्ञा सुनकर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने इसी प्रकार कार्य किया।

मूलम्--तए णं रुप्पी कुणालाहिवई सुवण्णगारसेणिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया रायमग्गमोगाढंसि णाणाविहपंचवण्णेहिं तंदुलेहिं णगरं आलिहह। तस्स बहुमज्झ देसभाए पट्टयं रएह। रइत्ता जाव पच्चप्पिणंति।

उसके बाद कुणालदेश के अधिपति रुक्मि राजा ने सुवर्णकारों की श्रेणी को बुलवाया। उसे बुलाकर कहा--हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही राजमार्ग के मध्य में पुष्प मण्डप में विविध प्रकार के पंचरंगे चावलों से नगर का आलेखन करो। उसके ठीक मध्य भाग में एक पाट (बाजोठ) रक्खो यह सुनकर उन्होंने इस प्रकार किया और करके आज्ञा वापिस लौटाई।

मूलम्--तए णं से रुप्पी कुणालाहिवई हत्थिखंधवरगए चाउरंगिणीए सेनाए महया भड० अंतेउरपरियालसंपरिवुडे सुबाहुं दारियं पुरओ कट्टु जेणेव रायमग्गे जेणेव पुप्फमंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थि खंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पुप्फमंडवं अणुपविसइ अणुपविसित्ता सीहासण वरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने।

तओ णं ताओ अंतेउरियाओ सुबाहुं दारियं पट्टयंसि दुरूहेंति। दुरूहित्ता सेयपीयएहिं कलसेहिं ण्हाणेंति, ण्हाणित्ता सव्वालंकार विभूसियं करेंति, करित्ता पिउणो पायं वंदिउं उवणेंति।

तए णं सुबाहूदारिया जेणेव रुप्पीराया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पायग्गहणं करेइ। तए णं से रुप्पी राया सुबाहुं दारियं अंके निवेसेइ, निवेसित्ता सुबाहुए दारियाए रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य जाव विम्हिए वरिसधरं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी तुमं णं देवाणुप्पिया ! मम दोच्चेणं बहूणि गामागर नगरगिहाणि अणुपविसंसि, तं अत्थि याइं ते कस्सइ रण्णो वा ईसरस्स वा कहिंचि एयारिसए मज्जणए दिट्ठपुव्वे, जारिसए णं इमीसे सुबाहूदारियाए मज्जणए !

मूलार्थ--उसके बाद कुणालाधिपति रुक्मी हाथी के श्रेष्ठ स्कन्ध पर आरूढ़ हुआ। चतुरंगी सेना और बड़े बड़े योद्धाओं और अंतपुर के परिवार आदि से परिवृत होकर, सुबाहुकुमारी को आगे करके जहाँ राजमार्ग था और जहाँ पुष्प मण्डप था वहाँ आया। आकर हाथी के स्कन्ध से नीचे उतरा उतरकर पुष्प मण्डप में प्रवेश किया। प्रवेश करके पूर्व दिशा की ओर मुख करके उत्तम सिंहासन पर आसीन हुआ।

तत्पश्चात् अन्तःपुर की स्त्रियों ने सुबाहुकुमारी को उस पाट पर बिठलाया। बिठला कर श्वेत और पीत अर्थात् चांदी और सोने आदि के कलशों से उसे स्नान कराकर सब अलंकारों से विभूषित किया। फिर पिता के चरणों में प्रणाम करने के लिए लाईं।

तब सुबाहुकुमारी रुक्मी राजा के पास आई। आ करके उसने पिता के चरणों का स्पर्श किया।

उस समय रुक्मी राजा ने सुबाहुकुमारी को अपनी गोद में बिठा लिया। बिठाकर सुबाहुकुमारी के रूप यौवन और लावण्य को देखने से उसे विस्मय हुआ। विस्मित होकर उसने वर्षधर को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--हे देवानुप्रिय! तुम मेरे दौत्य कार्य से बहुत से ग्रामों, आकरों नगरों और गृहों में प्रवेश करते हो तो तुमने कहीं भी किसी राजा या ईश्वर (धनवान्) के यहाँ ऐसा मज्जनक (स्नान महोत्सव) पहले देखा है, जैसा इस सुबाहुकुमारी का मज्जन महोत्सव है?

मूलम्--तए णं से वरिसधरे रुप्पि करयल० एवं वयासी--एवं खलु सामी! अहं अन्नया तुब्भे णं दोच्चेणं मिहिलं गए, तत्थ णं मए कुम्भगस्स रण्णो धूयाए, पभावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए विदेहराय वरकन्नयाए मज्जणए दिट्ठे, तस्स णं मज्जणगस्स इमे सुबाहुए दारियाए मज्जणए सयसहस्सइमं पि कलं न अग्घेइ।

तए णं से रुप्पी राया वरिसधरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म सेसं तहेव मज्जणगजणियहासे दूतं सद्दावेइ। सद्दावेत्ता एवं वयासी--जेणेव मिहिला नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

मूलार्थ--उसके बाद वर्षधर (अन्तपुर के रक्षक षंड--विशेष) ने रुक्मी राजा से हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा--हे स्वामिन्! एक बार मैं आपके दूत के रूप में मिथिला गया था। मैंने वहाँ

कुम्भराजा की पुत्री और प्रभावती देवी की आत्मजा विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली का स्नान महोत्सव देखा था, सुबाहुकुमारी का यह मज्जन उत्सव उस मज्जन महोत्सव के लाखवें अंश को भी नहीं पा सकता।

तदनंतर वर्षधर से यह अर्थ सुनकर और हृदय में धारण करके मज्जन महोत्सव का वृत्तांत सुनने से जनित अभिलाषा वाले रुक्मी राजा ने दूत को बुलाया। शेष सब वृत्तांत पहले के समान समझना; दूत को बुलाकर इस प्रकार कहा--(मिथला नगरी में जाकर मेरे लिए मल्ली कुमारी की मँगनी करो। बदले में सारा राज्य देना पड़े तो उसे भी देना स्वीकार करना आदि) यह सुनकर दूत ने मिथिला नगरी जाने का निश्चय किया--चल दिया।

मूलम्--ते णं कालेणं ते णं समएणं कासी नाम जणवए होत्था। तत्थ णं वाणारसी नामं नयरी होत्था। तत्थ णं संखे नामं कासीराया होत्था।

मूलार्थ--उस काल और उस समय में काशी नामक जनपद था। उस जनपद में वाणारसी नामकी नगरी थी। उसमें काशीराज शंख नामक राजा था।

मूलम्--तए णं तीसे मल्लीए विदेहरायवरकन्नगाए अन्नया कयाइं तस्स दिव्वस्स कुण्डलजुयलस्स संधी विसंघडिए यावि होत्था।

तए णं कुम्भए राया सुवण्णगारसेणिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी--तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! इमस्स दिव्वस्स कुण्डलजुयलस्स संधिं संघाडेह।

तए णं सा सुवण्णगारसेणी एयमट्ठं तह त्ति पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता तं दिव्वं कुण्डल जुयलं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव सुवण्णगारभिसियाओ तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता सुवण्णगारभिसियासु णिवेसेइ, णिवेसित्ता बहूहिं आएहिं य जाव परिणामेमाणा इच्छन्ति तस्स दिव्वस्स कुण्डलजुयलस्स संधिं घडित्तए, नो चेव णं संचाएंति संघडित्तए।

मूलार्थ--तत्पश्चात् किसी समय विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली के उस दिव्य कुंडलयुगल का जोड़ खुल गया, तब कुंभराजा ने सुवर्णकारों की श्रेणी को बुलाया और कहा--देवानुप्रियो ! इस दिव्य कुंडलयुगल के जोड़ को सांध दो।

उसके बाद सुवर्णकारों की श्रेणी ने "तथा--ठीक है" इस प्रकार कह कर इस अर्थ को स्वीकार करके उस दिव्य कुण्डलयुगल को ग्रहण किया। ग्रहण करके जहां सुवर्णकारों के स्थान (ओजार रखने के स्थान) थे वहां आये। आकर के उन स्थानों पर कुंडलयुगल रखा। रखकर बहुत से उपायों से उस कुंडलयुगल को परिणत करते हुए उसका जोड़ सांधना चाहा परन्तु उसे सांधने में समर्थ न हो सके।

मूलम्--तए णं सा सुवरणगारसेणी जेणेव कुम्भए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल० वद्धावेत्ता एवं वयासी एवं खलु सामी! अज्ज तुब्भे अम्हे सद्दावेह। सद्दावेत्ता जाव संधिं संघाडेत्ता एयमाणं पच्चप्पिणह। तए णं अम्हे तं दिव्वं कुण्डलजुयलं गेण्हामो। तेणेव सुवण्णगारभिसियाओ जाव नो संचाएमो संघाडित्तए। तए णं अम्हे सामी! एयस्स दिव्वस्स कुण्डलजुयलस्स अन्नं सरिसय कुण्डलजुयलं घडेमो।

मूलार्थ-तदनन्तर वह सुवर्णकार श्रेणी कुंभराजा के पास आई आकर दोनों हाथ जोड़कर और जय-जय विजय शब्दों से वधाकर इस प्रकार कहा--स्वामिन्! आज आपने हम लोगों को बुलाया था। बुलाकर यह आदेश दिया था कि कुंडल युगल की संधि जोड़कर मेरी आज्ञा वापिस लौटाओ। तब हमने वह दिव्य कुंडल लिया। हम अपने स्थानों पर गये, बहुत उपाय किये परन्तु उस संधि को जोड़ने के लिए शक्तिमान् न हो सके। अतएव हे स्वामिन! हम इस दिव्य कुंडल युगल सरीखा दूसरा कुंडल युगल बना दें।

मूलम्--तए णं से कुम्भए राया तीसे सुवरणगारसेणीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते, तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु एवं वयासी।

से केणं तुब्भे कलायाणं भवह? जेणं तुब्भे इमस्स कुण्डलजुयलस्स नो संचाएह संधिं संघडेत्तए? ते सुवरणगारे निव्विसए आणवेइ।

तए णं ते सुवरणगारा कुम्भेणं रण्णा निव्विसया आणत्ता समाणा जेणेव साइं साइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता सभंडमत्तोवगरणमायाओ मिहिलाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं निक्खमंति। निक्खमित्ता विदेहस्स जणवयस्स मज्झं मज्झेणं जणेव कासी जणवए जेणेव वाणारसी नयरी तेणेव उवागच्छित्ता अग्गुज्जाणंसि सगडीसागडं मोएंति,

मोइत्ता महत्थं जाव पाहुडं गेण्हंति। गेण्हित्ता वाणारसी नयरीं मज्झं मज्झेणं जेणेव संखे कासीराया तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता करयल० जाव वद्धावेंति, वद्धावित्ता पाहुडं पुरओ ठावेइ, ठावित्ता संखरायं एवं वयासी।

मूलार्थ—उसके वाद सुवर्णकारों का कथन सुन कर और हृदय में धारण करके कुम्भराजा क्रुद्ध हो गया। ललाट पर तीन सलवट डाल कर इस प्रकार कहने लगा–तुम कैसे सुनार हो जो इस कुण्डल युगल का जोड़ भी सांध नहीं सकते ? अर्थात् तुम लोग वड़े मूर्ख हो ! ऐसा कहकर उन्हें देशनिर्वासन की आज्ञा दे दी।

उसके वाद कुंभराजा द्वारा देशनिर्वासन की आज्ञा पाये हुए वे सुवर्णकार अपने अपने घर आये। आ करके अपने भाण्ड पात्र और उपकरण आदि लेकर मिथिला नगरी के बीचोंबीच होकर निकले। निकल कर विदेह जनपद के मध्य से होकर जहां काशी जनपद था और जहां वाणारसी नगरी थी, वहां आये। वहां आकर अग्र-उत्तम उद्यान में गाड़ी-गाड़े छोड़े। छोड़कर महान् अर्थवाला यावत् उपहार लेकर वाणारसी नगरी के बीचोंबीच होकर जहां काशीराज शंख था वहां आये। आकर दोनों हाथ जोड़ कर यावत् जय विजय शब्दों से वधाया। वधा कर वह उपहार राजा के सामने रक्खा। रख कर शंख राजा से इस प्रकार निवेदन किया—

मूलम्--'अम्हे णं सामी ! मिहिलाओ नयरीओ कुम्भएणं रण्णा निव्विसया आणत्ता समाणा इहं हव्वमागया, तं इच्छामो णं सामी ! तुब्भं बाहुच्छाया परिग्गहिया निब्भया निरुव्विग्गा सुहं सुहेणं परिवसिउं ति'।

तए णं संखे कासीराया ते सुवण्णगारे एवं वयासी- किं णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! कुम्भएणं रण्णा निव्विसया आणत्ता ?

तए णं ते सुवण्णगारा संखं एवं वयासी--एवं खलु सामी ! कुम्भगस्स रण्णो धूयाए पभावईए देवीए अत्तयाए मल्लीए कुण्डलजुयलस्स संधी विसंघडित्तए। तए णं से कुम्भए सुवण्णगारसेणिं सद्दावेइ सद्दावित्ता जाव निव्विसया आणत्ता।

तए णं से संखे सुवण्णगारे एवं वयासी--केरिसिया णं देवाणुप्पिया ! कुम्भस्स धूया पभावईए देवीए अत्तया मल्ली विदेहरायवरकण्णा ?

तए णं ते सुवण्णगारा संखरायं एवं वयासी--णो खलु सामी ! अन्ना काई तारिसिया देवकण्णा वा गंधव्वकण्णा वा जाव जारिसिया णं मल्ली विदेहरायवरकण्णा ।

तए णं कुण्डलजुयलजणियहासे दूतं सद्दावेइ, जाव तहेव पहारेत्थ गमणाए ।

मूलार्थ--हे स्वामिन् ! राजा कुम्भ के द्वारा मिथिला नगरी से निर्वासित किये हुए हम शीघ्र यहां आये हैं । हे स्वामिन् हम आपकी भुजाओं की छाया ग्रहण किये हुए होकर अर्थात् आपके संरक्षण में रहकर निर्भय और उद्वेग रहित होकर सुख पूर्वक निवास करना चाहते हैं ।

तब काशीराज शंख ने उन सुवर्णकारों से कहा--देवानुप्रियो ! कुंभराजा ने तुम्हें देश निकाले की आज्ञा क्यों दी ?

तब सुवर्णकारों ने शंखराजा से इस प्रकार कहा--स्वामिन् ! कुंभराजा की पुत्री और प्रभावती देवी की आत्मजा मल्ली कुमारी के कुण्डलयुगल का जोड़ खुल गया था । तब कुंभराजा ने सुवर्णकारों की श्रेणी को बुलाया । बुलाकर उसे सांधने के लिए कहा । हम उसे सांध न सके अतः यावत् देश निर्वासन की आज्ञा दे दी ।

तत्पश्चात् शंख राजा ने सुवर्णकारों से कहा--देवानुप्रियो ! कुंभ राजा की पुत्री और प्रभावती की आत्मजा मल्ली विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या कैसी है ?

तब सुवर्णकारों ने शंखराज से कहा--स्वामिन् जैसी विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली है, वैसी कोई देव कन्या अथवा गंधर्व कन्या भी नहीं है ।

तत्पश्चात् कुण्डल की जोड़ी से जनित हर्ष वाले शंख राजा ने दूत को बुलाया । इत्यादि सब वृत्तान्त पूर्ववत् जानना, अर्थात् शंख राजा ने भी मल्ली कुमारी को मगनी के लिए दूत भेज दिया और उससे कह दिया कि मल्ली कुमारी के शुल्क रूप में सारा राज्य देना पड़े तो दे देना । दूत ने मिथिला जाने का निश्चय कर लिया ।

मूलम्--ते णं कालेणं तेणं समएणं कुरुजणवए होत्था । हत्थिणाउरे नयरे, अदीणसत्तू नामं राया होत्था जाव विहरइ ।

तत्थ णं मिहिलाए कुम्भगस्स पुत्ते पभावईए अत्तए मल्लीए अणुजायए मल्लदिन्नए नाम कुमारे जाव जुवराया यावि होत्था ।

तए णं मल्लदिण्णे कुमारे अन्नया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी--गच्छह णं तुब्भे मम पमदवणंसि एगं महं चित्तसभं करेह० अणेग० जाव पच्चप्पिणंति ।

तए णं मल्लदिन्ने कुमारे चित्तगरसेणिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! चित्तसभं हावभावविलास विब्बोयकलिएहिं रूवेहिं चित्तेह । चित्तित्ता जाव पच्चप्पिणह ।

तए णं सा चित्तगरसेणी तहत्ति पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जेणेव सयाइं गिहाइं, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तूलियाओ वण्णए य गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव चित्तसभा तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता अणुपविसंति, अणुपविसित्ता भूमिभागे विरंचंति (विहिंणंति) विरंचित्ता (विहिवित्ता) भूमिं सज्जंति, सज्जित्ता चित्तसभं हावभाव जाव चित्तेउं पयत्ता यावि होत्था ।

मूलार्थ--उस काल और उस समय में कुरु नामक जनपद था उसमें हस्तिनापुर नगर था । अदीनशत्रु नामक वहाँ का राजा था । यावत् वह सुख पूर्वक विचरता था ।

उस मिथिला नगरी में कुंभ राजा का पुत्र, प्रभावती का आत्मज और मल्ली कुमारी का अनुज मल्लदिन्न (मल्लदत्त) नामक कुमार यावत् युवराज था ।

आज्ञा शिरोधार्य की। फिर वे अपने अपने घर गये, घर जाकर उन्होंने तूलिकाएँ लीं और रंग लिये। लेकर जहाँ चित्र सभा थी वहाँ आये। आकर चित्रसभा में प्रवेश किया, प्रवेश करके भूमि के विभागों का विभाजन किया। विभाजन करके अपनी अपनी भूमि को सज्जित किया, चित्रों के योग्य बनाया। सज्जित करके चित्र सभा को हाव भाव आदि से युक्त चित्र अंकित करने में लग गये।

मूलम्--तए णं एगस्स चित्तगरस्स इमेयारूवा चित्तगरलद्धी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया जस्सणं दुपयस्स वा चउप्पयस्स वा अपयस्स वा एगदेसमवि पासइ, तस्स णं देसाणुसारेणं तयाणुरूवं निव्वत्तेइ।

तए णं से चित्तगरदारए मल्लीए जवणियंतरियाए जालंतरेण पायंगुट्ठं पासइ।

तए णं तस्स णं चित्तगरस्स इमेयारूवे जाव सेयं खलु ममं मल्लीए वि पायंगुट्ठाणुसारेणं सरिसगं जाव गुणोववेयं रूवं निव्वत्तित्तए, एवं संपेहेइ, संपेहित्ता भूमिभागं सज्जेइ सज्जित्ता मल्लीए वि पायंगुट्ठाणुसारेणं जाव निव्वत्तेइ।

तए णं सा चित्तगरसेणी चित्तसभं जाव हाव भावे चित्तेइ। चित्तित्ता जेणेव मल्लदिन्ने कुमारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

तए णं मल्लदिन्ने चित्तगरसेणिं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं दलेइ, दलइत्ता पडिविसज्जेइ।

मूलार्थ—उन चित्रकारों में से एक चित्रकार को ऐसी चित्रकार लब्धि (योग्यता) लब्ध थी, प्राप्त थी और बार बार उपयोग में आ चुकी थी कि वह जिस किसी द्विपद, चतुष्पद अथवा अपद का एक अवयव भी देख ले तो उस अवयव के अनुसार उसका पूरा चित्र बना सकता था।

उस समय एकबार एक चित्रकारदारक ने यविनका की ओट में रही हुई मल्ली कुमारी के पैर का अंगूठा जाली (छिद्र) में से देखा।

तब उस चित्रकार को ऐसा विचार हुआ कि मैं मल्लीकुमारी का पैर के अंगूठे के अनुरूप पूरा चित्र चित्रित करूं। ऐसा विचार कर वह मल्लीकुमारी का पूरा रूप चित्रित करता है।

तत्पश्चात् चित्रकारों की उस मंडली (जाति) ने चित्रसभा को यावत् हाव भाव आदि से चित्रित किया। चित्रित करके जहां मल्लदिन्न कुमार था, वहां गई। जाकर यावत् कुमार की आज्ञा वापिस लौटाई–आज्ञानुसार कार्य हो जाने की सूचना दी।

तत्पश्चात् मल्लदिन्न कुमार ने चित्रकारों की मण्डली का सत्कार किया, सन्मान किया, सत्कार सन्मान करके जीविका के योग्य विपुल प्रीति दान दिया। दे करके विदा कर दिया।

मूलम्--तए णं मल्लदिन्ने कुमारे अन्नया ण्हाए अंतेउर परियाल संपरिवुडे अम्मधाईए सद्धिं जेणेव चित्तसभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चित्तसभं अणुपविसइ। अणुपविसित्ता हावभाव विलास विब्बोय कलियाइं रूवाइं पासमाणे पासमाणे जेणेव मल्लीए विदेहवर राय कण्णाए तयाणुरूवे निव्वत्तिए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं से मल्लदिन्ने कुमारे मल्लीए विदेहवररायकण्णाए तयाणुरूवं निव्वत्तियं पासइ, पासित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था एस णं मल्ली विदेहवररायकण्ण त्ति कट्टु लज्जिए वीडिए विअडे सणियं सणियं पच्चोसक्कइ।

मूलार्थ--तदनन्तर किसी समय मल्लदिन्न कुमार स्नान करके, वस्त्राभूषण धारण करके अन्तःपुर एवं परिवार सहित धायमाता को साथ लेकर जहां चित्र सभा थी, वहां आया। आकर चित्र सभा के भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके हाव भाव विलास और विब्बोक से युक्त रूपों (चित्रों) को देखता देखता जहां विदेह की श्रेष्ठ राज कन्या मल्ली का उसी के अनुरूप चित्र बना था, वहां आया।

उसके बाद मल्लदिन्न कुमार ने विदेह की उत्तम राजकुमारी मल्ली का उसके अनुरूप बना हुआ चित्र देखा। देखकर उसे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ--'अरे यह तो विदेहवर राजकन्या मल्ली है!' यह विचार आते ही वह लज्जित हो गया, व्रीडित हो गया और व्यर्दित हो गया, अर्थात् उसे अत्यन्त लज्जा उत्पन्न हुई। अतएव वह धीरे धीरे वहां से हट गया।

मूलम्–तए णं मल्लदिन्नं अम्मधाई पच्चोसक्कंतं पासित्ता एवं वयासी कि णं तुमं पुत्ता! लज्जिए वीडिए विअडे सणियं पच्चोसक्कइ?'

तए णं से मल्लदिन्ने अम्मधाइं एवं वयासी 'जुत्तं णं अम्मो मम जेट्ठाए भगिणीए गुरुदेवय भूयाए लज्जणिज्जाए मम चित्तगर निव्वत्तियं सभं अणुपविसित्तए ?

तए णं अम्मधाई मल्लदिन्न कुमारं एवं वयासी नो खलु पुत्ता ! एस मल्ली, विदेह-वररायकन्ना चित्तगरएणं तयाणुरूवे निव्वत्तिए ।

तए णं मल्लदिन्न कुमारे अम्म धाईए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ते एवं वयासी केस णं भो ! चित्तयरए अपत्थिय पत्थिए जाव परिवज्जिए जेण ममं जेट्ठाए भगिणीए गुरु-देवय भूयाए जाव निव्वत्तिए ? त्ति कट्टु तं चित्तगर वज्झं आणवेइ ।

मूलार्थ--उसके बाद हटते हुए मल्लदिन्न को देखकर धायमाता ने कहा--हे पुत्र ! तुम लज्जित, व्रीडित और व्यर्दित होकर धीरे धीरे क्यों हटे !

तब मल्लदिन्न ने धायमाता से इस प्रकार कहा--'माता ! मेरी गुरु और देवता के समान ज्येष्ठ भगिनी के, जिससे मुझे लज्जित होना चाहिये सामने, चित्रकारों की बनाई हुई इस सभा में प्रवेश करना क्या योग्य है ?

तब धायमाता ने मल्लदिन्ने कुमार से इस प्रकार कहा--हे पुत्र ! निश्चय ही यह साक्षात् मल्ली नहीं है परन्तु यह विदेह की उत्तमकुमारी मल्ली चित्रकार ने उसके अनुरूप बनाई है--चित्रित की है।

तब मल्लदिन्न कुमार धायमाता के इस अर्थ को सुनकर और हृदय में धारण करके एकदम क्रुद्ध हो उठा और बोला--कौन है वह चित्रकार मौत की इच्छा करने वाला, यावत् लज्जा बुद्धि आदि से रहित जिसने गुरु और देवता के समान मेरी ज्येष्ठ भगिनी का यावत् चित्र बनाया है ? इस प्रकार कहकर उसने चित्रकार के वध की आज्ञा दे दी।

मूलम्-तए णं सा चित्तगर स्सेणी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा जेणेव मल्लदिन्ने कुमारे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता करयल परिग्गहियं जाव वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं वयासी--

एवं खलु सामी ! तस्स चित्तगरस्स इमेयारूवा चित्तगरलद्धी लद्धा पत्ता अभिसमन्ना-

गया, जस्स णं दुपयस्स वा जाव णिव्वत्तेति तं मा णं सामी ! तुब्भे तं चित्तगरं वज्झं आणवेह। तं तुब्भे णं सामी ! तस्स चित्तगरस्स अन्नं तयाणुरूवं दंडं निव्वत्तेह।

मूलार्थ--उसके बाद चित्रकारों की वह श्रेणी इस कथा-वृत्तान्त का अर्थ सुनकर और समझकर जहाँ मल्लदिन्न कुमार था वहाँ आई। आकर दोनों हाथ जोड़कर यावत् मस्तक पर अंजलि करके कुमार को वधाया। वधाकर इस प्रकार कहा--

हे स्वामिन् ! निश्चय ही उस चित्रकार को इस प्रकार की चित्रकार लब्धि लब्ध हुई है, प्राप्त हुई है और अभ्यास में आई है कि वह जिस किसी द्विपद आदि के एक अवयव को देखता है, यावत् वह वैसा ही पूरा रूप बना देता है। अतएव स्वामिन् ! आप उस चित्रकार के वध की आज्ञा मत दीजिए। हे स्वामिन् ! आप उस चित्रकार को कोई दूसरा योग्य दण्ड दे दीजिए।

मूलम्--तए णं से मल्लदिन्ने तस्स चित्तगरस्स संडासगं छिंदावेइ, निव्विसयं आणवेइ।

तए णं से चित्तगरए मल्लदिन्नेणं निव्विसए आणत्ते समाणे सभंडमत्तोवगरणमायाए मिहिलाओ नयरीओ णिक्खमइ, णिक्खमित्ता विदेह जणवयं मज्झंमज्झेणं जेणेव हत्थिणाउरे णयरे, जेणेव कुरुजणवए, जेणेव अदीणसत्तू राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भंडनिक्खेवं करेइ, करित्ता चित्त फलगं सज्जेइ सज्जित्ता मल्लीए विदेह रायवरकन्नगाए पायंगुट्ठाणुसारेणं रूवं णिव्वत्तेइ, णिव्वत्तित्ता कक्खंतरंसि छुब्भइ छुब्भइत्ता महत्थं जाव पाहुडं गेण्हइ। गेण्हित्ता हत्थिणापुरं नयरं मज्झं मज्झेणं जेणेव अदीणसत्तू राया तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता तं करयल जाव वद्धावित्ता पाहुडं उवणेइ, उवणित्ता एवं खलु अहं सामी ! मिहिलाओ रायहाणीओ कुंभगस्स रण्णो पुत्तेणं पभावईए देवीए अत्तएणं मल्लदिन्नेणं कुमारेण निव्विसए आणत्ते समाणे इह हव्वमागए, तं इच्छामि णं सामी ! तुब्भं बाहुच्छाया-परिग्गहिए जाव परिवसित्तए।

मूलार्थ--उसके बाद मल्लदिन्न ने उस चित्रकार के संडासक (दाहिने हाथ का अंगूठा और उसके पास की अंगुली) का छेद करवा दिया और उसे देश निर्वासन की आज्ञा दे दी।

तत्पश्चात् मल्लदिन्न के द्वारा देश निर्वासन की आज्ञा पाया हुआ वह चित्रकार अपने भाण्ड

पात्र और उपकरण आदि लेकर मिथिला नगरी से निकला। निकल कर वह विदेह जनपद के मध्य में होकर जहां हस्तिनापुर नगर था, जहां कुरु नामक जनपद था और जहां अदीनशत्रु नामक राजा था, वहां आया। आकर उसने अपनी भाण्ड आदि वस्तु रखीं। रखकर एक चित्र-फलक ठीक किया। ठीक करके विदेह की श्रेष्ठ राजकुमारी मल्ली के पैर के अंगूठे के अनुसार उसका समग्र रूप चित्रित किया। चित्रित करके वह चित्र फलक (जिस पर चित्र बना था वह पट) अपनी कांख में दबा लिया। फिर महान् अर्थवाला यावत् उपहार ग्रहण किया। ग्रहण करके हस्तिनापुर नगर के मध्य में होकर अदीनशत्रु राजा के पास आया। आकर दोनों हाथ जोड़कर उसे बधाया और बधाकर उपहार उसके सामने रख दिया फिर चित्रकार ने कहा--स्वामिन्! मिथिला राजधानी में कुंभराजा के पुत्र और प्रभावती देवी के आत्मज मल्लदिन्न कुमार ने मुझे देश निकाले की आज्ञा दी, इस कारण मैं शीघ्र यहां आया हूं। हे स्वामिन्! आपकी बाहुओं की छाया से परिगृहीत होकर यावत् मैं यहां बसना चाहता हूं।

मूलम्–तए णं से अदीणसत्तू राया तं चित्तगरदारयं एवं वयासी कि णं तुमं देवाणुप्पिया! मल्लदिन्नेणं निव्विसए आणत्ते ?'

तए णं से चित्तयरदारए अदीणसत्तुरायं एवं वयासी एवं खलु सामी! मल्लदिन्ने कुमारे अण्णया कयाइ चित्तगर सेणि सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-तुब्भे णं देवाणुप्पिया! मम चित्तसभं तं चेव सव्वं भाणियव्वं, जाव मम संडासगं छिंदावेइ, छिंदावित्ता निव्विसयं आणवेइ, तं एवं खलु सामी! मल्लदिन्नेणं कुमारेणं निव्विसए आणत्ते।'

तए णं अदीणसत्तू राया तं चित्तगरं एवं वयासी से केरिसए णं देवाणुप्पिया! तुमे मल्लीए तदाणुरूवे रूवे निव्वत्तिए ?

तए णं से चित्तगरे कक्खंतराओ चित्तफलयं णीणेइ। णीणित्ता अदीणसत्तुस्स उवणेइ, उवणित्ता एवं वयासी--'एस णं सामी! मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए तयाणुरूवस्स रूवस्स केइ आगारभावपडोयारे निव्वत्तिए, णो खलु सक्का केणइ देवेण वा जाव मल्लीए विदेहरायवरकन्नगाए तयाणुरूवे रूवे निव्वत्तित्तए।'

मूलार्थ--तदनंतर अदीनशत्रु राजा ने इस प्रकार कहा--हे देवानुप्रिय ! मल्लदिन्न कुमार ने तुम्हें किस कारण देश निर्वासन की आज्ञा दी ?

तत्पश्चात् चित्रकार पुत्र ने अदीनशत्रु राजा से इस प्रकार कहा--हे स्वामिन् मल्लदिन्न कुमार ने एकबार किसी समय चित्रकारों की श्रेणी को बुलाया और कहा--हे देवानुप्रियो ! तुम मेरी चित्रसभा को चित्रित करो, आदि सब वृत्तान्त पूर्ववत् कहना चाहिए यावत् कुमार ने मेरा संडासक कटवा दिया। कटवा कर देश निर्वासन की आज्ञा दे दी। इस प्रकार हे स्वामिन् ! मल्लदिन्न कुमार ने मुझे देश निर्वासन की आज्ञा दी है।

तत्पश्चात् अदीनशत्रु राजा ने उस चित्रकार से इस प्रकार कहा--हे देवानुप्रिय ! तुमने मल्लीकुमारी का उसके अनुरूप चित्र कैसा बनाया था ?

तब चित्रकार ने अपनी कांख में से चित्रफलक निकाला। निकाल कर अदीनशत्रु राजा के पास रख दिया। और रखकर कहा--हे स्वामिन् ! विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली का उसी के अनुरूप यह चित्र मैंने कुछ आकार भाव और प्रतिबिम्ब के रूप में चित्रित किया है। विदेहराज की श्रेष्ठ कुमारी मल्ली का हूबहू रूप तो कोई देव अथवा दानव भी चित्रित नहीं कर सकता।

मूलम्--तए णं अदीणसत्तू राया पडिरूवजणियहासे दूयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी--तहेव जाव पहारेत्थ गमणाए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं पंचाले जणवए, कंपिल्ले पुरे नाम नयरे होत्था। तत्थ णं जियसत्तू नामं राया होत्था पंचालाहिवई। तस्स णं जियसत्तुस्स धारिणी पामोक्खं देविसहस्सं ओरोहे होत्था।

तत्थ णं मिहिलाए चोक्खा नामं परिव्वाइया रिउव्वेय जाव परिणिट्ठिया यावि होत्था। तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मिहिलाए बहूणं राईसर जाव सत्थवाह पभिईणं पुरओ दाणधम्मं च सोयधम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणी पण्णवेमाणी उवदंसेमाणी विहरइ।

मूलार्थ--तत्पश्चात् चित्र को देखकर हर्ष उत्पन्न होने के कारण अदीनशत्रु राजा ने दूत को

बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा--(अपने लिए मल्लीकुमारी की मंगनी करने के लिए भेजा) इत्यादि सब वृत्तान्त पूर्ववत् कहना चाहिये। यावत् दूत जाने के लिए तैयार हुआ।

उस काल और उस समय में पंचाल नामक जनपद में काम्पिल्यपुर नामक नगर था वहाँ जितशत्रु नामक राजा था। वही पंचाल देश का अधिपति था। उस जितशत्रु राजा के अन्तःपुर में एक हजार रानियां थीं।

मिथिला नगरी में चोक्खा नामक परिव्राजिका रहती थी। वह चोक्खा परिव्राजिका मिथिला नगरी में बहुत से राजा, ईश्वर (ऐश्वर्यशाली धनाढ्य या युवराज) यावत् सार्थवाह आदि के सामने दान धर्म शौच धर्म और तीर्थ स्नान का कथन करती, प्रज्ञापन करती, प्ररूपणा करती और उपदेश करती हुई रहती थी।

मूलम्-तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया अन्नया कयाइं तिदंडं च कुंडियं च जाव धाउरत्ताओ य गिण्हइ गिण्हित्ता परिव्वाइयावसहाओ पडिणिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पविरलपरिव्वाइया सद्धिं संपरिवुडा मिहिलं रायहाणिं मज्झं मज्झेणं जेणेव कुंभगस्स रण्णो भवणे जेणेव कण्णंतेउरे जेणेव मल्ली विदेहवर रायकण्णा तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता उदयपरिफासियाए दब्भोवरि पच्चत्थुयाए भिसियाए निसियति। निसिइत्ता मल्लीए विदेह-रायवर कन्नाए पुरओ दाणधम्मं च जाव विहरइ।

तए णं सा मल्ली विदेहरायवर कन्ना चोक्खं परिव्वाइयं एवं वयासी तुब्भं णं चोक्खे! किं मूलए धम्मे पण्णत्ते? तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मल्लिं विदेहरायवर कन्नं एवं वयासी अम्हं णं देवाणुप्पिए! सोयमूलए धम्मे पण्णवेमि। जं णं अम्हं किंचि असुई भवइ तं णं उदएण य मट्टियाए जाव अविग्घेण सग्गं गच्छामो।

मूलार्थ-तत्पश्चात् एकबार किसी समय वह चोक्खा परिव्राजिका त्रिदण्ड कुण्डिका यावत् (गेरू) से रंगे वस्त्र लेकर परिव्राजिकाओं के मठ से निकली। निकलकर थोड़ी परिव्राजिकाओं के साथ घिरी हुई मिथिला राजधानी के मध्य में होकर जहाँ कुंभ राजा का भवन था, जहाँ कन्याओं का अन्तःपुर था और जहाँ विदेह की उत्तम राज कन्या मल्ली थी वहाँ आई। आकर भूमि पर पानी छिड़का उस पर डाभ बिछाया और उस पर आसन रखकर बैठी। बैठकर विदेहवर राजकन्या मल्ली के सामने दानधर्म आदि का उपदेश देती हुई विचरने लगी-उपदेश देने लगी।

तब विदेहराजवरकन्या मल्ली ने चोक्खा परिव्राजिका से पूछा--हे चोक्खा ! तुम्हारे धर्म का मूल क्या कहा गया है ?

तब चोक्खा परिव्राजिका ने विदेहराजवरकन्या मल्ली को उत्तर दिया--देवानुप्रिये ! मैं शौचमूलक धर्म का उपदेश करती हूँ। हमारे मत में जो कोई भी वस्तु अशुचि होती है, उसे जल से और मिट्टी से शुद्ध किया जाता है यावत् इस धर्म का पालन करने से हम निर्विघ्न स्वर्ग में जाते हैं।

मूलम्--तए णं मल्ली विदेह रायवरकन्ना चोक्खं परिव्वाइयं एवं वयासी चोक्खा ! से जहा नामए केइ पुरिसे रुहिरकयं वत्थं रुहिरेण चेव धोवेज्जा, अत्थि णं चोक्खा ! तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेणं धोव्वमाणस्स काई सोही ? 'णो इणट्ठे समट्ठे ।'

'एवामेव चोक्खा ! तुब्भे णं पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं नत्थि काई सोही, जहा व तस्स रुहिरकयस्स वत्थस्स रुहिरेणं चेव धोव्वमाणस्स ।'

तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मल्लीए विदेहवर रायकण्णाए एवं वुत्ता समाणा संकिया कंखिया विइगिच्छिया भेयसमावण्णा जाया यावि होत्था मल्लीए णो संचाएइ किंचिवि पामोक्खमाइक्खए, तुसिणीया संचिट्ठइ ।

मूलार्थ--तत्पश्चात् विदेहराज कन्या मल्ली ने चोक्खा परिव्राजिका से कहा--चोक्खा ! जैसा कोई अमुक नामधारी पुरुष रुधिर से लिप्त वस्त्र को रुधिर से ही धोवे, तो हे चोक्खा ! उस रुधिर लिप्त और रुधिर से ही धोये जाने वाले वस्त्र की कुछ शुद्धि होती है ?

परिव्राजिका ने उत्तर दिया--नहीं यह अर्थ समर्थ नहीं, अर्थात् ऐसा नहीं हो सकता।

मल्ली ने कहा--इसी प्रकार चोक्खा ! तुम्हारे मत में प्राणातिपात (हिंसा) से यावत् मिथ्यादर्शन शल्य से अर्थात् अठारह पापों के सेवन का निषेध न होने से कोई शुद्धि नहीं है, जैसे रुधिर से लिप्त और रुधिर से ही धोये जाने वाले वस्त्र की कोई शुद्धि नहीं होती।

मूलम्-तए णं तं चोक्खं मल्लीए बहूओ दासचेडीओ हीलेंति निंदंति खिंसंति गरिहंति अप्पेगइया हेरुयालंति, अप्पेगइया मुहमक्कडिया करेंति, अप्पेगइया वग्घाडिओ करेंति, अप्पेगइया तज्जमाणीओ करेंति, अप्पेगइया तालेमाणीओ करेंति, अप्पेगइया निच्छुभंति।

तए णं सा चोक्खा मल्लीए विदेह रायवरकण्णाए पओसमावज्जइ, भिसियं गेण्हइ, गेण्हित्ता कण्णंतेउराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता मिहिलाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता परिव्वाइया संपरिवुडा जेणेव पचाल जणवए जेणेव कम्पिल्लपुरे बहूणं राईसर जाव परूवेमाणी विहरइ।

मूलार्थ--तत्पश्चात् मल्ली की बहुतसी दासियां चोक्खा परिव्राजिका की जाति आदि प्रकट करके हीलना करने लगी, मन से निंदा करने लगी, खिसा (वचन की निंदा) करने लगी, गर्हा (उसके सामने ही दोष कथन) करने लगी, कितनीक दासियाँ उसे क्रोधित करने लगी-चिढ़ाने लगी, कोई-कोई मुंह मटकाने लगी कोई उंगलियों से तर्जना करने लगीं, कोई ताड़ना करने लगी, और किसी किसी ने उसे बाहर कर दिया।

तदनन्तर विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली की दासियों द्वारा यावत् गर्हा की गई और अवहेलना की गई वह चोक्खा एकदम क्रुद्ध हो गई और क्रोध से विसमिसाती हुई विदेह राजवर कन्या मल्ली के प्रति द्वेष को प्राप्त हुई। उसने अपना आसन उठाया। और कन्याओं के अंतःपुर से निकल गई वहां से निकल कर मिथिला नगरी से भी निकली और परिव्राजिकाओं के साथ जहां पंचाल जनपद था, जहां काम्पिल्यपुर नगर था, वहां आई और बहुत से राजाओं एवं ईश्वरों आदि के सामने यावत् अपने अपने धर्म की प्ररूपणा करने लगी।

मूलम्-तए णं से जियसत्तू अन्नया कयाई अंतेउरपरियालसद्धिं संपरिवुडे एवं जाव विहरइ।

तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया संपरिवुडा जेणेव जियसत्तुस्स रण्णो भवणे, जेणेव जियसत्तू तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जियसत्तुं जएणं विजएणं वद्धावेइ।

तए णं से जियसत्तू चोक्खं परिव्वाइयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता चोक्खं परिव्वाइयं सक्कारेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता आसणेणं उवनिमंतेइ ।

तए णं सा चोक्खा उदगपरिफासियाए जाव भिसियाए निविसइ, जियसत्तुं रायं रज्जे य जाव अंतेउरे य कुसलोदंतं पुच्छइ । तए णं सा चोक्खा जियसत्तुस्स रण्णो दाण-धम्मं च जाव विहरइ ।

मूलार्थ--उसके बाद जितशत्रु राजा एक बार किसी समय अपने अन्तःपुर और परिवार से परिवृत होकर यावत् बैठा था।

तत्पश्चात् परिव्राजिकाओं से परिवृत वह चोक्खा जहाँ जितशत्रु राजा का भवन था और जहाँ जितशत्रु राजा था, वहाँ आई। आकर भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके जय विजय शब्द से जितशत्रु का अभिनन्दन किया। उसे बधाया।

तब जितशत्रु राजा ने चोक्खा परिव्राजिका को आते देखा, देखकर सिंहासन से उठा। उठकर चोक्खा परिव्राजिका का सत्कार किया। सन्मान किया। सत्कार सन्मान करके आसन से निमंत्रण किया-बैठने को आसन दिया।

तदनन्तर वह चोक्खा परिव्राजिका जल छिड़ककर यावत् अपने आसन पर बैठी। फिर उसने जितशत्रु राजा, राज्य यावत् अन्तःपुर के कुशल समाचार पूछे। इसके बाद चोक्खा ने जितशत्रु राजा को दानधर्म आदि का उपदेश किया।

मूलम्-तए णं से जियसत्तू अप्पणो ओरोहंसि जाव विम्हिए चोक्खं परिव्वाइयं एवं वयासी तुमं णं देवाणुप्पिया ! बहूणि गामागर जाव अडह, बहूण य राईसरगिहाइं अणुपविससि, तं अत्थियाइं ते कस्स वि रण्णो वा जाव एरिसए ओरोहे दिट्ठपुव्वे जारिसए णं इमे मह उवरोहे ?

तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया जियसत्तुरायं एवं वयासी-ईसिं अवहसियं करेइ, करित्ता एवं वयासी-एवं च सरिसए णं तुमे देवाणुप्पिया ! तस्स अगडदद्दुरस्स।'

'केस णं देवाणुप्पिए ! से अगडदद्दुरे ?

'जियसत्तू ! से जहानामए अगडदद्दुरे सिया, से णं तत्थ जाए तत्थेव वुड्ढे अण्णं अगडं वा तलागं वा दहं वा सरं वा सागरं वा अपासमाणे एवं मण्णइ-'अयं चेव अगडे वा जाव सागरे वा।''

तए णं तं कूवं अण्णे सामुद्दए दद्दुरे हव्वमागए। तए णं से कूवदद्दुरे तं सामुद्ददद्दुरं एवं वयासी-से केस णं तुमं देवाणुप्पिया! कत्तो वा इह हव्वमागए ? तए णं से सामुद्दए दद्दुरे तं कूव-दद्दुरं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! अहं सामुद्दए दद्दुरे।

तए णं तं से कूवदद्दूरे तं सामद्दयंदद्दुरं एवं वयासी-के महालए णं देवाणुप्पिया ! समुद्दे ।'

तए णं से सामुद्दए दद्दुरेतं कूवदद्दुरं एवं वयासी-महालए णं देवाणुप्पिया ! समुद्दे ।'

तए णं से कूवदद्दुरे पाएणं लीहं कड्ढेइ कड्ढित्ता एव वयासी 'ए महालए णं देवाणुप्पिया ! से समुद्दे ?

'णो इणट्ठे समट्ठे, महालए णं से समुद्दे ।'

तए णं से कूवद्दुरे पुरच्छिमिल्लाओ तीराओ उप्फिडित्ता णं गच्छइ, गच्छित्ता एवं वयासी-ए महालएणं देवाणुप्पिया ! से समुद्द ?

'णो इणट्ठे समट्ठे ।' तहेव ।

मूलार्थ--तब चोक्खा परिव्राजिका ने जितशत्रु राजा से मुस्करा कर कहा--हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार कहते हुए तुम उस कूप--मंडूक के समान हो ।

जितशत्रु ने पूछा--देवानुप्रिय ! कौनसा वह कूपमण्डूक ?

चोक्खा बोली--जितशत्रु ! यथा नामक अर्थात् कुछ भी नाम वाला एक कुएँ का मेंढक था। वह मेंढक उसी कूप में उत्पन्न हुआ था। उसी में बड़ा हुआ था। उसने दूसरा कूप तालाब हद सर अथवा समुद्र देखा नहीं था। अतएव वह मानता था कि यही कूप है और यही सागर है--इस के सिवाय और कुछ भी नहीं है।

मेरा अन्तःपुर है, वैसा दूसरे का नहीं। सो हे जितशत्रु ! मिथिला नगरी में कुंभराजा की पुत्री और प्रभावती की आत्मजा मल्ली नाम की कुमारी रूप और यौवन में जैसी है, वैसी दूसरी कोई देवकन्या वगैरह भी नहीं है। विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या के काटे हुए पैर के अंगुल के लाखवें अंश की बराबर भी तुम्हारा अंतपुर नहीं है।' इस प्रकार कहकर वह परिव्राजिका जिस दिशा से प्रगट हुई थी-आई थी उसी दिशा में लौट गई।

तत्पश्चात् परिव्राजिका के द्वारा उत्पन्न किये गये हर्ष वाले राजा जितशत्रु ने दूत को बुलाया। बुलाकर पहले के समान ही सब कहा। यावत् उस दूत ने मिथिला जाने का निश्चय किया।

इस प्रकार मल्ली कुमारी के पूर्व भव के साथी छहों राजाओं ने अपने अपने लिए कुमारी की मँगनी करने के लिए अपने अपने दूत रवाना किये।

मूलम्-तए णं तेसिं जियसत्तू पामोक्खाणं छण्हं राईणं दूया जेणेव मिहिला तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं छप्पि य दूयगा जेणेव मिहिला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मिहिलाए अग्गुज्जाणंसि पत्तेयं पत्तेयं खंधावारनिवेसं करेंति, करित्ता मिहिलं रायहाणिं अणुपविसंति। अणुपविसित्ता जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पत्तेयं पत्तेयं करयल० साणं साणं राईणं वयणाइं निवेदेंति।

तए णं कुंभए राया तेसिं दूयाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा आसुरुत्ते जाव तिवलियं भिउडिं एवं वयासी-न देमि णं अहं तुब्भं मल्लीं विदेह रायवरकन्नं' ति कट्टु ते छप्पि दूते असक्कारिय असंमाणिय अवदारेणं णिच्छुभावेइ।

मूलार्थ-इस प्रकार उन जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं के दूत, जहाँ मिथिला नगरी थी वहाँ जाने के लिए रवाना हो गये।

तदनन्तर छहों दूत जहाँ मिथिला थी, वहाँ आये। आकर मिथिला के प्रधान उद्यान में सब ने अलग २ पड़ाव डाले। फिर मिथिला राजधानी में प्रवेश किया। प्रवेश करके कुंभ राजा के पास आये। आकर प्रत्येक ने दोनों हाथ जोड़े और अपने अपने राजाओं के वचन निवेदन किये। (मल्ली कुमारी [illegible] ।)

उसके बाद कुंभ राजा उन दूतों को कही बात सुनकर एक दम क्रुद्ध हुआ यावत् ललाट पर तीन सल डालकर उसने कहा—मैं तुम्हें (छह में से किसी भी राजा को) विदेह-राज की उत्तम कन्या मल्ली नहीं देता। ऐसा कहकर छहों दूतों का सत्कार सन्मान न करके उन्हें पीछे के द्वार से निकलवा दिया।

मूलम्—तएणं जियसत्तु पामोक्खाणं छण्हं राईणं दूया कुंभएणं रण्णा असक्कारिया असम्माणिया अवदारेणं निच्छुभाविया समाणा जेणेव सगासगा जाणवया जेणेव सयाइं सयाइं णगराइं,जेणेव सगा सगा रायाणो तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता करयल परि.एवं वयासी-

एवं खलु सामी ! अम्हे जियसत्तु पामोक्खाणं छण्हं राईणं दूया जमग समगं चेव जेणेव मिहिला जाव अवदारेणं निच्छुभावेइ, तं न देइ णं सामी ! कुंभए राया मल्ली विदेहवररायकण्णं साणं साणं राईणं एयमट्ठं निवेदंति।

तएणं जियसत्तु पामोक्खा छप्पि रायाणो तेसिं दूयाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ता अण्णमण्णस्स दूयसंपेसणं करेंति, करित्ता एवं वयासी-

एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं छण्हं राईणं दूया जमग समगं चेव जाव णिच्छूढा, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं कुम्भगस्स जत्तं गेण्हित्तए त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता ण्हाया सण्णद्धा हत्थिखंधवरगया सकोरंट मल्लदामा जाव सेयवर चामराहिं, महया महया हय गयरह पवरजोह कलियाए चाउरंगणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा सव्विड्ढिए जाव रवेणं सएहिं सएहिं नगरेहिंतो जाव निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता एगयओ मिलायंति, मिलाइत्ता जेणेव मिहिला तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

मूलार्थ—कुम्भ राजा के द्वारा असत्कारित, असम्मानित और अपद्वार (पिछले द्वार) से निष्कासित वे छहों राजाओं के दूत जहां अपने-अपने जन-पद थे, जहां अपने-अपने नगर थे और जहां अपने-अपने राजा थे वहां पहुँचे पहुँच कर हाथ जोड़कर एवं मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहने लगे—

'इस प्रकार स्वामिन् ! हम जितशत्रु वगैरह छह राजाओं के दूत एक ही' साथ जहां

मूलार्थ—तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने इस वृत्तान्त को सुनकर तथा जान कर अर्थात् छहों राजाओं की चढ़ाई का समाचार जानकर अपने सैनिक कर्मचारी (सेनापति) को बुलाया। बुलाकर कहा—हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ही घोड़ों हाथियों आदि से युक्त यावत् चतुरंगी सेना तैयार करो। यावत् सेनापति ने सेना तैयार करके आज्ञा वापिस लौटाई।

तदनंतर कुम्भराजा ने स्नान किया। कवच धारण करके सन्नद्ध हुआ। श्रेष्ठ हाथी के स्कन्ध पर आरूढ हुआ। कोरंट के फूलों की माला का छत्र धारण किया। उसके ऊपर श्रेष्ठ और श्वेत चामर ढोरे जाने लगे। यावत् विशाल चतुरंगी सेना के साथ मिथिला राजधानी के मध्य में होकर निकला। निकलकर विदेह जनपद के मध्य में होकर जहाँ अपने देश का अंत (सीमा—भाग) था, वहाँ आया। आकर वहाँ पड़ाव डाला। पड़ाव डालकर जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं की प्रतीक्षा करता हुआ, युद्ध के लिए सज्ज होकर ठहर गया।

उसके बाद वे जितशत्रु प्रभृति छहों राजा, जहाँ कुम्भ राजा था, वहाँ आये। आकर कुम्भ राजा के साथ युद्ध करने में प्रवृत्त हो गए।

मूलम्—तए णं ते जियसत्तु पामोक्खा छप्पि रायाणो कुंभयं रायं हयमहिय पवरवीरघाइयनिवडियचिंधद्धयप्पडागं किच्छप्पाणोवगयं दिसोदिसिं पडिसेहिंति।

तए णं से कुंभए राया जियसत्तु पामोक्खेहिं छहिं राईहिं हयमहिय जाव पडिसेहिए समाणे अत्थामे अबले अवीरिए जाव अधारणिज्जमिति कट्टु सिग्घं तुरियं जाव वेइयं जेणेव मिहिला नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मिहिलं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता मिहिलाए दुवाराइं पिहेइ, पिहित्ता रोहसज्जे चिट्ठइ।

मूलार्थ-तत्पश्चात् उन जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं ने कुम्भ राजा का हनन किया। अर्थात् उसके सैन्य का हनन किया। मथन किया अर्थात् मान का मर्दन किया, उसके अत्युत्तम योद्धाओं का घात किया। उसकी चिन्ह रूप ध्वजा और पताका को छिन्न भिन्न करके नीचे गिरा दिया। उसके प्राण संकट में पड़ गये। उसकी सेना चारों दिशाओं में भाग निकली।

उसके बाद वह कुंभराजा जितशत्रु आदि छह राजाओं के द्वारा हत, मानमर्दित यावत्

जिसकी सेना चारों ओर भाग खड़ी हुई है ऐसा होकर सामर्थ्यहीन, बलहीन, पराक्रमहीन यावत् शत्रुसेना का सामना करने में असमर्थ हो गया। अतः वह शीघ्रता पूर्वक, त्वरा के साथ यावत् वेग के साथ, जहाँ मिथिला नगरी थी वहाँ आया। मिथिला नगरी में प्रविष्ट हुआ और प्रविष्ट होकर उसने मिथिला के द्वार बन्द कर दिए। द्वार बन्द करके किले का रोध करने में सज्ज होकर ठहरा।

मूलम्–तएणं ते जियसत्तू पामोक्खा छप्पि रायाणो जेणेव मिहिला तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मिहिलं रायहाणि णिस्संचारं णिरुच्चारं सव्वओ समंता ओरुंभित्ता णं चिट्ठइ।

तएणं कुम्भए राया मिहिलं रायहाणिं रुद्धं जाणित्ता अब्भंतरियाए उवट्ठाणसालाए सीहासणवरगए तेसिं जियसत्तु पामोक्खाणं छण्हं राईणं छिद्दाणि य विवराणि य मम्माणि य अलभमाणे बहूहिं आएहिं य उवाएहिं य उप्पत्तियाहिं य ४ बुद्धीहिं परिणामेमाणे परिणामेमाणे किंचि आयं वा उवायं वा अलभमाणे ओहयमण संकप्पे जाव झियायइ।

मूलार्थ–तत्पश्चात् जितशत्रु प्रभृति छहों नरेश जहां मिथिला नगरी थी, वहां आये। आकर मिथिला राजधानी को मनुष्यों के गमनागमन से रहित कर दिया। यहां तक कि कोट के ऊपर से भी आवागमन को रोक दिया, अथवा मल त्यागने के लिए भी आना जाना रोक दिया। वे नगरी को चारों ओर से घेर करके ठहरे।

तदनंतर कुम्भ राजा मिथिला राजधानी को घिरी जानकर आभ्यंतर उपस्थान शाला (अन्दर की सभा) में श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठा। वह जितशत्रु आदि छहों राजाओं के छिद्रों को विवरों को और मर्म को पा नहीं सका। अतएव बहुत से आयों से, उपायों से तथा औत्पत्तिकी आदि चारों प्रकार की बुद्धि से विचार करते करते कोई भी आय या उपाय न पा सका। तब उसके मन का संकल्प क्षीण हो गया, यावत् वह आर्त ध्यान करने लगा।

मूलार्थ–इमं च णं मल्ली विदेहरायवरकण्णा ण्हाया जाव बहूहिं खुज्जाहिं परिवुडा जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कुंभगस्स पायग्गहणं करेइ। तएणं कुंभए राया मल्लिं विदेहरायवरकण्णं णो आढाइ नो परियाणाइ तुसिणीए संचिट्ठइ।

तए णं मल्ली विदेहरायवरकण्णा कुंभयं रायं एवं वयासी-तुब्भे णं ताओ अण्णया ममं एज्जमाणं जाव निवेसेह किं णं तुब्भं अज्ज ओहयमणसंकप्पे जाव झियायह ?

तए णं कुंभए राया मल्लिं विदेहरायवरकण्णं एवं वयासी-एवं खलु पुत्ता ! तव कज्जे जियसत्तुपामोक्खेहिं छहिं राईहिं दूया संपेसिया, ते णं मए असक्कारिया जाव निच्छूढा। तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा तेसिं दूयाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा परिकुविया समाणा मिहिलं रायहाणिं निस्संचारं जाव चिट्ठंति। तए णं अहं पुत्ता ! तेसिं जियसत्तु-पामोक्खाणं छण्हं राईणं अंतराणि अलभमाणे जाव झियामि।

मूलार्थ—इधर विदेहराजवर कन्या मल्ली ने स्नान किया, (वस्त्राभूषण धारण किये) यावत् बहुतसी कुब्जा आदि दासियों से परिवृत होकर जहाँ कुम्भ राजा था, वहाँ आई। आकर उसने कुम्भराजा के चरण ग्रहण किये—पैर छूए तब कुम्भ राजा ने विदेहराजवर कन्या मल्ली का आदर नहीं किया, उसे उसका आना भी मालूम नहीं हुआ। अतएव वह मौन ही रहा।

तदनन्तर विदेहराजवर कन्या मल्ली ने राजा कुम्भ से इस प्रकार कहा—हे तात ! दूसरे समय मुझे आती देखकर आप यावत् गोद में बिठलाते थे परन्तु क्या कारण है कि आज आप अपहृत मानसिक संकल्प वाले होकर चिन्ता कर रहे हैं ?

तब राजा कुम्भ ने विदेहराजवर कन्या मल्ली से इस प्रकार कहा—हे पुत्री ! इस प्रकार तुम्हारे लिए—तुम्हारी मँगनी करने के लिए जितशत्रु प्रभृति छह राजाओं ने दूत भेजे थे। मैंने उन दूतों को अपमानित करके यावत् निकलवा दिया। तब वे जितशत्रु वगैरह राजा उन दूतों से यह वृत्तान्त सुनकर कुपित हो गये। उन्होंने मिथिला राजधानी को गमनागमनहीन बना दिया है यावत् वे चारों ओर घेरा डालकर बैठे हैं। अतएव हे पुत्री ! मैं उन जितशत्रु प्रभृति नरेशों के अंतर छिद्र आदि न पाता हुआ यावत् चिंता कर रहा हूँ।

मूलम्—तएणं सा मल्ली विदेहरायवरकण्णा कुंभयं रायं एवं वयासी-मा णं तुब्भे ताओ ओहयमणसंकप्पा जाव झियायह, तुब्भे णं ताओ ! तेसिं जियसत्तुपामोक्खाणं छण्हं राईणं पत्तेयं पत्तेयं रहसियं दूयसंपेसे करेह, एगमेगं एवं वयह—'तव देमि मल्लिं विदेहरायवर-

कन्नं' त्ति कट्टु संझाकालसमयंसि पविरलमणूसंसि निसंतंसि पडिनिसंतंसि पत्तेयं पत्तेयं मिहिलं रायहाणिं अणुप्पवेसेह। अणुप्पवेसित्ता गब्भघरएसु अणुप्पवेसेह, मिहिलाए रायहाणीए दुवाराइं पिहेह, पिहित्ता रोहसज्जे चिट्ठह।

तए णं कुंभए राया एवं तं चेव जाव पवेसेइ, रोहसज्जे चिट्ठइ।

तए णं जियसत्तुपामोक्खा छप्पि य रायाणो कल्लं पाउप्पभाया जाव जालंतरेहिं कणगमयं मत्थयछिड्डं पउमुप्पलपिहाणं पडिमं पासइ। 'एस णं मल्ली विदेहरायवरकन्न' त्ति कट्टु मल्लीए विदेहरायवरकन्नाए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य मुच्छिया गिद्धा जाव अज्झोववन्ना अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणा पेहमाणा चिट्ठंति।

मूलार्थ–तत्पश्चात् विदेहराजवर कन्या मल्ली ने राजा कुम्भ से इस प्रकार कहा-तात ! आप अवहत मानसिक संकल्प वाले होकर चिंता न कीजिए। हे तात ! आप उन जितशत्रु आदि छहों राजाओं में से प्रत्येक के पास गुप्त रूप से दूत भेज दीजिए कि–मैं विदेहराजवर कन्या तुम्हे देता हूँ, ऐसा कह कर संध्या काल के अवसर पर जब विरले मनुष्य गमनागमन करते हों और विश्राम के लिए अपने अपने घरों में मनुष्य बैठे हों, उस समय प्रत्येक राजा का मिथिला राजधानी के भीतर प्रवेश कराइए। प्रवेश कराकर उन्हें गर्भ गृहों के अन्दर ले जाइए। फिर मिथिला राजधानी के द्वार बन्द करा दीजिए और नगरी के रोध में सज्ज हो कर ठहरिए।

तत्पश्चात् राजा कुम्भ ने इसी प्रकार किया। यावत् छहों राजाओं का मिथिला के भीतर प्रवेश कराया। वह नगरी के रोध में सज्ज होकर ठहरा।

तत्पश्चात् जितशत्रु आदि छहों राजा कल अर्थात् दूसरे दिन प्रातःकाल उन्हें जिस मकान में ठहराया था उसकी जालियों में से वह स्वर्णमयी मस्तक पर छिद्र वाली और कमल के ढक्कन वाली मल्ली की प्रतिमा देखने लगे। 'यही विदेहराज की श्रेष्ठ कन्या मल्ली है' ऐसा जानकर विदेहराजवर कन्या मल्ली के रूप यौवन और लावण्य में मूच्छित गृद्ध यावत् अत्यन्त लालायित होकर अनिमेष दृष्टि से बार-बार उसे देखने लगे।

मूलम्–तए णं सा मल्ली विदेहरायवरकन्ना ण्हाया जाव पायच्छित्ता सव्वालंकार-

विभूसिया बहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ता जेणेव जालघरए, जेणेव कणयपडिमा तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता तीसे कणगपडिमाए मत्थयाओ तं पउमं अवणेइ। तएणं गंधे णिद्धावइ से जहानामए अहिमडेइ वा जाव असुभतराए चेव।

तएणं जियसत्तु पामोक्खा तेणं असुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणा सएहिं सएहिं उत्तरिज्जेहिं आसाइं पिहेंति पिहित्ता परम्मुहा चिट्ठंति।

तएणं सा मल्ली विदेहरायवररायकन्ना ते जितसत्तु पामोक्खे एवं वयासी—किं णं तुब्भं देवाणुप्पिया! सएहिं सएहिं उत्तरज्जेहिं जाव परम्मुहा चिट्ठह? तते णं ते जितसत्तु पामोक्खा मल्लिं विदेहवररायकन्नं एवं वयंति एवं खलु देवाणुप्पिए! अम्हे इमेणं असुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणा सएहिं सएहिं जाव चिट्ठामो।

तएणं मल्ली विदेहरायवरकन्ना ते जियसत्तु पामोक्खे एवं वयासी—'जइ ताव देवाणुप्पिया! इमीसे कणगमयाए जाव पडिमाए कल्लाकल्लिं ताओ मणुण्णाओ असण पाणखाइमसाइमाओ एगमेगे पिंडे पक्खिप्पमाणे इमेयारूवे असुभे पोग्गल परिणामे, इमस्स पुण ओरालियासरीरस्स खेलासवस्स वंतासवस्स पित्तासवस्स सुक्कसोणियपूयासवस्स दुरूव ऊसासनीसासस्स दुरूवमुत्तपुत्तियपुरिसपुण्णस्स सडण जाव धम्मस्स केरिसए परिणामे भविस्सइ? तं मा णं तुब्भे देवाणुप्पिया! माणुस्सएसु कामभोगेसु रज्जह गिज्झह मुज्झह अज्झोववज्जह।'

मूलार्थ—तदनन्तर विदेहराजवर कन्या ने स्नान किया यावत् प्रायश्चित किया। वह समस्त अलंकारों से विभूषित होकर बहुतसी कुब्जा आदि दासियों से यावत् परिवृत होकर जहां जालगृह था और जहां स्वर्ण की वह प्रतिमा थी वहां आई। आकर उस स्वर्ण प्रतिमा के मस्तक से वह कमल का ढक्कन हटा दिया। ढक्कन हटाते ही उसमें से ऐसी दुर्गन्ध छूटी जैसे मरे सांप की दुर्गन्ध हो यावत् उससे भी अधिक अशुभ!

तत्पश्चात् जितशत्रु वगैरह ने उस अशुभ गंध से अभिभूत होकर—घबराकर अपने-अपने उत्तरीय वस्त्रों से मुंह ढँक लिया। मुंह ढँक कर वे मुख फेर कर खड़े हो गये।

तब विदेहराजवर कन्या मल्ली ने उन जितशत्रु आदि से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियों ! किस कारण आप अपने-अपने उत्तरीय वस्त्र से मुँह ढँक कर यावत् मुँह फेर खड़े हो गये ?

तब जितशत्रु आदि ने विदेहराजवर कन्या मल्ली से कहा—देवानुप्रिय ! हम इस अशुभ गंध से घबराकर अपने-अपने यावत् वस्त्र से मुँह ढँककर विमुख हुए हैं।

उसके बाद विदेहराजवर कन्या मल्ली ने उन जितशत्रु आदि राजाओं से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! इस स्वर्णमयी यावत् प्रतिमा में प्रतिदिन मनोज्ञ अशन, पान खादिम और स्वादिम आहार में से एक एक पिण्ड डालते-डालते यह ऐसा अशुभ पुद्गल का परिणमन हुआ है तो यह औदारिक शरीर तो कफ को झरानेवाला है, पित्त को झरानेवाला है, शुक्र शोणित पीव को झरानेवाला है, खराब उच्छ्वास और निश्वास निकालनेवाला है, अमनोज्ञ मूत्र एवं दुर्गन्धित मल से परिपूर्ण है, सड़ना (पड़ना और नष्ट होना) यावत् इसका स्वभाव है, तो इसका परिणमन कैसा होगा ? अतएव हे देवानुप्रियो ! आप मनुष्य सवन्धी काम भोगों में राग मत करो, गृद्धि मत करो, मोह मत करो और अतीव-आसक्त मत होओ।

मूलम्-एवं खलु देवाणुप्पिया तुम्हे अम्हे इमाओ तच्चे भवग्गहणे अवर विदेह वासे सलिलावइंसि विजए वीयसोगाए रायहाणीए महब्बलपामोक्खा सत्तवि य बालवयंसगा रायाणो होत्था सहजाया जाव पव्वया।

तएणं अहं देवाणुप्पिया ! इमेणं कारणेणं इत्थीनामगोयं कम्मं निव्वत्तेमि जइ णं तुब्भे चउत्थं उवसंपज्जित्ताणं विहरह तए णं अहं छट्ठं उवसंपज्जित्ता णं विहरामि। सेसं तहेव सव्वं।

तएणं तुब्भे देवाणुप्पिया ! कालमासे कालं किच्चा जयंते विमाणे उववण्णा। तत्थणं तुब्भे देसूणाइं बत्तीसाइं सागरोवमाइं ठिई। तए णं तुब्भे ताओ देवलोयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे जाव साइं साइं रज्जाइं उवसंपज्जित्ता णं विहरह।

तएणं अहं देवाणुप्पिया ! ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं जाव दारियत्ताए पच्चायाया।

किं थ तयं पम्हुट्ठं जं थ तया भो जयंत पवरंमि ।
वुत्था समयनिबद्धं देवा तं संभरह जाइं ॥

मूलार्थ—मल्लीकुमारी ने पूर्वभव का स्मरण कराते हुए आगे कहा-इस प्रकार हे देवानुप्रियो ! तुम और हम इससे पहले के तीसरे भव में पश्चिम महाविदेह वर्ष में सलिलावती विजय में वीतशोका नामक राजधानी में महाबल आदि सातों मित्र राजा थे। हम सातों साथ जन्मे थे यावत् साथ ही दीक्षित हुए थे।

हे देवानुप्रियो ! उस समय इस कारण से मैंने स्त्री नाम गोत्र कर्म का उपार्जन किया था-अगर तुम लोग एक उपवास करके विचरते थे तो मैं बेला करके विचरती थी, शेष सब वृत्तान्त पूर्ववत् समझना चाहिए।

तदनन्तर हे देवानुप्रियो ! तुम कालमास में काल करके जयंत विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ तुम्हारी कुछ कम बत्तीस सागरोपम की स्थिति हुई। तत्पश्चात् तुम उस देवलोक से अनन्तर तुरन्त ही शरीर त्याग करके—चवकरके इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में उत्पन्न हुए यावत् अपने अपने राज्य प्राप्त करके विचर रहे हो।

तत्पश्चात् मैं उस देवलोक से आयु का क्षय होने से कन्या के रूप में आई हूँ—जन्मी हूँ।

'क्या तुम वह भूल गये ? जिस समय हे देवानुप्रियो ! तुम जयंत नामक अणुत्तर विमान में वास करते थे ? वहाँ रहते हुए हमें एक दूसरे को प्रतिबोध देना चाहिए, ऐसा परस्पर में संकेत किया था। तो तुम उस देवभव का स्मरण करो।'

मूलम्-तएणं तेसिं जियसत्तु पामोक्खाणं छण्हं रायाणं मल्लीए विदेहरायवरकण्णाए अन्तिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म सुभेणं परिणामेणं, पसत्थेणं अज्झवसाणेणं, लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं, तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमणेणं ईहावूह जाव सण्णिजाइस्सरणे समुप्पण्णे। एयमट्ठं सम्मं अभिसमागच्छंति।

तएणं मल्ली अरहा जियसत्तुपामोक्खे छप्पि रायाणो समुप्पण्णजाइसरणे जाणित्ता गब्भघराणं दाराइं विहाडावेइ। तएणं जियसत्तुपामोक्खा जेणेव मल्ली अरहा

तेणेव उवागच्छंति। तएणं महब्बल पामोक्खा सत्तवि य (जियसत्तुपामोक्खा छप्पि य) बालवयंसा एगयओ अभिसमण्णागया यावि होत्था।

मूलार्थ–तदनन्तर विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली से यह पूर्वभव का वृत्तान्त सुनने और हृदय में धारण करने से शुभ परिणामों, प्रशस्त अध्यवसायों, विशुद्ध होती हुई लेश्याओं और जातिस्मरण को आच्छादित करने वाले कर्मों के क्षयोपशम के कारण–ईहा अपोह (सद् भूत-असद् भूत धर्मों का पर्यालोचन) करने से जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं को ऐसा जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ कि जिससे वे संज्ञी अवस्था के अपने भव देख सके। इस ज्ञान के उत्पन्न होने पर मल्ली कुमारी द्वारा कथित अर्थ को उन्होंने सम्यक् प्रकार से जान लिया।

तत्पश्चात् मल्ली अरिहंत ने जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया जानकर गर्भगृहों के द्वार खुलवा दिये। तब जितशत्रु वगैरह छहों राजा मल्ली अरिहंत के पास आये। उस समय (पूर्व जन्म के) महाबल आदि सातों (अथवा इस भव के जितशत्रु आदि छहों) बाल मित्रों का परस्पर मिलन हुआ।

मूलम्–तएणं मल्ली अरहा जियसत्तुपामोक्खे छप्पि रायाणो एवं वयासी–एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! संसारभयउव्विग्गा जाव पव्वयामि, तं तुब्भे णं किं करेह ? किं वसह ? जाव किं मे हियसामत्थे ?

तएणं जियसत्तु पामोक्खा छप्पि य रायाणो मल्लिं अरहं एवं वयासी–जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! ससारभयउव्विग्गा जाव पव्वयह, अम्हाणं देवाणुप्पिया ! के अण्णे आलंबणे वा आहारे वा पडिबंधे वा ? जह चेव ण देवाणुप्पिया ! तुब्भे अम्हे इओ तच्चे भवग्गहणे बहुसु कज्जेसु य मेढी पमाणं जाव धम्मधुरा होत्था, तहा चेव णं देवाणुप्पिया ! इण्हिं पि जाव भविस्सह। अम्हे वि य णं देवाणुप्पिया ! संसार भयउव्विग्गा जाव भीया जम्ममरणाणं देवाणुप्पियाणं सद्धिं मुंडा भवित्ता जाव पव्वयामो।

मूलार्थ–तत्पश्चात् अरिहंत मल्ली ने जितशत्रु वगैरह छहों राजाओं से कहा-हे देवानुप्रियो ! इस प्रकार निश्चित रूप से मैं संसार के भय से (जन्म जरा-मरण से) उद्विग्न हुई हूँ यावत् प्रव्रज्या

अंगीकार करना चाहती हूँ तो आप क्या करेंगे ? कैसे रहेंगे ? आपके हृदय का सामर्थ्य कैसा है ? अर्थात् भाव या उत्साह कैसा है ?

तदनन्तर जितशत्रु आदि छहों राजाओं ने मल्ली अरिहंत से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिये ! यदि आप संसार के भय से उद्विग्न होकर यावत् दीक्षा लेती हो तो हे देवानुप्रिय ! हमारे लिए दूसरा क्या आलंबन, आधार या प्रतिबन्ध है ? हे देवानुप्रिये ! जैसे आप इस भव से पूर्व के तीसरे भव में बहुत कार्यों में मेढीभूत, प्रमाणभूत और धर्म को धुरा के रूप में थी उसी प्रकार हे देवानुप्रिये ! अब (इस भव में) भी होओ। हे देवानुप्रिये ! हम भी संसार के भय से उद्विग्न हैं, यावत् जन्म मरण से भीत हैं अतएव देवानुप्रिया के साथ मुण्डित होकर यावत् दीक्षा ग्रहण करते हैं।

मूलम्—तए णं मल्ली अरहा ते जियसत्तुपामोक्खे एवं वयासी—जं णं तुब्भे संसार भयउव्विग्गा जाव मए सद्धिं पव्वयह, तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सएहिं सएहिं रज्जेहिं जेट्ठे पुत्ते रज्जे ठावेह, ठावेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ दुरुहह। दुरूढा समाणा मम अंतियं पाउब्भवह।

तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा मल्लिस्स अरहओ एयमट्ठं पडिसुणेंति।

तए णं मल्ली अरहा ते जियसत्तुपामोक्खे गहाय जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता कुंभगस्स पाएसु पाडेइ।

तए णं कुंभए राया ते जियसत्तुपामोक्खे विपुलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ जाव पडिविसज्जेइ।

मूलार्थ—उसके बाद अरिहंत मल्ली ने उन जितशत्रु प्रभृति राजाओं से कहा—यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न हुए हो, यावत् मेरे साथ दीक्षित होना चाहते हो तो जाओ देवानुप्रियो ! अपने अपने राज्य में और ज्येष्ठ पुत्र को राज्य पर प्रतिष्ठित करके हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविकाओं पर आरूढ होकर मेरे समीप आओ।

तत्पश्चात् उन जितशत्रु प्रभृति राजाओं ने मल्ली अरिहंत के इस अर्थ को ग्रहण किया।

तेणेव उवागच्छंति। तएणं महब्बल पामोक्खा सत्तवि य (जियसत्तुपामोक्खा छप्पि य) बालवयंसा एगयओ अभिसमण्णा गया यावि होत्था।

मूलार्थ–तदनन्तर विदेहराज की उत्तम कन्या मल्ली से यह पूर्वभव का वृत्तान्त सुनने और हृदय में धारण करने से शुभ परिणामों, प्रशस्त अध्यवसायों, विशुद्ध होती हुई लेश्याओं और जातिस्मरण को आच्छादित करने वाले कर्मों के क्षयोपशम के कारण–ईहा अपोह (सद् भूत-असद् भूत धर्मों का पर्यालोचन) करने से जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं को ऐसा जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ कि जिससे वे संज्ञी अवस्था के अपने भव देख सकें। इस ज्ञान के उत्पन्न होने पर मल्ली कुमारी द्वारा कथित अर्थ को उन्होंने सम्यक् प्रकार से जान लिया।

तत्पश्चात् मल्ली अरिहंत ने जितशत्रु प्रभृति छहों राजाओं को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया जानकर गर्भगृहों के द्वार खुलवा दिये। तब जितशत्रु वगैरह छहों राजा मल्ली अरिहंत के पास आये। उस समय (पूर्व जन्म के) महाबल आदि सातों (अथवा इस भव के जितशत्रु आदि छहों) बाल मित्रों का परस्पर मिलन हुआ।

मूलम्–तएणं मल्ली अरहा जियसत्तुपामोक्खे छप्पि रायाणो एवं वयासी–एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! संसारभयउव्विग्गा जाव पव्वयामि, तं तुब्मे णं किं करेह? किं वसह? जाव किं भे हियसामत्थे?

तएणं जियसत्तु पामोक्खा छप्पि य रायाणो मल्लिं अरहं एवं वयासी–जइ णं तुब्मे देवाणुप्पिया! संसारभयउव्विग्गा जाव पव्वयह, अम्हाणं देवाणुप्पिया! के अण्णे आलंबणे वा आहारे वा पडिबंधे वा? जह चेव ण देवाणुप्पिया! तुब्मे अम्हे इओ तच्चे भवग्गहणे बहुसु कज्जेसु य मेढी पमाणं जाव धम्मधुरा होत्था, तहा चेव णं देवाणुप्पिया! इण्हिं पि जाव भविस्सह। अम्हे वि य णं देवाणुप्पिया! संसार भयउव्विग्गा जाव भीया जम्ममरणाणं देवाणुप्पियाणं सद्धिं मुंडा भवित्ता जाव पव्वयामो।

मूलार्थ–तत्पश्चात् अरिहंत मल्ली ने जितशत्रु वगैरह छहों राजाओं से कहा-हे देवानुप्रियो! इस प्रकार निश्चित रूप से मैं संसार के भय से (जन्म जरा-मरण से) उद्विग्न हुई हूं यावत् प्रव्रज्या

अंगीकार करना चाहती हूँ तो आप क्या करेंगे ? कैसे रहेंगे ? आपके हृदय का सामर्थ्य कैसा है ? अर्थात् भाव या उत्साह कैसा है ?

तदनन्तर जितशत्रु आदि छहों राजाओं ने मल्ली अरिहंत से इस प्रकार कहा–हे देवानुप्रिये ! यदि आप संसार के भय से उद्विग्न होकर यावत् दीक्षा लेती हो तो हे देवानुप्रिय ! हमारे लिए दूसरा क्या आलंबन, आधार या प्रतिबन्ध है ? हे देवानुप्रिये ! जैसे आप इस भव से पूर्व के तीसरे भव में बहुत कार्यों में मेढीभूत, प्रमाणभूत और धर्म की धुरा के रूप में थी उसी प्रकार हे देवानुप्रिये ! अब (इस भव में) भी होओ। हे देवानुप्रिये ! हम भी संसार के भय से उद्विग्न हैं, यावत् जन्म मरण से भीत हैं अतएव देवानुप्रिया के साथ मुण्डित होकर यावत् दीक्षा ग्रहण करते हैं।

मूलम्–तए णं मल्ली अरहा ते जियसत्तुपामोक्खे एवं वयासी–जं णं तुब्भे संसार भयउव्विग्गा जाव मए सद्धिं पव्वयह, तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सएहिं सएहिं रज्जेहिं जेट्ठे पुत्ते रज्जे ठावेह, ठावेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ दुरुहह। दुरूढा समाणा मम अंतियं पाउब्भवह।

तए णं ते जियसत्तुपामोक्खा मल्लिस्स अरहओ एयमट्ठं पडिसुणेंति।

तए णं मल्ली अरहा ते जियसत्तुपामोक्खे गहाय जेणेव कुंभए राया तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता कुंभगस्स पाएसु पाडेइ।

तए णं कुंभए राया ते जियसत्तुपामोक्खे विपुलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ जाव पडिविसज्जेइ।

मूलार्थ–उसके बाद अरिहंत मल्ली ने उन जितशत्रु प्रभृति राजाओं से कहा–यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न हुए हो, यावत् मेरे साथ दीक्षित होना चाहते हो तो जाओ देवानुप्रियो ! अपने अपने राज्य में और ज्येष्ठ पुत्र को राज्य पर प्रतिष्ठित करके हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविकाओं पर आरूढ होकर मेरे समीप आओ।

तत्पश्चात् उन जितशत्रु प्रभृति राजाओं ने मल्ली अरिहंत के इस अर्थ को ग्रहण किया।

तदनंतर मल्ली अरिहंत उन जितशत्रु वगैरह को साथ लेकर जहां कुम्भ राजा था, वहां आई। आकर उन्हें कुमराजा के चरणों में नमस्कार कराया।

तब कुम्भराजा ने उन जितशत्रु वगैरह का विपुल अशन, पान खादिम और स्वादिम से तथा पुष्प वस्त्र गंध माल्य और अलंकारों से सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार सन्मान करके यावत् उन्हें विदा किया।

मूलम्-तएणं जियसत्तुपामोक्खा कुंभएणं रण्णा विसज्जिया समाणा जेणेव साइं साइं रज्जाइं जेणेव नयराइं तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता सयाइं रज्जाइं उवसंपज्जित्ता विहरंति।

तए णं मल्ली अरहा संवच्छरावसाणे निक्खमिस्सामि त्ति मणं पहारेइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्कस्सासणं चलइ। तएणं सक्के देविंदे देवराया आसणं चलियं पासइ, पासित्ता ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता मल्लिं अरहं ओहिणा आभोएइ, आभोइत्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-एवं खलु जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे मिहिलाए रायहाणीए कुंभगस्स रण्णो मल्ली अरहा निक्खमिस्सामि त्ति मणं पहारेइ।

तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पन्नमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवरायाणं अरहंताणं भगवंताणं णिक्खममाणाणं इमेयारूवं अत्थसंपयाणं दलित्तए। तं जहा-

तिण्णेव य कोडिसया अट्ठासीइं च होंति कोडीओ।
असिइं च सयसहस्सा इंदा दलयंति अरहाणं॥ १॥

एवं संपेहेइ संपेहित्ता वेसमणदेवं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे जाव असीइं च सयसहस्साइं दलइत्तए, तं गच्छह णं देवाणुप्पिया! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे कुंभगभवणंसि इमेयारूवं अत्थसंपयाणं साहराहि, साहरित्ता खिप्पामेव मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि।

मूलार्थ-तदनन्तर कुम्भराजा द्वारा विदा किये हुए जितशत्रु आदि जहां अपने-अपने राज्य थे, जहां अपने-अपने नगर थे, वहां आये। आकर अपने-अपने राज्यों को भोगते हुए विचरने लगे।

उस काल और उस समय में शक्रेन्द्र ने अपना आसन चलायमान हुआ देखा। देखकर अवधिज्ञान से जाना। जान कर इन्द्र को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ–'जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष में मिथिला राजधानी में कुम्भराजा की पुत्री मल्ली अरहंत ने एक वर्ष के अन्त में 'दीक्षा लूंगी' ऐसा विचार किया है।

(शक्रेन्द्र ने आगे विचार किया) तो अतीत काल वर्तमान काल, और भविष्यत् काल के शक्र देवेन्द्र देवराजों का यह परम्परागत आचार है कि 'अरिहंत भगवंत जब दीक्षा अंगीकार करने को हो तो उन्हें इतनी अर्थ सम्पदा (दान देने के लिए) देनी चाहिए। वह इस प्रकार–

'तीन अरब अठयासी करोड़ और अस्सी लाख द्रव्य (स्वर्ण मोहरे) इन्द्र अरिहंतों को देते हैं।

शक्रेन्द्र ने ऐसा विचार किया। विचार करके उसने वैश्रमण देव को बुलाया और बुलाकर कहा देवानुप्रिय! जम्बू द्वीप नामक द्वीप में भारत वर्ष में यावत् तीन सौ अठ्यासी करोड़ और अस्सी लाख देना उचित है। सो हे देवानुप्रिय! तुम जाओ और जंबू द्वीप में भारतवर्ष मे कुंभराजा के भवन में इतने द्रव्य का सहरण करो इतना धन पहुचा दो। संहरण करके शीघ्र ही मेरी यह आज्ञा वापिस सौपो।

मूलम्–तए णं से वेसमणे देवे सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे करयल जाव पडिसुणइ, पडिसुणित्ता जंभए देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी–

गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! जम्बुद्दीवं दीवं भारहं वासं मिहिलं रायहाणिं कुंभगस्स रण्णो भवणंसि तिन्नेव य कोडिसया, अट्ठासीयं च कोडीओ असीइं च सयसहस्साइं अयमेयारूवं अत्थसंपयाणं साहरह साहरित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।

तए णं ते जंभगा देवा वेसमणं जाव सुणेत्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसी भागं अवक्कमंति अवक्कमित्ता जाव उत्तरवेउव्वियाइं रूवाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव वीइवयमाणा जेणेव जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे जेणेव मिहिला रायहाणी जेणेव कुंभगस्स रण्णो भवणे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता कुंभगस्स रण्णो भवणंसि तिन्नि कोडिसया जाव साहरंति। साहरित्ता जेणेव वेसमणे देवे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता करयल जाव पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात मल्ली अरहंत ने प्रतिदिन प्रातःकाल से प्रारंभ करके मगध देश के प्रातराश (प्रातः कालीन भोजन) के समय तक अर्थात् दोपहर पर्यन्त बहुत से सनाथों, अनाथों पांथिकों निरन्तर मार्ग पर चलने वाले पथिकों, राहगीरों अथवा किसी के द्वारा किसी प्रयोजन से भेजे गए पुरुषों, करोटिक कपाल हाथ में लेकर भिक्षा मांगने वालों, कार्पटिक कंथा कोपीन या गेरुये धारण करने वालों अथवा कपट से भिक्षा मांगने वालों अथवा एक प्रकार के भिक्षुक विशेषों को एक करोड़ और आठ लाख स्वर्ण मोहरे दान में देना आरंभ किया।

तत्पश्चात् कुम्भ राजा ने मिथिला राजधानी में तत्र तत्र अर्थात् विभिन्न मुहल्लों या उप-नगरों में तहिं तहिं अर्थात् महामार्गों में तथा अन्य अनेक स्थानों में देशे देशे अर्थात् त्रिक चतुष्क आदि स्थानों-स्थानों में बहुतसी भोजन शालाएँ बनवाई। उन भोजन शालाओं में बहुत से मनुष्य जिन्हें भृति धन, भक्त-भोजन और वेतन-मूल्य दिया जाता था, विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन बनाते थे। बना करके जो लोग जैसे जैसे आते जाते थे, जैसे कि पांथिक (निरंतर रास्ता चलने वाले पथिक (मुसाफिर) करोटिक कपाल (खोपड़ी) लेकर भीख मांगने वाले कार्पटिक (कंथा कोपीन या कषाय वस्त्र धारण करने वाले) पाखण्डी (साधु बाबा सन्यासी) अथवा गृहस्थ, उन्हें आश्वासन देकर, विश्राम देकर और सुखद आसन पर बिठला कर विपुल अशन पान खाद्य और स्वाद्य दिया जाता था, परोसा जाता था। वे मनुष्य वहां भोजन आदि देते हुए रहते थे।

मूलम्-तए णं मिहिलाए सिंघाडग जाव बहुजनो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं खलु देवाणुप्पिया! कुंभगस्स रण्णो भवणंसि सव्वकामगुणियं किमिच्छियं विपुलं असण पाणं खाइमं साइमं बहूणं समणाण य जाव परिवेसिज्जइ।'

वरवरिया घोसिज्जइ किमिच्छियं दिज्जए बहुविहियं।
सुर-असुरदेव दानव नरिंदमहियाणं निक्खमणे ॥ १ ॥

तएणं मल्ली अरहा संवच्छरेणं तिन्नि कोडिसया अट्ठासीइं च होंति कोडिओ असिइं च सयसहस्साइं इमेयारूवं अत्थ संपयाणं दलइत्ता निक्खमामि त्ति मणं पहारेइ।

मूलार्थ–तत्तपश्चात् मिथिला राजधानी में शृंगाटक त्रिक आदि मार्गों में बहुत से लोग परस्पर इस प्रकार कहने लगे । हे देवानुप्रियो ! कुम्भ राजा के भवन में सर्वकामगुणित अर्थात् सब प्रकार के रूप, रस, गंध और स्पर्श वाले मनोवांछित रस पर्याय वाला तथा इच्छानुसार दिया जाने वाला विपुल आहार, पान, खादिम और स्वादिम आहार बहुत से श्रमणों आदि को यावत् परोसा जाता है । तात्पर्य यह है कि कुंभ राजा द्वारा जगह जगह भोजन शालाएं खुलवा देने और भोजन दान देने की सर्वत्र चर्चा होने लगी ।

वैमानिक, भवनपति, ज्योतिष्क और व्यंतर देवों तथा नरेन्द्रों अर्थात् चक्रवर्ती आदि राजाओं द्वारा पूजित तीर्थंकरों की दीक्षा के अवसर पर वरवरिका की घोषणा कराई जाती है । और याचकों को यथेष्ट दान दिया जाता है । अर्थात् जिसे जो दान मांगना हो सो मांगो, ऐसी घोषणा करवा दी जाती है और 'तुम्हें क्या चाहिए, तुम्हें क्या चाहिए' इस प्रकार पूछ कर याचक की इच्छा के अनुसार दान दिया जाता है ।

तत्पश्चात् अरहंत मल्ली ने तीन सो करोड़ अठासी करोड़ और अस्सी लाख जितनी अर्थ सम्पदा दान देकर 'मैं दीक्षा ग्रहण करुं' ऐसा मन में निश्चय किया ।

मूलम्–ते णं काले णं ते णं समए णं लोगंतिया देवा बंभलोए कप्पे रिट्ठे विमाण पत्थडे सएहिं सएहिं विमाणेहिं सएहिं सएहिं पासायवडिंसएहिं पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणिय साहस्सीहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं, सोलसहिं आय-रक्खदेव साहस्सीहिं अन्नेहि य बहूहिं लोगंतिएहिं देवेहिं सद्धिं संपरिवुडा महयाहयनट्ट गीय वाइय जाव रवेणं भुंजमाणा विहरंति । तं जहा–

सारस्सयमाइच्चा, वण्ही वरुणा य गद्दतोया य ।
तुसिया अव्वाबाहा, अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य ॥

तए णं तेसिं लोयंतियाणं देवाणं पत्तेयं पत्तेयं आसणाइं चलति, तहेव जाव अरिहंताणं निक्खममाणाणं संबोहणं करेत्तए त्ति तं गच्छामो णं अम्हे वि मल्लिस्स अरहओ संबोहणं करेमि, त्ति कट्टु एवं संपेहेंति, संपेहित्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसिभायं वेउव्विय समुग्घाएण

संमोहणंति, समोहणित्ता संखिज्जाइं जोयणाइं एवं जहा जंभगा जाव जेणेव मिहिला रायहाणी जेणेव कुंभगस्स रण्णो भवणे जेणेव मल्ली अरहा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अंतलिक्ख पडिवन्ना सखिंखिणियाइं जाव वत्थाइं पवर परिहिया करयल ताहिं इट्ठाहिं जाव एवं वयासी—

'बुज्झाहि भयवं ! लोगनाहा पवत्तेहि धम्मतित्थं. जीवाणं हियसुहनिस्सेयसकरं भविस्सइ' त्ति कट्टु दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयंति। वइत्ता मल्लिं अरहं वदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

मूलार्थ-उस काल और उस समय में लौकान्तिक देव ब्रह्मलोक नामक पांचवे स्वर्ग में अरिष्ट नामक विमान के पाथड़ में अपने अपने विमानों में अपने अपने उत्तम प्रासादों में से प्रत्येक प्रत्येक चार चार हजार सामानिक देवों से तीन तीन परिषदों से, सात सात अनीकों से, सात सात अनीकाधिपतियों से (सेनापतियों से), सोलह सोलह हजार आत्म रक्षक देवों से तथा अन्य अनेक लौकान्तिक देवों से युक्त परिवृत्त होकर खूब जोर से बजाये हुए नृत्य गीत के वाद्यों के यावत् शब्द के साथ भोग-भोगते हुए विचर रहे थे। उन लौकान्तिक देवों के नाम इस प्रकार है—१ सारस्वत २ आदित्य ३ वह्नि ४ वरुण ५ गर्दतोय ६ तुषित ७ अव्याबाध ८ आग्नेय और ९ रिष्ट।

तत्पश्चात् उन लौकान्तिक देवों में से प्रत्येक के आसन चलायमान हुए। इत्यादि उसी प्रकार जानना यावत् दीक्षा लेने की इच्छा करने वाले तीर्थंकरों को संबोधन करना हमारा आचार है, अतः हम जाएं और अरहंत मल्ली को संबोधन करें। ऐसा लौकान्तिक देवों ने विचार किया। ऐसा विचार करके उन्होंने ईशान दिशा में जाकर वैक्रिय समुद्घात से विक्रिया की उत्तर वैक्रिय शरीर धारण किया। समुद्घात करके संख्यात योजन उल्लंघन करके जृंभक देवों की तरह जहां मिथिल राजधानी थी, जहां कुंभ राजा का भवन था और जहां मल्ली नामक अरहंत थे वहां आये। आकरके आकाश अधर में स्थित रहे हुए घुंघुरूओं के शब्द सहित यावत् श्रेष्ठ वस्त्र धारण करके दोनों हाथ जोड़कर इष्ट यावत् वाणी से इस प्रकार बोले--

हे लोकनाथ ! हे भगवन् ! बूझो बोध पाओ। धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति करो। वह धर्म तीर्थ जीवों के लिए हितकारी, सुखकारी और निश्रेयसकारी (मोक्षकारी) होगा। इस प्रकार कह कर दूसरी और तीसरी बार भी इस प्रकार कहा। कह कर अरिहंत मल्ली को वन्दना की, नमस्कार किया।

वन्दना और नमस्कार करके जिस दिशा से आये थे उसी दिशा में लौट गये ।

मूलम्–तए णं मल्ली अरहा तेहिं लोगंतिएहिं देवेहिं संबोहिए समाणे जेणेव अम्मा-पियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल० इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भु-णुण्णाए मुंडे भवित्ता जाव पव्वइत्तए।

'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।'

तए णं कुंभए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी खिप्पामेव अट्ठस-हस्सं सोवण्णियाणं जाव भोमेज्जाणं ति । अण्णं च महत्थं जाव तित्थयराभिसेय उवट्ठवेह जाव उवट्ठवेंति ।

तेणं काले णं ते णं समए णं चमरे असुरिंदे जाव अच्चुयपज्जवसाणा आगया ।

तएणं सक्के देविंदे देवराया आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी खिप्पा-मेव अट्ठसहस्सं सोवण्णियाणं कलसाणं जाव अण्णं च तं विपुलं उवट्ठवेह । जाव उवट्ठवेंति । ते वि कलसा ते चेव कलसे अणुपविट्ठा ।

मूलार्थ–उसके बाद लोकांतिक देवों द्वारा संबोधित हुए मल्लीअरहंत जहां माता पिता थे, वहां आये । आकर दोनों हाथ जोड़कर कहा–हे माता पिता ! आपकी आज्ञा से मुंडित होकर यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करने की मेरी इच्छा है ।

तब माता-पिता ने कहा-हे देवानुप्रिये ! जैसे सुख उपजे वैसा करो ।

तत्पश्चात् कुंभ राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । बुलाकर कहा–

शीघ्र ही एक हजार आठ सुवर्णकलश यावत् एक हजार आठ मिट्टी के कलश लाओ । इसके अतिरिक्त महान् अर्थ वाली यावत् तीर्थंकर के अभिषेक की सब सामग्री उपस्थित करो । यह सुन कर कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा ही किया अर्थात् अभिषेक की समस्त सामग्री तैयार कर दी ।

उस काल और उस समय में चमर नामक असुरेन्द्र से लेकर अच्युत स्वर्ग तक के सभी इन्द्र अर्थात् चौंसठ इन्द्र वहां आ गये ।

तब देवेन्द्र देवराज शक्र ने आभियोगिक देवों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—शीघ्र ही एक हजार आठ स्वर्ण कलश आदि यावत् दूसरी अभिषेक के योग्य सामग्री उपस्थित करो। यह सुनकर आभियोगिक देवों ने भी सब सामग्री उपस्थित की। वे देवों के कलश उन्हीं मनुष्यों के कलशों में (देवी प्रभाव से) समा गये।

मूलम्—तए णं से सक्के देविंदे देवराया कुंभराया य मल्लि अरहं सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहं निवेसेइ, अट्ठसहस्सेणं सोवण्णियाणं जाव अभिसिंचइ।

तए णं मल्लिस्स भगवओ अभिसेए वट्टमाणे अप्पेगइया देवा मिहिलं च सब्भितरं बाहिरियं जाव सव्वओ समंता परिधावंति।

तए णं कुंभए राया दोच्चं पि उत्तरावक्कमणं जाव सव्वालंकारविभूसियं करेइ करित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ। सद्दावित्ता एवं वयासी खिप्पामेव मणोरमं सीयं उवट्ठवेह। ते उवट्ठवेंति।

तए णं सक्के देविंदे देवराया आभियोगिए देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी खिप्पामेव अणेग खंभं जाव मनोरमं सीयं उवट्ठवेह। जाव सावि सीया तं चेव सीयं अणुपविट्ठा।

तए णं मल्ली अरहा सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता जेणेव मणोरमा सीया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मणोरमं सीयं अणुपयाहिणी करेमाणा मणोरमं सीयं दुरुहइ। दुरुहित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने।

मूलार्थ—तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्र और कुंभ राजा ने मल्ली अरहंत को पूर्वाभिमुख बिठलाया। फिर सुवर्ण आदि के एक हजार आठ कलशों से यावत् अभिषेक किया।

तदनंतर जब मल्ली भगवान् का अभिषेक हो रहा था उस समय कोई कोई देव मिथिला नगरी के भीतर और बाहर यावत् सब दिशाओं-विदिशाओं में दौड़ने लगे इधर उधर फिरने लगे।

तत्पश्चात् कुंभराजा ने दूसरी बार उत्तर दिशा में जाकर यावत् भगवान मल्ली को सर्व अलंकारों से विभूषित करके कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा-शीघ्र ही मनोरमा नामकी शिविका तैयार करके लाओ।

तदनंतर देवेन्द्र देवराज शक्र ने आभियोगिक देवों को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा शीघ्र ही अनेक खंभों वाली यावत् मनोरमा नामक शिविका उपस्थित करो।' तब वे देव भी मनोरमा शिविका लाये और वह शिविका भी उसी मनुष्यों की शिविका में समा गई।

तत्पश्चात् मल्ली अरहंत सिंहासन से उठे। उठ कर जहां मनोरमा शिविका थी उधर आये। आकर मनोरमा शिविका को प्रदक्षिणा करके मनोरमा शिविका पर आरूढ़ हुए। आरूढ होकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर विराजमान हुए।

मूल–तए णं कुंभए राया अट्ठारस सेणिप्पसेणिओ सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी तुब्भे णं देवाणुप्पिया! ण्हाया जाव सव्वालंकारविभूसिया मल्लिस्स सीयं परिवहह। जाव परिवहंति।

तए णं सक्के देविंदे देवराया मणोरमाए दक्खिणिल्लं उवरिल्लं बाहं गेण्हइ, ईसाणे उत्तरिल्लं उवरिल्लं बाहं गेण्हइ, चमरे दाहिणिल्लं हेट्ठिल्लं, बली उत्तरिल्लं हेट्ठिल्लं। अवसेसा देवा जहारिहं मणोरमं सीयं परिवहंति।

पुव्विं उक्खित्ता माणुस्सेहिं तो हट्ठरोमकूवेहिं।
पच्छा वहंति सीयं असुरिंदसुरिंद नागेंदा॥ १॥

चल चवल कुंडलधरा, सच्छंद विउव्वियाभरणधारी।
देविंददाणविंदा, वहंति सीयं जिणिंदस्स॥ २॥

तएणं मल्लिस्स अरहओ मणोरमं सीयं दुरूढस्स इमे अट्ठट्ठ मंगलगा अहाणुपुव्वीए एवं निग्गमो जहा जमालिस्स।

मूलार्थ–उसके बाद कुम्भ राजा ने अठारह जातियों उपजातियों को बुलाया। बुलवाकर कहा हे देवानुप्रियो! तुम लोग स्नान करके यावत् सर्व अलंकारों से विभूषित होकर मल्ली कुमारी की शिबिका वहन करो। यावत् उन्होंने शिबिका वहन की।

उसके बाद शक्र देवेन्द्र देवराज ने मनोरमा शिविका की दक्षिण तरफ की ऊपर की बाहु ग्रहण की। ईशान इन्द्र ने उत्तर तरफ की ऊपर की बाहु ग्रहण की, चमरेन्द्र ने दक्षिण तरफ की

नीचली बाहु ग्रहण की। बलीन्द्र ने उत्तर तरफ की नीचली बाहु ग्रहण की। शेष देवों ने यथा योग्य उस मनोरमा शिविका को वहन किया।

जिनके रोमकूप (रोंगटे) हर्ष के कारण विकस्वर हो गये हैं, ऐसे मनुष्यों ने सर्व प्रथम वह शिबिका उठाई। उसके बाद असुरेन्द्र, सुरेन्द्र और नागेन्द्र ने उसे वहन किया।

चलायमान चपल कुंडलों को धारण करने वाले तथा अपनी इच्छा के अनुसार विक्रिया से बनाये हुए आभरणों को धारण करने वाले देवेन्द्रों और दानवेन्द्रों ने जिनेन्द्र देव की शिबिका वहन की।

तदनन्तर मल्ली अरहंत जब मनोरमा शिबिका पर आरूढ़ हुए, उस समय उनके आगे आठ आठ मंगल अनुक्रम से चले। भगवती सूत्र में वर्णित जमालि के निर्गमन की तरह यहां मल्ली अरहत के निर्गमन का वर्णन कहना चाहिए।

तत्पश्चात् मल्ली अरहंत जब दीक्षा धारण करने के लिए निकले तो किन्हीं किन्हीं देवों ने मिथिला नगरी को पानी से सींच दी साफ कर दी और भीतर तथा बाहर की विधि करके यावत् चारों ओर दौड़ धूप करने लगे। (यह सब वर्णन राजप्रश्नीय आदि सूत्रों से जान लेना चाहिये)

उसके बाद मल्ली अरहंत जहां सहस्राम्र नामक उद्यान था और जहां श्रेष्ठ अशोक वृक्ष था वहां आये आकर शिबिका से नीचे उतरे। नीचे उतर कर समस्त आभरणों का त्याग किया। प्रभावती देवी ने वह आभरण ग्रहण किये।

मूलम्-तए णं मल्ली अरहा सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ तए णं सक्के देविंदे देवराया मल्लिस्स केसे पडिच्छइ। पडिच्छित्ता खीरोदगसमुद्दं पक्खिवइ।

तए णं मल्ली अरहा 'णमोऽत्थु णं सिद्धाणं' ति कट्टु सामाइयचरित्तं पडिवज्जइ।

जं समयं च णं मल्ली अरहा चरित्तं पडिवज्जइ, तं समयं च णं देवाणं मणुस्साण य णिग्घोसे तुरिय निणायगीयवाइय निग्घोसे य सक्कस्स वयण संदेसेणं णिलुक्के यावि होत्था। जं समयं च णं मल्ली अरहा सामाइयं चरित्तं पडिवण्णे तं समयं च णं मल्लिस्स अरहओ माणुस धम्माओ उत्तरिए मणपज्जवनाणे समुप्पन्ने।

मूलार्थ—उसके बाद मल्ली अरहंत ने 'णमोत्थुणं सिद्धाणं' अर्थात् सिद्धों को नमस्कार हो, इस प्रकार कहकर सामायिक चारित्र अंगीकार किया।

जिस समय अरहंत मल्ली ने चारित्र अंगीकार किया, उस समय देवों और मनुष्यों के निर्घोष (शब्द कोलाहल) वाद्यों की ध्वनि और गाने बजाने का शब्द शक्रेन्द्र के आदेश से बिल्कुल बन्द हो गया। अर्थात् शक्रेन्द्र ने सब को शान्त रहने का आदेश दिया, अतएव चारित्र ग्रहण करते समय पूर्ण नीरवता व्याप्त हो गई। जिस समय मल्ली अरहंत ने सामायिक चारित्र ग्रहण किया उसी समय मल्ली अरहंत को मनुष्य धर्म से ऊपर का अर्थात् साधारण अज्ञानी मनुष्यों को न होने वाला—लोकोत्तर उत्तम, मनः पर्यय ज्ञान (मनुष्य क्षेत्र—अढ़ाई द्वीप में स्थित संज्ञी जीवों के मन के पर्यायों को साक्षात् जानने वाला ज्ञान) उत्पन्न हो गया।

मूलम्—मल्ली णं अरहा जे से हेमंताणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे पोससुद्धे, तस्स णं पोस सुद्धस्स एक्कारसी पक्खे णं पुव्वण्हकालसमयंसि अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं अस्सिणीहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं तिहिं इत्थीसएहिं अब्भिंतरियाए परिसाए तिहिं पुरिससएहिं बाहिरियाए परिसाए सद्धिं मुंडे भवित्ता पव्वइए।

मल्लिं अरहं इमे अट्ठ णायकुमारा अणुपव्वइंसु, तं जहा णंदे य णंदमित्ते, सुमित्त बलमित्त भाणुमित्ते य अमरवइ अमरसेणे महसेणे चेव अट्ठमए॥

तए णं से भवणवई ४ मल्लिस्स अरहओ निक्खमणमहिमं करेंति, करित्ता जेणेव नंदीसरे वरे० अट्ठाहियं करेंति, करित्ता जाव पडिगया।

तए णं मल्ली अरहा जं चेव दिवसं पव्वइए तस्सेव दिवसस्स पच्चवरण्हकालसमयंसि असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टयंसि सुहासणवरगयस्स सुहेणं परिणामेणं, पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं पसत्थाहिं लेसाहिं विसुज्झमाणाहिं तयावरणकम्मरयविकरणकरं अपुव्वकरणं अणुपविट्ठस्स अणंते जाव केवलणाणदंसणे समुप्पण्णे।

मूलार्थ—मल्ली अरहंत ने हेमन्तऋतु के दूसरे मास में चौथे पखवाड़े में अर्थात् पौष मास के शुद्ध (शुक्ल) पक्ष में और पौष मास के शुद्ध पक्ष की एकादशी के पक्ष में अर्थात् अर्द्ध भाग में (रात्रि का भाग छोड़कर दिन में) पूर्वाह्ण काल के समय में, निर्जल अष्टम भक्त तप करके

अश्विनी नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग होने पर, तीन सौ आभ्यन्तर परिषद् की स्त्रियों के साथ और तीन सौ बाह्य परिषद् के पुरुषों के साथ मुण्डित होकर दीक्षा अंगीकार की।

मल्ली अरहंत का अनुसरण करके यह आठ ज्ञात कुमार दीक्षित हुए। वह इस प्रकार हैं:--

१. नन्द २. नन्द मित्र ३. सुमित्र ४. बल मित्र ५. भानु मित्र ६. अमरपति ७. अमरसेन ८ और आठवें महासेन। इन आठ ज्ञात कुमारों ने (इक्ष्वाकुवंशी राज कुमारों ने) दीक्षा अंगीकार की।

तत्पश्चात् भवनपति, व्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक-इन चार निकाय के देवों ने मल्ली अरहंत का दीक्षा-महोत्सव किया। महोत्सव करके जहां नन्दीश्वर द्वीप था, वहां गये। जाकर अष्टाह्नकिा महोत्सव करके यावत् अपने स्थान पर लौट गये।

तदनन्तर मल्ली अरहंत ने जिस दिन दीक्षा अंगीकार की उसी दिन के प्रत्यपराह्ण काल के समय अर्थात् दिन के अन्तिम भाग में श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वी शिला पट्टक के उपर बैठे हुए थे। उस समय शुभ परिणामों के कारण, प्रशस्त अध्यवसायों के कारण तथा विशुद्ध एवं प्रशस्त लेश्याओं के कारण तदावरण (ज्ञानावरण और दर्शनावरण) कर्म को रज को दूर करने वाले अपूर्वकरण को प्राप्त हुए अरहंत मल्ली को अनंत यावत् केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति हुई।

मूल पाठ—ते णं कालेणं ते णं समए णं सव्वदेवाणं आसणाइं चलंति। समोसढा। सुणेंति अट्ठाहिय महिमा नंदीसरे, जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया। कुंभए वि निग्गच्छइ।

तए णं ते जियसत्तु पामोक्खा छप्पिय रायाणो जेट्ठपुत्ते रज्जे ठावित्ता पुरिससहस्स-वाहिणीयाओ दुरूढा सव्विड्ढीए जाव रवेणं जेणेव मल्ली अरहा जाव पज्जुवासंति।

तए णं मल्ली अरहा तीसे महइमहालियाए कुंभगस्स रण्णो तेसिं च जियसत्तु-पामोक्खाणं धम्मं कहेइ। परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं उडिगया। कुंभए समणोवासए जाए, पडिगए, पभावई य समणोवासिया जाया। पडिगया।

तए णं जियसत्तुपामोक्खा छप्पि य रायाणो धम्मं सोच्चा आलित्तए णं भंते ! जाव पव्वइया । चोद्दस पुव्विणो, अणंते केवले, सिद्धा ।

तए णं मल्ली अरहा सहसंववणाओ निक्खमइ, निक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

मूलार्थ–उस काल और उस समय में सब देवों के आसन चलायमान हुए । तब वे सब वहां आये । सब ने धर्मोपदेश श्रवण किया । नन्दीश्वर द्वीप में जाकर अष्टाह्निका महोत्सव किया । फिर जिस दिशा से प्रकट हुए थे, उसी दिशा में लौट गये । कुंभ राजा भी वन्दना करने के लिये निकला ।

तत्पश्चात् वे जितशत्रु वगैरह छहों राजा अपने अपने ज्येष्ठ पुत्रों को राज्य पर स्थापित करके, हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिबिकाओं पर आरूढ़ होकर समस्त ऋद्धि (पूरे ठाठ) के साथ यावत् गीत–वादित्र के शब्दों के साथ जहां मल्ली अरहंत थे, यावत् वहां आकर उनकी उपासना करने लगे ।

तत्पश्चात् मल्ली अरहंत ने उस बड़ी भारी परिषद् को, कुम्भ राजा को और उन जितशत्रु प्रभृति राजाओं को धर्म का उपदेश दिया, परिषद् जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गई । कुम्भ राजा श्रमणोपासक हुआ । वह भी लौट गया । प्रभावती श्रमणोपासिका हुई । वह भी वापिस चली गई ।

तत्पश्चात् जितशत्रु आदि छहों राजाओं ने धर्म श्रवण करके कहा–'हे भगवन् ! यह संसार आदीप्त है इत्यादि । यावत् वे दीक्षित हो गए । चौदह पूर्वों के ज्ञानी हुए । फिर अनन्त केवल प्राप्त करके यावत् सिद्ध हुए ।

तत्पश्चात् मल्ली अरहंत सहस्राम्र उद्यान से बाहर निकले । निकल कर जनपद में विहार करने लगे ।

मूलम्–मल्लिस्स णं अरहओ भिसग (किंसुय) पामोक्खा अट्ठावीसं गणहरा होत्था । मल्लिस्स णं अरहओ चत्तालीसं समणसाहस्सीओ उक्कोसियाओ, बंधुमतीपामोक्खाओ

पणपएणं अज्जिया होत्था। मल्लिस्स णं अरहओ सावयाणं एगा सयसाहस्सीओ चुलसीइं च सहस्सा उक्कोसिया संपया होत्था। मल्लिस्स णं अरहओ साविया‍ए तिन्नि सयसाहस्सीओ पएणट्ठिं च सहस्सा संपया होत्था। मल्लिस्स णं अरहओ छस्सया चोद्दसपुव्वीणं, वीससया ओहिणाणीणं. बत्तीसं सया केवलनाणीणं, पणतीसं सया वेउव्वियाणं, अट्ठसया मणपज्जवणाणीणं चोद्दससया वाईणं, वीसं सया अणुत्तरोववाइयाणं संपया होत्था।

मूलार्थ—मल्ली अरहंत के भिषक (या किंशुक) आदि अट्ठाईस गण और अट्ठाईस गणधर थे। मल्ली अरहंत की चालीस हजार साधुओं की उत्कृष्ट सम्पदा थी। बन्धुमती आदि पचपन हजार आर्यिकाओं की सम्पदा थी। मल्ली अरहंत की एक लाख चौरासी हजार श्रावकों की उत्कृष्ट सम्पदा थी। मल्ली अरिहंत की तीन लाख पैंसठ हजार श्राविकाओं की उत्कृष्ट सम्पदा थी। मल्ली अरहंत की छहसौ चौदह पूर्वी साधुओं की, दो हजार अवधिज्ञानी, बत्तीस सौ केवल ज्ञानी, पैंतीस सौ वैक्रियलब्धि धारी, आठ सौ मनः पर्याय ज्ञानी, चौदह सौ वादी और वीस सौ अनुत्तरौपपातिक (सर्वार्थ सिद्ध विमान में जाकर फिर एक भव लेकर मोक्ष जाने वाले) साधुओं की संपदा थी।

मूलम्—मल्लिस्स अरहओ दुविहा अंतगडभूमि होत्था। तं जहा जुगंतकरभूमी परियायंतकर भूमी य। जाव वीसइमाओ पुरिस जुगाओ जुयंतकर भूमी दुवास परियाए अंतमकासी।

मल्लीणं अरहा पणुवीसं धणू उड्ढं उच्चत्तेणं, वएणणं पियंगुसमे, समचउरंस संठाणे वज्जरिसभनाराय संघयणे, मज्झ देसे सुहं सुहेणं विहरत्ता जेणेव संमेए पव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता संमेयसेलसिहरे पाओवगमणमणुववन्ने।

मल्ली णं एगं वाससयं आगारवासमज्झे, पणपएणं वाससहस्साइं वाससयऊणाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता पणपएणं वाससहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता जे से गिम्हाणं पढमे मास दोच्चे पक्खे चित्तसुद्धे तस्स णं चेत्तसुद्धस्स चउत्थीए भरणीए णक्खत्तेणं अद्धरत्तकालसमयंसि पंचहिं अज्जियासएहिं अब्भिंतरियाए परिसाए पंचहिं अणगारसएहिं बाहिरियाए परिसाए, मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं वग्घारियपाणी, खीणे वेयणिज्जे आउए नामे गोए सिद्धे। एवं परिणिव्वाणमहिमा भाणियव्वा जहा जंबुद्दीवपएणत्तीए नंदीसरे अट्ठाहियाओ, पडिगयाओ।

मूलार्थ—मल्ली अरहंत के तीर्थ में दो प्रकार की अन्तकर भूमि हुई। वह इस प्रकार था—

न्तकर भूमि और पर्यायान्तकर भूमि। इनमें से शिष्य-प्रशिष्य आदि बीस पुरुषों रूप युगों तक अर्थात् बीसवे पाट तक युगान्तकर भूमि हुई अर्थात् बीस पाट तक साधुओं ने मुक्ति प्राप्त की। बीसवें पाट के पश्चात् उनके तीर्थ में किसी ने मोक्ष प्राप्त नहीं किया। और दो वर्ष का पर्याय होने पर अर्थात् मल्ली अरहंत को केवल ज्ञान प्राप्त किये दो वर्ष व्यतीत हो जाने पर पर्यायान्तकर भूमि हुई भव पर्याय का अन्त करने वाले मोक्ष जाने वाले साधु हुए। इससे पहले कोई जीव मोक्ष नहीं गया।

मल्ली अरहंत पच्चीस धनुष ऊँचे थे। उनके शरीर का वर्ण प्रियंगु के समान था। उनका समचतुरस्र संस्थान और वज्रऋषभनाराच संहनन था। वह मध्य देश में सुखे-सुखे विचर कर जहां सम्मेद शिखर पवत था, वहां आये। आकर उन्होंने सम्मेद शैल के शिखर पर पादोपगमन अनशन अंगीकार कर लिया।

मल्ली अरहत एक सौ वर्ष गृहवास में रहे। सौ वर्ष कम पचपन हजार वर्ष केवली पर्याय पालकर इस प्रकार कुल पचपन हजार वर्ष की आयु पालकर ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास दूसरे पक्ष अर्थात् चैत्र मास के शुक्ल पक्ष और चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की चौथ तिथि में भरणी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर अर्द्ध रात्रि के समय आभ्यंतर परिषद की पांच सौ साध्वियों और बाह्य परिषद के पांच सौ साधुओं के साथ निर्जल एक मास के अनशन पूर्वक दोनों हाथ लम्बे रख-कर वेदनीय आयु नाम और गोत्र कर्मों के क्षीण होने पर सिद्ध हुए। जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति में वर्णित निर्वाण महोत्सव यहां भी कहना चाहिए। फिर देवों ने नन्दीश्वर द्वीप में जाकर अष्टाह्निक महोत्सव किया महोत्सव करके अपने अपने स्थान पर चले गये।

टीकाकार द्वारा वर्णित निर्वाण कल्याणक का महोत्सव संक्षेप में इस प्रकार है—जिस समय तीर्थंकर भगवान का निर्वाण हुआ उस समय शक्र इन्द्र का आसन चलायमान हुआ। अवधिज्ञान का उपयोग लगाने से उसे निर्वाण की घटना का ज्ञान हुआ। उसी समय वह सपरिवार सम्मेद शिखर पर्वत पर आया। भगवान् के निर्वाण के कारण उसे दुःख हुआ। आंखों से आंसू बहने लगे। उसने भगवान् के शरीर की तीन प्रदक्षिणाएं की। फिर उस शरीर से थोड़ी दूर ठहर गया। इसी प्रकार सब इन्द्रों ने किया।

उसके बाद शक्रेन्द्र ने अपने आभियोगिक देवों से वन में में सुन्दर गोशीर्ष चन्दन के काष्ठ मंगवाये। तीन चिताएं रची गई। क्षीर सागर से जल मंगवाया गया। उस जल से भगवान के शरीर को स्नान कराया गया, गोशीर्ष चन्दन का शरीर पर लेप किया गया। हंस जैसा धवल और कोमल वस्त्र शरीर पर ढक दिया। फिर शरीर को सर्व अलंकारों से अलंकृत किया गया।

गणधरों और साधुओं के शरीर का अन्य देवों ने इस प्रकार संस्कार किया।

तदनन्तर शक्र ने आभियोगिक देवों से तीन शिविकाएं बनवाई उनमें से एक शिबिका पर भगवान का शरीर स्थापित किया और उसे चिता के समीप ले जाकर चिता पर रखा। अन्य देवों ने गणधरों तथा साधुओं के शरीर को दो शिबिकाओं में रख कर दो चिताओं पर रखा। तत्पश्चात अग्निकुमार देवों ने शक्रेन्द्र की आज्ञा से तीनों चिताओं में अग्निकाय की विकुर्वणा की और वायु कुमार देवों ने वायु की विकुर्वणा की। अन्य देवों ने तीनों चिताओं में अगर लोभान, धूप, घी और मधु आदि के घड़े के घड़े डाले। अन्त में जब शरीर भस्म हो चुके तब मेघकुमार देवों ने उन चिताओं को क्षीर सागर के जल से शांत कर दिया।

तदनन्तर शक्रेन्द्र ने प्रभु के शरीर की दाहिनी तरफ की ऊपर की दाढ़ ग्रहण की। ईशानेन्द्र ने बायी ओर की ऊपर की दाढ़ ली। चमरेन्द्र ने दाहिणी ओर की नीचे की और बलीन्द्र ने बायी और की नीचे की दाढ़ ग्रहण की। अन्य देवों ने अन्यान्य अंगोपांगों की अस्थियां ले ली। तत्पश्चात् तीनों चिताओं के स्थान पर बड़े बड़े स्तूप बनाये और निर्वाण महोत्सव किया।

भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी

गर्भे दधानात्तप आचरद्यं पद्मावती श्रीमुनिसुव्रतोऽसौ ।
षट्काय संरक्षण दत्तचित्तस्तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥२०॥

गर्भ—अवस्था में आते ही जिनकी माता पद्मावती देवी ने तपका आचरण किया था और जिन्होंने षट्काय जीवों की रक्षा करने में चित्त लगाया था, ऐसे 'श्री मुनि सुव्रत स्वामी' भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं ॥२०॥

पूर्वभव

जंबू द्वीप के अपर विदेह में भरत नाम के विजय में चंपा नाम की सुन्दर नगरी थी। वहाँ सुरश्रेष्ठ नाम का प्रतापी राजा राज्य करता था। वह अत्यंत धर्मपरायण था।

एक समय नन्दन नाम के तपस्वी स्थविर चंपा नगरी में पधारे और उद्यान में ठहरे। मुनि का आगमन सुन राजा मुनि के दर्शनार्थ उद्यान में गया। वन्दना कर वह मुनि की सेवा में बैठ गया। मुनि ने उसे संसार की असारता का उपदेश दिया। मुनि का उपदेश सुनकर राजा को वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने राज्य वैभव का परित्याग कर मुनिव्रत ग्रहण किया। मुनि बनने के बाद कठोर तप किया और बीस स्थानों की आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। दीर्घकाल तक विशुद्ध संयम का पालन करके और अन्त समय में अनशन करके देह का त्याग किया वह प्राणत नामक दसवे स्वर्ग में महर्द्धिक देव बना।

तीर्थंकर भव

प्राणत देवलोक की आयु पूरी कर सुरश्रेष्ठ मुनि का जीव श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के दिन श्रवण नक्षत्र में राजगृही नगर के सुमित्र नाम के राजा की रानी पद्मावती की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। तीर्थंकर के गर्भ में आने को सूचित करने वाले चौदह महास्वप्न रानी ने देखे।

गर्भकाल की समाप्ति के बाद जेष्ठ कृष्णा अष्टमी के दिन श्रवण नक्षत्र में कूर्म लांछन वाले श्यामवर्णी पुत्र को महारानी ने जन्म दिया तीर्थंकर के जन्म से तीनों लोक में प्रकाश हुआ। इन्द्रादि देवों ने तीर्थंकर का जन्मोत्सव मनाया। माता पिता ने बालक का नाम 'मुनि सुव्रत' रखा। युवावस्था में मुनि सुव्रत का प्रभावती आदि श्रेष्ठ राज कन्याओं के साथ विवाह हुआ। प्रभावती रानी से मुनिसुव्रत के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम सुव्रत रखा। साढ़े सात हजार वर्ष की अवस्था में मुनि सुव्रत ने पिता का राज्य ग्रहण किया। १५ हजार वर्ष राज्य करने के बाद दीक्षा लेने का विचार किया। लोकान्तिक देवों ने भी निवेदन किया। इसके बाद भगवान ने वर्षीदान देकर और देव निर्मित अपराजिता नाम की शिबिका पर आरूढ होकर नील गुहा नाम के उद्यान में षष्ठ तप के साथ फाल्गुन कृष्णा १२ के दिन श्रवण नक्षत्र में दिवस के अन्तिम प्रहर में एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के समय भगवान् को मनपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ। तीसरे दिन भगवान् ने राजगृही के राजा ब्रह्मदत्त के घर खीर का पारणा किया। वहां पांच दिव्य प्रकट हुए।

ग्यारह महीने तक छद्मस्थ अवस्था में रहने के बाद भगवान् राजगृह के नील गुहा नाम के उद्यान में पधारे। वहां चंपक वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए भगवान् ने फाल्गुन कृष्णा द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र में केवल ज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रादि देवों न केवल ज्ञान महोत्सव किया और समवशरण की रचना की। समवशरण में विराजकर भगवान् ने धर्म देशना दी। धर्मदेशना सुनकर अनेक नर नारियों ने सम्यक्त्व श्रावक व्रत या महाव्रत ग्रहण किये। देशना के प्रभाव से इन्द्रादि १८ अठारह गणधर हुए। भगवान् के शासन में वरुण नाम का शासन देव और नरदत्ता नाम की शासन देवी हुई।

एक बार भगवान् विहार करते हुए भृगुकच्छ पधारे। वहां जितशत्रु राजा राज्य करता था। भगवान् की देशना सुनने के लिए राजा घोड़े पर चढ़कर आया। राजा अन्दर गया और घोड़ा बाहर खड़ा हो गया। घोड़े ने भी कान ऊंचे कर भगवान् का उपदेश सुना, उपदेश समाप्त होने पर गणधर ने भगवान् से पूछा भगवान्! इस समवशरण में किसने प्रतिबोध प्राप्त किया।

भगवान् ने उत्तर दिया जितशत्रु राजा के घोड़े ने धर्म प्राप्त किया है। जितशत्रु राजा ने

भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी

गर्भे दधानात्तप आचरद्य पद्मावती श्रीमुनिसुव्रतोऽसौ ।
षट्काय संरक्षण दत्तचित्तस्तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥२०॥

गर्भ-अवस्था में आते ही जिनकी माता पद्मावती देवी ने तपका आचरण किया था और जिन्होंने षट्काय जीवों की रक्षा करने में चित्त लगाया था, ऐसे 'श्री मुनि सुव्रत स्वामी' भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं ॥२०॥

पूर्वभव

जंबू द्वीप के अपर विदेह में भरत नाम के विजय में चंपा नाम की सुन्दर नगरी थी। वहाँ सुरश्रेष्ठ नाम का प्रतापी राजा राज्य करता था। वह अत्यंत धर्मपरायण था।

एक समय नन्दन नाम के तपस्वी स्थविर चंपा नगरी में पधारे और उद्यान में ठहरे। मुनि का आगमन सुन राजा मुनि के दर्शनार्थ उद्यान में गया। वन्दना कर वह मुनि की सेवा में बैठ गया। मुनि ने उसे संसार की असारता का उपदेश दिया। मुनि का उपदेश सुनकर राजा को वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने राज्य वैभव का परित्याग कर मुनिव्रत ग्रहण किया। मुनि बनने के बाद कठोर तप किया और वीस स्थानों की आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। दीर्घकाल तक विशुद्ध संयम का पालन करके और अन्त समय में अनशन करके देह का त्याग किया वह प्राणत नामक दसवे स्वर्ग में महर्द्धिक देव बना।

तीर्थंकर भव

प्राणत देवलोक की आयु पूरी कर सुरश्रेष्ठ मुनि का जीव श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के दिन श्रवण नक्षत्र में राजगृही नगर के सुमित्र नाम के राजा की रानी पद्मावती की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। तीर्थंकर के गर्भ में आने को सूचित करने वाले चौदह महास्वप्न रानी ने देखे।

गर्भकाल की समाप्ति के बाद जेष्ठ कृष्णा अष्टमी के दिन श्रवण नक्षत्र में कूर्म लांछन वाले श्यामवर्णी पुत्र को महारानी ने जन्म दिया · तीर्थंकर के जन्म से तीनों लोक में प्रकाश हुआ। इन्द्रादि देवों ने तीर्थंकर का जन्मोत्सव मनाया। माता पिता ने बालक का नाम 'मुनि सुव्रत' रखा। युवावस्था में मुनि सुव्रत का प्रभावती आदि श्रेष्ठ राज कन्याओं के साथ विवाह हुआ। प्रभावती रानी से मुनिसुव्रत के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम सुव्रत रखा। साढ़े सात हजार वर्ष की अवस्था में मुनि सुव्रत ने पिता का राज्य ग्रहण किया। १५ हजार वर्ष राज्य करने के बाद दीक्षा लेने का विचार किया। लौकान्तिक देवों ने भी निवेदन किया। इसके बाद भगवान ने वर्षीदान देकर और देव निर्मित अपराजिता नाम की शिबिका पर आरूढ होकर नील गुहा नाम के उद्यान में षष्ठ तप के साथ फाल्गुन कृष्णा १२ के दिन श्रवण नक्षत्र में दिवस के अन्तिम प्रहर में एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के समय भगवान् को मनपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ। तीसरे दिन भगवान् ने राजगृही के राजा ब्रह्मदत्त के घर खीर का पारणा किया। वहां पांच दिव्य प्रकट हुए।

ग्यारह महीने तक छद्मस्थ अवस्था में रहने के बाद भगवान् राजगृह के नील गुहा नाम के उद्यान में पधारे। वहां चंपक वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए भगवान् ने फाल्गुन कृष्णा द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र में केवल ज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रादि देवों ने केवल ज्ञान महोत्सव किया और समवशरण की रचना की। समवशरण में विराजकर भगवान् ने धर्म देशना दी। धर्मदेशना सुनकर अनेक नर नारियों ने सम्यक्त्व श्रावक व्रत या महाव्रत ग्रहण किये। देशना के प्रभाव से इन्द्रादि १८ अठारह गणधर हुए। भगवान् के शासन में वरुण नाम का शासन देव और नरदत्ता नाम की शासन देवी हुई।

एक बार भगवान् विहार करते हुए भृगुकच्छ पधारे। वहां जितशत्रु राजा राज्य करता था। भगवान् की देशना सुनने के लिए राजा घोड़े पर चढ़कर आया। राजा अन्दर गया और घोड़ा बाहर खड़ा हो गया। घोड़े ने भी कान ऊंचे कर भगवान् का उपदेश सुना, उपदेश समाप्त होने पर गणधर ने भगवान् से पूछा भगवान्! इस समवशरण में किसने प्रतिबोध प्राप्त किया।

भगवान् ने उत्तर दिया जितशत्रु राजा के घोड़े ने धर्म प्राप्त किया है। जितशत्रु राजा ने

पूछा भगवान् ! यह घोड़ा कौन है ? और उसकी आपके धर्म के प्रति श्रद्धा कैसे हुई ? उत्तर में भगवान ने घोड़े का पूर्वभव कह सुनाया । घोडे के पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनकर राजा ने उसे मुक्त कर दिया । भगवान् ने अन्यत्र बिहार कर दिया ।

अपना निर्वाणकाल समीप जानकर भगवान् सम्मेत शिखर पर पधारे । वहां एक हजार मुनियों के साथ अनशन ग्रहण किया । एक मास के अन्त में ज्येष्ठ कृष्णा नवमी के दिन श्रवण नक्षत्र में अवशेष कर्मो को खपाकर भगवान् मोक्ष में पधारे ।

मुणिसुव्वए णं अरहा वीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था । सम. २०

मुनि सुव्रत अर्हत् ऊंचाई में बीस धनुष्य ऊचे थे । तथा इनके पांचों कल्याणक श्रवण नक्षत्र में हुए थे (मुनि सुव्वयस्स सवणो । स्थानांग सूत्र ४११ ।)

भगवान के परिवार में ३०००० साधु [**मुनि सुव्वयस्स णं अरहओ पण्णासं अज्जिया साहस्सीओ होत्था** सम० ५०) मुनि सुव्रत भगवान् के पचास हजार साध्वियां थी । ५०० चौदह पूर्वधर १८०० अवधिज्ञानी, १५०० मन पर्ययज्ञानी, १८०० केवल ज्ञानी २००० वैक्रियलब्धिधारी एक हजार दो सो वादी, एक लाख ७२ हजार श्रावक एवं ३ लाख ५० हजार श्राविकाएं थीं ।

भगवान् ने कुमारावस्था में साढ़े सात हजार वर्ष, राज्य पद पर १५ हजार वर्ष एवं चारित्रावस्था में साढ़े सात हजार वर्ष व्यतीत किये । इस प्रकार कुल ३० हजार वर्ष की भगवान की आयु थी ।

२१–भगवान नमिनाथ

विप्राऽस्ति माता विजयः पिता च यस्य प्रभुः स नमिनाथसंज्ञः ।
सुराऽसुरेभ्योऽमितबोधदानात्तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥ २१ ॥

जिनकी विप्रा माता और पिता विजय थे, जिन्होंने सुर और असुरों को अपरिमित बोध दिया था। ऐसे "श्री नमिनाथ" संज्ञा वाले भगवान् भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं ॥ २१ ॥

पूर्व भव

जंबूद्वीप के पश्चिम महाविदेह के भरत विजय में कौशाम्बी नामकी नगरी थी। वहां का अधिपति सिद्धार्थ था। महाराजा सिद्धार्थ ने सुदर्शनमुनि से उपदेश सुनकर प्रव्रज्या ग्रहण की और कठोर तप कर तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में अनशन कर देह का त्याग किया और अपराजित नामके अनुत्तर विमान में महर्द्धिक देव बने।

तीर्थंकर भव

जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में मिथिला नामकी नगरी थी। वहां विजय नाम के दानेश्वरी प्रजा पालक राजा राज्य करते थे। उनकी 'वप्रा' नामकी शीलवती रानी थी। सिद्धार्थ मुनि का जीव देवलोक की तेतीस सागरोपम की आयु पूरी कर चवे और आश्विन मास की पूर्णिमा के दिन अश्विनी नक्षत्र में महारानी 'वप्रा' की कुक्षि में अवतरित हुए।

गर्भकाल के पूर्ण होने पर श्रावण कृष्णा अष्टमी के दिन अश्विनी नक्षत्र में भगवान ने रानी वप्रा की कुक्षि से जन्म लिया। भगवान् के जन्म से सर्वत्र आनंद छा गया। नरक के जीवों को क्षण भर शान्ति मिली। इन्द्रों ने उत्सव किया। महाराज विजय ने भी बालक का जन्मोत्सव किया।

जिस समय भगवान् गर्भ में थे उस समय शत्रुओं ने मिथिला को घेर लिया था। तब महारानी वप्रा ने महल पर चढ़कर शत्रुओं को देखा। गर्भ के प्रभाव से शत्रु पराजित होकर नमे

थे इसलिए बालक का नाम भी नमिनाथ रखा गया था। जन्म से अढाई हजार वर्ष के बीतने पर भगवान् ने पिता का राज्यग्रहण किया। भगवान् ने पांच हजार वर्ष तक राज्य का संचालन किया। इसके बाद अपने सुप्रभ नामके पुत्र को राज्य देकर भगवान् ने प्रवज्या लेने का निश्चय किया। छठ का तप करके देवनिर्मित देवकुरु नामकी शिबिका पर आरुढ़ होकर भगवान् सहस्राम्र उद्यान में आये। वहां आषाढ़ कृष्ण नवमी के दिन अश्विनी नक्षत्र में दिवस के पिछले प्रहर में एक हजार राजाओं के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। दूसरे दिन भगवान् ने वीरपुर के राजा दत्त के घर परमान्न से पारणा किया। नौ मास पृथ्वी पर विचरकर भगवान् पुनः कौशाम्बी के सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहां बकुल वृक्ष के नीचे प्रतिमा स्थित हो गये। मार्ग शीर्ष शुक्ल एकादशी के दिन अश्विनी नक्षत्र में भगवान ने केवल ज्ञान प्राप्त किया। भगवान को उस दिन षष्ठभक्त का तप था। भगवान का केवलज्ञान उत्सव इन्द्रों ने किया। समवशरण की रचना हुई। भगवान ने धर्म देशना दी। भगवान को देशना सुनकर कुंभ आदि १७ पुरुषों ने प्रव्रज्या ग्रहण की और गणधर पद प्राप्त किया। भगवान का शासनदेव भृकुटि और देवी गांधारी थी। भगवान ने अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध दे अन्यत्र विहार कर दिया।

इस प्रकार अढाई हजार वर्ष तक दीक्षित काल में भगवान् अनेक जीवों को प्रतिबोध देते रहे। अपना निर्वाण काल समीप जानकर भगवान समेत शिखर पर पधारे। वहां एक हजार मुनियों के साथ अनशन ग्रहण किया। एक मास के अन्त में वैशाख वदी दसमी के दिन अश्विनी नक्षत्र में मोक्ष गये।

णमी णं अरहा पन्नरस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था। सम० १५

नमि अर्हत् १५ धनुष ऊंचे थे। भगवान् नमिनाथ के पांचों कल्याणक अश्विनी नक्षत्र में हुए थे। (आसिणि णमिणो। स्थाना० ४११)

जिनकी माता का शिवादेवी और पिता का नाम समुद्र विजयजी था, वे 'श्री नमिनाथ प्रभु' जग में विख्यात हुए जिन्होंने जनता को हित के लिए श्रेष्ठ मुक्ति मार्ग का प्रतिपादन किया था, ऐसे ये तीर्थंकर प्रभु भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं ॥२१॥

णमी णं अरहा दस वाससहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जाव पहीणे। स्थानांग ७३५।

नमि अर्हत् दस हजार वर्ष को सर्वायु भोग कर सिद्ध बुद्ध यावत् मुक्त हुए।

भगवान् के विहार काल में बीस हजार साधु (नमिस्स णं अरहओ एक चत्तालीस अज्जिया-साहस्सीओ होत्था। सम० ४१) अरहंत नमिनाथ की इकतालीस हजार आर्याएं थी। ४५० चौदह पूर्वधर एक हजार छह सौ अवधिज्ञानी, एक हजार दो सौ साठ मनः पर्ययज्ञानी, एक हजार छह सौ केवल ज्ञानी, पांच हजार वैक्रिय लब्धि वाले, एक हजार वादलब्धि वाले, एक लाख सत्तर हजार श्रावक एवं तीन लाख अड़तालीस हजार श्राविकाएं हुई।

कुमारपद में अढाई हजार वर्ष, राज्य में पांच हजार वर्ष और चारित्र पर्याय में अढाई हजार वर्ष रहे इस प्रकार कुल आयु दस हजार वर्ष की थी (नमिस्स णं अरहओ कालगयस्स जाव सव्व दुक्खप्पहीणस्स पंचवास सहस्साइं चउरासीइं च वाससहस्साइं नव य वास सयाइं विइक्कंताइं दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ। कप्प सुत्त १८५)

अर्हत् नमि को मोक्ष गये पांच लाख चौरासी हजार नौ सौ अस्सीवां वर्ष चल रहा है।

२२-भगवान् नेमिनाथ

माता शिवा यस्य पिता समुद्रनामा जगत्यां स हि नेमिनाथः।
संदिश्य मुक्तेर्जनतां सुमार्ग. तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥२२॥

जिनकी माता का शिवादेवी और पिता का नाम समुद्र विजयजी था, वे "श्री नेमिनाथ प्रभु" जग में विख्यात हुए जिन्होंने जनता को हित के लिए श्रेष्ठ मुक्ति मार्ग का प्रतिपादन किया, था, ऐसे ये तीर्थंकर प्रभु भव्य जनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं ।। २२

पूर्व भव

धन धणवई सोहम्मे चित्तगई खयरांय रयणवई। माहिंदे अपराजिय पीयमइ आरणो तत्तो।१।
संखो जसमई मज्जा तत्तो अपराजिए विमाणम्मि। नेमि-राईमई चिय नवम भवे दोवि वन्दामि ॥२॥

अर्थ-प्रथम भव में धन और धनवती, द्वितीय भव में सौधर्म देवलोक, तृतीय भव में विद्याधर चित्रगति और रत्नवती चौथे भव में माहेन्द्र देवलोक, पांचवें में अपराजित और प्रीतिमती, छठे भव में आरण देवलोक, सातवं भव में शंख और यशोमती, आठवें भव में अपराजित विमान, नौवं भव में नेमिनाथ और राजोमती, इन दोनों अमर आत्माओं को वन्दन करता हूँ।

प्रथम और द्वितीय भव

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में अचलपुर नाम का रमणीय नगर था। वहाँ विक्रमधन नामका पराक्रमी राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम धारिणी था।

एक दिन रानी ने रात्रि का कुछ भाग जब शेष था तब स्वप्न में भ्रमर और कोकिल-गण से व्याप्त एवं मंजरो से परिपूर्ण आम्रवृक्ष देखा। उस आम्रवृक्ष का हाथ में लिये एक युवा पुरुष रानी से बोला-देवि ! यह आम्रवृक्ष तुम्हारे आंगन मे बोया जा रहा है। कुछ समय के बाद यही आम्रवृक्ष अन्य नौ स्थानों पर बोया जाकर उत्कृष्ट से उत्कृष्ट फल देने वाला होगा।" इस

प्रकार का स्वप्न देखकर महारानी जागृत हुई। उसने महाराजा के पास जाकर अपने स्वप्न का सारा वृत्तान्त कहा। महाराजा ने स्वप्न पाठकों को बुलाकर उसका फल पूछा। उत्तर में स्वप्न पाठकों ने कहा-महारानी एक पराक्रमी और यशस्वी पुत्र को जन्म देंगी किन्तु "यह आम्रवृक्ष नौ बार बोया जाकर नौ बार उत्तम से उत्तम फल देगा' इसका अर्थ हम नहीं समझ सके हैं। महारानी गर्भवती हुई। वह गर्भकाल में हित, मित और पथ्य आहार करती थी। गर्भकाल के पूर्ण होने पर महारानी ने सुन्दर सर्वांग-पूर्ण बालक को जन्म दिया। महाराजा ने बालक का जन्मोत्सव किया। जन्मोत्सव के अवसर पर राजा ने कैदियों को मुक्त किया और गरीबों को वस्त्रभोजन आदि का दान दिया। माता पिता ने बालक का नाम 'धन' रखा। धनकुमार पांच धाइयों के संरक्षण में बढ़ने लगा। उसे अच्छे कलाचार्य के पास शिक्षा के लिए रखा गया। धनकुमार ने अल्प समय में ही ७२ कलाओं में प्रवीणता प्राप्त कर ली। वह युवा हुआ।

उस समय कुसुमपुर नाम के नगर में सिंह नामका राजा राज्य करता था उसकी रानी का नाम विमलावती था। विमला रानी ने एक सुन्दर कन्या को जन्म दिया। उसका नाम 'धनवती' रखा गया। धनवती ६४ कलाओं में प्रवीण हुई। युवाकाल में धनवती का रूप स्वर्ग की अप्सरा को भी लज्जित करता था।

एक बार वसन्त क्रीड़ा के लिए धनवती अपनी सखियों के साथ उपवन में आई। इधर-उधर उपवन में घुमती हुई राजकुमारी 'धनवती' ने अशोक वृक्ष के नीचे बैठे हुए चित्रकार को देखा। चित्रकार के पास एक सुन्दर चित्रपट था। राजकुमारी चित्रकार के पास आई। कमलिनी नामकी एक सखी ने चित्रपट को चित्रकार से लेकर राजकुमारी को दिया। चित्रपट को देखकर राजकुमारी बोली हे चित्रकार! यह चित्र किसका है? ऐसा सुन्दर रूप तो देव को भी प्राप्य नहीं है तो सामान्य व्यक्ति को कैसे प्राप्त हो सकता है? चित्रकार ने कहा-देवी! यह काल्पनिक चित्र नहीं है किन्तु अचलपुर के राजा विक्रमधन के पुत्र 'धनकुमार' का है।

धनकुमार के रूप-यौवन की प्रशंसा सुनकर वह राजकुमारी मन ही मन उस पर मुग्ध हो गई। उसने चित्रपट चित्रकार से मांग लिया और उसे लेकर अपने राजमहल में चली गई। अब वह धनकुमार का निरन्तर चिन्तन करती अपना समय बिताने लगी।

इधर महाराजा सिंहराज ने अपने दूत के मुख से धनकुमार के रूप की प्रशंसा सुनकर अपनी पुत्री धनवती का विवाह धनकुमार से करने के लिए अपने दूत को विक्रमधन राजा के पास भेजा। राजा विक्रमधन के सिंहराज की प्रार्थना स्वीकार करली। तब सिंहराज ने अपनी पुत्री धनवती को विवाह करने के लिए विशाल सेना व धन वैभव के साथ भेजा। बड़े ठाठ से धनकुमार का राजकुमारी धनवती के साथ विवाह हो गया। पति पत्नी सुख पूर्वक रहने लगे।

एक बार धनकुमार अपनी पत्नी के साथ मज्जन क्रीड़ा के लिए एक सरोवर पर गया। वहाँ तृषा से आक्रान्त और ताप से मूर्च्छा खाकर पड़े हुए एक तपस्वी मुनि को देखा। धनकुमार ने तुरन्त उपचार करके मुनि की मूर्च्छा दूर की और उन्हें अपने नगर में ले गया। वहाँ सम्पूर्ण उपचार कर उन्हें स्वस्थ किया। मुनिराज का नाम मुनिचन्द्र था। मुनि मुनिचन्द्र ने धनकुमार को उपदेश दिया। मुनि का उपदेश सुन धनकुमार तथा धनवती को सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई। मुनिचन्द्र मुनि ने थोड़े समय नगर में विराजकर अन्यत्र विहार कर दिया। धनकुमार भी मुनि के बताए हुए मार्ग के अनुसार धर्म की आराधना करने लगे।

एक बार वसुन्धर नामके आचार्य का नगर के बाहर उद्यान में आगमन हुआ। नगरजनों के साथ धनकुमार भी अपनी पत्नी के साथ आचार्य के दर्शन के लिए गया। मुनिराज का उपदेश सुनकर धनकुमार को वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने अपने पुत्र जयंतकुमार को राजगद्दी पर स्थापित कर अपने भाई धनदत्त और धनदेव के साथ आचार्य के समीप प्रव्रज्या ग्रहण की। दीक्षा लेकर उन्होंने तप संयम की उत्कृष्ट आराधना की और अपने गुरु के पश्चात् अपने संघ के आचार्य बने। अन्त में एक मास का अनशन ग्रहण कर तीनों भाई और धनवती स्वर्गवासी हुए और सौधर्म देवलोक में इन्द्र के सामानिक देव बने।

तीसरा और चौथा भव–

भरत क्षेत्र के वैताढ्य पर्वत की उत्तर श्रेणी में सूरतेज नामका नगर था। वहाँ सूर नाम के खेचरों का चक्रवर्ती राजा राज्य करता था उसकी रानी का नाम विद्युन्मती था। धनकुमार का का जीव सौधर्म देवलोक का आयुष्य पूरा कर महारानी विद्युन्मती के गर्भ से पुत्र रूप से उत्पन्न

हुआ : पिता ने बालक का नाम चित्रगति रखा। चित्रगति ने कलाचार्य के पास रह कर समस्त कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया। वे युवा हुए।

इधर धनवती के जीवने भी वैतढय पर्वत की दक्षिण श्रेणी पर स्थित शिव मंदिर नगर के राजा अनन्तसिंह की रानी शशिप्रभा क उदर से कन्या के रूप में जन्म ग्रहण किया। इसका नाम रत्नवती रखा गया। रत्नवती भी बाल्यकाल को पार कर युवा हुई।

एक बार अनन्तसिंह राजा ने एक नैमित्तिक से पूछा इस रत्नवती का पति कौन होगा ? नैमित्तिक न कहा जो आपका खगरत्न छीन लेगा तथा जिस पर आकाश से पुष्पवृष्टि होगी, वही व्यक्ति इसका पति बनेगा।

उस समय 'चक्रपुर' नगर के राजा सुग्रीव की यशस्वती और 'भद्रा' नाम की दो रानियां थी। दोनों को क्रमश: 'सुमित्र' और 'पद्म' नाम के पुत्र थे। एक समय सोतैली माता भद्रा ने सुमित्र को जहर दे दिया। और वह भाग गई। उस समय आकाश मार्ग से चित्रगति जा रहा था। वह वहां पहुचा और उपचार कर सुमित्र का जहर उतार दिया इस कारण दोनों आपस में घनिष्ट मित्र बन गये। दोनों में प्रगाढ़ स्नेह हो गया। एक बार ये दोनों मित्र केवली के पास गये। वहां केवली से धर्म श्रवणकर चित्रगति नं श्रावक धर्म अंगीकार किया और घर आ गया।

एक समय अनंगसिंह के पुत्र कमल ने जो रत्नवती का भाई था, सुमित्र की बहन का अपहरण किया। जब यह बात चित्रगति को मालूम हुई तो वह तुरत अपनी सेना के साथ शिवमन्दिर गया और कमल को युद्ध में मार डाला। जब अनंगसिंह युद्ध के लिए चित्रगति के सामने आया तो चित्रगति ने अनंगसिंह के हाथ से तलवार छीन ली और उसे पराजित कर दिया। चित्रगति ने 'सुमित्र' को उसकी बहन लाकर दे दी। कालान्तर में सुमित्र ने मुनि का उपदेश सुनकर दीक्षा ग्रहण करली।

एक बार सुमित्र मुनि किसी वन में वृक्ष के नीचे ध्यान कर रहे थे। उस समय शिकार के लिए फिरते हुए सोतेले भाई पद्म ने सुमित्र मुनि को देख लिया। क्रोध से उसने मुनि की छाती में बाण मार कर उन्हें मार डाला। मुनि मरकर ब्रह्म देवलोक में गये और पद्म सर्पदंश से मरकर सातवी नरक में गया।

एक बार चित्रगति मुनिदर्शन के लिए गया। उस समय चित्रगति पर देवों ने आकाश से पुष्पवृष्टि की। उस अवसर पर महाराजा अनन्तसिंह अपनी पुत्री रत्नवती के साथ उपस्थित हुआ। रत्नवती चित्रगति के रूप को देखकर मुग्ध हो गई। अनंगसिंह ने नैमित्तिक की बात को सच होती देख 'रत्नवती' का विवाह चित्रगति के साथ कर दिया। दोनों पतिपत्नी सुख पूर्वक रहने लगे। पिता की मृत्यु के बाद चित्रगति राजा बना। मनोगति और चपलगति, जो पूर्वभव में धनदत्त और धनदेव के जीव थे वे इसके भाई बने। अन्त में चारों ने मुनिराज का उपदेश श्रवण कर दीक्षा ग्रहण की और कठिन तप करने लगे। चारों ने अन्तिम समय में अनशन ग्रहण किया और मरकर माहेन्द्र देवलोक में महर्द्धिक देव बने।

पांचवा और छठा भव

पश्चिम महाविदेह में पद्म नाम के विजय में सिंहपुर नाम का नगर था। वहां हरिनन्दी नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम प्रियदर्शना था। चित्रगति मुनि का जीव स्वर्ग से चवकर महारानी प्रियदर्शना के गर्भ से पुत्र रूप से जन्मा। माता पिता ने पुत्र का जन्मोत्सव किया और उसका अपराजित नाम रखा। इधर मनोगति और चपलगति ने भी प्रियदर्शना के उदर से जन्म ग्रहण किया। उनका क्रमशः सूर और सोम नाम रखा गया। कुमार अपराजित युवा हुए। राजा के प्रधान के पुत्र विमलबोध के साथ अपराजित की मैत्री हुई। दोनों सदैव साथ साथ रहा करते थे। एक बार दोनों मित्र विपरीत शिक्षा वाले घोड़े पर चढ़कर वन क्रीड़ा के लिए निकले। विपरीत शिक्षा वाले वे घोड़े कुमारों को दूर वन में ले गये। कुमार थक कर एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे। उस समय 'बचाओ बचाओ' कहता हुआ एक व्यक्ति कुमारों की शरण में आया और बचाव के लिए प्रार्थना करने लगा। कुमारों ने अभय वचन दिया। इतने में राजा के कुछ सैनिक कुमार के पास आये और उस व्यक्ति को मांगने लगे। कुमारों ने कहा—यह हमारे शरण में आया है और शरणागत की रक्षा करना हमारा धर्म है। इस पर वे सैनिक कुमारों के साथ युद्ध करने के लिये उद्यत हुए। कुमारों ने युद्ध में उन सैनिकों को परास्त कर दिया। अपने सैनिकों को परास्त होता हुआ देख महाराज कोशल उनके साथ युद्ध करने के लिए आये। कोशलराजा ने दोनों को पहचान लिया। ये मेरे मित्र राजा हरिनन्दी और उनके

मंत्री क पुत्र हैं, यह जानकर दोनों का वड़ा सन्मान किया और उन्हें अपने घर ले गया। कुछ समय के वाद कोशलराज की कन्या कनकमाला से अपराजित विवाह कर गुप्त रूप से अपने मित्र के साथ रात्रि में निकल गया। वे रात्रि में आग वढ़ते हुए कालिका देवी के मन्दिर के पास आये। वहां मंदिर से किसी स्त्री के रोने की आवाज आई। आवाज सुनकर दोनों कुमार मंदिर में गये। वहां नंगी तलवार के साथ एक विद्याधर स्त्री पर बलात्कार करने का प्रयत्न कर रहा था। कुमार ने खड्ग प्रहार कर विद्याधर को मूर्च्छित कर दिया। जब मूर्च्छा दूर हुई तो विद्याधर अपराजित कुमार पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपराजित को एक वृक्ष की चामत्कारिक मूली और मणि दी। कुमार ने मणि के प्रभाव से विद्याधर को स्वस्थ किया। विमलवोध को विद्याधर ने वेष परिवर्तन की गुटिका दी। जो स्त्री थी उसका नाम रत्नमाला था। रत्नमाला के पिता भी खोज करते करते वहां पहुचे। अपराजितकुमार के पराक्रम से प्रसन्न होकर रत्नमाला का विवाह उसके पिता ने अपराजित के साथ कर दिया। अपने श्वसुर से आज्ञा प्राप्त कर अपराजित कुमार मित्र के साथ आगे चले। रास्ते में चलते चलते कुमार अपराजित को वड़ी प्यास लगी। मंत्री पुत्र विमल-बोध कुमार के लिए पानी लाने के लिए सरोवर पर गया। जब वापस आया तो उस स्थान पर कुमार को नहीं देखा। वह घवरा गया और कुमार की इधर उधर खोज करने लगा। खोज करते करते मार्ग में उसे दो विद्याधर मिले। विद्याधरों ने मंत्री पुत्र विमलबोध से कहा भानु नाम के विद्याधर राजा की कमलिनी और कुमुदिनी नाम की दो कन्याओं का अपराजित कुमार के साथ विवाह कराने के लिए हम भानुराजा की आज्ञा से उसका अपहरण कर ले गये हैं। किन्तु वह कुमार तुम्हारे वियोग में वड़ा दुखी है। वह तुम्हारे विना विवाह नहीं करना चाहता। अतः हम तुम्हें ले जाने के लिये यहां आये है। विमलबोध यह सुनकर उन विद्याधरों के साथ हो गया। विमलवोध के आने आने पर राजा ने बड़ी धूम धाम से अपनी पुत्रियों का विवाह अपराजित कुमार के साथ कर दिया।

इसके वाद अपराजित कुमार अपने मित्र विमलवोध के साथ श्रीमन्दिर नाम के नगर में पहुंचा। वहां छुरे के प्रहार से घायल सुप्रभ नाम के राजा को मणि और जड़ी बूटी की सहायता से अच्छा कर दिया। राजा सुप्रभ कुमारों की इस सहायता से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने अपनी पुत्री रंभा का विवाह अपराजित कुमार के साथ कर दिया। अपराजित कुमार कुछ दिन वहां रह

कर आगे चला। चलते चलते वह कुण्डपुर नामके नगर में गया। वहां पर केवली से धर्म श्रवण कर उसने श्रावक व्रत अंगीकार किये। दोनों कुमारों को देखकर केवली ने यह भविष्यवाणी कही कि अपराजित कुमार का जीव आगामी काल में २२ वाँ तीर्थंकर होगा और विमल बोध उनका गणधर। इस भविष्यवाणी को सुनकर दोनों कुमार बड़े प्रसन्न हुए। दोनों मुनि को वन्दन कर आगे बढ़े।

जनानन्द नाम के नगर में जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम धारिणी था। रत्नवती के जीव ने माहेन्द्र कल्प से चवकर महारानी धारिणी के गर्भ से कन्या के रूप में जन्म ग्रहण किया। उसका नाम प्रीतिमती रखा गया। प्रीतिमती ने शीघ्र ही स्त्रियों की चौसठ कलाओं में निपुणता प्राप्त करली।

एकबार प्रीतिमती के रूप यौवन को देखकर महाराजा जितशत्रु ने पूछा पुत्री! तुम किस वर के साथ विवाह करोगी ? उत्तर में प्रीतिमती ने कहा—जो मुझ कला में जीतेगा मैं उन्हीं के साथ विवाह करूंगी। यह सुनकर राजा ने स्वयंवर की रचना की और इसके लिए दूर दूर देश के राजाओं को एवं राजकुमारों को आमंत्रित किया। निश्चित समय पर स्वयंवर मण्डप में अनेक राजा और राजकुमार उपस्थित हुए। अपराजित कुमार भी गुटिका के प्रभाव से वामन रूप बनाकर स्वयं वर मण्डप में उपस्थित हुआ। प्रीतिमती सुन्दर वस्त्राभूषण पहन कर स्वयंवर मण्डप में आई। वहां वीणा वादन में अपराजित कुमार ने प्रीतिमतो को जीत लिया। प्रीतिमती ने अपराजित-कुमार के गले में वर माला डाल दी। प्रीतिमती का अपराजित कुमार के साथ विवाह हो गया। अपराजितकुमार ने अपना असली रूप प्रकट किया और वे दोनों सुख पूर्वक रहने लगे।

एक समय जनानन्द नगर से महाराजा हरिनन्दी के दूत ने आकर अपराजित कुमार से कहा——राजकुमार! आपके माता पिता आपके वियोग में अत्यन्त दुखी हैं। आपकी खोज के लिए उन्होंने दूर दूर देशों में अपने दूतों को भेजा है। मैं भी आपकी खोज करते-करते यहां आया हू। अब आप स्वदेश चलने की कृपा करें।

यह सुनकर अपराजितकुमार तैयार हो गया और अपने श्वसुर की आज्ञा प्राप्त कर रत्नवती के साथ अपने नगर लोट आया। माता-पिता से मिसकर सुख पूर्वक रहने लगा।

एक बार अपराजित कुमार वन क्रीड़ा के लिए एक उपवन में गया। वहां एक अत्यन्त सुन्दर रूपवान श्रेष्ठी पुत्र को विलास करते देखा। दूसरे दिन उसने उसी उपवन में उसे मरा हुआ देखा। जीवन मरण की इस विचित्र लीला को देखकर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया उसने अपने दोनों भाइयों और प्रीतिमती पत्नी के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रव्रजित होकर संयम की आराधना करने लगे। अन्त में समाधिमरण पूर्वक मरकर ये चारों आरण नाम के स्वर्ग में उत्पन्न हुआ।

सांतवा और आठवां भव

हस्तिनापुर नाम का नगर था। वहां श्रीषेण नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम श्रीमती था। अपराजित कुमार के जीव ने आरण स्वर्ग से चवकर महारानी के उदर से जन्म ग्रहण किया। बालक का नाम शंख रखा गया। सूर और सोम नाम के पूर्व जन्म के दो भाई भी आरण देवलोक से चवकर महारानी श्रीमती के उदर में आये। जन्मने पर दोनों का नाम क्रमशः यशोधर और गुणधर रखा। विमलबोध का जीव भी आरण स्वर्ग से चवकर श्रीषेण राजा के मंत्री का पुत्र बना। उसका नाम मतिप्रभ रखा गया। पूर्व जन्म के संस्कार के कारण राजकुमार शंख की और मंत्री पुत्र मतिप्रभ की मैत्री हो गई।

एक बार शंखकुमार समरकेतु नाम के पल्लीपति के साथ युद्ध करने के लिए गया। उसे युद्ध में पराजित कर जब वापस लौट रहा था, उस समय मार्ग में एक वृद्धा स्त्री को रुदन करते देखा। वृद्धा के पास आकर शंख कुमार ने उसे पूछा वृद्धे ! तुम्हें क्या तकलीफ हैं ? क्यों रो रही हो ? उत्तर में वृद्धा ने कहा हे पुरुष श्रेष्ठ ! चंपा नगरी का राजा जितशत्रु है। उसकी रानी का नाम प्रीतिमती है। उसकी यशोमती नाम की एक सुन्दर कन्या है। उस कन्या ने हस्तिनापुर के राजकुमार शंख के साथ विवाह करने का निश्चय किया है। किन्तु उसके निश्चय की परवाह किये बिना मणिशेखर नाम का विद्याधर उसे बलात् उठा कर ले गया है और वह उसके साथ बलात् विवाह करना चाहता है। मैं यशोमती की धाय माता हूं। मैं भी उसके साथ थी किन्तु वह दुष्ट विद्याधर मुझे यहां छोड़ उसे उठा ले गया है।

वृद्धा के मुख से यह बात सुनकर शंख कुमार ने विद्याधर का पीछा किया। वह एक गुफा

में पहुंचा। मणिशेखर यशोमती के साथ जबर्दस्ती से विवाह करने की तैयारी कर रहा था। उसने विद्याधर को ललकारा। युद्ध में मणिशेखर हार गया। राजकुमारी यशोमती को लेकर शंखकुमार चंपा गया और उसने यशोमती को राजा को सौंप दिया। राजा यह देख बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने यशोमती का विवाह बड़ी धूम धाम से शंख कुमार के साथ कर दिया। शंखकुमार लौट कर अपने नगर आया। महाराजा श्रीषेण ने शंखकुमार को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण करली। दीक्षा ग्रहण कर श्रीषण मुनि को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। केवली श्रीषेण विहार करते हुए हस्तिनापुर पधारे। शंखराजा भी केवली को वन्दन करने गया। शंखराजा ने केवली से पूछा मेरा यशोमती पर इतना प्रेम क्यों है? उत्तर में श्रीषेण केवली ने उनके सारे पूर्व भवों का वर्णन किया और आगामी भव मे तुम २२ वें तीर्थंकर बनोगे यह भी भविष्यवाणी की। श्रीषेण केवली के मुख से अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनकर शंखराजा को वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने अपने दोनों भाइयों तथा यशोमती के साथ दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण कर शंख मुनि ने बीस स्थानों की आराधना कर तीर्थंकर नाम गोत्र का उपार्जन किया। अन्त में चारों ने अनशन किया। और मरकर वे अपराजित देवलोक में महर्द्धिक देव बने।

भगवान अरिष्टनेमि का जन्म

रघुवंश तथा यदुवंश प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता के आदि स्रोत रहे हैं। इन दो वंशों के चरित नायकों की जीवन गाथा से संस्कृत कवियों ने अपनी लेखनी को पवित्र और अमर बनाया है। रघुवंश में राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम और सीता जैसी महासती हुई। उसी प्रकार यादवकुल तिलक भगवान् अरिष्टनेमि, वासुदेव श्रीकृष्ण एवं राजीमती जैसी सतियों से यादव कुल हमेशा के लिए अमर बन गया है।

इसी यदुवंश में अंधक वृष्णि और भोजवृष्णि नाम के दो परम प्रतापी राजा हुए। अंधक वृष्णि शौर्यपुर के राजा और भोजवृष्णि मथुरा के राजा हुए।

महाराज अंधक वृष्णि के समुद्र विजय अक्षोभ, स्तिमित, सागर, हिमवान, अचल, धरण पूरण अभिचन्द्र और वसुदेव ये दस दशार्ह पुत्र थे। समुद्र विजय के बड़े पुत्र का नाम अरिष्टनेमि

था। भोजवृष्णि के एक भाई मृत्तिकावती नगरी में राज्य करते थे। भोजवृष्णि के पुत्र महाराजा उग्रसेन हुए। इनकी रानी का नाम धारिणी था।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी पचचित्ते होत्था, तं जहा चित्ताहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते जाव चित्ताहि परिनिव्वुए ॥ कप्प. १६१ ॥

उस काल उस समय अर्हत् अरिष्टनेमि पांच चित्रायुक्त थे–जैसे अर्हत् अरिष्टनेमि चित्रा नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत होकर गर्भ में आये यावत चित्रा नक्षत्र में वे परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरह अरिट्ठनेमी जे से वासाणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे कत्तियबहुले तस्स णं कत्तियबहुलस्स बारसीपक्खेणं अपराजियाओ महाविमाणाओ बत्तीसं सागरोवमट्ठितीयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे भारहे वासे सोरियपुरे नगरे समुद्दविजयस्स रन्नो भारियाए सिवाए देवीए पुव्वरत्तावरत्तकाल समयंसि जाव चित्ताहि गब्भत्ताए वक्कंते सव्वं तहेव सुमिणदंसण दविण संहरणाइयं एत्थ भणियव्वं ॥१६२॥ कप्पसुत्त ॥

अर्थ–उस काल उस समय अर्हत् अरिष्ट नेमि जब वर्षा ऋतु का चतुर्थमास, सातवां पक्ष अर्थात् कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष का समय आया तब कार्तिक कृष्णा द्वादशी के दिन बत्तीस सागरोपम आयुष्य वाले अपराजित नामक महाविमान से (शंख मुनि का जीव) च्यवकर इसी जम्बू द्वीप में भारतवर्ष के सोरियपुर नामक नगर में समुद्र विजय राजा की रानी शिवादेवी की कुक्षि में रात्रि के पूर्व और अपर भाग की सन्धि वेला में अर्थात् मध्यरात्रि में चित्रा नक्षत्र का योग होने पर गर्भरूप में उत्पन्न हुए। शेष स्वप्न दर्शन धन्य धान्य की वृद्धि आदि का सारा वर्णन भगवान महावीर के वर्णन के अनुसार समझना चाहिये।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी जे से वासाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावणसुद्धे तस्स णं सावणसुद्धस्स पंचमी पक्खेणं नवण्हं मासाणं जाव चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अरोगारोगं पयाया। जम्मणं समुद्दविजयाभिलावेणं नेतव्वं जाव तं होऊणं कुमारे अरिट्ठनेमि नामेणं ॥१६३॥कप्पसुत्त॥

उस काल उस समय वर्षाऋतु का प्रथम मास, द्वितीय पक्ष अर्थात् श्रावण मास का शुक्ल

पक्ष आया उस समय श्रावण शुक्ला पंचमी के दिन नौ मास और साढ़े सात दिन परिपूर्ण हुए यावत मध्यरात्रि को चित्रा नक्षत्र का योग होते ही आरोग्य युक्त माता ने आरोग्य पूर्वक अर्हत् अरिष्टनेमि को जन्म दिया। भगवान् क जन्मते ही समस्त दिशाएं प्रकाश से प्रकाशित हो उठी। नरक के जीव भी कुछ समय के लिए शान्ति का अनुभव करने लगे। भगवान की माता का सूतिका कर्म करने के लिए ५६ दिग्कुमारिकाएं आई: इन्द्रों के आसन विचलित हुए। वे अपनी-अपनी ऋद्धि के साथ अपने-अपने विमानों मे बैठकर भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए। सौधर्म आदि इन्द्र भगवान को उठाकर मेरु पर्वत पर ले गये। वहां उन्हें सभी तीर्थों के जल से नहलाया और जन्माभिषेक किया। जन्माभिषेक के बाद भगवान को माता की गोद में रख दिया और भगवान् को प्रणाम कर वे अपने-अपने स्थानों पर चले गये। माता पिता ने भी भगवान का जन्मोत्सव किया। जब भगवान गर्भ में थे तब उनकी माता ने स्वप्न में अरिष्ट--रत्नमयी चक्रधारा देखी थी इसलिए बालक का नाम अरिष्टनेमि रखा। अरिष्टनेमि देव देवियों एवं धात्रियों के संरक्षण में बढ़ने लगे। शैशव अवस्था को पारकर युवा हुए।

एक समय भगवान अरिष्टनेमि घूमते हुए श्रीकृष्ण के शस्त्रागार में पहुंच गये। शस्त्रागार का संरक्षक अरिष्टनेमि को वासुदेव कृष्ण के शस्त्रों का परिचय देते हुए उन्हें दिखाने लगा। शस्त्रों का निरीक्षण और परीक्षण करते हुए उनकी दृष्टि सारंग धनुष पर पड़ी। वे धनुष के पास पहुच कर उसे उठाने लगे। धनुष को उठाते देख शस्त्रागार का संरक्षक बोला-कुमारवर! यह धनुष वासुदेव श्रीकृष्ण का है। यह बड़ा भयंकर और शक्तिशाली धनुष है। इसे श्रीकृष्ण के सिवा कोई उठा नहीं सकता। आप इसे उठाने का व्यर्थ प्रयत्न न करे। उठाते समय आपके ऊपर गिर गया तो अनिष्ट हो जाएगा। संरक्षक की बात सुन अरिष्टनेमि हंस पड़े। उन्होंने संरक्षक की बात पर ध्यान न दे उसे सहज में उठा लिया और कमलनाल की भांति झुका कर प्रत्यंचा चढ़ाई और टंकार भी की। इस टंकार को सुनकर संरक्षक दल कांप उठा। शस्त्रागार का संरक्षक विस्फारित नेत्रों से देखता ही रह गया। सारंग धनुष को उठाने के बाद उनकी दृष्टि पांचजन्य शंख पर पड़ी भगवान ने उसे भी उठाया और बड़ी अदा के साथ फूंका। पांचजन्य शंख की आवाज सुनकर पृथ्वी कांप उठी। नगर के लोग सहसा इस कर्णवेधी आवाज को सुनकर घबरा गये। इधर भगवान् सुदर्शन चक्र को भी उठा कर घुमाने लगे। फिर गदाएं और खड्ग चलाये। जिनके विषय

में सभी को मालूम था कि श्रीकृष्ण के सिवा उन्हें उठाने और चलान में कोई समर्थ नहीं है।

पांचजन्य की आवाज और शार्ङ्ग धनुष की टंकार सुनकर समस्त यादवों में खलबली मच गई। बलराम भागे हुए श्रीकृष्ण के पास आये और भयभीत हो श्रीकृष्ण से कहने लगे–कृष्ण! यह कैसी आवाजें आ रही हैं। अभी-अभी हमने शार्ङ्ग धनुष की टंकार और पांचजन्य की आवाज सुनी है। कोई नया वासुदेव तो पैदा नहीं हो गया? श्रीकृष्ण स्वयं चकित थे। वे तुरंत अपने साथी शक्तिशाली यादव कुमारों के साथ शस्त्रागार में पहुंचे। पहरेदार भयभीत थे। घबराये हुए पहरेदारों को देखकर पूछा मेरे शस्त्रागार में कौन है? पहरेदारों ने कहा–स्वामी! आपके शस्त्रागार में कुमार अरिष्टनेमि हैं। मना करने पर भी उन्होंने आपके तमाम शस्त्रों को उठाया और चलाया है। यह सुनते ही कृष्ण शस्त्रागार में पहुचे। श्रीकृष्ण को अपने सामने देख अरिष्ट-नेमि बोले भाई! आपके शस्त्रागार के संरक्षक कह रहे थे कि इन शस्त्रों को आपके सिवा अन्य कोई उठा नहीं सकता, किन्तु मुझ इसमें कोई विशेषता नहीं मालुम हुई। मैंने तो इनका बड़ी सरलता से उपयोग किया। भ० अरिष्टनेमि के इस अतुल बल को देखकर श्रीकृष्ण कुछ विचार में पड़ गये। उन्हें लगने लगा कहीं यह कुमार मेरा प्रतिद्वन्दी तो नहीं बनेगा। इसकी शक्ति की पुनः परीक्षा करनी चाहिए। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा कुमार अरिष्टनेमि! तुमने मेरे समस्त शस्त्रों का सहज ही में प्रयोग किया किन्तु मेरी इस भुजा को झुका दो तो मानूँ कि तुम सचमुच शक्तिशाली हो। यह कहकर श्रीकृष्ण ने अपनी भुजा लंबी करदी। अरिष्टनेमि ने सहज में उसे झुका दिया। इसके बाद अरिष्टनेमि बोले भ्रात! तनिक मेरी इस लंबी भुजा को तो आप झुका दो। श्रीकृष्ण भी तैयार हो गये और अरिष्टनेमि की भुजा को पकड़कर पूरी ताकत से उसे झुकाने लगे। अरिष्टनेमि ने अपनी भुजा को ऊंचा किया तो स्वयं कृष्ण भुजा पर लटक गये किन्तु उसे नमा नहीं सके। श्रीकृष्ण ने अपने अजेय बलशाली भाई अरिष्टनेमि को बड़े स्नेह से गले लगाया और उनके अतुल बल की खूब प्रशंसा की।

भगवान अरिष्टनेमि के इस अतुल बल पराक्रम को देखकर श्रीकृष्ण अत्यन्त चिन्तित हो उठे। उनके मन मे कई प्रकार की शंका-कुशंकाएं उठने लगी। वे महल में आकर सोचने लगे यदि अरिष्टनेमि इतना शक्तिशाली है तो कहीं समस्त भरत खण्ड को अपने आधीन करने की लालसा

तो उसके हृदय में जागृत नहीं हो जायगी ? इतने में कुलदेवी ने आकर कहा वासुदेव कृष्ण भगवान अरिष्टनेमि २२ वें तीर्थंकर हैं। वे धर्म तीर्थ का प्रवर्तन कर तीनों लोकों पर आधिपत्य करने वाले महान पुरुष हैं। वे राज्य प्राप्ति के लिए नहीं किन्तु जगत का उद्धार करने के लिए जन्में हैं। यह कह कर देवी अन्तर्धान हो गई।

देवी से यह बात सुनकर श्रीकृष्ण की चिन्ता कम हो गई। किन्तु फिर विचार आया मैं सोलह हजार स्त्रियों के साथ भोग भोगता हूं और अरिष्टनमि अखण्ड ब्रह्मचारी है। इसी कारण उसका बल प्रबल है और वह अजेय है। यदि उसका विवाह हो जाय तो मेरा बल प्रयोग उस पर सफलता प्राप्त कर सकता हूँ। यह सोचकर उन्होंने किसी भी तरह से अरिष्टनेमि का विवाह करन का निश्चय किया। इस कार्य के लिए उन्होंने सत्यभामा को सहायक बनाया। सत्यभामा को बुलाकर कहा—प्रिये ! कुमार अरिष्टनेमि युवा है फिर भी अविवाहित हैं। उसके माता पिता भी कुमार को विवाहित देखने के लिए बड़े लालायित है और उनका विवाह करने के लिए प्रयत्नशील रहते है। किन्तु कुमार उनकी इस बात पर ध्यान ही नहीं देते। वह विवाह को बंधन मानते है। दुनिया क्या मानती होगी कि कृष्ण जैसे अर्द्ध चक्रवर्ती का भाई अविवाहित ही रह गया। किसी ने एक लड़की भी नहीं दी। तुम चाहो तो उन्हें विवाह के लिए राजी कर सकती हो। मुझे रात दिन यही चिन्ता बनी रहती है।

सत्यभामा ने कहा—स्वामी ! आप चिन्ता न करें। वसन्तोत्सव के अवसर पर हम हर तरह देवरजी को विवाह के लिए राजी करने का प्रयत्न करेंगी।

जिसकी प्रतीक्षा हो रही थी वह वसन्तोत्सव भी समीप आ गया। यादव कुमार और रंगरसिया श्रीकृष्ण रैवतगिरि पर अपनी रानियों के साथ पहुँच गये। उस समय रैवतगिरि पर सर्वत्र वनश्री खिल रही थी। नये नये फूलों व पत्तों से सुशोभित वृक्ष समस्त अलकारों से सजी हुई षोडशी की तरह शोभा पा रहे थे। निसर्ग की सर्वोत्तम वनश्री से सुशोभित रैवतगिरि पर यादवगण खुलकर क्रीड़ा करने लगे। यादव कुमारों की अपनी अपनी प्रियतमाओं के साथ क्रीड़ा ऐसी जान पड़ती थी मानो रति के साथ कामदेव ने आज इस स्वभाव सुन्दर गिरिराज को अपना क्रीड़ा स्थल बनाया है।

सब के आग्रह पर और अपने भ्राता श्रीकृष्ण की आज्ञा को शिरोधार्य कर भगवान अरिष्ट-नेमि भी रैवतगिरि पर पहुँचे। किन्तु उन्हें इस रागरंग में कोई अभिरुचि नहीं थी। वे एकान्त में वृक्ष की शीतल छाया में बैठकर संसार की विचित्रता का विचार करने लगे।

सत्यभामा की दृष्टि एकान्त में बैठे हुए कुमार अरिष्टनेमि पर पड़ी। अच्छा अवसर देख सत्यभामा अपनी सहेलियों के साथ उनके पास पहुँच गई। वस्तुतः यह सारा आयोजन कुमार अरिष्टनेमि को लक्ष्य करके ही किया गया था। अवसर पाकर सत्यभामा अरिष्टनेमि से बोली-देवरजी, सभी कुमार तो अपनी अपनी प्रियतमाओं के साथ घूम रहे हो और आनन्द मना रहे हैं और तुम अकेले यहाँ बैठे क्या सोच रहे है। क्या यह भी आत्म साधना का समय है? आपकी इस रसहीन उदासीनता से हमारा सारा उत्सव चौपट हो गया है। जीवन की ऐसी घड़ियाँ बार बार नहीं आतीं। मैं जानती हूँ आपके अकेलेपन का कारण। आपको एक योग्य सहचरी की आवश्यकता है। क्या यह बात सच है? सत्यभामा की इस मोहदशा पर कुमार अरिष्टनेमि को हँसी आ गई। वे सोचने लगे मानव की कितनी अज्ञानता है कि वह अपने हिताहित का भोग विलास की चकाचौंध में जरा भी विचार नहीं करता। जिस देवदुर्लभ मानव देह से मनुष्य अव्याबाध मोक्ष सुख की प्राप्ति कर सकता है उसी अमूल्य देह को भोग की भट्टी में झोंक कर नष्ट कर रहा है। मानव की इससे बढ़कर और क्या मूर्खता हो सकती है? कुमार मानव की इस मोह दशा पर हँस रहे थे किन्तु सत्यभामा ने इस हँसी को कुमार की विवाह विषयक सम्मति मान ली। उसने सहसा यह घोषणा कर दी कि अरिष्टनेमि विवाह के लिए सहमत हो गये हैं। इस घोषणा से कृष्ण को ही प्रसन्नता नहीं हुई। समस्त यादव परिवार में आनन्द और खुशी की लहर दौड़ गई। इस खुशी में यादवों ने खूब उत्सव मनाया और वे अपने अपने घर लौट आये। भाभी की इस अचानक घोषणा से कुमार अरिष्टनेमि अवाक् हो गए। वे कुछ कहना चाहते किन्तु इस मामले में उनकी बात कोई भी नहीं सुनता। श्रीकृष्ण ने अरिष्टनेमि के द्वारा विवाह की स्वीकृति का वृतान्त समुद्र विजय तथा शिवादेवी से कहा। उन्हें भी यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा-अरिष्टनेमि के लिए योग्य कन्या खोजने का काम भी आप ही का है। आप ही इस जिम्मेदारी को पूरा कीजिए। कृष्ण ने यह जिम्मेवारी अपने उपर ले ली।

महाराजा भोजकवृष्णि के पुत्र उग्रसेन उस समय मिथिला में राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम धारिणी था। धारिणी ने कंस और अतिमुक्तक नाम के पुत्रों को और राजोमती नामकी कन्या को जन्म दिया। अपराजित विमान से च्वकर यशोमती के जीव ने राजोमती के रूप में जन्म लिया। राजीमती अत्यन्त सुन्दर सुशील और सर्वगुण सम्पन्न राजकुमारी थी।

अह सा रायवरकन्ना सुसीला चारुपेहिणी।
सव्वलक्खण संपन्ना, विज्जुसोयामणिप्पभा (उत्त. अ. २२ गा. ७)

उसकी कान्ति बिजली की तरह देदीप्यमान थी। राजोचित लाड़प्यार से उसका शैशवकाल बीतने लगा वह शैशवकाल को पार कर युवती हुई। माता पिता योग्यवर की चिन्ता करने लगे। वे चाहते थे कि राजीमती जैसी सुशील तथा सुन्दर है उसके लिए वैसा ही वर मिलना चाहिए उनकी दृष्टि में सबसे उपयुक्त वर कुमार अरिष्टनेमि थे किन्तु अरिष्टनेमि बचपन से ही वैराग्य रंग में रंगे हुए थे यादवों के भोग विलास उन्हें अच्छे नहीं लगते थे। कुमार की इस त्यागवृत्ति से उग्रसेन को चिन्ता हो रही थी कि कहीं राजीमती का विवाह उसके अननुरुप वर से न करना पड़े।

सत्यभामा भी यही चाहती थी कि मेरी बहन राजीमती का विवाह कुमार अरिष्टनेमि से हो। उसने अपने स्वामी कृष्ण के सामने प्रस्ताव रखा। कृष्ण को भी यह प्रस्ताव उचित लगा। वे स्वयं समुद्र विजय के पास गये और राजोमती के लिए अपना प्रस्ताव रख दिया। समुद्र विजय ने स्वीकृति दे दो।

कन्या की मांग करने के लिए श्रीकृष्ण स्वयं महाराज उग्रसेन के घर गये। कृष्ण के आगमन से महाराज उग्रसेन को बड़ी खुशी हुई। उन्होंने श्रद्धा और भक्ति से श्रीकृष्ण का राजोचित सम्मान किया। कुशल क्षेम सम्बन्धी वार्तालाप के बाद श्रीकृष्ण ने महाराज उग्रसेन से कहा-महाराज मैं आपकी गुणवती कन्या राजमती का विवाह कुमार अरिष्टनेमि से करना चाहता हूं। मुझे विश्वास है कि आप मुझे निराश नहीं करेंगे। राजा उग्रसेन अरिष्टनेमि के गुणों की प्रशंसा सुन चुके थे और यही चाहते थे कि राजीमती का विवाह अरिष्टनेमि से हो। श्रीकृष्ण के मुख से यह

बात सुनते ही उग्रसेन की प्रसन्नता की सीमा न रही । वे हृदय में उमड़ते हुए प्रसन्नता के समुद्र को रोकते हुए बोले वासुदेव ! आपने तो मेरे मन की ही बात कही । आप जैसे सम्बन्धी और अरिष्टनेमि जैसे जमाई तो तीनो लोक में खोजने पर भी नहीं मिल सकते । यह मेरा सौभाग्य है कि आपने मुझे इसके योग्य समझा है । किन्तु वासुदेव कृष्ण ! मेरी एक शर्त है । श्रीकृष्ण ने कहा वह क्या ? महाराज उग्रसेन बोले—आप कुमार को लेकर विवाह के लिए सपरिवार यहां पदार्पण करें । कृष्ण ने यह शर्त मंजूर करली । विवाह का शुभ मूहूर्त श्रावण शुक्ला षष्ठी (सप्तमी) का निश्चित किया । श्रीकृष्ण द्वारवती लौट आये ।

श्रीकृष्ण के लौटते ही महाराज समुद्र विजय ने विवाह की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं । सभी यादवों को आमंत्रण भेजे गये । द्वारिका नगरी नववधू की तरह सजाई गई । जगह जगह बाजे बजने लगे और मंगलगीत गाये जाने लगे ।

वासुदेव श्रीकृष्ण अपने लघु भ्राता अरिष्टनेमि की विशाल बारात लेकर मथुरा की ओर चल पड़े । अश्व, हाथी और शिविकाओं से सुशोभित बारात जहाँ ठहरती वहाँ एक छोटी सी नगरी बस जाती । बारात बड़ी तेजी के साथ बढ़ती हुई मथुरा के पास पहुँची ।

महाराज उग्रसेन भी बारात का स्वागत करने के लिए आतुर थे । वे चाहते थे कि बारात का स्वागत ऐसा हो कि द्वारिका के महारथी भी एक बार दांतों तले अंगुली दबाने लगे । इसके लिए उन्होने अपूर्व तैयारी करली थी । लग्न वेला समीप आ रही थी, राजमहल के प्रांगण में राजकुल की नव वधूएं कलश कुंकुम अक्षत लिए मंगलगान करती हुई खड़ी थी । पुरोहित भी लग्न वेदिका के पास यथा स्थान बैठ थे । वेदिका विवाह की मंगलमय सामग्री से सजी थी ।

यादवकुल शिरोमणि अरिष्टनेमि का रथ लग्न मण्डप में पहुँचने के लिए आगे बढ़ रहा था । रथ में बैठे हुए श्यामवर्णी नेमिकुमार का रूप कामदेव को भी लज्जित करता था । सिर पर मुकुट भुजाओं में भुजबन्ध, कानों में कुण्डल आजानुबाहु में सुन्दर चाप । मानो इन्द्र अपने सर्वाधिक सुन्दर रूप में अवनि पर उतर आया हो । वे अकेले ही सारथी के साथ रथ पर बैठे हुए थे, किन्तु महल के निकट पहुँचते ही शहनाइयों और गीतों की आवाज को भेदते हुए पशुओं के हृदय-विदारक

चीत्कार शूल की तरह चुभे। कुछ क्षण के बाद शहनाई के बजाय केवल पशुओं की चीत्कार ही चीत्कार सुनाई देने लगी। वे सिहर उठे। हृदय करुणा से आर्द्र हो गया। उन्होंने सारथी से पूछा–

कस्स अट्ठा इमे पाणा एए सव्वे सुहेसिणो।
वाडेहिं पंजरेहिं च सन्निरुद्धा य अच्छहिं ? ॥१६॥

ये सभी प्राणी सुख को चाहने वाले हैं। इन्हें बाड़ों और पिंजरों में किस लिए बन्द किये हैं ? सारथी ने कहा–

अह सारही तओ भणई एए भद्दा उ पाणिणो।
तुज्झं विवाहकज्जंमि भोयावेउं बहु जणं ॥१७॥ उत्त.

इन सब निर्दोष जीवों को आपके विवाह कार्य में बहुतों को भोजन कराने के लिए बन्द किया है।

सोऊण तस्स वयणं बहुपाणिविणासणं॥
चिन्तेइ से महापण्णे साणुक्कोसे जिए हिऊ ॥१८॥

बहुत से प्राणियों के विनाश होने की सारथि की बात सुनकर जीवों पर करुणा रखने वाले महाप्राज्ञ नेमिकुमार सोचने लगे।

जइ मज्झ कारणा एए हम्मंति सुबहू जिया
न मे एयं तु निस्सेसं परलोगे भविस्सइ ॥१९॥

"यदि मेरे कारण से बहुत से जीव मारे जायेंगे तो यह कार्य मेरे लिए परलोक में कल्याणकारी नहीं होगा।" मैं इन पशुओं के शव पर सुख का महल खड़ा नहीं करूँगा। उसी क्षण नेमिकुमार ने सारथी से कहा–सारथी ! जाओ ! बाड़े का द्वार खोलकर इन पशुओं को मुक्त कर दो। मैं इन पशुओं की बलिवेदी पर सेहरा नहीं बांध सकता। सारथी ने नेमिकुमार के आदेश से बाड़े के द्वार खोल दिये। द्वार खुलते ही उन्मुक्त मन से प्रसन्नता की किलकारियों करते हुए पशु-पक्षी इधर-उधर भागने लगे। पशुओं को उन्मुक्त हो भागते देख अरिष्टनेमि अपार प्रसन्नता का अनुभव करने लगे। सारथी के इस कार्य पर प्रसन्न होकर नेमिकुमार ने अपने समस्त आभूषण कुण्डल कन्दोरा आदि सारथी को प्रदान कर दिये। उन्होंने अपने रथ को विवाह किये

बिना ही शौर्यपुर की ओर चलाने का आदेश दे दिया। भगवान् शौर्यपुर लौट आये ।

भगवान् को लौटता देख एक दूत दौड़ा हुआ लग्न मण्डप के पास पहुंचा। उसने महाराज उग्रसेन से कहा—स्वामी ! नेमिकुमार विवाह करने से इनकार करके आधे मार्ग से ही लौट गये ।

क्यों ? महाराज उग्रसेन ने घबराते हुए हृदय से प्रश्न किया।

दूत ने कहा—महाराज ! भोजन शाला के समीप बन्धे हुए पशुओं की चीत्कारों ने उनके हृदय को भारी आघात पहुँचाया। उन्होंने सारथी को आदेश देकर सभी पशुओं को बन्धन मुक्त किया और अपन रथ को शौर्यपुर की ओर मोड़ दिया। यह बात सुनते ही चहल पहल रुक गई। शहनाई के स्वर शिथिल पड़ गये। महाराज उग्रसेन और महारथी कृष्ण अपने अपने शीघ्रगामी वाहन पर आरुढ़ होकर घटना स्थल पर पहुँचे। समुद्र विजय भी वहाँ आये। नेमिकुमार के रथ को रोका और उन्हें समझाने लगे। उन्हें बहुत कुछ समझाया किन्तु नेमिनाथ अपने निश्चय पर अटल रहे। उनके दृढ़ वैराग्य व अटल तर्क के सामने वे सभी महारथी निरुत्तर थे। अन्त में निराश होकर अपने अपने स्थान लौट आये। भगवान् नेमिनाथ बारात छोड़कर अपने महल लौट आये और दीक्षा की तैयारी करने लगे।

भगवान् के सहसा लौट जाने के समाचार सुनकर राजोमती मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ीं। महाराज उग्रसेन और महारानी की आंखों में श्रावण के बादलों की तरह आंसू गिर रहे थे। वे अपनी लाड़लो पुत्री को धैर्य बन्धाते हुए कहने लगे-बेटी-हमने राजकुमार नेमि को बहुत समझाया किन्तु उसने हमारी एक भी बात नहीं सुनी। उनके अटल वैराग्य और युक्तियुक्त वचन के सामने हमारी एक भी नहीं चली। उन्होंने दीक्षा लेने का विचार कर लिया है। अब उनके निश्चय को कोई भी नहीं बदल सकता। अब तो उन्हें भूल जाने में ही भलाई है। मगर चिन्ता न करना। हम तुम्हारे लिए किसी दूसरे राजकुमार की खोज करेंगे। राजमती बोली-यह आप क्या कह रहे हैं। मेरा विवाह तो नेमिकुमार से हो चुका है। अब मैं उन्हें छोड़कर अन्य से कदापि विवाह नहीं करूंगी। मेरा और उनका तो अनेक भव का नाता है, राजीमती की बात सुनकर माता बोली-पुत्री ! अभी तो तुम्हारा नेमिकुमार के साथ विधिवत् लग्न नहीं हुआ। तुम्हें अपने जीवन का अन्य साथी चुनने का अब भी समय है। तुम अपने हठाग्रह को छोड़ दो। इस सब

घटना को भूलकर सुख पूर्वक रहो। हम तुम्हारे लिए अवश्य ही सुन्दर राजकुमार लावेंगे और उसके साथ विवाह कर तुम्हें सुखी करेंगे।

राजीमती ने कहा-तात ! मेरा विवाह तो कभी का हो चुका है। अब लग्न सस्कार और विधि का क्या प्रयोजन है ? ये तो केवल बाह्य दिखावे हैं। राजकुमार नेमि मेरे है और मैं उनकी हूँ। भव-भव की प्रीति आज कैसे तोड़ूं। बस हमारा विवाह अमर है।

पुत्री ! नेमिकुमार तो दीक्षा लेंगे। क्या उनके पीछे तुम भी ऐसी ही रहोगी।

राजीमती–माताजी, जब वे दीक्षा लेंगे तो मैं भी दीक्षा लूंगी। पति को राह पर चलना ही पत्नी का वास्तविक धर्म है।

राजीमती के इस दृढ विचार को कोई बदल नहीं सका। अब वह भी नेमिकुमार के मार्ग पर चलने के लिए कृत निश्चय हो गई। वह अपना सारा समय धार्मिक आचरणों में बिताने लगी।

राजीमती के सुन्दर रूप पर अरिष्टनेमि के लघु भ्राता रथनेमि मुग्ध थे। उन्होंने एक दूती द्वारा सुन्दर से सुन्दर बहुमूल्य उपहार भेजकर राजीमती को कहलाया कि भले ही अरिष्टनेमि ने तुम्हें त्याग दिया हो किन्तु मैं तुम्हें अपनाने को तैयार हू। प्रत्युत्तर में राजीमती ने रथनेमि को कहा–

'कुलवान् पुरुष उच्छिष्ट का सेवन नहीं करते। यह तो कौवों एवं कुत्तों का काम है।' इन उपदेश पूर्ण वाक्यों से रथनेमि की अक्ल ठिकाने आई और उन्होंने भी भ० अरिष्टनेमि के साथ दीक्षा लेने का विचार किया।

भ. अरिष्टनेमि की दीक्षा

अरहा अरिट्ठनेमी दक्खे जाव तिन्नि वाससयाइं अगारवासमज्झे वसित्ता णं पुणरवि लोयंतिएहिं जीयकप्पिएहिं देवेहिं तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव दायं दाइयाणं परिभाएत्ता जे से वासाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावणसुद्धे तस्स णं सावणसुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं पुव्वण्ह काल समयंसि उत्तरकुराए सीयाए सदेवमणुयासुराए परिसाए अणुगम्ममाणमग्गे जाव बारवईए नगरीए मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव रेवय उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ

उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ, सीयं ठावित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोय करेइ, करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एग देवदूसमादाय एगेणं पुरिससहस्सेणं सद्धिं मुण्डे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥१६४॥

अर्हंत् अरिष्टनेमि दक्ष थ यावत् वे तीन सौ वर्षो तक कुमार अवस्था में गृहवास में रहे। उसके पश्चात जिनके कहने का आचार है ऐसे लौकान्तिक देवों ने आकरके उनसे प्रार्थना की, संसार का कल्याण करने के लिए प्रव्रज्या ग्रहण करें, इत्यादि कथन जो पूर्व तीर्थंकरों के वर्णन में आ गया हैं, यहां भी कहना चाहिए। यावत् अरिष्टनेमि ने एक वर्ष तक दान दिया।

जब वर्षाऋतु का प्रथम मास द्वितीय पक्ष अर्थात् श्रावण मास का शुक्ल पक्ष आया। उस श्रावण शुक्ला छठ के दिन पूर्वाह्न के समय जिनके पीछे देव, मानव और असुरों की मण्डली चल रही है, ऐसे अरिष्टनेमि उत्तरकुरा नामक शिविका में बैठकर यावत् द्वारिका नगरी के मध्य-मध्य में होकर निकलते हैं। निकलकर जिस तरफ रैवत नामक उद्यान हैं वहां आते हैं। आकर के उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे शिबिका को खड़ी रखते हैं। खड़ी रखकर शिविका से उतरते हैं। उतरकर अपने ही हाथों से आभरण माला अलंकारों को उतारते हैं। उतार कर अपने ही हाथों से पंचमुष्ठि लोच करते हैं। लोच करके, पानी रहित, षष्ठ भक्त करके चित्रानक्षत्र का योग आते ही एक देवदूष्य वस्त्र को लेकर हजार पुरुषों के साथ मुण्डित होकर गृहवास को त्यागकर अन-गारत्व को स्वीकार करते है।

भगवान अरिष्टनेमि के प्रव्रजित होते ही उन्हें आशिर्वाद देते हुए श्रीकृष्ण बोले—

वासुदेवो य णं भणइ लुत्तकेसं जिइंदियं।
इच्छियमणोरहे तुरियं पावेसु तं दमीसरा ॥२५॥

नाणेणं दंसणेणं च चरित्तेण तहेव य।
खन्तीए मुत्तीए वड्ढमाणो भवाहि य ॥२६॥

एवं ते रामकेसवा दसारा य बहू जणा।
अरिट्ठनेमिं वन्दित्ता अइगया बारगापुरिं।२७॥

लुंचित केशवाले जितेन्द्रिय भगवान को वासुदेव आदि कहने लगे कि हे दमीश्वर ! आप शीघ्र ही इच्छित मनोरथ अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करो। हे महाभाग ! आप ज्ञान से, दर्शन, से, चारित्र से, तप से क्षमा से और निर्लोभता से सदा बढ़ते ही रहो।

इस प्रकार वे केशव और दशार्ह आदि अनेक मनुष्य भ० अरिष्टनेमि को वन्दना करके द्वारिका नगरी में आ गये।

भगवान के साथ उनके लघुभ्राता रथनेमि दृढनेमि आदि हजार राजाओं ने दीक्षा ग्रहण की उस दिन भगवान ने छठ की तपस्या की। दूसरे दिन गोष्ठ में वरदत्त ब्राह्मण के घर छठ का पारणा परमान्न से किया तत्पश्चात भगवान ने अन्यत्र विहार कर दिया।

अरहा णं अरिट्ठनेमी चउप्पन्नं राइंदियाइं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे तं चेव सव्वं जाव पणपन्नइमस्स राइंदियस्स अंतरावट्टमाणे जे से वासाणं तच्चे मासे पचमे पक्खे अस्सोय बहुले तस्स णं अस्सोयबहुलस्स पन्नरसीपक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे उप्पि उज्जित सेल-सिहरे वेउपायवस्स अहे अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं चित्ता नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स जाव अणंते अणुत्तरे जाव सव्वलोए सव्व जीवाणं भावे जाणमाणे पासमाणे विहरइ ॥१६५॥

अर्हत् अरिष्टनेमि चौपन रात्रि-दिन ध्यान में रहे। उन्होंने शरीर के लक्ष्य को छोड़ दिया। शारीरिक वासना छोड़ दी। इत्यादि सभी जो पूर्व आ चुका है, यहां भी समझ लेना चाहिए। अर्हत् अरिष्टनेमि के इस प्रकार ध्यान में रहते हुए पचपनवां रात्रि दिन आ गया। जब वे पचपनवें रात्रि दिन में संचरण कर रहे थे तब वर्षा ऋतु का तृतीय मास पांचवा पक्ष अर्थात् आश्विन कृष्णा अमावस्या के दिन अपराह्न में उज्जयंत शैल शिखर (रैवताचल पर्वत) पर वेत के वृक्ष के नीचे निर्जल अष्टम भक्त का तप किए हुए थे। इसी समय चित्रा नक्षत्र का योग आने पर ध्यान में रहते हुए उन्हें अनन्त यावत् उत्तम केवल ज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न हुआ अब वे समस्त द्रव्यों और उनकी सम्पूर्ण पर्यायों को जानते देखते हुए विचरने लगे।

भगवान को केवलज्ञान उत्पन्न होते ही ६४ इन्द्र और अनेक देव देवियां भगवान के समीप उपस्थित हुए। देवों ने केवलज्ञान उत्सव मनाया। समवसरण की रचना हुई। भगवान के केवलज्ञान की सूचना मिलते ही श्रीकृष्ण वासुदेव और द्वारिका के प्रजाजन समवसरण में पहुंचे। भगवान ने रेवतगिरि पर समवसरण के बीच बिराज कर प्रवचन किया। प्रवचन सुनकर वरदत्त आदि दो हजार राजाओं ने प्रवज्या ग्रहण कीं। भगवान ने चतुर्विध संघ की स्थापना की।

भगवान अरिष्टनेमि की दीक्षा का समाचार राजीमती को भी मिला। वह नेमिकुमार के प्रति अपने अटूट स्नेह बन्धन का विचार कर रही थी। विचार करते-करते उसे जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ उसने देखा-मेरा और भगवान् का प्रेम संबंध पिछले आठ भवों से चला आ रहा है। इस नौवें भव में भगवान् ने संयम ले लिया है तो मुझे भी संयम लेना चाहिए।

माता पिता को पूछकर राजीमती अपनी सात सौ सखियों के साथ भगवान् की सेवा में पहुँची और प्रव्रज्या ग्रहण की। श्रीकृष्ण ने राजीमती का दीक्षा का उत्सव किया। थोड़े समय में राजीमती बहुश्रुत हो गई।

एक बार राजीमती साध्वी पर रथनेमि मुनि फिर आसक्त हो गये। किन्तु राजीमती ने उपालंभ भरे शब्दों में उपदेश देकर उसे पुन: संयम में स्थिर किया।

भगवान् अपने विशाल संघ के साथ ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भव्यों का कल्याण करने लगे।

राजीमती साध्वी बनकर संयम की उत्कृष्ट रूप से साधना करने लगी। फलस्वरूप उसके समस्त घनघाति कर्म क्षीण हो गये। भगवान् के मोक्ष पधारने के चौदह दिन पूर्व वह सिद्ध बुद्ध हो गई।

राजीमती की कुल आयु ९०१ वर्ष की थी। वह ४०० वर्ष कुमारावस्था में एक वर्ष संयम लेकर छद्मस्थ अवस्था में और पांच सौ वर्ष केवली अवस्था में रही थीं।

भगवान् अरिष्टनेमि ने अनेक स्थलों पर विहार कर यादवकुमारों को राजाओं एवं श्रेष्ठियों को प्रतिबोध दिया। भगवान के उपदेश से अठारह हजार साधु हुए वरदत्त आदि ग्यारह गणधर

भगवान पार्श्वनाथ

श्री पार्श्वनाथो भवसिन्धुपारं, यियासुराशारहितान्मुनीन्द्रान् ।
चिन्तामणिर्दुःख विनाशनेच्छुस्तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥२३॥

"श्री पार्श्वनाथ प्रभु" संसार समुद्र से पार जाने की इच्छा रखने वाले और सभी मुनियों के लिये जो कामना रहित हैं, चिंतामणि के समान है, जो दुःखों को नाश करने की शक्ति रखते हैं भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं ॥२३॥

पूर्व भव

पोतनपुर नगर में अरविंद नाम का राजा राज्य करता था। उनकी रानी का नाम रतिसुन्दरी था। महाराजा अरविंद के विश्वभूति नाम का पुरोहित था। उसकी स्त्री का नाम अनुद्धरा था। विश्वभूति के कमठ और मरुभूति नाम के दो पुत्र थे। कमठ का विवाह वरुणा के साथ और मरुभूति का विवाह वसुन्धरा के साथ हुआ था। कमठ स्वभाव से ही कठोर और कुटिल प्रकृति का था। मरुभूति इसके विपरीत अत्यन्त सरल और धार्मिक वृत्ति का था।

कालान्तर में विश्वभूति ने कमठ को अपने घर का भार सौंपा और स्वयं प्रव्रजित होकर तप साधना करने लगा। अन्त में समाधि पूर्वक मरकर देवलोक में गया। अनुद्धरा भी अपने पति के प्रव्रजित होने के पश्चात धार्मिक जीवन व्यतीत करने लगी। अन्त में वह भी मृत्यु को प्राप्त हुई। माता-पिता की मृत्यु से दोनों भाइयों के मन शोक संतप्त रहे। कालान्तर में ये भी माता-पिता के वियोग के दुःख को भूलकर अपने अपने कार्य में लग गये।

एक बार पोतनपुर नगर में हरिश्चन्द्र नाम के आचार्य का आगमन हुआ। मरुभूति उनके दर्शन के लिए गया। उपदेश सुनकर उसने श्रावक व्रत अंगीकार किये। संसार में रहते हुए भी विरक्तसा जीवन बिताने लगा। मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा अत्यन्त रूपवती थी। कमठ उस पर मुग्ध था। धीरे धीरे कमठ ने वसुन्धरा को जाल में फँसा कर अपनी प्रेमिका बना लिया।

मरुभूति को अपनी पत्नी के व्यभिचार का पता लग गया। उसने पत्नी को बहुत समझाया

किन्तु जब वसुन्धरा ने अपना दुराचार नहीं छोड़ा तो मरुभूति ने कमठ और वसुन्धरा के दुराचार की शिकायत राजा के समक्ष की। कमठ की इस व्यभिचारी वृत्ति से राजा अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। कमठ को बुलाकर उसका पुरोहित पद छीन लिया, उसे उल्टे मुंह गधे पर बिठाकर सारे नगर में फिरवाया और नगर से निकाल दिया। कमठ क्रोध से जलता हुआ एक तापस आश्रम में पहुँचा। वहां उसने तापसी दीक्षा ग्रहण की और उग्र तपश्चर्या करने लगा। उसकी कठोर तपश्चर्या से आश्रमवासी बड़े प्रभावित हुए। धीरे धीरे नगर भर में यह चर्चा होने लगी कि कमठ बडा तपस्वी बन गया है। मरुभूति को भी जब यह सूचना मिली तो उसे इस बात पर बड़ी खुशी हुई कि अब मेरा भाई सुधर गया है और आत्म साधना में अपना समय बिताने लगा है। उसके हृदय में अपने भाई के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई और वह कमठ के दर्शन के लिए गया। कमठ को वन्दन कर अपने अपराध की क्षमा माँगने लगा। किन्तु मरुभूति को देखकर कमठ अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने पास में पड़ी हुई शिला उठाकर मरुभूति के माथे पर जोरों से दे मारी। शिला की चोट से मरुभूति की तत्काल मृत्यु हो गई। वह मरकर विन्ध्यगिरि की पर्वतमाला में हथनियों का यूथपति बना। कमठ की स्त्री वरुणा भी पति के बुरे कार्य से शोक करके मरी और उसी अटवी में यूथपति की प्रिय हथिनी बनी।

तृतीय और चतुर्थ भव

एक बार पोतनपुर के महाराजा महल की अटारी में बैठकर आकाश की ओर देख रहे थे। आकाश विविध रंगी बादलों से शोभायमान हो रहा था। उस समय जोरों से आंधी चली और वे बादल बिखर गये आकाश से बादलों को इस तरह बिखरते देख उन्हें अपना जीवन भी असार और नश्वर लगने लगा। उन्होंने अपने पुत्र महेन्द्र को राज्य दिया और वे समन्तभद्र आचार्य के समीप दीक्षित हो गये। दीक्षा लेकर उन्होंने आगम शास्त्र का अध्ययन किया और तपश्चर्या करते हुए एकाकी विचरने लगे।

एक समय अरविंदमुनि सागरदत्त नामक सार्थवाह के काफिले के साथ विहार कर रहे थे। रास्ते में सागरदत्त श्रेष्ठी ने एक तालाब के किनारे पडाव डाला। अरविंद मुनि भी एक तरफ

बैठकर ध्यान करने लगे। उस समय मरुभूति हाथी अपनी हथनियों के साथ जलक्रीड़ा करने सरोपर आया। पानी में खूब किलोल कर वापिस चला। सरोवर के किनारे पड़ाव को देखकर वह उसी तरफ झपटा। कइयों को पैरों तले रौंदा और कइयों को सूंड में पकड़ कर फेंक दिया। लोग प्राण लेकर इधर उधर भागने लगे। अरविंद मुनि हाथी के उपद्रव के बावजूद भी ध्यान में स्थिर रहे। हाथी उन पर भी झपटा किन्तु मुनि को देखते ही वह सहसा रुक गया। मुनि के तेज से हाथी की क्रूरता जाती रही। वह मुनि के सन्मुख खड़ा हो उन्हें अनिमेष दृष्टि से निहारने लगा।

अरविंदमुनि ने अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर हाथी का पुर्वजन्म देखा और हाथी से कहा गजराज! मैं पोतनपुर का राजा अरविंद हूँ। मैं प्रव्रजित होकर मुनि बन गया हूँ। तुम मेरे पुरोहित विश्वभूति के पुत्र मरुभूति हो। तुम्हारे भाई का नाम कमठ था। कमठ के शिला प्रहार से तुम्हारी मृत्यु हो गई और तुम मरकर इस वन में हथनियों के यूथपति गजराज बने हो। तुम धार्मिक वृत्ति के होने पर भी आर्तध्यान के कारण तिर्यंच योनि में उत्पन्न हुए। कमठ की पत्नी वरुणा भी मरकर तुम्हारी प्रिय हथिनी हुई है। अरविंद मुनि के मुख से अपना पूर्व जन्म सुनकर हाथी चौंका और वह पूर्व जन्म की घटना को याद करने लगा। याद करते करते उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसने अपना पूर्व भव देखा और उसे अरविंदमुनि की सब बातें सत्य प्रतीत हुई। वह मुनि के चरणों में झुक गया। मुनि ने उसे श्रावक धर्म का उपदेश दिया। मुनि का उपदेश सुनकर वह श्रावक बन गया। अब वह सूखा घास खाता और सूर्य की गरमी से तपा पानी पीता। नवकार मंत्र का स्मरण करता हुआ ब्रह्मचर्य पूर्वक अपना समय बिताने लगा। सूखा घास खाने से उसका शरीर दुर्बल हो गया।

एक दिन हाथी पानी पीने के लिए सरोवर पर गया और वहां दलदल में फँस गया। उसने निकलने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु निकल नहीं सका।

उधर कमठ के उस हत्या के काम से सभी आश्रमवासी नाराज हो गये और उसे तापस आश्रम से निकाल दिया। वह भटकता हुआ मरकर कुक्कुट सर्प बना। वह सर्प संयोगवश उधर से निकला और दल दल में फँसे हुए गजराज को देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने गजराज को डँस लिया, सर्प का सारा विष गजराज के शरीर में व्याप्त हो गया। अपना मृत्युकाल समीप जान-

कर हाथी ने अनशन किया और नवकार मंत्र का स्मरण करते हुए अपने प्राण त्याग दिये। वह वहां से मरकर सहस्त्रार कल्प में महर्द्धिक देव बना। वरुणा का जीव भी मरकर दूसरे देवलोक में देवी रूप में जन्मा। पूर्वभव के स्नेह के कारण वह सहस्त्रार देवलोक में उत्पन्न हुए मरुभूति देव के साथ भोग विलास करती हुई सुख पूर्वक समय बिताने लगी।

कमठ का सर्प जीव मरकर पांचवे नरक में १७ सागरोपम की आयु वाला नारकी हुआ।

चौथा और पांचवा भवः—

पूर्य विदेह के सुकच्छ विजय में तिलका नामकी नगरी थी। उस नगरी का राजा विद्युतवेग था। वह खेचरों का राजा था। उसकी रानी का नाम कनकतिलका था। वह अत्यन्त रूपवती होने के साथ-साथ गुणवतो भी थी। मरुभूति देव का जीव सहस्त्रार कल्प से चवकर महारानी कनकतिलका के उदर में जन्मा। गर्भकाल के पूर्ण होने पर रानी ने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। उसका नाम किरणवेग रखा। युवा होने पर पद्मावती आदि अनेक सुन्दर राजकुमारियों के साथ उसका विवाह हुआ। कुछ समय के बाद विद्युत्वेग ने किरणवेग को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की। राज्य करते हुए किरणवेग के भी एक सुन्दर पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम किरणतेज रखा। किरणतेज भी युवा हुआ।

एक बार सुरगुरु नाम के आचार्य का आगमन हुआ। मुनि का उपदेश सुन किरणवेग को वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने किरणतेज को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की और आत्म साधना करने लगा। एक बार किरणवेग मुनि एक वन में ध्यान कर रहे थे। उस समय कमठ का जीव पांचवे नरक से निकल कर उसी वन में अजगर बना। मुनि को देखकर उसके मन में वैर जागृत हुआ। वह मुनि को निगल गया। समभाव से किरणवेग मुनि मरकर अच्युत नामक बारहवें स्वर्ग में उत्पन्न हुए। वे जम्बूद्रुमावर्त नामक विमान में २२ सागरोपम की स्थिति वाले महद्धिक देव हुए।

कमठ का जीव अजगर योनि में दावाग्नि में जलकर मरा और छठी नरक भूमि तम प्रभा [illegible] में उत्पन्न हुआ।

छठा और सातवां भवः—

जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह क्षेत्र में सुगन्ध विजय में अश्वपुर नाम का नगर था। वहां वज्र-वीर्य नाम क राजा राज्य करते थे। उसकी रानी का नाम लक्ष्मीवती था। किरणवेग मुनि का जीव अच्युत स्वर्ग से चवकर महारानी लक्ष्मीवती की कूख में जन्मा। गर्भ काल के पूर्ण होने पर बालक का जन्म हुआ और उसका नाम वज्रनाभ रखा गया। वज्रनाभ युवा हुआ। युवावस्था में उसका सुन्दर राजकुमारियों के साथ विवाह हुआ। कुछ काल के बाद वज्रवीर्य राजा वज्रनाभ को राज्य देकर स्वयं प्रव्रजित हो गये। वज्रनाभ को भी कुछ समय के बाद एक पुत्र हुआ। उसका नाम चक्रायुध रखा गया। जब वह बड़ा हुआ तो वज्रनाभ ने उसे राजगद्दी पर स्थापित कर दिया और वे क्षेमंकर मुनि के समीप प्रव्रजित हो गये।

कमठ का जीव लम्बे समय तक नरक का दुःख भोगकर सुकच्छ विजय के ज्वलनगिरि के भयंकर जंगल में कुरंग नाम का भील बना। वह भील वन के प्राणियों के साथ अत्यन्त क्रूरता का वर्ताव करता था।

एक समय मुनि वज्रनाभ उसी वन में सूर्य की आतापना लेते हुए ध्यान कर रहे थे। वह कुरंग भील उधर से निकला। मुनि को देखकर उसके मन में वैर भाव जागृत हुआ। उसने मुनि पर वाण चलाया। वाण के प्रहार से मुनि वज्रनाभ की मृत्यु हो गई। वे समभाव पूर्वक मरे और ग्रैवेयक विमान में ललितांग देव बने।

कुरंग भील चिरकाल तक पाप का सेवन कर मरा और सातवें नरक में उत्पन्न हुआ।

आठवाँ भवः—

जम्बू द्वीप के पूर्व विदेह में पुराणपुर नामका नगर था। वहां वज्रबाहु नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम सुदर्शना था। वज्रनाभ मुनि का जीव देव आयु पूरी कर सुदर्शना रानी की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। उसका नाम सुवर्णबाहु रखा गया। युवा होने पर सुवर्णबाहु का विवाह हुआ। अपने पुत्र को सब तरह से योग्य जानकर राजा वज्रबाहु ने सुवर्णबाहु को राज्य दिया और स्वयं दीक्षित हो गये।

एक समय सुवर्णबाहु घोड़े पर सवार होकर घूमने निकला। घोड़ा बेकाबू हो गया और उसे एक भयानक जंगल में ले गया। वहां एक सुन्दर सरोवर के किनारे गालव ऋषि का आश्रम था राजा विश्राम लेने के लिए वहां गया। गालव ऋषि के आश्रम में पद्मा नामकी राजकुमारी रहती थी। वह अत्यन्त रूपवती थी। राजकुमारी पद्मा के सौंदर्य को देखकर राजा सुवर्णबाहु मुग्ध हो गया। उसने पद्मावती के साथ विवाह करने का निश्चय किया। वह गालव ऋषि के पास गया और अपनी इच्छा व्यक्त की। गालवऋषि ने प्रसन्नता पूर्वक पद्मा राजकुमारी का विवाह सुवर्णबाहु के साथ कर दिया। कुछ दिन आश्रम में ही रहकर अपनी पत्नी पद्मा के साथ पुन: राजधानी लौट आया।

न्याय पूर्वक राज्य का संचालन करते हुए सुवर्णबाहु की आयुध शाला में चक्र रत्न उत्पन्न हुआ। चक्ररत्न की सहायता से राजा ने छह खण्डों पर विजय प्राप्त की। चौदह दिव्य रत्नों से संपन्न सुवर्णबाहु चक्रवर्ती बन और एक छत्र राज्य करने लगे।

एकवार जगन्नाथ तीर्थकर का पुराणपुर में आगमन हुआ। सुवर्णबाहु परिवार सहित उनके दर्शन करने गया। वहां उपदेश सुनकर उसे जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। अपने पूर्वभव को देखकर उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया और वे पुत्र को राज्य देकर प्रव्रजित हो गये। प्रव्रज्या लेकर कठोरतप किया और तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया।

कमठ का जीव नरक से निकल कर क्षीरवणा नाम के वन में सिंह रूप से उत्पन्न हुआ। वह भ्रमण कर रहा था। दो दिन से उसे आहार नहीं मिला था। उधर सुवर्ण बाहु मुनि उस वन से गुजर रहे थे। सिंह की दृष्टि उन पर पड़ी और वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। वह मुनि पर झपटा। मुनि तत्काल अनशन कर और अपना अन्तिम समय जान समभाव पूर्वक आत्म चिन्तन करने लगे। सिंह ने मुनि को मार डाला और उन्हें खा गया। मुनि समाधि पूर्वक देह त्याग कर महाप्रभ नाम के विमान में महर्द्धिक देव हुए। सिंह भी अनेक जीवों की हिंसा कर मरा और चौथे नरक में नारक रूप से उत्पन्न हुआ।

भगवान पार्श्व का जन्म

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए पंचविसाहे होत्था तं जहा विसा-

हाहिं चुए, चइत्ता गब्भं वक्कंते १ विसाहाहिं जाए २ विसाहाहिं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए ३ विसाहाहिं अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाण दंसणे समुप्पण्णे ४ विसाहाहिं परिनिव्वुए ५ ॥ (कप्पसुत्त १४८)

उस काल उस समय में पुरुपादानीय अर्हन्त पार्श्व पंच विशाखा वाले थे। अर्थात् उनके पांचों कल्याणकों में विशाखा नक्षत्र था। जैसे—१-पार्श्व अरिहन्त विशाखा नक्षत्र में च्युत हुए, च्युत होकर गर्भ में आये २-विशाखा नक्षत्र में जन्म ग्रहण किया। ३ विशाखा नक्षत्र में मुण्डित होकर घर से बाहर निकले अर्थात गृहस्थ से अनगार बने ४-विशाखा नक्षत्र में उन्होंने अनन्त अनुत्तर निर्व्याघात आवरण रहित सम्पूर्ण श्रेष्ठ केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त किया एवं विशाखा नक्षत्र में ही परिनिवृत हुए मोक्ष प्राप्त किया। ५।

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्त बहुलस्स चउत्थीपक्खेणं पाणयाओ कप्पाओ वीसं सागरोवमट्ठितीयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वाणारसीए नयरीए आससेणस्स रन्नो वामाए देवीए पुव्वरत्तावरत्त कालसमयंसि विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अहारवक्कंतीए भववक्कंतीए सरीरवक्कंतीए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कते।

उस काल और उस समय में पुरुपादानीय अर्हत् पार्श्व जब ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास प्रथम पक्ष अर्थात् चैत्र मास का कृष्ण पक्ष था उस कृष्णा चतुर्थी के दिन बीस सागरोपम की आयु पूर्ण कर प्राणत नामक कल्प से च्यवनकर इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष की वाराणसी नगरी में अश्वसेन राजा की रानी वामादेवी की कुक्षि में, जब रात्रि का पूर्व भाग समाप्त हो रहा था और पिछला भाग प्रारंभ होने जा रहा था, उस सन्धि वेला में अर्थात मध्यरात्रि में विशाखा नक्षत्र का योग होते ही गर्भ रूप में उत्पन्न हुए।

पासे णं अरहा पुरिसादाणीए तिण्णाणोवगए यावि होत्था। चइस्सामि त्ति जाणइ चयमाणे न जाणइ, चुएमित्ति जाणइ तेणं चेव अभिलावेणं सुविणदंसणविहाणेणं सव्वं जाव नियगं गिहं अणुप्पविट्ठा जाव सुहं सुहेणं तं गब्भं परिवहइ ॥

उस समय पुरुपादानीय अर्हत् पार्श्व तीन ज्ञान से युक्त थे। मैं यहाँ से च्युत होऊंगा, यह

जानते थे। च्युत होते हुए नहीं जानते थे। किन्तु च्युत हो गया हूँ यह जानते थे। यहां से लेकर भगवान् महावीर के प्रकरण में कथित स्वप्न से सम्बन्धित सारा वर्णन समझना चाहिए यावत् माता अपने गृह में प्रवेश करती हैं और सुख पूर्वक गर्भ को धारण करती है।

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जे से हेमन्ताणं दोच्चे मासे तच्चे पक्खे पोस बहुले तस्स णं पोस बहुलस्स दसमी पक्खेणं नवण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं य राइंदियाणं विइक्कंताणं पुव्वरत्तावरत्त कालसमयंसि विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोग मुवागएणं अरोगा अरोगं पयाया जम्मणं सव्वं पासाभिलावेणं भाणियव्वं जाव तं होउ णं कुमारे पासे नामेणं (कप्पसुत्त १५१)

उस काल उस समय हेमन्त ऋतु का द्वितीय मास, तृतीय पक्ष अर्थात् पौष मास की कृष्ण पक्ष की दशमी के दिन नौ माह पूर्ण होने पर और साढ़े सात रात दिन व्यतीत होने पर मध्य रात्रि के समय विशाखा नक्षत्र में आरोग्य वाली माता ने आरोग्य पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व नामक पुत्र को जन्म दिया।

भगवान् के जन्मते ही समस्त दिशाएं आलोकित हो उठी। जन समुदाय में स्वभाव से ही आनन्द का वातावरण निर्मित हो गया। तीनों लोक में प्रकाश फैल गया। नरक के जीवों को क्षणभर के लिए अपूर्व सुख की प्राप्ति हुई। आकाश देव दुंदुभियों से गूंज उठा। मेघ सुगंधित जलधारा बरसाने लगे। मंद सुगन्धित पवन रजकणों को हटाने लगे। इन्द्रों के आसन चलायमान हुए। अवधि ज्ञान से भगवान् के जन्म को जानकर उनके हर्ष का पार नहीं रहा। वे आसन से नीचे उतरे और भगवान् की दिशा में सात आठ कदम चलकर दाहिने घुटनों को नीचा कर और बायें घुटने को खड़ा कर दोनों हाथ जोड़कर भगवान् की स्तुति करने लगे। उसके बाद अपने-अपने आज्ञाकारी देवों को भगवान् के जन्मोत्सव में शरीक होने की सुघोषा घंटा द्वारा सूचना दी। छप्पन दिक्कुमारिकाओं ने माता वामा के पास आकर उनका सूतिका कर्म किया और मंगलगान करती हुई माता का मनोरंजन करने लगी।

सौधर्मेन्द्र पालक विमान में बैठकर भगवान के पास आया और भगवान् तथा उनकी माता को प्रणाम कर स्तुति करने लगा। स्तुति करलेने के बाद बोला 'मैं सौधर्मेन्द्र हूं और आपके पुत्र

का जन्मोत्सव करने के लिए यहां आया हूं।' इतना कहकर इन्द्र ने वामादेवी को निद्राधीन कर दिया और भगवान् का एक प्रतिबिम्ब बनाकर उनके पास रख दिया। इसके बाद पांच रूपधारी इन्द्र ने भगवान् को अपने दोनों हाथों से उठा लिया। आकाश मार्ग से चलकर वे मेरु पर्वत के पाण्डुक वन में आये वहां अतिपाण्डुक कम्बला नामक शिला पर सिंहासन स्थापित किया और अपनी गोद में प्रभु को लेकर सौधर्मेन्द्र पूर्व दिशा की तरफ मुंह करके बैठ गया। उस समय अन्य ६३ इन्द्र और उनके आज्ञाकारी असंख्य देव और देवियां भी उपस्थित थी। आभियोगिक देव तीर्थ जल ले आये और सब इन्द्र इन्द्रानियों ने एवं चारों निकायों के देवों ने भगवान् का जन्माभिषेक किया। सब दो सौ पचास अभिषेक हुए। एक एक अभिषेक में ६४ हजार कलश थे।

अभिषेक के बाद इन्द्र ने भगवान् के अंगूठे में अमृत भरा और नन्दीश्वर पर्वत पर आष्टाह्निक महोत्सव मनाकर, फिर अष्ट मंगलों का आलेखन करके और भगवान् की स्तुति करके उन्हें अपनी माता के पास रख दिया।

प्रातःकाल दासी ने राजा अश्वसेन को पुत्र जन्म की खबर सुनाई। राजा ने मुकुट और कुण्डल को छोड़कर अपने समस्त आभूषण दासी को भेंट में दे दिये और उसे दासीत्व से मुक्त कर दिया।

राजा अश्वसेन ने नगर में दस दिन का जन्मोत्सव मनाया। प्रजा के आनन्द और उत्साह की सीमा न रही। कैदियों को बन्धन से मुक्त और प्रजा को कर मुक्त किया। सारा नगर उत्सव और आनन्द का स्थान बन गया।

जन्म के तीसरे दिन चन्द्र और सूर्य का दर्शन कराया गया। छठे दिन रात्रि जागरण का उत्सव हुआ। बारहवें दिन नाम-संस्करण किया गया। राजा अश्वसेन ने इस प्रसंग पर अपने मित्र, ज्ञातिजन कुटुम्ब, परिवार एवं सगे सम्बन्धियों को आमंत्रित किया और भोजन ताम्बूल आदि से सत्कार करते हुए कहा-जब यह बालक गर्भ में था उस समय इसकी माता के बगल से रात्रि के समय एक सर्प निकला था। अतः बालक का नाम पार्श्व कुमार रखा जाता है सब ने इस नाम का अनुमोदन किया।

पार्श्व कुमार का बाल्यकाल दास दासियों एवं पांच धात्रियों के संरक्षण में सुखपूर्वक बीतने लगा। क्रमशः भगवान् बाल्यकाल को पार करके युवा हुए।

एक समय अश्वसेन राजा अपनी राज सभा में बैठे हुए प्रजाजनों के साथ वार्तालाप कर रहे थे। इतने में कुशस्थल से एक राजदूत आया और विनय पूर्वक बोला-राजन् ! मैं कुशस्थल के राजा नरवर्मा का दूत हूँ। महाराजा नरवर्मा ने अपने पुत्र प्रसेनजित को राज्य भार सौंप कर दीक्षा ली। इस समय महाराजा प्रसेनजित नरवर्मा का राज्य सभाल रहे हैं। महाराजा प्रसेनजित की प्रभावती नाम की एक रूपवती कन्या है। पार्श्वकुमार के रूप और वीरत्व की गाथा सुनकर वह पार्श्वकुमार का ही सतत ध्यान करती है। उसने पार्श्वकुमार के साथ ही विवाह करने का निश्चय किया है। राजा प्रसेनजित को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने प्रभावती को स्वयंवरा की तरह बनारस भेजने का विचार किया। कलिंगदेश के राजा पवनराज को जब इस बात का पता चला तो उसने प्रभावती की एक दूत के साथ मंगनी की महाराजा प्रसेनजित ने पवनराज की मांग ठुकरा दी। पवनराज इस बात पर बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने विशाल सेना के साथ कुशस्थल को घेर लिया है। महाराज प्रसेनजित इस अवसर पर आपकी सहायता चाहते हैं। अब आप जैसा योग्य समझें वैसा करें।

दूत के मुख से यह बात सुन महाराज अश्वसेन पवनराज पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और बोले-दूत तुम जाओ ! मैं शीघ्र ही अपनी सेना के साथ प्रसेनजित की सहायता करने के लिए आ रहा हूँ। मेरी ओर से उन्हें पूर्ण आश्वस्त रहने का सन्देश देना, दूत सन्देश लेकर चला गया। महाराजा अश्वसेन ने अपनी सेना को युद्ध के लिए तैयार होने का आदेश दे दिया। महाराजा युद्ध के लिए तैयार हो गये। जब पार्श्वकुमार को इस बात का पता चला तो वे स्वयं पिता के पास आये और नम्रता पूर्वक बोले-पिताजी, मेरे रहते हुए आपको युद्ध में जाने की आवश्यकता नहीं। मैं स्वयं युद्ध में जाऊंगा और पवनराज को पराजित करूंगा। पिता ने कहा-पुत्र ! मैं जानता हूँ कि तू पवनराज को तो क्या, तीनों लोकों को अपने भुजबल से जीतने की शक्ति रखता है। किन्तु अभी तेरा क्रीड़ा और आनन्द का समय है। अतः हम तुझे क्रीड़ा स्थल पर देखकर जितने प्रसन्न होते हैं उतना युद्धभूमि में देखकर नहीं। अतः पुत्र, युद्ध में मुझे ही जाने दो। तुम यहां रहकर

अपने राज्य की रक्षा करो। पार्श्वकुमार ने कहा-पिताजी युद्ध स्थल और क्रीड़ा स्थल मेरेलिए दोनों ही समान हैं। अत: मैं ही जाऊँगा। पार्श्वकुमार का अति आग्रह देखकर राजा ने उन्हें युद्ध में जाने का आदेश दे दिया। पार्श्वकुमार पिता को प्रणाम कर अपनी सेना के साथ कुशस्थल की ओर चल पड़े

पार्श्वकुमार ने कुशस्थल पहुँच कर नगर के समीप ही अपनी छावनी डाल दी और एक दूत को पवनराज के पास भेजकर कहलाया कि या तो हम से युद्ध करो या घेरा उठा लो। पवनराज पार्श्वकुमार के पराक्रम की गाथा सुन चुका था। पार्श्वकुमार के साथ युद्ध करना कोई सामान्य कार्य नहीं था। उसने अपने मन्त्रियों से पूछा तो उन्होंने भी यही सलाह दी कि पार्श्वकुमार से लड़कर हम सही-सलामत बचकर नहीं निकल सकते। पवनकुमार के साथ सन्धिकर पवनराज ने कुशस्थल का घेरा उठा लिया। पार्श्वकुमार की इस तेजस्विता से नगर-जन और महाराजा प्रसेनजित प्रसन्न हुए। पार्श्वकुमार का बड़े समारोह के साथ नगर में प्रवेश कराया गया। राजा प्रसेनजित अनेक तरह की भेंट लेकर सेवा में उपस्थित हुआ और प्रार्थना करते हुए कहने लगा-राजकुमार! आपने जो हमारा उपकार किया है उसे हम कभी भूल नहीं सकते और न प्रत्युपकार करने में ही समर्थ हैं। मेरी पुत्री प्रभावती की आप से विवाह करने की इच्छा है। आप अपने चरणों में स्थान देकर उसे और हमें उपकृत कीजिये। पार्श्वकुमार ने कहा-राजन्! मैं पिताजी की आज्ञा से कुशस्थल का रक्षण करने आया था, विवाह करने नहीं। अत: आपके इस अनुरोध को पिताजी की आज्ञा के बिना कैसे स्वीकार कर सकता हूँ।

पार्श्वकुमार अपनी सेना के साथ बनारस लौट आये। प्रसेनजित भी आया। महाराजा अश्वसेन ने पार्श्वकुमार का विवाह बड़ी धूमधाम से राजकुमारी प्रभावती के साथ कर दिया। पार्श्वकुमार अपनी पत्नी के साथ सुख पूर्वक रहने लगे।

एक दिन पार्श्वकुमार अपने झरोखे में बैठे हुए नगर का निरीक्षण कर रहे थे। उस समय उन्होंने देखा-लोगों के झुंड के झुंड बनारस के बाहर जा रहे हैं। उनमें से किसी के हाथ में पुष्पों के हार तो किसी के हाथ में पूजा की सामग्री थी। पूछने पर पता चला कि नगर के बाहर 'कठ' नाम का तपस्वी आया और वह पंचाग्नि तप की कठोर तपस्या कर रहा है। उसी के दर्शन के

पार्श्व कुमार का बाल्यकाल दास दासियों एवं पांच धात्रियों के संरक्षण में सुखपूर्वक बीतने लगा। क्रमशः भगवान् बाल्यकाल को पार करके युवा हुए।

एक समय अश्वसेन राजा अपनी राज सभा में बैठे हुए प्रजाजनों के साथ वार्तालाप कर रहे थे। इतने में कुशस्थल से एक राजदूत आया और विनय पूर्वक बोला-राजन्! मैं कुशस्थल के राजा नरवर्मा का दूत हूं। महाराजा नरवर्मा ने अपने पुत्र प्रसेनजित को राज्य भार सौंप कर दीक्षा ली। इस समय महाराजा प्रसेनजित नरवर्मा का राज्य सभाल रहे हैं। महाराजा प्रसेनजित की प्रभावती नाम की एक रूपवती कन्या है। पार्श्वकुमार के रूप और वीरत्व की गाथा सुनकर वह पार्श्वकुमार का ही सतत ध्यान करती है। उसने पार्श्वकुमार के साथ ही विवाह करने का निश्चय किया है। राजा प्रसेनजित को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने प्रभावती को स्वयंवरा की तरह बनारस भेजने का विचार किया। कलिंगदेश के राजा पवनराज को जब इस बात का पता चला तो उसने प्रभावती की एक दूत के साथ मंगनी की महाराजा प्रसेनजित ने पवनराज की मांग ठुकरा दी। पवनराज इस बात पर बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने विशाल सेना के साथ कुशस्थल को घेर लिया है। महाराज प्रसेनजित इस अवसर पर आपकी सहायता चाहते हैं। अब आप जैसा योग्य समझें वैसा करें।

दूत के मुख से यह बात सुन महाराज अश्वसेन पवनराज पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और बोले-दूत तुम जाओ! मैं शीघ्र ही अपनी सेना के साथ प्रसेनजित की सहायता करने के लिए आ रहा हूं। मेरी ओर से उन्हें पूर्ण आश्वस्त रहने का सन्देश देना, दूत सन्देश लेकर चला गया। महाराजा अश्वसेन ने अपनी सेना को युद्ध के लिए तैयार होने का आदेश दे दिया। महाराजा युद्ध के लिए तैयार हो गये। जब पार्श्वकुमार को इस बात का पता चला तो वे स्वयं पिता के पास आये और नम्रता पूर्वक बोले-पिताजी, मेरे रहते हुए आपको युद्ध में जाने की आवश्यकता नहीं। मैं स्वयं युद्ध में जाऊंगा और पवनराज को पराजित करूंगा। पिता ने कहा-पुत्र! मैं जानता हूं कि तू पवनराज को तो क्या, तीनों लोकों को अपने भुजबल से जीतने की शक्ति रखता है। किन्तु अभी तेरा क्रीड़ा और आनन्द का समय है। अतः हम तुझे क्रीड़ा स्थल पर देखकर जितने प्रसन्न होते हैं उतना युद्धभूमि में देखकर नहीं। अतः पुत्र, युद्ध में मुझे ही जाने दो। तुम यहां रहकर

अर्धमृत सर्प को देखकर कठ अत्यन्त लज्जित हुआ। पार्श्वकुमार पर उसे बड़ा क्रोध आया। उसने जो प्रतिष्ठा प्राप्त की थी वह धूल में मिल गई। लोग कठ की अज्ञानता पर हँसने लगे और कुमार के विशिष्ट ज्ञान की प्रशंसा करने लगे। कुछ समय के बाद कठ मर कर अज्ञान तप के कारण मेघमाली नामक देव बना।

भगवान् पार्श्व की दीक्षा

पासे णं अरहा पुरिसादाणीए दक्खे दक्खपइण्णे पडिरूवे अल्लीणे भद्दए विणीए तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता णं पुणरवि लोयंतिएहिं जियकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं जाव एवं वयासी जय जय नंदा, जय जय भद्दा भद्दं ते जाव जय जय सद्दं पउंजंति।

इस प्रकार पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व दक्ष थे, दक्ष प्रतिज्ञा वाले थे उत्तम रूप वाले, सर्वगुणों से युक्त भद्र और विनीत थे। वे तीस वर्ष तक गृहवास में रहे। उन्होंने अपने भोगावली कर्म को क्षीण हुआ जानकर दीक्षा लेने का विचार किया। उस समय अपनी परम्परा का पालन करते हुए लौकान्तिक देव उनके पास आये और प्रणाम कर कहने लगे—हे नन्द ! तुम्हारी जय हों, विजय हो, हे भद्र ! तुम्हारी जय हो विजय हो, हे भगवन् ! हे लोकनाथ ! बोध प्राप्त करो, सम्पूर्ण जगत में सभी जीवों का हित, सुख और निश्रेयस् करने वाले धर्म तीर्थ (धर्म चक्र) का प्रवर्तन करो ! यह धर्म चक्र सम्पूर्ण जगत में सभी जीवों के लिए हितकर, सुखकर, और निश्रेयस कर होगा। इस प्रकार कहकर वे देव जयजयनाद करने लगते हैं।

लोकान्तिक देवों की इस प्रार्थना के बाद भगवान् पार्श्व ने वर्षीदान देना प्रारंभ किया। वे प्रतिदिन प्रातः एक प्रहर दिन चढ़ तक १ करोड़ ८ लाख स्वर्ण का दान करते थे। उन्होंने एक वर्ष में तीन अरब अठासी करोड़ अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राएं दान में दीं।

पुव्विं पि णं पासस्स अरहओ पुरिसादाणियस्स माणुस्सगाओ गिहत्थधम्माओ अणुत्तरे आहोहिए तं चेव सव्वं जाव दायं दाइयाणं परिभाएत्ता जे से हेमंताणं दोच्चे मासे तच्चे पक्खे पोसबहुले तस्स णं पोसबहुलस्स एक्कारसी दिवसेणं पुव्वण्हकाल समयंसि विसालाए सिवियाए सदेवमणुयासुराए परिसाए तंचेव सव्वं नवरं वाणारसिं नगरिं

लिए लोग नगर के बाहर जा रहे हैं। पार्श्वकुमार हाथी पर बैठकर उस तपस्वी को देखने के लिए गये ।

यह कठ तपस्वी पूर्वभव में कमठ का जीव था, जो सिंह के भव से मरकर अनेक योनियों में परिभ्रमण करता हुआ किसी गांव म एक गरीब ब्राह्मण के घर जन्मा। वह अनाथ बालक कठ तापसों के सत्संग में आकर तापस बन गया। तापस बनकर अपनी परम्परा के अनुसार पंचाग्नि की कठोर तपस्या करने लगा। वह अपने चारों ओर आग तपाकर बीच में बैठता और सूर्य की आतापना लेता। इस कठोर तपस्या की लोग बड़ी तारीफ करने लगे।

पार्श्वकुमार कठ के पास पहुंचे। उन्होंने अवधिज्ञान से देखा कि इस तपस्वी की धूनी में जलते हुए लक्कड़ में एक सर्पयुगल भी झुलस रहा है। यह देख पार्श्वकुमार का हृदय दयार्द्र हो गया वे तापस से बोले—अरे कठ ! तुम इस प्रकार का अज्ञान और हिंसक तप तपकर अपने शरीर को क्यों व्यर्थ जला रहे हो ? तुम्हारा यह अज्ञानतप मुक्ति का कारण नहीं बन सकता। जहां अहिंसा है वहीं धर्म है। अहिंसा शून्य धर्म विधवा के श्रृंगार की तरह निरर्थक है। जिस धूनी में तुम लक्कड डालकर आग जला रहे हो उसमें त्रस और स्थावर असंख्य जीवों की हिंसा होती है। इस प्रकार दूसरे जीवों का प्राण अपहरण कर तुम ईश्वरत्व प्राप्त नहीं कर सकते।

कठ बोला—राजकुमार ! तुम धर्म का स्वरूप नहीं जानते। मैं जिस तरह की तपश्चर्या करता हू उसीसे मुक्ति मिलेगी। तुम जो अग्नि में जीवों के मरने की बात करते हो इससे तो तुम्हारा ही अज्ञान प्रकट होता है।

पार्श्वकुमार ने कहा—तपस्वी ! ठहरो, तुम आग में जो लक्कड़ जला रहे हो, उसमें एक सर्प युगल झुलस रहा है। मैं तुम्हें अभी बताए देता हूं।

यह कहकर भगवान् पार्श्वनाथ ने अपने आदमियों को धूनी से लक्कड निकाल कर उसे चीरने को आज्ञा दी सेवकों ने तुरत आग से जलता हुआ लक्कड निकाला और उसे तपस्वी के सामने चीरा सचमुच एक सर्प युगल आग से झुलसा हुआ अर्ध मृत अवस्था में निकला। भगवान् ने उसे नमस्कार मंत्र सुनाया। वह सर्प युगल मरकर धरणेन्द्र और पद्मावती बना।

अर्धमृत सर्प को देखकर कठ अत्यन्त लज्जित हुआ। पार्श्वकुमार पर उसे बड़ा क्रोध आया। उसने जो प्रतिष्ठा प्राप्त की थी वह धूल में मिल गई। लोग कठ की अज्ञानता पर हँसने लगे और कुमार के विशिष्ट ज्ञान की प्रशंसा करने लगे। कुछ समय के बाद कठ मर कर अज्ञान तप के कारण मेघमाली नामक देव बना।

भगवान् पार्श्व की दीक्षा

पासे णं अरहा पुरिसादाणीए दक्खे दक्खपइण्णे पडिरूवे अल्लीणे भद्दए विणीए तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता णं पुणरवि लोयंतिएहिं जियकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं जाव एवं वयासी जय जय नंदा, जय जय भद्दा भद्दं ते जाव जय जय सद्दं पउंजंति।

इस प्रकार पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व दक्ष थे, दक्ष प्रतिज्ञा वाले थे उत्तम रूप वाले, सर्वगुणों से युक्त भद्र और विनीत थे। वे तीस वर्ष तक गृहवास में रहे। उन्होंने अपने भोगावली कर्म को क्षीण हुआ जानकर दीक्षा लेने का विचार किया। उस समय अपनी परम्परा का पालन करते हुए लौकान्तिक देव उनके पास आये और प्रणाम कर कहने लगे–हे नन्द ! तुम्हारी जय हो, विजय हो, हे भद्र ! तुम्हारी जय हो विजय हो, हे भगवन् ! हे लोकनाथ ! बोध प्राप्त करो, सम्पूर्ण जगत में सभी जीवों का हित, सुख और निश्रेयस् करने वाले धर्म तीर्थ (धर्म चक्र) का प्रवर्तन करो ! यह धर्म चक्र सम्पूर्ण जगत में सभी जीवों के लिए हितकर, सुखकर, और निश्रेयस कर होगा। इस प्रकार कहकर वे देव जयजयनाद करने लगते हैं।

लोकान्तिक देवों की इस प्रार्थना के बाद भगवान् पार्श्व ने वर्षीदान देना प्रारंभ किया। वे प्रतिदिन प्रातः एक प्रहर दिन चढ़े तक १ करोड़ ८ लाख स्वर्ण का दान करते थे। उन्होंने एक वर्ष में तीन अरब अठासी करोड़ अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राएं दान में दीं।

पुव्विं पि णं पासस्स अरहओ पुरिसादाणियस्स माणुस्सगाओ गिहत्थ-धम्माओ अणुत्तरे आहोहिए तं चेव सव्वं जाव दायं दाइयाणं परिभाएत्ता जे से हेमंताणं दोच्चे मासे तच्चे पक्खे पोसबहुले तस्स णं पोसबहुलस्स एक्कारसी दिवसेणं पुव्वण्हकाल समयंसि विसालाए सिवियाए सदेवमणुयासुराए परिसाए तंचेव सव्वं नवरं वाणारसिं नगरिं

मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणेव आसमपए उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छित्ता असोगवर पायवस्स अहे सीयं ठावेइ ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ सीयाओ पच्चोरुहित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयति ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ पंचमुट्ठियं लोयं करित्ता अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहि नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एगं देवदूसमायाय तिहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए ।।१५३।।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व को मानवीय गृहस्थ धर्म से पहले भी उत्तम आभोगिक ज्ञान (अवधि ज्ञान) था। वह सारा वर्णन भगवान् महावीर के वर्णन में आ चुका है। उसे यहां भी समझना चाहिये। अभिनिष्क्रमण के पूर्व वार्षिकदान देकर के हेमन्त ऋतु के द्वितीय मास, तृतीय पक्ष, अर्थात् पोषमास के कृष्ण पक्ष की ग्यारस के दिन, पूर्व भागके समय चढ़ते प्रहर में विशाल शिबिका पर चढ़कर मानव और असुरों के विराट् समूह के साथ (भगवान् महावीर के वर्णन के समान) वाणारसी नगरी के मध्य में होकर निकलते हैं। निकलकर जिस ओर आश्रम पद नामक उद्यान है, जहां पर अशोक का उत्तम वृक्ष है, वहां जाते हैं, शिविका को खड़ी रखते हैं और उससे नीचे उतरते हैं। नीचे उतरकर अपने हाथों से आभूषण, मालाएँ और अलंकार उतारकर स्वयं अपने हाथ से पंचमुष्ठि लोच करते हैं। लोच करके निर्जल अष्टम भक्त तप करते हैं। विशाखा नक्षत्र का योग आते ही एक देव दूष्य वस्त्र को लेकर तीन सौ पुरुषों के साथ मुण्डित होकर गृहस्थ से अनगार बन जाते हैं–प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं।

प्रव्रज्या ग्रहण कर भगवान् वहां से विहार करते हैं और तीसरे दिन कोकट गांव में धन्य नामक गृहस्थ के घर परमान्न से अष्टम भक्त का पारणा करते हैं। उस समय धन्य गृहस्थ के घर देवों ने वसुधारादि पांच दिव्य प्रकट किये। पारणाकर भगवान् ने अन्यत्र विहार कर दिया।

पासे णं अरहा पुरिसादाणीए तेसीइं राइंदियाइं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति तंजहा दिव्वा वा माणुसा वा तिरिक्खजोणिया वा ते उप्पण्णे सम्मं सहइ, तितिक्खइ, खमइ, अहियासेइ ॥ (कप्पसुत्त १५४)

इस प्रकार पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व तेरासी दिनों तक नित्य सतत शरीर की ओर से लक्ष्य को व्युत्सर्ग किये हुए थे। अर्थात् उन्होंने शरीर का ख्याल छोड़ दिया था। इस कारण अनगार

अपने यान विमान से उतरे और भगवान् को वन्दन कर उनकी स्तुति करने लगे। इसके बाद देवों ने समवसरण की रचना की। भगवान् समवसरण के बीच रत्न सिंहासन पर विराजकर प्रवचन देने लगे। भगवान् के समवसरण में देव, मनुष्य और तिर्यंच भी विशाल संख्या में उपस्थित हो प्रवचन सुनने लगे। भगवान् का प्रवचन सुनकर महाराजा अश्वसेन अपने लघुपुत्र हस्तिसेन को राज्य देकर प्रव्रजित हुए। साथ में महारानी वामादेवी तथा प्रभावती ने भी प्रव्रज्या ग्रहण की। शुभदत्त, आर्यघोष, वशिष्ठ ब्रह्म, सोम, श्रीधर, वारिषेण, भद्रयश, जय, विजय, इन दस जनों ने दीक्षा ग्रहण कर ली।

अनेकों ने साधुव्रत, श्रावक व्रत और सम्यक्त्व ग्रहण किया। भगवान् के शासन प्रभावक देव धरणेन्द्र और शासन प्रभाविका देवी पद्मावती हुई। भगवान् ने अपने विशाल संघ के साथ भव्यों को प्रतिबोध देने के लिए अन्यत्र विहार कर दिया।

भगवान् का परिवार

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठगणा अट्ठगणहरा होत्था। तंजहा
सुभेय अज्ज घोसे य वसिट्ठे बंभयारि य। सोमे सिरिहरे चेव वीरभद्दे जसे वि य ॥१५६॥

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के आठ गणधर थे। वे इस प्रकार है– शुभ, आर्य, घोष, वशिष्ठ, ब्रह्मचारी, सोम, श्रीधर, वीरभद्र और यश।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादानीयस्स अज्जदिण्ण पामाक्खाओ सोलस्स समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था। पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स पुप्फचूलापामोक्खाओ अट्ठत्तीसं अज्जिया साहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया संपया होत्था। पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुनंदपामाक्खाओणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सी चउसट्ठिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासग संपया होत्था। पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुनंदापामोक्खाणं समणोवासिगाणं तिन्नि सयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया होत्था। पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अध्दुट्ठसया चोद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खर जाव चोद्दसपुव्वीणं संपया होत्था। पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स चोद्दससया ओहिनाणीणं दस सया केवलनाणीणं एक्कारससया वेउव्वियाणं

तू यह क्या कर रहा है ? तू जिन्हें कष्ट दे रहा है, जानता नहीं वे कौन हैं ? जिनकी चौसठ इन्द्र और असंख्य देव देवियां सेवा करने में अपना सौभाग्य मानते हैं, उन्हीं त्रिलोक पूज्य भगवान् पार्श्व को तू इस प्रकार कष्ट दे रहा है। यदि तेरी इस प्रकार की दुष्ट प्रवृत्ति चालू रहेगी तो इसका परिणाम तेरे लिए भयंकर होगा।

धरणेन्द्र के मुख से यह बात सुनते ही मेघमाली घबरा गया। वह भगवान् के चरणों में गिर पड़ा और अपने अपराधों की बार बार क्षमा याचने लगा। भगवान् तो समभावी थे। शत्रु और मित्र दोनों को वे समभाव से देखते थे। मेघमाली पर उन्हें तनिक भी रोष नहीं था। वे अपने ध्यान में तल्लीन थे। भगवान् ने उसे क्षमा दे दी। अन्त में उसने अपनी समस्त माया समेट ली। वह भक्ति कर अपने स्थान की ओर चला गया।

केवल ज्ञान

तए णं से पासे भगवं अणगारे जाए इरियासमिए जाव अप्पाणं भावेमाणस्स तेसीइं राइंदियाइं विइक्कंताइं चउरासीइमस्स राइन्दियस्स अंतरा वट्टमाणे जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स चउत्थी पक्खेणं पुव्वण्हकालसमयंसि धायति पायवस्स अहे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अनन्ते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे जाव केवलवरणाण दंसणे समुप्पण्णे जाव जाणमाणे पासमाणे विहरइ ॥१५५॥

अपने यान विमान से उतरे और भगवान् को वन्दन कर उनकी स्तुति करने लगे। इसके बाद देवों ने समवसरण की रचना की। भगवान् समवसरण के बीच रत्न सिंहासन पर विराजकर प्रवचन देने लगे। भगवान् के समवसरण में देव, मनुष्य और तिर्यंच भी विशाल संख्या में उपस्थित हो प्रवचन सुनने लगे। भगवान् का प्रवचन सुनकर महाराजा अश्वसेन अपने लघुपुत्र हस्तिसेन को राज्य देकर प्रव्रजित हुए। साथ में महारानी वामादेवी तथा प्रभावती ने भी प्रव्रज्या ग्रहण की। शुभदत्त, आर्यघोष, वशिष्ठ ब्रह्म, सोम, श्रीधर, वारिषेण, भद्रयश, जय, विजय, इन दस जनों ने दीक्षा ग्रहण कर ली।

अनेकों ने साधुव्रत, श्रावक व्रत और सम्यक्त्व ग्रहण किया। भगवान् के शासन प्रभावक देव धरणेन्द्र और शासन प्रभाविका देवी पद्मावती हुई। भगवान् ने अपने विशाल संघ के साथ भव्यों को प्रतिबोध देने के लिए अन्यत्र विहार कर दिया।

भगवान् का परिवार

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठगणा अट्ठगणहरा होत्था । तंजहा
सुभेय अज्ज घोसे य वसिट्ठे बंभयारि य । सोमे सिरिहरे चेव वीरभद्दे जसे वि य ॥१५६॥

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के आठ गणधर थे। वे इस प्रकार है– शुभ, आर्य, घोष, वशिष्ठ, ब्रह्मचारी, सोम, श्रीधर, वीरभद्र और यश।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादानीयस्स अज्जदिण्ण पामाक्खाओ सोलस्स समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था। पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स पुप्फचूलापामोक्खाओ अट्ठत्तीसं अज्जिया साहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया सपया होत्था। पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुनंदपामाक्खाओणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सी चउसट्ठिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासग संपया होत्था। पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुनंदापामोक्खाणं समणोवासिगाणं तिन्नि सयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया होत्था। पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अध्दुट्ठसया चोद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खर जाव चोद्दसपुव्वीणं संपया होत्था। पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स चोद्दससया ओहिनाणीणं दस सया केवलनाणीणं एक्कारससया वेउव्वियाणं

अट्ठमसया विउलमईणं, छस्सया वाईणं छ सया रिउमईणं बारस सया अणुत्तरोववाइयाणं संपया होत्था ॥१५७॥ (कप्प सुत्त)

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के संघ में आर्यदत्त आदि सोलह हजार साधुओं की उत्कृष्ट श्रमण संपदा थी। पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में पुष्पचूला आदि अड़तालीस हजार आर्यिका-संपदा थी। पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के संघ में सुनन्द आदि एक लाख चौसठ हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक संपदा थी तथा सुनन्दा आदि तीन लाख और सत्ताईस हजार श्रमणोपासिकाओं की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

अट्ठमसया विउलमईणं, छस्सया वाईणं छ सया रिउमईणं बारस सया अणुत्तरोववाइयाणं संपया होत्था ॥१५७॥ (कप्प सुत्त)

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के संघ में आर्यदत्त आदि सोलह हजार साधुओं की उत्कृष्ट श्रमण संपदा थी। पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में पुष्पचूला आदि अड़तालीस हजार आर्यिका-संपदा थी। पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के सघ में सुनन्द आदि एक लाख चौसठ हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक संपदा थी तथा सुनन्दा आदि तीन लाख और सत्तावीस हजार श्रमणोपासिकाओं की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समुदाय में साढ़े तीन सौ जिन नहीं किन्तु जिनके समान सर्वाक्षर संयोगों को जानने वाले यावत् चौदह पूर्वधारियों की सम्पदा थी। तथा चौदह सौ अवधिज्ञानियों का सपदा थी। एक हजार केवल ज्ञानियों की ग्यारह सौ वैक्रिय लब्धिधारी एवं तथा छह सौ ऋजुमति मनपर्यव ज्ञानियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

भगवान् पार्श्वनाथ के एक हजार श्रमण सिद्ध हुए तथा दो हजार आर्यिकाएं सिद्ध हुईं। पुरुषादानीय पार्श्व के संघ में साढ़े सात सौ विपुलमतियों की छह सौ वादियों की और बारह सौ अनुत्तरोप पातिकों की उत्कृष्ट संपदा थी।

पासस्स णं अरहओ पुरिसादानीयस्स दुविहा अंतकडभूमी होत्था तं जहा जुयंतकडभूमी य परियायंतकडभूमी य जाव चउत्थाओ पुरिसजुगाओ जुयंतकडभूमी तिवास परियाए अंतमकासी ॥१५८॥

पुरुषादानीय भगवान् पार्श्व के समय में अन्तकृतों की भूमि अर्थात् सर्व दुःखों का अन्त करने वालों की भूमिका दो प्रकार की थी। जैसे कि एक तो युग अंतकृत भूमि और दूसरी पर्याय अन्तकृत भूमि यावत् अर्हत् पार्श्व से चतुर्थ युग पुरुष तक युगान्तकृत भूमि थी अर्थात् चतुर्थ पुरुष तक मुक्ति मार्ग चला था। अर्हत् पार्श्व का केवली पर्याय तीन वर्ष का होने पर अर्थात् उनको केवल ज्ञान हुए तीन वर्ष व्यतीत होने पर किसी साधक ने मुक्ति प्राप्त की अर्थात् मोक्ष में जाना प्रारंभ हुआ, वह उनके समय की पर्यायान्तकृत भूमि हुई।

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता तेसीति राइंदियाइं छउमत्थ परियायं पाउणित्ता देसूणाइं सत्तरिवासाइं केवलिपरियायं पाउणित्ता बहुपडिपुण्णाइं सत्तरिं वासाइं सामन्नपरियायं पाउणित्ता एक्कवाससयं सव्वाउयं पालित्ता खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दूसमसुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए जे से वासाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावणसुद्धे तस्स णं सावणसुद्धस्स अट्ठमीपक्खेणं उप्पिं सम्मेयसेलसिहरंसि अप्पचोत्तीसइमे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पुव्वण्ह कालसमयंसि वग्घारियपाणी कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ।।कप्प० १५६।।

उस काल और उस समय पुरूषादानीय अर्हत् पार्श्व तीस वर्ष तक गृहवास में रह करके तिरासी रात्रि दिन छद्मस्थ पर्याय में रहकर के पूर्ण नहीं किन्तु कुछ समय कम सत्तर वर्ष तक केवली पर्याय में रहकरके इस प्रकार पूर्ण सत्तर वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन करके कुल सौ वर्ष तक अपना सम्पूर्ण आयु भोगकर वेदनीय कर्म आयुष्य कर्म नाम कर्म और गोत्र कर्म के क्षीण होने पर दुषम सुषम नामक अवसर्पिणी काल के बहुत व्यतीत होने पर वर्षा ऋतु का प्रथम मास द्वितीय पक्ष, अर्थात् जब श्रावण मास का शुक्ल पक्ष आया तब श्रावण शुक्ला अष्टमी के दिन सम्मेत शिखर पर्वत पर अपने सहित चौतीस पुरुषों के साथ मासिक भक्त का अनशन कर पूर्वाह्ण के समय विशाखा नक्षत्र का योग आने पर दोनों हाथ लंबे किये हुए ध्यान मुद्रा में अवस्थित रहकर काल धर्म को प्राप्त हुए यावत् सर्व दुःखों का अन्त किया ।

भगवान् महावीर

कृतापराधेऽपि जने जिनेन्द्रः, भव्यान् सुजीवान् खलु मोक्षनेता ।
सोऽयं महावीर इतः प्रसिद्धस्तीर्थङ्करः पारकरो जनानाम् ॥२४॥

जो जिनेन्द्र देव अपराधीजनों को भी और भव्य प्राणियों को मोक्ष की ओर प्रेरणा देने वाले (नेता रूप) ऐसे श्रमण भगवान महावीर नाम से प्रसिद्ध हैं वे भव्यजनों को संसार सागर से पार करने वाले हैं ॥२४॥

जयइ सुआणं पभवो, तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ ।
जयइ गुरू लोगाणं, जयइ महप्पा महावीरो ॥

जयवन्त है श्रुतज्ञान याने द्वादशांगरूप वर्तमान शास्त्र के उत्पत्ति कारण अर्थात् उपदेशक तीर्थ-करों में अपश्चिम यानी अवसर्पिणी काल के २४ तीर्थकरों में अन्तिम निरीह भाव से संसार को तत्व का उपदेश करने से लोक के गुरु महात्मा महावीर जयवन्त हैं सर्वोत्कृष्ट है ।

भगवान् महावीर के २७ पूर्व भव

प्रथम द्वितीय भव–नयसार

पश्चिम महाविदेह के महावप्र विजय में जयंती नाम की सुन्दर नगरी थीं, वहां शत्रु मर्दन नाम का यथा नाम तथा गुण वाला राजा राज्य करता था । उसके राज्य में प्रजा सुख पूर्वक निवास करती थी ।

इसी राज्य के अंतर्गत पृथ्वी प्रतिष्ठान नाम का एक ग्राम था । वहां नयसार नाम का ग्राम चिंतक गांव का मुखिया रहता था । वह धर्म प्रिय और गांव के लोगों की सेवा करने वाला था । उसके सदव्यवहार से लोग उसका बड़ा सन्मान करते थे और उसके आदेशों–उपदेशों के अनुसार चलते थे ।

एक बार शत्रुमर्दन राजा ने नयसार को बुलाकर कहा–नयसार ! हमें प्रासाद के लिए एवं रथों के लिए उत्तम काष्ठों की आवश्यकता है । अत: बड़े सेवकों के समूह को एवं गाड़ियों को लेकर

वन में जाओ और वहाँ से अच्छे लक्कड़ ले आओ। राजा की आज्ञा को विनय पूर्वक स्वीकार कर नयसार घर आया और भाता तैयार करवाया। तदनन्तर मजदूरों के विशाल समूह को साथ लेकर वैलगाड़ियों को जोत कर गहन वन की ओर चल पड़ा। निरंतर प्रयाण करता हुआ नयसार का काफ़ला गहन वन में जा पहुँचा। वहाँ सुरक्षित स्थल देख कर नयसार ने अपना डेरा डाल दिया। फिर मजदूरों को साथ में ले वृक्षों को काटने के लिए वृक्षों के समूह में प्रवेश किया। वृक्षों को काटते काटते दोपहर हो गई। सूर्य प्रचण्ड किरणों से तपने लगा। भूख और प्यास से संतप्त नय-सार ने अपना काम बन्द किया और मजदूरों के साथ अपने डेरे पर लौटा। मजदूरों ने भोजन बनाया और नयसार भोजन के लिए बैठ गया। भोजन के थाल को देखकर नयसार सोचने लगा यदि कोई क्षुधा पीड़ित भिक्षु श्रमण या मार्ग भ्रष्ट सार्थ मिल जाय तो मैं उसे भोजन देकर फिर भोजन करूं। ऐसा विचार कर वह नयसार अपने डेरे से बाहर निकल कर चारों दिशाओं की ओर देखने लगा। इतने में सार्थ के काफिले से बिछड़ हुए मार्ग के परिश्रम से क्लान्त, भूख तृषा से पीड़ित और अत्यन्त थके हुए मुनि मण्डल को इधर आते हुए देखा। नयसार दौड़कर मुनियों के सामने गया और बड़े सत्कार से प्रणाम कर बोला भगवन्! आप इस विजन प्रदेश में कैसे विहार कर रहे हो?

मुनियों ने कहा–हे भद्र! हम एक सार्थ के साथ निकले थे। मार्ग में आहार पानी की गवेषणा के लिए एक ग्राम में गये। जब वापस लौटे तो सार्थ का काफला दूर निकल गया। हम इसी सार्थ के मार्ग का अनुसरण करने के लिए निकले और इस वन में आ पहुँचे।

नयसार बोला महात्मन्! सार्थ ने आप जैसे निरपेक्ष त्यागी को इस जंगल में छोड़ दिया, यह अच्छा नहीं किया। अस्तु आप मेरे निवास स्थान पर चलिए और आहार-पानी ग्रहण कर मुझे उपकृत करिये। नयसार की प्रार्थना पर मुनि मण्डल नयसार के निवास स्थान पर आया। नयसार ने निर्दोष आहार-पानी से मुनियों को प्रतिलाभित किया। मुनि आहार-पानी ग्रहण कर एक वृक्ष के नीचे आये और आहार-पानी से अपनी क्षुधा तृषा शान्त की।

नयसार भोजन से निवृत्त हो मुनियों के समीप पहुँचा और उन्हें वंदन कर उनके पास बैठ गया। मुनियों ने उसे देव गुरु और धर्म का स्वरूप बताया। मानव जन्म की दुर्लभता को बताते

हुए धर्माचरण का उपदेश दिया। मुनियों के उपदेश से उसने सम्यक्त्व ग्रहण किया और यथाशक्ति अनेक नियम उप नियम ग्रहण किये। मुनियों ने वहां से विहार कर दिया। नयसार भी उनके साथ हो गया। मुनियों को दूर तक पहुँचा कर वापस लौटा। राजा की आज्ञानुसार काष्ठ लेकर वह लौटा। उसने राजा को वे काष्ठ सौंप दिये। अब वह घर लौट आया और मुनियों के उपदेश के अनुसार आचरण करने लगा। अन्त समय में उसने शनशन किया और मरकर प्रथम देवलोक में पल्योपम की आयु वाला महर्द्धिक देव हुआ।

तृतीय और चतुर्थ भव–

दक्षिणार्द्ध भरत में विनीता नाम की नगरी में भगवान ऋषभ देव के पुत्र भरत नाम के चक्रवर्ती राज्य करते थे उसकी वामादेत्री नाम की एक रानी थी। नयसार का जीव देवलोक का आयुष्य पूर्ण कर वामादेवी के उदर में गर्भ रूप से उत्पन्न हुआ। महारानी ने एक श्रेष्ठ स्वप्न देखा। नौ मास और साड़े सात रात्रि दिवस के बीतने पर एक सुन्दर सुकुमार पुत्र को जन्म दिया। बालक के प्रकाश पुंज देह को देखकर उसका नाम मरीचि रखा। मरीचि युवा हुआ।

एक बार भगवान ऋषभदेव का विनीता में आगमन हुआ। मरीचि कुमार भगवान का उपदेश सुनने गया। अष्ट महाप्रातिहार्य से युक्त भगवान को देखकर और उनका प्रवचन सुनकर उसने प्रव्रज्या ग्रहण की प्रव्रज्या ग्रहण कर वह भगवान के साथ विचरने लगा। उसने अल्प समय में ही आगम शास्त्रों में निपुणता प्राप्त करली।

एक बार वह भगवान के साथ विहार कर रहा था। ग्रीष्म ऋतु का समय था। मस्तक पर प्रचण्ड सूर्य तप रहा था। धरती तप रही थी। विहार करते हुए मरीचि को तृषा लगी। उसने इधर उधर निर्दोष जल की गवेषणा की किन्तु उसे प्राप्त नहीं हो सका। पसीने से सारे वस्त्र लथ पथ हो रहे थे तृषा से पीड़ित मरीचि सोचने लगा मुनि का मार्ग बड़ा कठोर है। और मैं इस पर चल नहीं सकता। अतः कोई सरल मार्ग निकालना चाहिये। उसने त्रिदण्ड परिव्राजक का मार्ग निकाला। अब वह त्रिदण्डी तापस बन कर स्वतंत्र रूप से रहने लगा। उसने वेष अवश्य बदला था किन्तु भगवान के द्वारा प्ररूपित तत्वों पर उसकी असीम श्रद्धा थी। वह अपनी वेश भूषा को

अपनी कमजोरी का प्रतीक मानता था। वह लोगों को उपदेश देकर भगवान के मार्ग में दीक्षित करता था।

एक बार अष्टापद पर्वत पर भगवान का समवसरण हुआ। चक्रवर्ती भरत भी उसमें उपस्थित थे धर्म देशना के बाद महाराजा भरत ने भगवान से पूछा भगवन्! आपके समवसरण में ऐसा कोई भव्यात्मा है जो आपकी तरह समवसरण में विराजकर तीर्थ का प्रवर्तन करेगा। भगवान ने उत्तर दिया भरत, तुम्हारा पुत्र मरीचि चौवीसवां तीर्थंकर महावीर होगा। इतना ही नहीं तीर्थंकर होने से पहले यह भारतवर्ष में त्रिपृष्ठ नाम का वासुदेव होगा। उसके बद पश्चिम महाविदेह में प्रियमित्र नाम का चक्रवर्ती होगा और अंत में चरम तीर्थंकर महावीर होगा।

भगवान के मुख से भावी वृत्तांत सुनकर भरत मरीचि के पास आया और वन्दन कर बोला मैं तुम्हारे इस परिव्राजकत्व को वन्दन नहीं करता किन्तु तुम इसी भारतवर्ष में त्रिपृष्ठ वासुदेव महाविदेह में प्रिय मित्र चक्रवर्ती और अन्त में चरम तीर्थंकर भगवान महावीर होओगें।

भरतचक्री की बात सुनकर मरीचि बड़ा प्रसन्न हुआ। वह त्रिदण्ड उछालता हुआ बोला-अहो मैं वासुदेव चक्रवर्ती और चरम तीर्थंकर महावीर होऊँगा। बस मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है।

मैं वासुदेवों में पहला! पिता चक्रवर्तियों में पहले और पितामह तीर्थंकरों मे पहले! अहो मेरा कुल कितना श्रेष्ठ है।

इस कुलाभिमान से मरीचि ने नीच गोत्र का बन्धन किया। इस प्रकार ८४ लाख पूर्व का आयुष्य पूर्णकर मरीचि ने देह त्याग किया और ब्रह्मदेव लोक में देव रूप से उत्पन्न हुआ।

पंचम और षष्ठ भव

ब्रह्मदेव लोक का आयुष्य पूरा कर नयसार का जीव कोल्लाग सन्निवेश में कौशिक नाम का ब्राह्मण हुआ। यह वेद वेदांग का ज्ञाता हुआ। युवावस्था में त्रिदण्डी तापस बना और ८० लाख पूर्व का आयुष्य भोग कर मरा। मरकर नरक तिर्यंच मनुष्य आदि के अनेक भव किये।

छठा और सातवाँ भव

छठे भव में नयसार का जीव थूना नाम की नगरी में पुष्य मित्र नामक ब्राह्मण हुआ। उसका

आयुष्य ७० लाख पूर्व का था। गृहस्थावस्था में कुछ काल तक रहकर वह परिव्राजक बना और आयुष्य के पूर्ण होने पर सौधर्म देवलोक में देव हुआ।

आठवाँ और नौवाँ भव

तत्पश्चात् नयसार का जीव देवलोक से च्युत होकर चैत्य नामक सन्निवेश में चौसठ लाख पूर्व की आयु वाला 'अग्निद्योत' नामक ब्राह्मण हुआ। उस भव में वह त्रिदण्डी परिव्राजक होकर अन्त में काल-धर्म-मृत्यु को प्राप्त हुआ और ईशान देवलोक में मध्यम आयु वाला देव हुआ।

दसवाँ और ग्यारहवाँ भव

ईशान देवलोक से चवकर नयसार का जीव मन्दिर नाम के सन्निवेश में अग्निभूति नामक ब्राह्मण हुआ। वहाँ उसने ५६ लाख पूर्व की आयु पाई। अन्त में उसने परिव्राजक दीक्षा ग्रहण की और ५६ लाख पूर्व की आयु पूर्णकर मरा और सनत्कुमार देवलोक में देव हुआ।

बारहवाँ और तेरहवाँ भव

सनत्कुमार देवलोक का आयुष्य पूर्ण कर नयसार का जीव श्वेताम्बिका नगरी में भारद्वाज नाम का ब्राह्मण हुआ यहाँ भी उसने परिव्राजक धर्म को ग्रहण किया। अन्त में ४४ लाख पूर्व की आयु भोगकर माहेन्द्र देवलोक में देव रूप से उत्पन्न हुआ। इसके बाद नयसार ने अनेक भव किये।

चौदहवां और पंद्रहवां भव

राजगृह नाम का नगर था। वहां कपिल नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम कान्तिमती था। नयसार का जीव कान्तिमती के उदर से पुत्र रूप से जन्मा। उसका नाम 'स्थावर' रखा गया। स्थावर युवा हुआ। इस भव में भी स्थावर ने परिव्राजक धर्म स्वीकार किया। अन्त में आयुष्य पूर्ण कर ब्रह्मदेव लोक में देवत्व प्राप्त किया।

ब्रह्मदेवलोक से चवकर नयसार का जीव राजगृह नाम के नगर में विश्वनंदी राजा के छोटे भाई विशाखभूति युवराज की धारिणी देवी के उदर में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। नौ मास साढ़े सात रात्रि दिवस के बीतने पर उसका जन्म हुआ। माता पिता ने उसका नाम विश्वभूति रखा। विश्व-

भूति अपने अनुपम स्वभाव के कारण माता पिता के आनन्द की वृद्धि करने लगा। धीरे धीरे विश्वभूति ने बाल्यावस्था पार की और युवावस्था में प्रवेश किया।

एक बार अपनी पत्नियों के साथ पुष्पकरण्डक नामक उद्यान में वह स्वैर विहार कर रहा था। राजा विश्वनंदी का विशाखनन्दी नाम का पुत्र था। वह विशाखभूति को युवराज पद देने के बाद जन्मा था। विशाखनन्दी की माता को युवराज पुत्र विश्वभूति को पुष्पकरण्डक उद्यान में स्वच्छंद क्रीड़ा करते देखकर मन में ईर्षा उत्पन्न हुई। वह क्रुद्ध होकर कोप भुवन में गई। राजा ने उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न किया किन्तु वह प्रसन्न नहीं हुई और कहने लगी हमें राज्य से और सेना से क्या लाभ ! हमारा राज्य भी व्यर्थ है और सेना भी व्यर्थ है ! जबकि विशाखनन्दी युवराज पुत्र विश्वभूति की तरह भोग नहीं भोग रहा है। आपके जीतेजी जब हमारी यह स्थिति है तो आपकी अनुपस्थिति में हमारी क्या स्थिति होगी ? हम तो नाम मात्र के राजा हैं। सच्चा राजा तो विशाखभूति और उसका पुत्र विश्वभूति ही है।

रानी के वचन सुनकर राजा विश्वनंदी विचार में पड़ गया। उसने मंत्री को बुलाकर कहा मंत्रिन् ! हमारे कुल मे यह रिवाज हैं कि जब उद्यान में एक निवास करता है तो दूसरा उसमें प्रवेश नहीं करता। ऐसी अवस्था में युवराज पुत्र को उद्यान से कैसे निकाला जाय ? हम उससे उद्यान खाली करवाना चाहते हैं।

राजा की बात सुनकर मंत्री बोला एक उपाय है। आप उसके पास कपट युक्त पत्र भेजिए जिसमें लिखा जाय कि राज्य की सीमा पर शत्रु प्रबल हो उठे हैं। उन्हें दबाने के लिए महाराज सेना के साथ जा रहे हैं।

राजा ने वैसा ही किया जैसा मंत्री ने कहा था। महाराज स्वयं शत्रुओं को दबाने के लिए सीमा पर जा रहे है, यह सुनते ही वह राजा के पास आया और बोला—महाराज ! मैं स्वयं सेना के साथ जाऊँगा और शत्रुओं से लड़कर सीमा की रक्षा करूँगा। मेरे रहते आप नहीं जा सकते। ऐसा कह कर वह सेना के साथ युद्ध के लिए चला गया।

अब विशाखनंदी राजकुमार उद्यान को खाली जानकर अपनी रमणियों के साथ उसमें गया और स्वैर विहार करने लगा।

युद्ध के लिये गया हुआ विश्वभूति राज्य की सीमा पर जा पहुंचा । वहाँ पर शान्ति देखकर और किसी विरोधी राजा को न देखकर वापस लौट आया और पुष्पकरण्डक उद्यान में क्रीड़ा के लिए गया । उद्यान के द्वार पर पहुंचते ही द्वारपालों ने उन्हें रोक दिया और कहा–युवराज ! उद्यान में विशाखनंदी क्रीडा कर रहे हैं । अतः आप नहीं जा सकते ।

यह सुनकर विश्वभूति समझ गया कि राजा ने मुझे धोके से उद्यान से निकाला है । यह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ । उसने कपित्थ के वृक्ष पर मुष्टि प्रहार कर कपित्थ फल उद्यान भूमि में बिखेर दिये और उनसे कहा–मैं कपित्थ की तरह तुम सबके सिर धराशायी कर सकता हूँ । किन्तु राजा की मर्यादा का विचार करते ऐसा नहीं कर रहा हूँ । मुझे तुम लोगों ने कपट से बाहर निकाला है । स्वजन भी स्वार्थ के वशीभूत होकर ऐसा व्यवहार करते है । इन काम भोगों को धिक्कार है । कहा भी है–

सल्लं कामा विसं कामा कामा आसीविसोवमा ।
कामे पत्थयमाना अकामा जंति दुग्गइं ॥

काम भोग कांटे के समान हैं, काम भोग विष के समान है और काम भोग सर्प के समान हैं । काम भोगों को प्राप्त न करने वाले किन्तु उनकी कामना करने वाले भी दुर्गति को प्राप्त करते है ।

इस प्रकार विचार करते २ विश्वभूति के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ । वह आर्य संभूत के समीप प्रव्रज्या ग्रहण करके कठोर तपश्चर्या करने लगा तपश्चर्या के प्रभाव से उन्हें अनेक लब्धियां उत्पन्न हुई । वे एकाकी विहार करने लगे । विहार करते हुए वे मथुरा नगरी पहुँचे । संयोगवश उसी समय राजकन्या का पाणिग्रहण करने के लिए राजकुमार विशाखनंदी भी वहां आया हुआ था । राजमार्ग पर उसका निवास था । विश्वभूति अनगार मासखमण के पारणा के दिन आहार के लिए भ्रमण करते हुए उसी मार्ग से निकले । उन्हें जाते देख विशाखनंदी के आदमियों ने अपने स्वामी को परिचय कराया-स्वामिन् ! यह विश्वभूति अनगार है । तब विश्वनंदी उन्हें ऐसा देखने लगा जैसे शत्रु को देखता हो ।

इसी बीच एक व्याई हुई गाय ने मुनि को धक्का दिया और वे गिर पड़े । यह देख विशाख-नंदी जोर से हँस कर बोला कपित्थ फलों को गिराने वाला वह बल कहां गया ? तब मुनि ने क्रुद्ध

होकर गाय को सींग से पकड़ कर उसे ऊँचा उठा लिया और गाय को चारों ओर घुमाया। सिंह कितना भी दुर्बल हो जाय क्या उसके बल की बराबरी सियाल कर सकता है ?

यह देखकर विशाखनंदी लज्जित हो गया। किन्तु विशाखनंदी के इस व्यवहार को देखकर मुनि सोचने लगे-यह दुरात्मा अब भी वैर रखता हैं। यदि मेरे तप संयम का कुछ फल हो तो आगामी भव में मैं इसका वध करने वाला होऊँ।

मुनि अपने स्थान पर आये। अपने निदान का प्रतिक्रमण किये बिना साठ भक्त का अनशन कर वे मरे और महाशुक्र नामक कल्प में महर्द्धिक देव बने।

१७ वाँ १८ वाँ १६ और २० वाँ भव

देव आयु भव और स्थिति के क्षय होने पर नयसार का जीव महाशुक्र विमान से चवकर सत्तरहवें भव में भरत क्षेत्र के पोतनपुर नगर में प्रजापति नामक राजा की रानी मृगावती की कूख में उत्पन्न हुआ। मृगावती रानी ने वासुदेवत्व के सूचक सात स्वप्न देखे। गर्भ काल के पूर्ण होने पर महारानी ने पुत्र को जन्म दिया। उसके पीठ की तीन पसलियां थी अतः उसका नाम त्रिपृष्ठ रखा गया। त्रिपृष्ठ वासुदेव युवा हुए।

उधर इसका पूर्व भव का वैरी विशाखनंदी का जीव अनेक योनियों में परिभ्रमण करता हुआ शंखपुर के समीपवर्ती तुंग नामक पर्वत में सिंहरूप से उत्पन्न हुआ। वह सिंह महा भयंकर था। शंखपुर के लोग उस सिंह से बड़े परेशान थे। त्रिपृष्ठ वासुदेव उस सिंह को मारने के लिए तुंग गिरि पर पहुंचे। सिंह को ललकारा। सिंह भी महाभयंकर आवाज करता हुआ सामने आया। त्रिपृष्ठ ने उसके दोनों जबड़ों को पकड़ कर उसे चीर दिया। सिंह मर गया।

उस समय अश्वग्रीव नाम का प्रतिवासुदेव का राज्य था। उसने त्रिपृष्ठ की शक्ति को सुना और अपनी सेना के साथ उससे लड़ने आया। त्रिपृष्ठ ने उसका शक्ति से मुकाबला कर उसकी सेना को परास्त किया। अन्त में अपनी सेना को परास्त होती हुई देख उसने त्रिपृष्ठ को मारने के लिए चक्र छोड़ा। त्रिपृष्ठ ने उसी चक्र से अश्वग्रीव का सिर काट दिया और वह मर गया। देवों ने पुष्पवृष्टि की और त्रिपृष्ठ को वासुदेव घोषित किया। त्रिपृष्ठ के आधीन सब राजा आ गये। त्रिपृष्ठ ने कोटिशिला अपनी भुजा पर उठाली।

त्रिपृष्ठ वासुदेव भरत के तीन खण्ड पर राज्य करते हुए सुख से रहने लगे। उनके बड़े भ्राता का नाम अचल बलदेव था।

एक बार सोते समय एक नाटक चल रहा था। त्रिपृष्ठ ने शय्या पालक को आज्ञा दी 'जब मुझे निद्रा आ जाय तब संगीत और नाटक को बन्द कर देना' इस प्रकार शय्या पालक को आज्ञा देकर त्रिपृष्ठ नाटक देखते-देखते सो गये। शय्या पालक को नट मंडली का संगीत बड़ा अच्छा लगा। उसने वासुदेव की आज्ञा की उपेक्षा कर उसे चालू रखा। जब त्रिपृष्ठ वासुदेव जगे तो नाटक चल रहा था। शय्या पालक की इस धृष्टता पर वासुदेव अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उसने गरम शीशे का रस शय्या पालक के कानों में डलवा कर उसे मार डाला। इस तरह अनेक युद्ध करके और काम भोगों में आसक्त होकर अनेक पाप उपार्जित किये। अन्त में ८४ लाख पूर्व का आयुष्य समाप्त कर वे मरे और तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले अप्रतिष्ठान नाम के सातवें नरक में उत्पन्न हुए। वहाँ से निकल कर नयसार का जीव सिंह योनि में उत्पन्न हुआ। वह सिंह मर कर बीसवें भव में चौथे नरक में उत्पन्न हुआ।

२१ वाँ और २२ वाँ भव

अपर विदेह क्षेत्र में मूका नाम की नगरी थी। वहां धनंजय नाम का राजा राज्य करता था। उसकी धारिणी नाम की रानी थी। नयसार का जीव धारिणी रानी की कूंख में आया। रानी ने चौदह महास्वप्न देखे। गर्भ काल के पूर्ण होने पर महारानी ने पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम पोट्टिलपया अमर नाम प्रिय मित्र रखा। प्रियमित्र युवा हुए। युवावस्था में उनका अनेक राजकुमारियों के साथ विवाह हुआ। उनकी अ युध शाला में चक्र रत्न उत्पन्न हुआ। अन्य तेरह रत्न भी उत्पन्न हुए। इन रत्नों की सहायता से उन्होंने छह खण्डों पर विजय प्राप्त की और चक्रवर्ती बने।

एक बार मूका नगरी मे पोट्टिलाचार्य का आगमन हुआ। प्रियमित्र चक्रवर्ती ने मुनि का उपदेश सुना और अपन पुत्र को राज्य देकर प्रव्रजित हो गया, प्रव्रज्या लेकर एक करोड़ वर्ष तक कठोर तप किया। अन्त में ८४ लाख पूर्व की समग्र आयु भोगकर यथा समय देहोत्सर्ग करके सातवें महाशुक्र देवलोक में [illegible] प से उत्पन्न हुआ।

२३ और २४ वाँ भव

देवलोक का आयुष्य पूरा कर प्रियमित्र चक्रवर्ती का जीव वत्स देश की राजधानी कौशाम्बी के राजा पोट्ट की रानी पद्मावती की कूंख में उत्पन्न हुआ। गर्भ काल में पद्मावती को दीन दुखियों को भोजन करवाने का दोहद उत्पन्न हुआ था। गर्भ काल के पूर्ण होने पर पद्मावती ने पुत्र को जन्म दिया। गर्भ के दोहद के अनुसार उसका नाम पोटिल्ल कुमार रखा। पोटिल्ल राजकुमार बाल्यावस्था पार करके युवा हुआ। एक बार सुदर्शन नाम के आचार्य का आगमन हुआ। पोट्टिल्लकुमार ने आचार्य का उपदेश सुना और उनसे प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रव्रज्या ग्रहण करके इन्होंने एक करोड़ वर्ष तक कठोर तप किया। समवायांग सूत्र में कहा है कि–

"समणे भगवं महावीरे तित्थगर भवग्गहणाओ छट्ठे पोट्टिल भवग्गहणे एगं वासकोडि सामन्न परियागं पाउणित्ता सहस्सारे कप्पे सव्वट्ठविमाणे देवत्ताए उववण्णे। सम. सूत्र १३४

श्रमण भगवान महावीर तीर्थंकर भव से पूर्व छट्ठे पोटि्टल्ल के भव में एक करोड़ वर्ष का श्रामण्य जीवन पालकर सहस्त्रार कल्प में सर्वार्थ विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए।

२५ और २६ वाँ भव

सर्वार्थ विमान से च्यवकर नयसार का जीव छत्रा नगरी के राजा जितशत्रु की रानी भद्रा की कुक्षि से पुत्र रूप में जन्मा। उसका नाम नन्दन रखा गया। नन्दनकुमार युवा हुआ। पिता ने उसका राज्याभिषेक किया। वह राजा हो गया। न्याय नीति के साथ राज्य करते हुए २४ लाख वर्ष बीत गये। एक बार उसने पोट्टिलाचार्य से उपदेश सुना और उनके पास दीक्षित हो गया। दीक्षा लेकर नन्दन मुनि ने ग्यारह अंग सूत्रों का अध्ययन किया। उसके बाद नन्दन मुनि कठोर तप करने लगे। उन्होंने एक लाख वर्ष तक निरंतर मासखमण की तपस्या की। जिनकी संख्या एक लाख आठ हजार थी। इस तरह निरंतर कठोर तप करके एवं अर्हत् सिद्ध, संघ, धर्मोपदेशक वृद्ध, बहुश्रुत, तपस्वी आर्हतादिवात्सल्य आदि तीर्थंकर नाम कर्म के उपार्जन करने वाले बीस स्थानों की आराधना की और तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया।

अन्त में नन्दनमुनि ने अनशन किया और समाधि पूर्वक देह त्यागकर प्राणत कल्प के पुष्पोत्तर विमान में महर्द्धिक देव पद प्राप्त किया

जन्म से अभिनिष्क्रमण तक

भगवान महावीर

अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं ।
णेया मुणी कासव आसुपण्णे ।।
इंदेव देवाण महाणुभावे ।
सहस्सणेता दिवि णं विसिट्ठे ।।७।।

सूत्र कृ० अ० ६ ।।

शीघ्र बुद्धि वाले काश्यप गोत्री मुनि श्री वर्द्धमान स्वामी ऋषभादि जिनवरों के उत्तम धर्म के नेता हैं। जैसे स्वर्ग लोक में सब देवताओं में इन्द्र श्रेष्ठ है इसी तरह भगवान सब जगत में सर्व श्रेष्ठ है।

भगवान महावीर की जन्म भूमि

भारत के इतिहास में बिहार प्रांत का गौरव पूर्ण स्थान हैं। इसी गौरव गरिमा सम्पन्न प्रांत में वैशाली नाम की नगरी थी। काल के अप्रतिहत प्रभाव से आज वैशाली का वह वैभव नहीं रह गया है फिर भी उसके खण्डहर आज भी उसकी अतीत गरिमा के साक्षी हैं। गंगा तट के उत्तरीय भाग अर्थात् हाजीपुर सब डिविजन से करीब १३, १४ मील उत्तर में 'बसाढ' नामक ग्राम है जो आज भी मौजूद है। इस गांव के उत्तर में एक बहुत बड़ा खण्डहर है। उसे लोग राजा विशाल का गढ़ कहते है। इस गढ़ के समीप एक विशाल अशोक स्तम्भ है। पुरातत्व वेत्ताओं के मत से यही लिच्छवियों की प्रताप भूमि 'वैशाली' है।

वैशाली नगरी का नाम ही सूचित करता है कि किसी जमाने में वह बड़ी विशाल नगरी थी। रामायण में भी इस नगरी का उल्लेख आता हैं—

इक्ष्वाकोऽस्तु नरव्याघ्र पुत्रः परम धार्मिकः ।
अलम्बुषायामुत्पन्नो विशालः इति विश्रुतः ॥
तेन चासीदिहस्थाने विशालेति पुरीकृता

श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण आदिकाण्ड सर्ग ४७ श्लोक ११-१२

अर्थात् इक्ष्वाकु की रानी अलम्बुशा के पुत्र विशाल ने विशाला नगरी बसाई थी ।

जिस समय विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को लेकर जनकपुर जा रहे थे उन्हें मार्ग में वैशाली पड़ी थी । उन्होंने राम लक्ष्मण को वैशाली के उन्नत शिखर वाले भव्य प्रासाद दिखलाये और एक रात वहीं निवास किया था । रामायण के अनुसार उस समय वहां सुमति नाम का राजा राज्य करता था । विष्णु पुराण में सुमति राजा को विशाल की दसवीं पीढी में बताया हैं । (वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड सर्ग ४७ श्लोक १७-१८-१९)

श्रीमद् भागवतपुराण में भी विशाल द्वारा वैशाली बसाये जाने का उल्लेख है:-

विशालो वंशकृत राजा वैशाली निर्ममे पुरीम् ।

पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी व्याकरण में भी वैशाली के शासक वृज्जियों का उल्लेख किया है-देखो मद्रवृज्योकन् (सूत्र ४-२-१३१)

इन प्रमाणों से सिद्ध हैं कि वैशाली एक अति प्राचीन नगरी थी । राजा विशाल के द्वारा बसाये जाने से इस नगरी का नाम विशाला अथवा वैशाली पड़ा हो अथवा दीवारों को तीन बार हटाकर विशाल किये जाने के कारण इसका नाम वैशाली रखा गया हो, पर यह सिद्ध है कि विदेह जनपद में इसका महत्वपूर्ण स्थान था ।

जैन आगम ग्रन्थों में और आगमेतर ग्रन्थों में इस नगरी की समृद्धि का वर्णन आता है ।

इतश्च वसुधावध्वा मौलिमाणिक्यसन्निभा ।
वैशालीति श्री विशाला नगर्यस्ति गरीयसी ॥
आखण्डल इवाखण्ड शासनः पृथ्वीपतिः ।
चेटिकृतारि भूपाल स्तत्रचेटक इत्यभृत् ॥

(त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र पर्व १० श्लो० १८४)

अर्थात् धन धान्य से भरपूर और विशाल वैशाली नगरी थी। उस पर चेटक का अधिकार था।

यह नगरी बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी सुन्दर रमणीय प्रासादों से सम्पन्न धन धान्य से समृद्ध और सब प्रकार की सुख सुविधाओं मे युक्त थी। यह नगरी तीन बड़ी दीवारों से घिरी हुई थी। किले में प्रवेश करने के लिए तीन विशाल द्वार थे। संसार के समस्त गणतन्त्रों से पुरानी गणतंत्र शासन प्रणाली उस समय वैशाली में प्रचलित थी। वहां का गणतंत्र विश्व का सबसे प्राचीन गणतंत्र था। उसे जन्म देने का श्रेय इसी नगरी को है।

हैहयवंश के राजा चेटक इस गणतंत्र के प्रधान थे। इसके नेतृत्व में वैशाली की ख्याति समृद्धि एवं वैभव चरम सीमा तक पहुँच चुका था। राजा चेटक का नाम जैन आगमों में कई प्रकार से प्रसिद्ध है। महावीर के उपासक होने मात्र से ही यह प्रसिद्ध नहीं थे किन्तु कई अन्य व्यावहारिक प्रसंगों से भी इनकी प्रसिद्धि थी। इनकी प्रसिद्धि के कई कारणों में पहला कारण यह था कि इनका महावीर के वंश के साथ दो प्रकार का सम्बन्ध था। एक महावीर की माता त्रिशला इनकी बहन होती थी और दूसरे महावीर के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिनवर्द्धन की पत्नी ज्येष्ठा इनकी पुत्री थी। जिस प्रकार महावीर के वंश के साथ इनका कौटुम्बिक सम्बन्ध था, उसी प्रकार तत्कालीन भारत के प्रसिद्ध राजाओं के साथ भी इनका गाढ़ सम्बन्ध था। सिन्धु सौवीर के राजा उदायन, अवंती के राजा चण्ड प्रद्योतन, कौशाम्बी के राजा शतानिक चंपा के राजा दधिवाहन और मगध के राजा श्रेणिक इनके दामाद होते थे जिसका उल्लेख आवश्यक चूर्णि में इस प्रकार हैं।

एतो य वेसालीए नयरीए चेडओ राया हेहयकुल संभूओ। तस्स देवीणं अण्णमण्णाणं सत्त धूआओ पभावती पउमावती, मिगावती सिवा, जेट्ठा, सुजेट्ठा चेल्लणं त्ति। सो चेडओ सावओ परिविवाह करणस्स पच्चक्खातं। भूताओ ण देति कस्स त्ति, ताओ माति मिस्सगाओ रायं आपुच्छित्ता अण्णसिं अच्छितकाणं सरिसगानं देति। पभावती वीतिभए उदायणस्स दिण्णा, पउमावती चंपाए दधिवाहणस्स, मिगावती कोसुंबीए सताणियस्स, सिवा उज्जेणीए पज्जोतस्स जेट्ठा कुण्डग्गामे वद्धमाणसामिणो जेट्ठस्स णंदिवद्धणस्स दिण्णा सुजेट्ठा चेल्लणाय देवकारिओ अच्छंति।

हैहय कुलोत्पन्न वैशाली के राजा चेटक की अलग अलग रानियों से सात पुत्रियां हुई प्रभावती

पद्मावती मृगावती, शिवा, जेष्ठा, सुज्येष्ठा तथा चेलना। राजा श्रावक था। उसे पर विवाह करण का प्रत्याख्यान था। इसलिए वह अपनी पुत्रियों का भी विवाह नहीं करता था। तब रानियों ने राजा की अनुमति लेकर अपनी पुत्रियों के सदृश राजाओं के साथ उनका विवाह कर दिया। इनमें प्रभावती का वीतिभय के राजा उदायन के साथ मृगावती का कौशाम्बी के राजा शतानीक के साथ शिवा का उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के साथ, पद्मावती का चंपा के राजा दधिवाहन के साथ और जेष्ठा का कुण्डग्रामवासी महावीर के ज्येष्ठ भ्राता नन्दीवर्द्धन के साथ विवाह हुआ था। सुजेष्ठा और चेलना अभी कुंवारी थी (सुज्येष्ठा ने दीक्षा ली और चेलना ने राजा श्रेणिक के साथ विवाह किया था।) इस प्रकार तत्कालीन प्रसिद्ध राजाओं के श्वसुर चेटक राजा की वैशाली नगरी में प्रजा अत्यन्त सुखी थी।

वैशाली के पश्चिम भाग में गण्डकी नदी बहती थी। उसके पश्चिम तट पर स्थित ब्राह्मण कुण्डपुर, क्षत्रिय कुण्डपुर, वाणिज्य ग्राम, कमरिग्राम और कोल्लाग सन्निवेश जैसे अनेक उपनगर वैशाली की समृद्धि बढ़ा रहे थे। ब्राह्मण कुण्डपुर और क्षत्रिय कुण्डपुर क्रमशः एक दूसरे के पूर्व और पश्चिम में थे। इन दोनों के दक्षिण और उत्तर दो-दो भाग थे। दोनों नगर पास पास में थे। इनके बीच बहुसाल नामका उद्यान था।

ब्राह्मणकुण्ड का दक्षिण विभाग ब्रह्मपुरी के नाम से प्रसिद्ध था। उनमें अधिकांश ब्राह्मणों की ही बस्ती थी। इसका नायक कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण था। वह वेदादि शास्त्रों में पारंगत था। इसकी स्त्री देवानंदा जालन्धर गोत्रीया ब्राह्मणी थी। ऋषभदत्त और देवानंदा भगवान पार्श्वनाथ के शासनानुयायी थे।

उत्तर क्षत्रिय कुण्डपुर में करीब ५०० घर ज्ञात वंशीय क्षत्रियों के थे। उनके नायक थे महाराजा सिद्धार्थ। ये सर्वाधिकार सम्पन्न राजा थे। इनका काश्यप गोत्र था। महाराजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशला वैशाली के सम्राट चेटक की बहन थी। एवं वासिष्ठ गोत्रीया क्षत्रियाणी थी। ये दोनों भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा को मानने वाले थे। इनके जेष्ठ पुत्र का नाम नन्दिवर्द्धन था। नन्दिवर्द्धन का विवाह वैशाली के राजा चेटक की पुत्री ज्येष्ठा के साथ हुआ था।

महामुनि नन्दन का जीव प्राणत कल्प के पुष्पोत्तर विमान से चलकर आषाढ शुक्ला छठ के

दिन हस्तोत्तरा नक्षत्र से चन्द्रमा का योग होने पर देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ में आया। इसका उल्लेख आचारांग और कल्पसूत्र में इस प्रकार आता है :-

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पंच हत्थुत्तरे यावि होत्था तं जहा हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते १ हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए २ हत्थुत्तराहिं जाए ३ हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए ४ हत्थुत्तराहिं कसिणे पडिपुण्णे अव्वाघाए निरावरणे अणंते अणुत्तरे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे साइणा भगवं परिनिव्वुए। (आचा० द्वि० अ० १५)

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के पांच कल्याणक उत्तरा फालगुनी नक्षत्र में हुए। जैसे कि भगवान उत्तराफालगुनी नक्षत्र में देवलोक से चवकर गर्भ में उत्पन्न हुए, उत्तराफालगुनी नक्षत्र में ही गर्भ से गर्भान्तर में संहरण किए गए। उत्तराफालगुनी नक्षत्र में ही भगवान मुण्डित होकर सागार (गृहस्थावास) से अनगार साधु बने और उत्तराफालगुनी नक्षत्र में ही भगवान ने अनन्त प्रधान निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न (सम्पूर्ण केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त किया और स्वाति नक्षत्र में भगवान निर्वाण को प्राप्त हुए।

समणे भगवं महावीरे इमाए ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए सुसमाए समाए वीइक्कंताए सुसम दुस्समाए समाए वीइक्कंताए दूसम सुसमाए समाए बहुविइक्कंताए पण्णहत्तरिए वासेहिं मासेहि य अद्ध अद्धनवमेहि सेसेहि जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे तस्स णं आसाढसुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोग मुवागएणं महाविजय सिद्धत्थपुप्फुत्तरवर पुण्डरीयदिसा सोवत्थिय वद्धमाणाओ महाविमाणाओ वीसं सागरोवमाइं आउयं पालइत्ता आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं चुए चइत्ता इह खलु जंबुद्दीवे णं दीवे भारहेवासे दाहिणड्ढ भरहे दाहिणमाहणकुंडपुर सन्निवेसम्मि उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालस गोत्तस्स देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए सीहुब्भव भूएणं अप्पाणेणं कुच्छिसि गब्भं वक्कंते।

उस काल को अवसर्पिणी काल कहते हैं और जिसमें प्रकृति ह्रास से उन्नति की ओर बढ़ती हैं उसे उत्सर्पिणी काल कहते है। प्रत्येक कालचक्र ६ आरक में विभक्त है और १० कोटाकोटी सागरोपम का होता है इस तरह पूरा काल चक्र २० कोटा कोटि सागरोपम का होता है। भगवान महावीर अवसर्पिणी कालचक्र के चौथे आरे के (जो ४२ हजार वर्ष कम एक कोटा कोटि सागर का है) ७५ वर्ष ८।। महीने शेष रहने पर प्राणत नामक १० वें स्वर्ग से) ग्रीष्म ऋतु के चौथे मास आठवे पक्ष आषाढ़ शुक्ला षष्ठी की रात्रि को उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर महाविजय सिद्धार्थं, पुष्पोत्तरवर पुण्डरीक, दिक्स्वस्तिक, वर्द्धमान नाम के महाविमान से वीस सागरोपम की आयु को पूरी करके देवायु देव-स्थिति और देव भव का क्षय होने पर इस जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र के दक्षिणार्द्ध भारत के दक्षिण ब्राह्मण कुण्डपुर सन्निवेश में कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की जालन्धर गोत्रीया देवानंदा नाम की ब्राह्मणी की कुक्षि में सिंह की तरह गर्भ रूप में उत्पन्न हुए। जिस समय भगवान गर्भ में आये वे तीन ज्ञान से युक्त थे।

मूल–समणे भगव महावीरे तिन्नाणोवगए यावि हुत्था चइस्सामित्ति जाणइ, चुए मित्ति जाणइ, चयमाणे न जाणइ सुहुमेणं से काले।

श्रमण भगवान महावीर तीन ज्ञान (मति श्रुत और अवधि) से युक्त थे वे यह जानते थे कि मैं स्वर्ग से च्यवकर मनुष्य लोक से जाऊँगा, मैं वहां से च्यवकर अब गर्भ में आ गया हूँ। परंतु वे च्यवन समय को नहीं जानते थे क्योंकि वह समय अत्यन्त सूक्ष्म होता है।

जिस रात्रि को श्रमण भगवान महावीर जालंधर गोत्रिया देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में गर्भ में आये उस रात्रि के चौथे प्रहर में, जब देवानन्दा न गहरी निद्रा में थी और न पूरे रूप में जग रही थी, उस अवस्था में उसने उदार-प्रधान कल्याणकारी, शिव-उपद्रव का नाश करने वाले सश्रीक मांगलिक चौदह महास्वप्नों को देखकर जागी। वे स्वप्न ये थे गज वृषभ, सिंह, अभिषेक, पुष्पमाला चंद्रमा, सूर्य, ध्वजा, कुम्भ पद्म युक्त सरोवर, सागर विमान, रत्नों की राशि और धूम रहित अग्नि। वह अपने पति से कहती है–

हे देवानुप्रिय! आज मैं अपनी शय्या पर सोई हुई थी। उस समय अर्द्ध जागत अवस्था में

चौदह महास्वप्नों को देखकर जागी हूँ। हे देवानुप्रिय ! इन उदार यावत् स्वप्नों का क्या फल विशेष होगा ?

तत्पश्चात् ऋषभदत्त ब्राह्मण देवाणंदा ब्राह्मणी से इस अर्थ को सुनकर तथा हृदय में धारण करके हर्षित हृदय हुआ। उसने कहा:-

हे देवानुप्रिये ! तुमने उदार स्वप्न देखे है। हे देवानुप्रिये ! कल्याणकर शिव उपद्रव नाशक धान्य-धन की प्राप्ति कराने वाले, मंगलमय एवं सुशोभन स्वप्न देखे हैं। प्रिये ! आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगल करने वाले स्वप्न देखे हैं। देवानुप्रिये ! इन स्वप्नों के देखने से तुम्हें अर्थ लाभ होगा। देवानुप्रिये ! पुत्र का लाभ होगा। राज्य का लाभ होगा। भोग का लाभ होगा सुख का लाभ होगा। निश्चय ही देवानुप्रिये ! तुम्हारे पूरे नौ मास और साढ़े सात रात्रि-दिन व्यतीत होनें पर सुकोमल हाथ पैर वाला पुत्र होगा।

उसके बाद वह देवाणंदा ब्राह्मणी ऋषभदत्त ब्राह्मण के इस प्रकार कहने पर हर्षित एव संतुष्ट हुई। उसका हृदय आनंदित हो गया। वह दोनों हाथ जोड़कर और मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोली-

'हे देवानुप्रिय ! आपने जो कहा है सो ऐसा ही है। आपका कथन सत्य है। असत्य नहीं है। यह कथन संदेह रहित हैं। हे देवानुप्रिय ! आपका कथन मुझे इष्ट है। अत्यन्त इष्ट है और इष्ट तथा अत्यन्त इष्ट हैं। आपने मुझ से जो कहा है सो यह अर्थ सत्य है। इस प्रकार कह कर देवानंदा स्वप्न को भली भांति अंगीकार करती है। अंगीकार करके ऋषभदत्त ब्राह्मण के साथ उदार मनुष्य सम्बन्धी भोग भोगती हुई रहने लगी।

उस काल और उस समय में शक्र देवेन्द्र देवराज सौधर्म कल्प के सौधर्मावतंस विमान में सुधर्मा सभा में शक्र नामक सिंहासन पर आसीन था।

वह वहां बत्तीस लाख विमानों, चौरासी हजार सामानिक देवों, तेतीस त्रायस्त्रिंशत देवों, चार पालों, परिवार सहित आठ अग्रमहिषियों, तीन परिषदों, सात अनीकों (सेनाओं) सात अनिकाधिपतियों देवों तथा अन्य बहुत से सौधर्मकल्पवासी देव देवियों पर आधिपत्य, अग्रेसरता, स्वामित्व,

भर्तृत्व. नायकत्व, आज्ञा ईश्वरत्व एवं सेनापतित्व करता हुआ तथा अनुरूप वादित नाट्य गीतों के बाजों की तथा निपुणदेवों द्वारा बजाए गये तन्त्री, तल, ताल, त्रुटित घन मृदंगों की जोर जोर की ध्वनि पूर्वक दिव्य भोगों को भोगता हुआ समय व्यतीत कर रहा था।

तत् पश्चात् वह इन्द्र अपने विपुल अवधिज्ञान से सम्पूर्ण जम्बूद्वीप का निरीक्षण कर रहा था। इतने में उसने जम्बूद्वीप नामक द्वाप में भारतवर्ष में ब्राह्मण कुण्ड नगर में कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी जालंधर गोत्रीया देवानंदा ब्राह्मणी की कूख में गर्भ रूप से उत्पन्न हुए श्रमण भगवान महावीर को देखा। श्रमण भगवान महावीर को देखकर वह अत्यन्त हृष्ट तुष्ट हुआ चित्त मे आनन्द हुआ। मन में प्रीति उत्पन्न हुई, परम प्रसन्नता हुई हर्ष के वशीभूत होकर उसका हृदय विकसित हो गया, मेघ की धाराओं का आघात पाये कदम्ब के फूल के समान उसे रोमांच हो आया। श्रेष्ठ कमल के समान नेत्र और मुख विकसित हो गये। कंकण, हाथ के तोड़े, केयूर अंगद भुजबन्ध, मुकुट कुण्डल और हार से सुशोभित इन्द्र का वक्ष स्थल-हृदय हर्ष से फूल उठा। लम्बी लटकती हुई माला और हिलते हुए आभूषणों का धारक सुरेन्द्र आदर सहित जल्दी-जल्दी चपलता पूर्वक सिंहासन से उठा, उठकर पादपीठ चौकी से नीचे उतरा, उतर कर श्रेष्ठ वैडूर्य रिष्ट एवं अंजन नाम के रत्नों से खचित एवं कुशल कारीगरों द्वारा यथा स्थान निवेशित चमकते हुए अनेक रत्नों से मंडित दोनों पैरों की पादुकाएं उतारी। उतार कर एक साटिक उत्तरासंग किया करके हस्त सम्पुट अंजलि से कमल की कली के समान आकार वाले हाथों को जोड़कर जिधर तीर्थंकर भगवान थे, उधर मुख करके सात-आठ कदम सामने गया। सामने जाकर बायें पैर को संकुचित किया। सकुचित करके दायें पेर को धरणीतल पेरे संकोच कर रखा और शिर को तीन बार धरती से लगाया। फिर थोड़ा सा ऊपर उठ कर कड़े और तोड़े से स्थिर बनी हुई भुजाओ को उठाकर, हाथ के दस नख एक दूसरे से मिलाकर दोनों हथेलियां जोड़कर और मस्तक के चारों ओर घूमती हुई अंजलि को मस्तक पर धारण कर इस तरह बोला—

"नमस्कार हो अरिहंत भगवान को; वे भगवान कैसे है ? धर्म की आदि करने वाले, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले, स्वयं ही सम्यग् बोध को प्राप्त करने वाले, पुरुषों में श्रेष्ठ, पुरुषों में सिंह, पुरुषों में श्रेष्ठ गंध हस्ती, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक के हितकारी, लोक में दीपक,

उद्योत करने वाले, अभय देने वाले, नेत्र देने वाले, धर्म मार्ग के दाता, शरण के दाता जीवन के दाता, बोधि सम्यक्त्व के दाता, धर्म के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथि, धर्म के श्रेष्ठ चारगति का अन्त करने वाले चक्रवर्ती, अप्रतिहत तथा श्रेष्ठ ज्ञान दर्शन के धारक, छद्म से रहित, राग द्वेष के विजता, औरों को जिताने वाले, स्वयं तिरे हुए, दूसरों को तारने वाले, स्वयं बोध, को प्राप्त, तथा दूसरों को बोध देने वाले स्वयं मुक्त दूसरों को मुक्त करने वाले सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा उपद्रव रहित अचल स्थिर रोग रहित अंतरहित अक्षय, बाधा रहित, पुनरागमन से रहित सिद्ध गति नामक स्थान को प्राप्त करने वाले भय को जीतने वाले, जिन भगवान को मेरा नमस्कार हो। नमस्कार हो श्रमण भगवान महावीर को जो तीर्थ की आदि करने वाले चरम तीर्थंकर पूर्व तीर्थंकरों द्वारा निर्दिष्ट यावत् सिद्ध गति नाम वाले स्थान को पाने के इच्छुक भावी सिद्ध है। यहां पर स्थित मैं वहां पर स्थित भगवान की वन्दना स्तुति करता हूं। वहां पर स्थित भगवान यहां पर स्थित मुझे देखें। इस प्रकार शक्रेन्द्र भगवान महावीर को वन्दना नमस्कार करता है। वन्दना नमस्कार करके पूर्व की ओर मुख रखकर सिंहासन पर बैठा।

उसके बाद उस शक्र देवेन्द्र देवराज के मन में इस प्रकार का अन्तर में चिन्तनरूप अध्यवसाय संकल्प उत्पन्न हुआ ऐसा हुआ नहीं ऐसा होने योग्य नहीं और न ऐसा होगा कि तीर्थंकर भगवान चक्रवर्ती राजा, बलदेव वासुदेव अन्त्यकुलों में हलके कुलों में, अधम कुलों में, तुच्छ कुलों में दरिद्र कुलों में कंजूस कुलों में' भिखारी कुलों में, ब्राह्मण कुलों में, आज तक कोई आये नहीं, आते नहीं और न कभी भविष्य में आने ही वाले है। इस प्रकार वस्तुतः अरिहंत भगवंत चक्रवर्ती बलदेव और वासुदेव उग्र वंशों में भोगवंशों में इक्ष्वाकु वंशों में क्षत्रिय कुलों में हरिवंश कुलों में अथवा इसी प्रकार के अन्य विशुद्ध जाति कुल वंशों में ही उत्पन्न हुए है, होते है, और होंगे मगर यह आश्चर्य जनक घटना अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल व्यतीत हो जाने पर होती है।

नाम गोत्र–नीच गोत्र का क्षय न हुआ हो वेदा न गया हो, निर्जरा न हुई हो और इस कारण उसके उदय से अर्हन्त चक्रवर्ती बलदेव और वासुदेव अन्त कुलों में, प्रांत कुलों में दरिद्र कुलों में, कृपण कुलों में आये, आते है या आएंगे। कुक्षि में गर्भ रूप से उत्पन्न हुए, उत्पन्न होते है और उत्पन्न होंगे तो भी योनि जन्म निष्क्रमण (योनि द्वारा जन्म के रूप में निकलना) से न जन्मे

हैं न जन्मते हैं और न जन्मेंगे अर्थात् प्रथम तो अरिहंत चक्रवर्ती आदि अन्त प्रान्त यावत् ब्राह्मण कुलों में गर्भ के रूप में प्रवेश नहीं करते. कदाचित् पूर्वबद्ध नीच गोत्र कर्म के उदय से गर्भ में प्रवेश करें तो भी उन कुलों में जन्म नहीं लेते।

परन्तु श्रमण भगवान् महावीर जम्बूद्वीपांतर्गत भारतवर्ष के ब्राह्मण कुण्ड ग्राम में ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में गर्भ रूप से उत्पन्न हुए है। भूत कालीन वर्तमान कालीन तथा भविष्यत् कालीन शक्र देवेन्द्रों देवराजों का यह आचार-परम्परा है कि वे अर्हन्त भगवन्तों को पूर्वोक्त अन्त कुलों से यावत् ब्राह्मण कुलों से, उत्तम उग्र कुलों में भगवान ऋषभदेव द्वारा रक्षक के रूप में नियुक्त क्षत्रियों के कुलों में, भोगकुलों में, राजन्य कुलो में इक्ष्वाकु कुलों में, हरिवंश कुलो में, ज्ञात कुलो में अथवा इसी प्रकार के विशुद्ध जाति (मातृ पक्ष) और विशुद्ध कुल (पितृ पक्ष) वाले किन्हीं कुलो में उनका संहरण कर दें बदल दें।

शक्रेन्द्र फिर सोचते हैं—इस कारण मेरे लिए भी उचित होगा कि मै श्रमण भगवान महावीर को जो चरम तीर्थंकर है और भावी तीर्थंकर के रूप में ऋषभादि पूर्ववर्ती तीर्थंकरों ने जिनका उल्लेख किया है, उन्हें ब्राह्मण कुण्ड ग्राम नामक नगर मे निवास करने वाले ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी जालंधर गोत्रीया देवा नंदा ब्राह्मणी की कुक्षि से क्षत्रियकुंड ग्राम नगर में रहने वाले ज्ञात क्षत्रियों के कुल में उत्पन्न काश्यप गोत्रीय सिद्धार्थ क्षत्रिय की भार्या वाशिष्ठ गोत्रीया त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में गर्भ रूप से बदल दूं।

इस प्रकार विचार करके शक्रेन्द्र पदाति-अनीक-सेना के अधिपति हरिणैगमेषी देव को बुलाता है और बुलवाकर इस प्रकार कहता है:—

'हे देवानुप्रिय! निश्चय ही अर्हन्त चक्रवर्ती बलदेव, वासुदेव अन्त, प्रान्त कृपण, दरिद्र, तुच्छ और भिक्षुक कुलों में अतीत काल में उत्पन्न नहीं हुए, वर्तमान में नहीं उत्पन्न होते और भविष्य में भी उत्पन्न नहीं होगे। प्रत्युत निश्चय ही अर्हत चक्रवर्ती बलदेव और वासुदेव उग्रकुलों में, राजन्य, ज्ञात, क्षत्रिय, इक्ष्वाकु कुलो में या इसी प्रकार के मातृ पितृ पक्ष से विशुद्ध जाति कुलों में ही जन्मे हैं, जन्मते हैं और भविष्यत् में भी जन्मेंगे। किन्तु यह आश्चर्य रूप भाव अनन्त उत्सर्पिणी

और अवसर्पिणी काल बीतने पर उत्पन्न होता है । नाम गोत्र-नीच गोत्र का क्षय न हुआ हो वह वेदा न गया हो; उसकी निर्जरा न हुई हो और इस कारण उसके उदय से अर्हन्त चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव अन्त, प्रांत, तुच्छ, कृपण, दरिद्र भिक्षुक कुलों में आये, आते हैं या आएंगे, कुक्षि में गर्भ रूप से उत्पन्न हुए उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे, किन्तु योनि जन्म-निष्क्रमण से न जन्मे हैं, न जन्मते है और न जन्मेंगे ।

परन्तु श्रमण भगवान महावीर जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में ब्राह्मणकुण्ड ग्राम नगर में ऋषभदत्त ब्राह्मण कोटाल गोत्रीय की पत्नी जालंधर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में गर्भ रूप से उत्पन्न हुए है ।

अतीत अनागत और भविष्यत् के शक्र देवेन्द्र देवराज का यह जीताचार है कि अरिहंत भगवान का उस प्रकार के अंत प्रांत तुच्छ कृपण दरिद्र, भिक्षुक कुलों से निकाल कर उस प्रकार के उग्र, भोग, राजन्य, ज्ञात क्षत्रिय इक्ष्वाकु हरिवंश कुलों में या इसी प्रकार के अन्य विशुद्ध जाति कुलों में रखा जाय संहरण किया जाय ।

अतः हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ और श्रमण भगवान महावीर का ब्राह्मणकुण्ड नगर के निवासी कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी के उदर से संहरण करके उन्हें क्षत्रिय कुण्ड ग्राम नगर के काश्यप गोत्रीय ज्ञात वंशीय सिद्धार्थ राजा की पत्नी वासिष्ठ गोत्रीया त्रिशला क्षत्रियाणी के उदर में रख दो और रखकर मेरी यह आज्ञा शीघ्र वापिस करो ।

इसके बाद पदातिसेना का नायक हरिणैगमेषी देव, देवेन्द्र देवराज के इस प्रकार कहे जाने पर हर्षित और संतुष्ट हुआ यावत् उसका हृदय आनंदित हो गया । वह दोनों हाथ जोड़कर और मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोला 'हे देव ! ऐसा ही हो ।' इस प्रकार कहकर विनय के साथ शक्र देवेन्द्र देवराज के पास से निकला । निकल करके उत्तरदिग्भाग (ईशान कोण) में जाता है और वैक्रिय समुद्घात से समवहत होता है अर्थात् उत्तर वैक्रिय शरीर बनाने के लिए जीव प्रदेशों को बाहर निकालता है । जीव प्रदेशों को बाहर निकाल कर संख्यात योजन का दण्ड बनाता है ।

से संहरण किया जाऊँगा' यह जानते थे। 'मेरा संहरण हो रहा है' यह नहीं जानते थे। और मैं संहृत किया जा चुका हूँ, यह जानते थे।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर को वर्षाकाल के तीसरे मास पांचवे पक्ष अर्थात् आश्विन कृष्णा त्रयोदशी के दिन ८२ रात्रि दिन के व्यतीत होने पर और ८३ वें दिन की मध्य रात्रि में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग होने पर हितानुकम्पक हरिणैगमेषी देव शक्र की आज्ञा से ब्राह्मण कुण्ड ग्राम नगर से कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी जालंधर गोत्रीया देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि से भगवान को निकाल कर क्षत्रिय कुण्ड ग्राम नगर में ज्ञात वंशीय क्षत्रिय काश्यप गोत्रीय सिद्धार्थ क्षत्रिय की पत्नी वासिष्ठ गोत्रीया त्रिशला क्षत्रियानी की कुक्षि में, लेश मात्र भी पीड़ा न हो इस रीति से रख दिया।

जिस रात्रि में श्रमण भगवान महावीर को जालंधर गोत्र वाली देवानंदा ब्राह्मणी की कूख से निकाल कर वासिष्ठ गोत्रवाली त्रिशला क्षत्रियाणी की कूख में गर्भ रूप से रखा, उस रात्रि में देवानंदा ब्राह्मणी अपनी शय्या पर अर्ध जागृत अवस्था में सो रही थी। उस समय पूर्व दृष्ट उदार कल्याण रूप शिवरूप धन्य मंगलकारी सश्रीक चौदह स्वप्नों को त्रिशला क्षत्रियानी ने हरण कर लिया है, अपहृत किया है, ऐसा देखा। और देखकर जाग उठी वे स्वप्न हाथी वृषभसिंह आदि थे।

जिस रात्रि में श्रमण भगवान महावीर जालंधर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि से अपहृत कर वासिष्ठ गोत्रीया त्रिशला क्षत्रियाणी की कूख मे गर्भ रूप से रखे गये, उस रात्रि में त्रिशला क्षत्रियाणी अपने उस प्रकार के वासगृह में रहती थी जो अन्दर से चित्रो से आलिखित था और बाहर से उसमें सफेदी की गई थी। कोमल पाषाण से घिसाई की गई थी, अतएव वह चिकना था। उसका ऊपरी छत तरह तरह के चित्रों से चित्रित था। मणियों की किरणों के प्रकाश से वहां का अंधकार नष्ट हो गया था। उस वास गृह का नीचे का फर्श घिस कर समान किया हुआ था और उस पर विविध प्रकार के स्वस्तिक आदि को कुरेद कर उसे अधिक सुन्दर बनाया गया था। जहां तहां पांच प्रकार के सुगंधित पुष्पों को बिखेर कर उसे अधिक सुगन्धित बनाया गया था कृष्ण अगर उत्तम कुंदरुक (चीडा) तुरुष्क (लोबान) और अनेक द्रव्यों के संयोग से बने हुए धूप के जलन से उत्पन्न हुई मघमघाती गंध से रमणीय था। उसमें उत्तम चूर्णों की गंध भी विद्य-

मान थी। सुगंध की अधिकता के कारण वह गंध द्रव्य की बट्टी जैसा प्रतीत होता था।

इस प्रकार के वास गृह में एक शय्या थी। उस पर शरीर प्रमाण उपधान बिछा था। उसमे दोनों ओर सिरहाने और पांयते की जगह तकिया लगे थे। वह दोनों तरफ ऊँची और मध्य में झुकी हुई थीं गम्भीर थी। जैसे गंगा के किनारे की बालू में पांव रखने से पाँव धस जाता है उसी प्रकार उसमे भी धँस जाता था। उस पर कसीदा काढ़े हुए क्षोमनुकूल का चद्दर बिछा हुआ था। उस पर सुन्दर बना हुआ रजस्त्राण पड़ा हुआ था। उस पर मसहरी लगी हुई थी। वह अतिशय रमणीय थी। उसका स्पर्श आजिनक (चर्म का वस्त्र) रुई, बूर नामक वनस्पति और मक्खन के समान नरम था। उस शय्या पर सुगन्धित पुष्प सुगन्धित चूर्ण व्यवस्थित ढंग से रखे हुए थे।

ऐसी सुन्दर शय्या पर मध्य रात्रि के समय त्रिशला क्षत्रियाणी जब न गहरी नींद में थी और न जाग रही थी, ऐसी अवस्था मे उसने चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्न देखकर जाग उठी। वे स्वप्न ये थे हाथी वृषभ, सिंह, अभिषेक, माला, चन्द्र, सूर्य, ध्वज, कुंभ, पद्म सरोवर, समुद्र, विमान, रत्न राशि और धूम रहित अग्नि।

इस प्रकार के शुभ सौम्य देखते ही प्रीति उत्पन्न करने वाले सुन्दर स्वरूप वाले स्वप्नों को देखकर त्रिशला माता कमल की पंखुड़ियों जैसी नेत्र वाली और हर्ष से रोमांचित होकर अपनी शय्या पर जाग गई।

जिस रात्रि में महान् यश वाले अरिहंत तीर्थंकर माता की कूंख में गर्भ रूप में आते हैं उस रात्रि में तीर्थंकर की सभी माताएं उपरोक्त चौदह महास्वप्नों को देखती है।

तत्पश्चात वह त्रिशला क्षत्रियाणी इस प्रकार के उदार चौदह महास्वप्नों को देखकर जागी उसे हर्ष और प्रसन्नता हुई यावत् वह विकसित हृदय वाली हुई। मेघ की धाराओं का आघात पाये कदम्ब के समान उसे रोमांच हो आया, उसने स्वप्न का विचार किया। विचार करके शय्या से उठी और उठकर पाद पीठ से नीचे उतरी। नीचे उतरकर मानसिक त्वरा से रहित, शारीरिक चपलता से रहित, स्खलना से रहित, विलम्ब रहित राजहंस जैसी गति से जहां सिद्धार्थ क्षत्रिय का शयन गृह था वहीं आती है। वहां आकर सिद्धार्थ क्षत्रिय को इष्ट कान्त, प्रिय मनोज्ञ मणाम

(मन को अतिशय प्रिय) उदार श्रेष्ठ स्वर एवं उच्चारण से युक्त कल्याण समृद्धि कारक शिव, धन्य मंगल कारक सश्रीक हृदय को प्रिय लगने वाली हृदय को आह्लाद उत्पन्न करने वाली परिमित अक्षरों वाली मधुर-स्वरो से मीठी, रिभित-स्वरों की घोलना वाली शब्द और अर्थ की गंभीरता वाली मंजुल वाणी बोल बोल कर सिद्धार्थ राजा को जगाती है ॥४९॥

इसके बाद त्रिशला क्षत्रियाणी सिद्धार्थ राजा की अनुमति पाकर विविध प्रकार के मणि, सुवर्ण और रत्नों की रचना से विचित्र भद्रासन पर बैठती है। बैठ कर आश्वस्त विश्वस्त होकर सुखद और श्रेष्ठ आसन पर बैठी हुई सिद्धार्थ राजा से इष्ट शब्दों में इस प्रकार कहने लगी-॥५० (कल्पसूत्र)

हे स्वामिन्! आज मैं उस पूर्ववर्णित शय्या में सो रही थी, तब यावत् पूर्व वर्णित चौदह महास्वप्न देख कर जागी हूँ। हे स्वामिन्! इन उदार यावत् स्वप्नों का क्या फल विशेष होगा? ॥५१॥ (कल्पसूत्र)

इसके बाद सिद्धार्थ राजा त्रिशला देवी से इस अर्थ को सुन कर तथा हृदय में धारण करके हर्षित हृदय हुआ। मेघ की धाराओं से आहत कदंब पुष्प के समान उसका शरीर पुलकित हो उठा। उसे रोमांच हो आया। उसने स्वप्नों का अवग्रहण किया-सामान्य रूप से विचार किया। अवग्रहण करके विशेष अर्थ के विचार रूप ईहा में प्रवेश किया। ईहा मे प्रवेश करके अपने स्वाभाविक मति पूर्वक बुद्धि विज्ञान से उन स्वप्नों के फल का निश्चय किया। निश्चय करके त्रिशला क्षत्रियाणी से हृदय को आल्हाद उत्पन्न करने वाली मृदु, मधुर, रिभित और सश्रीक वाणी से प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहा।

हे देवानुप्रिये! तुमने उदार स्वप्न देखें हैं यावत् सश्रीक स्वप्न देखे है। हे देवी! आरोग्य तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगल करने वाले स्वप्न देखे हैं। हे देवानुप्रिये! इन स्वप्नों को देखने से तुम्हें अर्थ का लाभ होगा, देवानुप्रिये! तुम्हें पुत्र का, राज्य का, सौख्य का लाभ होगा। निश्चय ही देवानुप्रिये! तुम पूरे नौ मास और साढ़े सात रात्रि दिन व्यतीत होने पर हमारे कुल की ध्वजा के समान, कुल के लिये दीपक के समान कुल में पर्वत के समान, कुलावतंसक, कुल तिलक, कुल-कीर्तिकर, कुल की आजीविका बढ़ाने वाला, कुल को आनन्द प्रदान करने वाला, कुल का यश बढ़ाने वाला, कुल का आधार, कुल में वृक्ष के समान आश्रयणीय और कुल की वृद्धि करने वाला

तथा सुकोमल हाथ पैर वाला, अंगों की हीनता से रहित, पांचों इंद्रियों से परिपूर्ण, लक्षण व्यंजन गुणों से युक्त, मानउन्मान प्रमाण से प्रतिपूर्ण, सुजात, सर्वांग सुन्दर, चन्द्रमा के समान सौम्य, कान्त, प्रिय दर्शन पुत्र को प्रसव करोगी।

वह बालक बाल्यावस्था को पार करके कला आदि के ज्ञान में परिपक्व होकर यौवन को प्राप्त होकर शूरवीर और पराक्रमी होगा। वह विस्तीर्ण और विपुल सेना तथा वाहनों वाला होगा। राज्य का अधिपति राजा होगा, अतएव देवी ! तुमने उदार स्वप्न देखे हैं। देवी ! तुमने आरोग्यकारी, तुष्टिकारी, दीर्घायुष्यकारी, और कल्याणकारी स्वप्न देखे हैं। इस प्रकार कहकर राजा उसकी बार बार प्रशंसा करने लगा।

इसके बाद वह त्रिशला क्षत्रियाणी सिद्धार्थ राजा के इस प्रकार कहने पर हर्षित एवं संतुष्ट हुई। उसका हृदय आनन्दित हो गया। वह दोनों हाथ जोड़कर और मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोली :—

हे स्वामी ! आपने जो कहा सो ऐसा ही है। आपका कथन सत्य हैं, असत्य नहीं है, यह कथन संशय रहित है। हे स्वामिन् ! आपका कथन मुझे इष्ट है अत्यन्त इष्ट है और इष्ट तथा अत्यन्त इष्ट है। आपने मुझ से जो कहा है सो यह अर्थ सत्य है। इस प्रकार कहकर त्रिशला क्षत्रियाणी स्वप्न को भली भांति अंगीकार करती हैं। अंगीकार करके राजा सिद्धार्थ की आज्ञा पाकर नाना प्रकार के मणि सुवर्ण और रत्नों की रचना से विचित्र भद्रासन से उठती है। उठकर जिस जगह शय्या थी वहां पर अत्वरित चपलता रहित असंभ्रांत अविलंब राजहंस सदृश गति से आती हैं। आकर इस प्रकार कहती है–

'मेरे ये स्वरूप से उत्तम और फल से प्रधान तथा मंगलमय स्वप्न अन्य अशुभ स्वप्नों से नष्ट न हो जाए' ऐसा सोचकर त्रिशला क्षत्रियाणी देव और गुरूजन सम्बन्धी प्रशस्त धार्मिक कथाओं द्वारा अपने शुभ स्वप्नों की रक्षा करने के लिए जागरण करती हुई विचरने लगी।

तत्पश्चात सिद्धार्थ क्षत्रिय ने प्रभात काल के समय कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा हे देवानुप्रिय ! आज बाहर की उपस्थान शाला (सभा भवन) को शीघ्र

ही विशेष रूप से परम रमणीय गन्धोदक सिंचित साफ सुथरी लिपी हुई पांच वर्णो के सरस सुगन्धित एवं बिखरे हुए फूलों के समूह रूप उपचार से युक्त, काला गुरु कुंदुरुक्क, तुरुष्क तथा धूप के जलाने से महकती हुई गंध से व्याप्त होने के कारण मनोहर श्रेष्ठ सुगंध के चूर्ण से सुगंधित तथा सुगंध की गुटिका के समान करो और कराओ। ऐसा करके सिंहासन की रचना करो। करके मेरी यह आज्ञा वापिस सौंपो, अर्थात् आज्ञानुसार कार्य हो जाने की सूचना दो।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष सिद्धार्थ राजा द्वारा ऐसा कहे जाने पर हर्षित और संतुष्ट हुए। दोनों हाथ जोड़ कर दसो नखों को इकट्ठा करके मस्तक पर घुमा कर अंजलि जोड़ कर 'हे देव! ऐसा ही हो' इस प्रकार कह कर विनय के साथ आज्ञा के वचनों को स्वीकार करते हैं और स्वीकार करके सिद्धार्थ राजा के पास से निकलते हैं। निकल कर जहाँ उपस्थानशाला थी वहाँ आते हैं। आकर उपस्थानशाला को गन्धोदक से सींचते हैं यावत् सिंहासन की रचना करते हैं। करके सिद्धार्थ राजा के पास आते हैं। आकर हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक उनकी आज्ञा को वापस करते हैं ॥५९॥

तत्पश्चात् स्वप्नवाली रात्रि के बाद दूसरे दिन की रात्रि प्रकाशमान प्रभात रूप हुई। प्रफुल्लित कमलों के पत्ते विकसित हुए, काले मृग के नेत्र निद्रा रहित होने से विकस्वर हुए। फिर वह प्रभात पाण्डुर श्वेत वर्ण वाला हुआ लाल अशोक की कांति, पलाश के पुष्प, तोते की चोंच, चिरमी के अर्द्ध भाग के समान सरोवरों में स्थित कमलों के वन को विकसित करने वाला तथा सहस्त्र किरणों वाला दिवाकर तेज से जाज्वल्यमान हो गया। ऐसा होने पर सिद्धार्थ राजा अपनी शय्या से उठा ॥६०॥

शय्या से उठकर पादपीठ से नीचे उतरा और जहां व्यायाम शाला थी वहां आया। व्यायाम शाला में प्रवेश करके अनेक प्रकार के व्यायाम के योग्य (भारी पदार्थो को उठाना) वलगन (कूदना) व्यामर्दन (भुजा आदि अंगों को परस्पर मरोड़ना) कुश्ती तथा करण (बाहुओं को विशेष प्रकार से मरोड़ना रूप कसरत से सिद्धार्थ राजा ने श्रम किया और खूब श्रम किया। तदनन्तर शतपाक तथा सहस्त्र पाक आदि श्रेष्ठ सुगन्धित तेल आदि अभ्यंगनों से जो प्रीति उत्पन्न करने वाले अर्थात् रुधिर आदि धातुओं को सम करने वाले, जठराग्नि को दीप्त करने वाले, दर्पनीय अर्थात् शरीर का वल वढ़ाने वाले मदनीय (कामवर्द्धक) बृहणीय (मांस वर्द्धक) तथा समस्त

इंद्रियों और शरीर को आह्लादित करने वाले थे, राजा सिद्धार्थ ने अभ्यंगन कराया । फिर मालिश किये शरीर के चर्म को परिपूर्ण हाथ पैर वाले तथा कोमलतल वाले छेक (अवसर के ज्ञाता) दक्ष (चटपट काम करने वाले) पट्ठे, कुशल (मर्दन करने में चतुर) मेघावी निपुण परिश्रम के जीतने वाले, अभ्यंगन मर्दन और उद्वर्तन करने के गुणों में पूर्ण पुरुषों द्वारा अस्थियों को सुखकारी, मांस को सुखकारी त्वचा को सुखकारी तथा रोमों को सुखकारी इस प्रकार चार तरह की संबाधना से सिद्धार्थ के शरीर का मर्दन किया गया । इस मालिस और मर्दन से राजा का परिश्रम दूर हो गया वह व्यायाम शाला से बाहर निकला ।

व्यायाम शाला से बाहर निकल कर सिद्धार्थ राजा जहाँ मज्जनगृह (स्नानागार) था, वहाँ आता है । आकर मज्जनगृह में प्रवेश करता है । प्रवेश करके चारों ओर जालियों से मनोहर चित्र विचित्र मणियों और रत्नों के फर्श वाले रमणीय स्नान मण्डप के भीतर विविध प्रकार के मणियों और रत्नों की रचना से चित्र विचित्र स्नान करने के पीठ (बाजोट) पर सुख पूर्वक बैठा । उसने पवित्र स्थान से लाये हुए शुभ जल से, पुष्प मिश्रित जल से सुगंध मिश्रित जल से और शुद्ध जल से बार बार कल्याणकारी और उत्तम स्नान विधि से स्नान किया । उस कल्याणकारी उत्तम स्नान के अंत में रक्षा पोटली आदि सैंकड़ों कौतुक किये गये । तदनन्तर पक्षी के पंख के समान अत्यन्त कोमल, सुगन्धित और कषाय रंग से रंगे हुए वस्त्र से शरीर को पोंछा । कोरा बहुमूल्य और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किया । सरस और सुगन्धित गोशीर्ष चन्दन से उनके शरीर पर विलेपन किया गया । शुचि पुष्पों की माला पहनी । केसर आदि का लेपन किया मणियों के और स्वर्ण के अलंकार धारण किये । अठारह लड़ों के हार, नौ लड़ों के अर्द्धहार, तीन लड़ों के छोटे हार तथा लम्बे लटकते हुए कटिसूत्रों से शरीर की सुन्दर शोभा बढ़ाई । कंठ में कंठा पहना । उंगलियों में अंगूठियां धारण की । सुन्दर अंग पर अन्यान्य सुन्दर आभरण धारण किये । अनेक मणियों के बने कटक और त्रुटिक नामक आभूषणों से उनको भुजाएँ स्तंभित से प्रतीत होने लगी । अतिशय रूप के कारण राजा अत्यन्त सुशोभित हो उठा । कुण्डलों के कारण उनका मुख मण्डल उद्दीप्त हो गया मुकुट से मस्तक प्रकाशित होने लगा । वक्षस्थल हार से आच्छादित होने के कारण अतिशय प्रीति उत्पन्न करने लगा । लम्बे लटकते हुए दुपट्टे से उसने सुन्दर उत्तरासंग किया । मुद्रिकाओं से उसकी उंगलियां पीली दीखने लगी । नाना भांति की मणियों सुवर्ण और रत्नों से निर्मल महामूल्यवान्

निपुण कलाकारों द्वारा निर्मित चमचमाते हुए, सुरचित भली भांति मिली हुई सन्धियों वाले, विशिष्ट प्रकार के मनोहर सुन्दर आकार वाले और प्रशस्त वीरवलय धारण किये। अधिक कहने से क्या लाभ ? भली भांति मुकुट आदि आभूषणों से अलंकृत और वस्त्रों से विभूषित राजा सिद्धार्थ कल्पवृक्ष के समान दिखाई देने लगे। कोरंट वृक्ष के पुष्पों की माला वाला छत्र उनके मस्तक पर धारण किया गया। आजू बाजू चार चामरों से उनका शरीर बींजा जाने लगा। राजा पर दृष्टि पड़ते ही लोग 'जय जय' का मांगलिक घोष करने लगे। अनेक गणनायक दण्डनायक राजा ईश्वर तलवर मांडलिक कौटुम्बिक मंत्री महामंत्री ज्योतिषी, द्वारपाल, अमात्य, चेट, पीठ मर्दक नागरिक-लोग, व्यापारी, सेठ, सेनापति, सार्थवाह, दूत और सन्धिपाल, इन सबके साथ घिरे हुए ग्रहों के समूह में देदीप्यमान तथा नक्षत्रों और ताराओं के मध्य चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन वाले राजा सिद्धार्थ मज्जनगृह से निकले। निकल कर जहाँ उपस्थानशाला थी वहीं आये और पूर्व दिशा की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन हुए ॥६२॥

तदनंतर अपने समीप ईशान कोण में श्वेत वस्त्र से आच्छादित तथा सरसों के मांगलिक उपचार से जिन में शान्तिकर्म किया गये हैं ऐसे आठ भद्रासन रखवाते हैं। रखवा करके नाना मणियों और रत्नों से अतिशय दर्शनीय बहुमूल्य और श्रेष्ठ नगर में बनी हुई कोमल एवं सैंकड़ों प्रकार की रचना वाले चित्रों का स्थानभूत ईहामृग (भेड़िया) वृषभ, अश्व, मगर नर, पक्षी, सर्प, किन्नर रु रु जाति के मृग, अष्टापद चमरी गाय, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्रों से युक्त, श्रेष्ठ तारों से भरे हुए सुशोभित किनारों वाली जवनिका सभा के भीतरी भाग में बंधवाई। जवनिका बँधवा कर उसके भीतरी भाग में त्रिशला देवी के लिये भद्रासन रखवाया। नाना मणि रत्नों से खचित श्वेत वस्त्र उस पर बिछा हुआ था। वह सुन्दर था। स्पर्श से सुख उत्पन्न करने वाला था और अतिशय मृदु था। इस प्रकार आसन बिछा कर राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलवाया। और उनसे कहा—देवानुप्रियो ! अष्टांग महानिमित्त—ज्योतिष के सूत्र और अर्थ के पाठक तथा विविध शास्त्रों में कुशल स्वप्नपाठकों को शीघ्र ही बुलाओ और बुलाकर शीघ्र ही इस आज्ञा को वापिस करो ॥६४॥

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष सिद्धार्थ राजा के इस प्रकार कहे जाने पर हर्षित यावत्

आनन्दित-हृदय हुए, दोनों हाथ जोड़ कर दसों नखों को इकट्ठा करके मस्तक पर घुमा कर अंजलि जोड़ कर 'हे देव ! ऐसा ही हो' इस प्रकार कह कर विनय के साथ आज्ञा के वचन को स्वीकार करते हैं। स्वीकार करके सिद्धार्थ राजा के पास से निकलते हैं निकल कर क्षत्रिय कुण्डग्राम नगर के बीचोंबीच होकर जहाँ स्वप्न पाठकों के घर थे वहाँ पहुँच कर स्वप्न पाठकों को बुलाते हैं। तत्पश्चात् वे स्वप्नपाठक सिद्धार्थ राजा के कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये जाने पर हृष्ट तुष्ट यावत् आनन्दित हृदय हुए। उन्होंने स्नान किया कुल देवताओं का पूजन किया यावत् कौतुक (मसी तिलक आदि) और मंगल प्रायश्चित आदि किया। अल्प किन्तु बहुमूल्य आभरणों से शरीर को अलंकृत किया, मस्तक पर दूर्वा तथा सरसों को मंगल निमित्त धारण किया। फिर अपने घर से निकले। निकल कर क्षत्रिय कुण्ड ग्राम नगर के बीचों बीच होकर जहाँ सिद्धार्थ राजा के मुख्य महल का द्वार था, वहाँ आये और सब एक साथ मिले। मिलकर सिद्धार्थ राजा के मुख्य महल के द्वार से भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके जहाँ बाहरी उपस्थान शाला थी और जहाँ सिद्धार्थ राजा थे वहाँ आये। आकर सिद्धार्थ राजा को जय और विजय शब्दों से बधाया।

इसके बाद सिद्धार्थ राजा ने उनकी चन्दन से अर्चना की। गुणों की प्रशंसा करके वन्दन किया, पुष्पों द्वारा पूजा की आदर पूर्ण दृष्टि से देखकर एवं नमस्कार करके मान किया फल वस्त्र आदि देकर सत्कार किया और अनेक प्रकार की भक्ति करके सन्मान किया। फिर वे स्वप्न पाठक पहले से बिछाए हुए भद्रासनों पर अलग अलग बैठे।

इसके बाद सिद्धार्थ राजा ने जवनिका के पीछे त्रिशला क्षत्रियाणी को बिठलाया। फिर हाथों में पुष्प और फल लेकर अत्यन्त विनय के साथ उन स्वप्न पाठकों से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियों आज उस प्रकार की उस (पूर्व वर्णित) शय्या पर सोई हुई त्रिशला क्षत्रियाणी यावत् चौदह महा-स्वप्न देखकर जागी हैं। देवानुप्रियो ! इन उदार यावत् सश्रीक महास्वप्नों का क्या कल्याणकारी फल विशेष होगा।

तत्पश्चात् वे स्वप्न पाठक सिद्धार्थ राजा से इस अर्थ को सुनकर और हृदय में धारण कर हृष्ट तुष्ट यावत् आनन्दित हृदय हुए। उन्होंने उन स्वप्नों का सम्यग प्रकार से अवग्रहण किया। अवग्रहण करके ईहा (विचारणा) में प्रवेश किया प्रवेश करके परस्पर एक दूसरे के साथ विचार

विमर्श किया विचार विमर्श करके स्वप्न का अपने आप से अर्थ समझा। दूसरों का अभिप्राय जानकर विशेष अर्थ समझा आपस में उस अर्थ को पूछा अर्थ का निश्चय किया, फिर तथ्य अर्थ का निश्चय किया। उन स्वप्न पाठकों ने सिद्धार्थ राजा के सामने स्वप्न शास्त्रों का बार-बार उच्चारण करते हुए कहा:-

हे स्वामिन्! इस प्रकार हमारे स्वप्न शास्त्र में बयालीस स्वप्न और तीस महास्वप्न कुल मिलाकर ७२ स्वप्न हमने देखे हैं। अरिहंत की माता और चक्रवर्ती की माता अरिहंत और चक्रवर्ती के गर्भ में आने पर इन तीस महास्वप्नों में से चौदह स्वप्न देख कर जागती है। वे इस प्रकार हैं:-हाथी, वृषभ सिंह आदि ॥७१॥

जब वासुदेव गर्भ में आते हैं तो वासुदेव की माता इन चौदह महास्वप्नों में से किन्हीं भी सात स्वप्नों को देख कर जागृत होती है ॥७२॥

जब बलदेव गर्भ में आते हैं तो बलदेव की माता इन चौदह स्वप्नों में से किन्हीं चार स्वप्नों को देख कर जागृत होती है ॥७३॥

जब माण्डलिक राजा गर्भ में आते हैं तो माण्डलिक राजा की माता इन चौदह स्वप्नों में से कोई एक महा स्वप्न देख कर जागृत होती है ॥७॥

हे स्वामिन्! त्रिशलादेवी ने इन महास्वप्नों में से चौदह महास्वप्न देखे हैं अतएव स्वामिन्! त्रिशलादेवी ने उदार स्वप्न यावत् मंगलकारक स्वप्न देखे हैं।

स्वामिन्! इससे आपको अर्थ का, सुख का, भोग का और पुत्र का लाभ होगा। स्वामिन्! इस प्रकार त्रिशलादेवी पूरे नौमास व्यतीत होने पर आपके कुल की ध्वजा के समान, कुलदीपक कुल पर्वत किसी से पराभूत न होने वाला, कुल का भूषण, कुल का तिलक कुल की कीर्ति बढ़ाने वाला, कुल की आजीविका बढ़ाने वाला कुल का यश बढ़ाने वाला, कुल का आधार कुल में वृक्ष

प्राप्त होकर शूर वीर और पराक्रमी होगा। वह विस्तीर्ण और विपुल सेना वाला तथा वाहनों वाला होगा। चातुरंत चक्रवर्ती राज्य का अधिपति राजा होगा। अथवा जिन, तीनलोक का नायक, धर्म का श्रेष्ठ चक्रवर्ती होगा अतः हे देवानु प्रिय ! त्रिशलादेवी ने उदार स्वप्न देखे हैं, आरोग्यकारी, तुष्टिकारी, दीर्घायुष्यकारी और कल्याणकारी स्वप्न देखे हैं ।।७६।।

तदनन्तर सिद्धार्थ राजा उन स्वप्न पाठकों के इस अर्थ को सुनकर और हृदय में धारण करके हृष्ट तुष्ट एवं आनन्दित हृदय हो गये और हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले। ७७।।

हे देवानुप्रियो ! जो तुम कहते हो सो वैसा ही है-सत्य है। इस प्रकार कह कर उस स्वप्न के फल को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करके उन स्वप्न पाठकों का विपुल-अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, और वस्त्र गंध माला एवं अलंकारों से सत्कार करता है, सन्मान करता है। सत्कार सन्मान करके जीविका के योग्य प्रीतिदान देता है और दान देकर बिदा करता है ।।७८।।

तत्पश्चात् सिद्धार्थ राजा सिंहासन से उठा और जहां त्रिशलादेवी थी वहीं आया और इस प्रकार बोला ।।७९।।

हे देवानुप्रिये ! स्वप्न शास्त्र में बयालीस और तीस महास्वप्न कहे हैं। उनमें से तुमने चौदह महास्वप्न देखे हैं। तुम ने जो चौदह महास्वप्न देखे हैं उसका संक्षिप्त फल इस प्रकार है-

(१) चार दांत वाले हाथी को देखने से वह जीव चार प्रकार के धर्म को कहने वाला होगा।

(२) वृषभ को देखने से इस भरत क्षेत्र में बोधि-बीज का वपन करेगा।

(३) सिंह को देखने से कामदेव आदि उन्मत्त हाथियों से भग्न होते भव्य जीव रूप वन का रक्षण करेगा।

(४) लक्ष्मी को देखने से वार्षिक दान देकर तीर्थंकर-ऐश्वर्य को भोगेगा।

(५) माला देखने से तीन भुवन के मस्तक पर धारण करने योग्य होगा।

(६) चन्द्र को देखने से भव्य जीव रूप चन्द्र विकासी कमलों को विकसित करने वाला होगा।

(७) सूर्य को देखने से महातेजस्वी होगा।

(८) ध्वज को देखने से धर्म रूपी ध्वज को सारे संसार में लहराने वाला होगा।

(९) कलश को देखने से धर्म रूपी प्रासाद के शिखर पर उनका आसन होगा।

(१०) पद्मसरोवर को देखने से देवनिर्मित सुवर्ण कमल पर उनका विहार होगा।

(११) समुद्र को देखने से केवलज्ञान रूपी रत्न का धारक होगा।

(१२) विमान को देखने से वैमानिक देवों से पूजित होगा।

(१३) रत्नराशि को देखने से रत्न के गढ़ों से विभूषित होगा।

(१४) निर्धूम अग्नि को देखने से भव्य प्राणि रूप सुवर्ण को शुद्ध करने वाला होगा।

इन चौदह महास्वप्नों का समुचित फल यह है कि वह चौदह राज लोक के अग्रभाग पर स्थित सिद्धशिला के उपर निवास करने वाला होगा।

इत्यादि स्वप्न पाठकों के अनुसार सब कहता है यावत् तुम तीन लोक के नायक धर्म के श्रेष्ठ चातुरंत चक्रवर्ती पुत्र को जन्म दोगी ॥८०-८१॥

तत्पश्चात् त्रिशलादेवी सिद्धार्थ राजा से इस अर्थ को सुन कर और हृदय में धारण करके हृष्ट तुष्ट हुई यावत् आनन्दित हृदय हुई। यावत् उसने स्वप्न को सम्यक् प्रकार से अंगीकार किया ॥८२॥

स्वप्न को सम्यक प्रकार से अंगीकार करके सिद्धार्थ राजा की आज्ञा प्राप्त कर नाना मणिरत्नों से खचित भद्रासन से उठी और अत्वरित अचपल असंभ्रांत अविलंब राजहंस की गति से चलती हुई जहाँ अपना निवास स्थान था वहां आई और उसने अपने भवन में प्रवेश किया ॥८३॥

जब से श्रमण भगवान महावीर देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ से त्रिशला के गर्भ में आये तब से बहुत से कुबेर के आज्ञा पालक मध्यलोक में रहने वाले त्रिजृंभक नामक देव इन्द्र की आज्ञा से पुराने निधानों को सिद्धार्थ राजा के भवन में ले आने लगे। वे निधान ऐसे थे कि जिनके स्वामी मर चुके थे अतएव जिनका कोई स्वामी नहीं था। ये निधान ग्रामों में, आकरों में, नगरों में खेटों में, कर्वटों, मटम्बों, द्रोण मुखो, पत्तनों, निगमों आश्रमों संवाहों और सन्निवेशों, श्रृंगाटकों त्रिकों में चौकों में चत्वरों में, चार द्वार वाले स्थानों में, राजमार्गों में, उजड़े गांवों में, उजड़े नगरों में गांव की नालियों में, दुकानों में, देवालयों में सभास्थलों में प्याउओं में, आरामों में उद्यानों में वनों में वनखण्डों में श्मशानों में, सूने मकानों में पर्वत की गुफाओं में शान्तिगृहों में शैलगृहों में

उप स्थान गृहों मे तथा भवन गृहों में गड़े हुए थे। उन्हें वे देव सिद्धार्थ के भवन में लाने लगे ॥८४॥ (कल्प सूत्र)

जिस रात्रि में श्रमण भगवान महावीर का ज्ञातकुल में संहरण किया गया उस रात्रि में ज्ञातकुल की हिरण्य चांदी से वृद्धि हुई। इसी प्रकार स्वर्ण से, धन से, धान्य से, विभव से, ऐश्वर्य से, ऋद्धि से, सिद्धि से, समृद्धि से, सत्कार से, सम्मान से, पुरस्कार से, राज्य से, राष्ट्र से, बल से, वाहन से, कोष से, अन्न भण्डार से, पुर से, अंतपुर से, जनपद से, यशोवाद से, कीर्तिवाद से, और स्तुतिवाद से, वृद्धि हुई ॥८५॥

तब श्रमण भगवान महावीर के मातापिता को यह आध्यात्मिक, चिंतित, कल्पित-कार्य परिणत करने योग्य विचार प्रार्थित-स्वीकृत विचार, मनोगत तथा संकल्प-निश्चित विचार उत्पन्न हुआ कि जब से यह बालक हमारे यहाँ उदर में गर्भ रूप से आया है तभी से हम हिरण्य से यावत् प्रीति एवं सत्कार आदि के समूह से अतीव अतीव वृद्धि पा रहे हैं। अतः जब हमारा बालक जन्म लेगा तब हम इस बालक का इसी के अनुरूप गुणयुक्त गुणनिष्पन्न नाम रखेंगे-'वर्द्धमान' ॥८६॥

उसके बाद जब भगवान् गर्भ में थे माता की अनुकम्पा के लिए अर्थात् हलन चलन से माता को कष्ट न हो, इस विचार से वे निश्चल हो गये, निष्पंद हो गये। स्थिर एवं अपने शरीर के सभी अवयवों को स्थिर-संकुचित किये हुए रहने लगे। तब त्रिशला देवी अपने गर्भ को सहसा स्थिर देख कर कहने लगी-मेरे गर्भ का अपहरण हो गया है, मेरा गर्भ गिर गया है या गल गया है-क्योंकि पहले यह गर्भ हिलता था किन्तु अब यह नहीं हिलता है। ऐसा सोच कर इस तरह के विचारों से कलुषित मन वाली तथा गर्भ के अपहरण के संकल्पों से उत्पन्न पीड़ा द्वारा शोक सागर में डूबी हुई और हथेली पर मुख रख कर आर्तध्यान द्वारा भूमि पर दृष्टि लगाये हुई त्रिशला क्षत्रियाणी मन में विचार करने लगी।

उस समय सिद्धार्थ राजा का श्रेष्ठ भवन भी मृदंग तन्त्री ताल आदि वाद्यों एवं नाटकों से उपरत हो गया था। लोग दीन और विमनस्क-उदास हो गये थे। तब भगवान् ने यह सब जानकर अपने आपको एक देश से हिलाया अर्थात् अपने अंग के एक भाग को हिलाया ॥९०॥

(९) कलश को देखने से धर्म रूपी प्रासाद के शिखर पर उनका आसन होगा।

(१०) पद्मसरोवर को देखने से देवनिर्मित सुवर्ण कमल पर उनका विहार होगा।

(११) समुद्र को देखने से केवलज्ञान रूपी रत्न का धारक होगा।

(१२) विमान को देखने से वैमानिक देवों से पूजित होगा।

(१३) रत्नराशि को देखने से रत्न के गढ़ों से विभूषित होगा।

(१४) निर्धूम अग्नि को देखने से भव्य प्राणि रूप सुवर्ण को शुद्ध करने वाला होगा।

इन चौदह महास्वप्नों का समुचित फल यह है कि वह चौदह राज लोक के अग्रभाग पर स्थित सिद्धशिला के ऊपर निवास करने वाला होगा।

इत्यादि स्वप्न पाठकों के अनुसार सब कहता है यावत् तुम तीन लोक के नायक धर्म के श्रेष्ठ चातुरंत चक्रवर्ती पुत्र को जन्म दोगी ॥८०-८१॥

तत्पश्चात् त्रिशलादेवी सिद्धार्थ राजा से इस अर्थ को सुन कर और हृदय में धारण करके हृष्ट तुष्ट हुई यावत् आनन्दित हृदय हुई। यावत् उसने स्वप्न को सम्यक् प्रकार से अंगीकार किया ॥८२॥

स्वप्न को सम्यक प्रकार से अंगीकार करके सिद्धार्थ राजा की आज्ञा प्राप्त कर नाना मणिरत्नों से खचित भद्रासन से उठी और अत्वरित अचपल असंभ्रांत अविलंब राजहंस की गति से चलती हुई जहाँ अपना निवास स्थान था वहां आई और उसने अपने भवन में प्रवेश किया ॥८३॥

जब से श्रमण भगवान महावीर देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ से त्रिशला के गर्भ में आये तब से बहुत से कुबेर के आज्ञा पालक मध्यलोक में रहने वाले त्रिजृंभक नामक देव इन्द्र की आज्ञा से पुराने निधानों को सिद्धार्थ राजा के भवन में ले आने लगे। वे निधान ऐसे थे कि जिनके स्वामी मर चुके थे अतएव जिनका कोई स्वामी नहीं था। ये निधान ग्रामों में, आकरों में, नगरों में खेटों में, कर्वटों, मटम्बों, द्रोण मुखों, पत्तनों, निगमों आश्रमों संवाहों और संन्निवेशों, श्रृंगाटकों त्रिकों में चौकों में चत्वरों में, चार द्वार वाले स्थानों में, राजमार्गों में, उजड़े गांवों में, उजड़े नगरों में गांव की नालियों में, दुकानों में, देवालयों में सभास्थलों में प्याउओं में, आरामों में उद्यानों में वनों में वनखण्डों में श्मशानों में, सूने मकानों में पर्वत की गुफाओं में शान्तिगृहों में शैलगृहों में

उप स्थान गृहों मे तथा भवन गृहों में गड़े हुए थे। उन्हें वे देव सिद्धार्थ के भवन में लाने लगे ॥८४॥ (कल्प सूत्र)

जिस रात्रि में श्रमण भगवान महावीर का ज्ञातकुल में संहरण किया गया उस रात्रि में ज्ञातकुल की हिरण्य चांदी से वृद्धि हुई। इसी प्रकार स्वर्ण से, धन से, धान्य से, विभव से, ऐश्वर्य से, ऋद्धि से, सिद्धि से, समृद्धि से, सत्कार से, सम्मान से, पुरस्कार से, राज्य से, राष्ट्र से, बल से, वाहन से, कोष से, अन्न भण्डार से, पुर से, अंतपुर से, जनपद से, यशोवाद से, कीर्तिवाद से, और स्तुतिवाद से, वृद्धि हुई ॥८५॥

तब श्रमण भगवान महावीर के मातापिता को यह आध्यात्मिक, चिंतित, कल्पित–कार्य परिणत करने योग्य विचार प्रार्थित–स्वीकृत विचार, मनोगत तथा संकल्प–निश्चित विचार उत्पन्न हुआ कि जब से यह बालक हमारे यहाँ उदर में गर्भ रूप से आया है तभी से हम हिरण्य से यावत् प्रीति एवं सत्कार आदि के समूह से अतीव अतीव वृद्धि पा रहे हैं। अतः जब हमारा बालक जन्म लेगा तब हम इस बालक का इसी के अनुरूप गुणयुक्त गुणनिष्पन्न नाम रक्खेंगे–'वर्द्धमान' ॥८६॥

उसके बाद जब भगवान् गर्भ में थे माता की अनुकम्पा के लिए अर्थात् हलन चलन से माता को कष्ट न हो, इस विचार से वे निश्चल हो गये, निष्पंद हो गये। स्थिर एवं अपने शरीर के सभी अवयवों को स्थिर–संकुचित किये हुए रहने लगे। तब त्रिशला देवी अपने गर्भ को सहसा स्थिर देख कर कहने लगी–मेरे गर्भ का अपहरण हो गया है, मेरा गर्भ गिर गया है या गल गया है–क्योंकि पहले यह गर्भ हिलता था किन्तु अब यह नहीं हिलता है। ऐसा सोच कर इस तरह के विचारों से कलुषित मन वाली तथा गर्भ के अपहरण के संकल्पों से उत्पन्न पीड़ा द्वारा शोक सागर में डूबी हुई और हथेली पर मुख रख कर आर्तध्यान द्वारा भूमि पर दृष्टि लगाये हुई त्रिशला क्षत्रियाणी मन में विचार करने लगी।

उस समय सिद्धार्थ राजा का श्रेष्ठ भवन भी मृदंग तन्त्री ताल आदि वाद्यों एवं नाटकों से उपरत हो गया था। लोग दीन और विमनस्क–उदास हो गये थे। तब भगवान् ने यह सब जानकर अपने आपको एक देश से हिलाया अर्थात् अपने अंग के एक भाग को हिलाया ॥९०॥

गर्भ के हिलते ही त्रिशला–क्षत्रियाणी अत्यन्त प्रसन्न, हृष्ट तुष्ट यावत् रोमांचित हृदय वाली हो इस प्रकार बोली–निश्चय ही मेरा गर्भ अपहृत नहीं हुआ, मरा नहीं, चलायमान नहीं हुआ और न गला है किन्तु वह पहले हिलता नही था, अब हिलने लगा है। यों कह कर वह हर्षित हुई यावत् विकसित हृदयवाली त्रिशला क्षत्रियाणी ने स्नान किया यावत् सुखपूर्वक गर्भ का वहन करने लगी ॥९०॥

इसके बाद श्रमण भगवान महावीर ने गर्भ में ही इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण किया कि–'जब तक मेरे माता पिता जीवित रहेंगे तब तक मुझे मुण्डित होकर अगार वास से अणगारपने में प्रव्रजित होना नहीं कल्पता अर्थात् मैं तब तक दीक्षा नही ग्रहण करूँगा ॥९१॥

इसके बाद त्रिशला क्षत्रियाणी ने स्नान किया कुल देवता का पूजन किया यावत् कौतुक और मंगल प्रायश्चित्त किया और समस्त अलंकारों से शरीर को विभूषित किया। अब वह गर्भ का संरक्षण करने लगी–गर्भ की रक्षा के लिए वह न अधिकशीत, न अधिक उष्ण, न अधिक तिक्त, न अधिक कड़ुआ, न अधिक खट्टा, न अधिक मीठा, न अधिक स्निग्ध, न अधिक रूक्ष, न अधिक आर्द्र और न अधिक सूखा आहार करती थी। गर्भ के प्रतिकूल वस्त्र गंध और माल्य का भी परित्याग कर दिया था और ऋतु के अनुकूल गर्भ के पोषक ऐसे भोजन वस्त्र, गंध और माल्य को धारण करती थी। वह रोग शोक भय मोह और त्रास रहित होकर रहती थी। तथा गर्भ के लिए हित–मित–पथ्य रूप होता, पोषक होता, देश काल के अनुकूल होता वहीं आहार करती थी। तथा दोष रहित कोमल आसन और शयन का मनोनुकूल उपयोग करने लगी। वह प्रशस्त दोहद वाली हुई। उसके सभी दोहद पूर्ण किये गये। वह विच्छिन्न दोहदा हो गई। वह सत्कारित–दोहदा हो गई थी, सम्मानित दोहदा हो गई। अब सुखपूर्व बैठती थी, खड़ी होती थी सोती थी और सुखपूर्वक गर्भ को वहन करने लगी।

तेणं कालेणं तेणं समएणं तिसलाए खत्तियाणीए अन्नया कयाई नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं वीइक्कंताणं जे से गिम्हाणं पढमे मासे दुच्चे पक्खे चित्त सुद्धे तस्स णं चित्तसुद्धस्स तेरसी पक्खेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं समणं भगवं महावीरं आरोग्गा आरोग्गं पसूया ॥

(आचारांग द्वि. श्रु. अ. १५)

उस काल और उस समय में त्रिशला क्षत्रियाणी ने अन्य किसी समय नव मास साढ़े सात अहोरात्र के व्यतीत होने पर ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास के द्वितीय पक्ष में अर्थात् चैत्र शुक्ल पक्ष में त्रयोदशी के दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग होने पर श्रमण भगवान् महावीर को सुख पूर्वक–रोग रहित जन्म दिया।

जण्णं राइं तिसला खत्तियाणी समणं भगवं महावीरं आरोया अरोयं पसूया तण्णं राइं भवणवइ वाणमंतर जोइसिय विमाणवासी देवेहिं देवीहि य ओवयंतेहिं उप्पयंतेहि य एगे महं दिव्वे देवुज्जोए देवसन्निवाए देवकहक्कहए उप्पिजलभूए यावि होत्था ॥

(आचा. द्वि. श्रु. अ. १५)

जिस रात्रि में त्रिशला क्षत्रियाणी ने बिना किसी पीड़ा के श्रमण भगवान् महावीर को जन्म दिया उस रात्रि में भवनपति, वाणमंतर ज्योतिष्क और वैमानिक देवों और देवियों के स्वर्ग से आने और मेरु पर्वत पर जाने से एक महान् तथा प्रधान देवोद्योत और देवसन्निपात होने से महान् कोलाहल और मध्य लोक में उद्योत हो रहा था।

जण्णं रयणिं तिसला खत्तियाणी समणं भगवं महावीरं पसूया तण्णं रयणिं बहवे देवा य देवीओ य एगं महं अमयवासं च १ गंधवासं च २ चुण्णवासं च ३ पुप्फवासं च ४ हिरण्णवासं च ५ रयणवासं च ६ वासिंसु ॥

जण्णं रयणिं तिसला खत्तियाणी समणं भगवं महावीरं पसूया तण्णं रयणिं भवणवइ वाणमंतर जोइसिय विमाणवासिणो देवा य देवीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स सुइ–कम्माइं तित्थयराभिसेयं च करिंसु ॥

जिस रात्रि में त्रिशला क्षत्रियाणी ने श्रमण भगवान् महावीर को जन्म दिया, उसी रात्रि में बहुत से देव और देवियों ने अमृत, सुगन्धित पदार्थ, चूर्ण, पुष्प, चांदी स्वर्ण और रत्नों की वर्षा की।

जिस रात्रि में त्रिशला क्षत्रियाणी ने भगवान् महावीर को जन्म दिया, उसी रात्रि में भवन–पति, वाणमंतर ज्योतिष्क और वैमानिक देव और देवियों ने श्रमण भगवान् महावीर का शुचिकर्म और तीर्थंकराभिषेक किया। (शुचिकर्म और तीर्थंकराभिषेक के लिए देखिए भगवान ऋषभदेव का चरित्र)

प्रातः काल में प्रियंवदा नाम की दासी ने शीघ्र ही राजा के पास जाकर पुत्र जन्म की बधाई दी। उस बधाई को सुनकर सिद्धार्थ राजा अत्यन्त हर्षित हुआ। उस हर्ष के कारण उसकी वाणी भी गद्गद हो गई और सिर पर रोमांच हो गया। राजा ने अपने मुकुट के सिवाय तमाम आभूषण प्रियंवदा को दे दिये और हाथ से उसका मस्तक धोकर उस दिन से उसका दासीपन दूर कर दिया।

प्रात: काल के समय सिद्धार्थ राजा ने नगर के आरक्षकों को बुलाया और उन्हें आज्ञा कि हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही क्षत्रियकुण्ड नगर के बन्दीगृह के समस्त कैदियों को मुक्त कर दो। बाजार में आज्ञा करदो कि जिसे किसी वस्तु की आवश्यकता हो और वह खरीद न सकता हो तो वह वस्तु उसे बिना मूल्य लिये दी जाये। उसका मूल्य राज कोष से दिया जायगा। माप और तोल कर दी जाने वाली वस्तुओं के माप में वृद्धि करा दो। क्षत्रियकुण्ड नगर की सफाई कराओ। बाजारों आदि में मँच बँधवा दो जहाँ से बैठ कर लोग महोत्सव देख सकें। दीवारों पर सफेदी करवाओ और उन पर थापे लगवाओ। नाटक करने वालों, नाचने वालों, रस्सी पर खेल करने वालों, मल्लों मुष्टि युद्ध करने वालों, विदूषकों, बन्दर के समान उछल कूद करने वालों, गड्ढे फांदने वालों तथा नदी में तैरने वालों कथा कहने वालों, रास करने वालों, बांस पर चढ़ कर खेल करने वालों, हाथ में चित्र लेकर भिक्षा मांगने वालों तूण नामक वाद्य बजाने वालों तथा मृदंग बजाने वालों से इस क्षत्रियकुण्ड नगर को शोभा युक्त करो ग्राम भर के जूओं और मूसलों को एक जगह एकत्र करदो ताकि महोत्सव के अन्दर कोई हल अथवा गाड़ी न चला सके।

राजा का आदेश सुन कर जब कर्मचारी चले गये तो राजा सिद्धार्थ व्यायाम शाला में गये। वहां स्नान आदि करने वस्त्राभूषण से सुसज्ज हो कर राज सभा में आये और बाजे गाजे के साथ स्थिति पतित नामक दस दिनों का महोत्सव किया।

इस उत्सव–काल में तीसरे दिन चन्द्र और सूर्य का दर्शन कराया गया। छठे दिन रात्रि जागरण का उत्सव हुआ। बारहवें दिन नाम संस्कार कराया गया इस बीच राजा सिद्धार्थ ने अपने नौकर चाकरों, इष्ट, मित्रो, स्नेहियों और ज्ञाति जनों को आमंत्रित किया और भोजन पान, अलंकार आदि से उनका सत्कार किया। तदनन्तर राजा सिद्धार्थ ने कहा–

जओ णं पभिइ भगवं महावीरे तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिसि गब्भं आगए तओ णं पभिइ तं कुलं विपुलेणं हिरण्णेणं सुवण्णेणं धणेणं धन्नेणं माणिक्केणं मुत्तिएणं संखसिलप्पवालेणं अईव अईव परिवड्ढइ, तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो एयमट्ठं जाणित्ता निव्वत्तदसाहंसि वुक्कंतंसि सुइभूयंसि विपुलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडाविंति २ त्ता मित्तनाइसयण संबंधिवग्गं उवनिमंतंति ? उवनिमंतित्ता बहवे समण माहणकिवणवणी-मगाहिं भिच्छुंडग पंडरगाईण विच्छड्डंति विग्गोविंति विस्साणिंति दायारेसु दाणं पज्जभाइंति विच्छड्डित्ता विग्गो० विस्साणित्ता दाया० पज्जभाइत्ता मित्तनाइ भुंजाविंति मित्त० भुंजावित्ता मित्त० वग्गेण इमेयारूवं नामधिज्जं कारविंति–'जओ ण पभिइ इमे कुमारे तिस० खत्ति० कुच्छिसि गब्भे आहूए तओ णं पभिइ इमं कुलं विपुलेणं हिरण्णेणं जाव संखसिलप्पवालेणं अईव २ परिवड्ढइ ता होउ णं कुमारे वद्धमाणे ॥

जब से श्रमण भगवान् महावीर त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में आए उसी समय से उस ज्ञातवंशीय क्षत्रिय कुल में हिरण्य चांदी, स्वर्ण, धन धान्य, माणिक, मोती, शंख, शिला और प्रवालादि की अभिवृद्धि होने लगी। श्रमण भगवान् महावीर के जन्म से ग्यारहवें दिन शुद्ध हो जाने पर उनके माता पिता ने विपुल अशन पान खादिम और स्वादिम पदार्थ बनवाए और सबन्धिवर्ग को निमन्त्रित किया और बहुत से शाक्यादि श्रमण–ब्राह्मण कृपण, वनीपक, तथा अन्य तापसादि भिक्षुओं को भोजनादि पदार्थ दिए। अपने मित्र ज्ञाति, स्वजन और सम्बन्धिवर्ग को प्रेम पूर्वक भोजन कराया। भोजन आदि कार्यों से निवृत्त होने के पश्चात् उनके सामने कुमार के नाम करण का प्रस्ताव रखते हुए सिद्धार्थ ने बताया कि यह बालक जिस दिन से त्रिशला देवी की कुक्षि में गर्भ रूप से आया है तब से हमारे कुल में हिरण्य सुवर्ण यावत् शंख शिला प्रवालादि पदार्थों की अत्यधिक वृद्धि हो रही है। अतः इस कुमार का गुण निष्पन्न 'वर्द्धमान' नाम रखते हैं।

तओ णं समणे भगवं महावीरे पंचधाइपरिवुडे तं जहा–१ खीरधाइए २ मज्जणधाईए ३ मंडणधाईए ४ खेलावणधाईए ५ अंकधाईए अंकाओ अंकं साहरिज्जमाणे रम्मे मणि-कुट्टिमतले गिरिकंदर समल्लीणे विव चंपयपायवे अहाणुपुव्वीए संवड्ढइ, तओ णं समणे भगवं विन्नाय परिणयमित्ते विणियत्त बालभावे अप्पुस्सुयाइं उरालाइं माणुस्सगाइं पंचलक्खणाइं

कामभोगाइं सद्फरिसरसरूवगंधाइं परियारेमाणे एवं च णं विहरेइ ॥१७६॥

(आचा. द्वि. श्रु. प्र. १५)

जन्म के बाद भगवान् महावीर का पांच धायों के द्वारा लालन-पालन होने लगे। दूध पिलाने वाली धाय २ स्नान कराने वाली धाय ३ वस्त्रालंकार पहनाने वाली धाय ४ क्रीड़ा कराने वाली धाय और ५ गोद खिलाने वाली धाय इन पांच धायों की गोद में तथा मणि मण्डित रमणीय आंगन प्रदेश में खेलने लगे और पर्वत गुफा में स्थित चम्पक वृक्ष की भांति विघ्न बाधाओं से रहित होकर अनुक्रम से बढ़ने लगे। उसके पश्चात् ज्ञान विज्ञान सम्पन्न भगवान् महावीर बाल-भाव को त्याग कर युवावस्था में प्रविष्ट हुए और मनुष्य सम्बन्धी उदार शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंधादि से युक्त पांच प्रकार के काम भोगों का उदासीन भाव से उपभोग करते हुए विचरने लगे।

भगवान् महावीर की बाल्य-काल की विविध घटनाओं का उल्लेख आवश्यक चूर्णि, निर्युक्ति एवं कल्प सूत्र की टीकाओं में है।

एक बार जब भगवान् आठ वर्ष से कुछ कम थे तब अपने समवयस्क बच्चों के साथ प्रमदवन में क्रीड़ा कर रहे थे। वे सुंकली (आमलकी) नाम का खेल खेल रहे। यह खेल किसी वृक्ष को लक्ष्य करके खेला जाता था। सब लड़के उसी की ओर दौड़ते थे, उनमें जो लड़का सबसे पहले उस पर चढ़ जाता था और उतर जाता था वह पराजित लड़कों के कन्धे पर चढ़कर उस स्थान को जाता था जहां से दौड़ प्रारम्भ होती थी।

(भगवं च पमदवणे चेडरूवेहिं समं सुंकलिकडएणं अभिरमति, तस्स तेसु रुक्खेसु जो पढमं विलग्गति जो पढमं ओलुभति सो चेडरूवाणि वाहेती.........इत्यादि।

आवश्यक चूर्णि प्र. भा. पृ. २४६)

जिस समय वर्द्धमान खेल खेल रहे थे उस समय शक्रेन्द्र अवधिज्ञान से भगवान् को देखकर बोला--"वर्द्धमान बालक होते हुए भी बड़े वीर हैं। वृद्ध न होते हुए भी बड़े विनम्र हैं। इन्द्र, देव दानव कोई भी शक्ति शाली उन्हें पराजित नहीं कर सकता। एक देव को इन्द्र की इस बात

पर विश्वास नहीं हुआ वह परीक्षा करने के लिए प्रमदवन में आया और एक भयंकर सर्प का रूप धारण कर वृक्ष पर लिपट गया। कुमार वर्द्धमान उस समय उसी वृक्ष पर चढ़े हुए थे। सब लड़के विकराल सर्प को देख कर डर गये और 'बचाओ बचाओ' की आवाज करने लगे। सभी बच्चों को चिल्लाते और भय के मारे कांपते देख भगवान् वर्द्धमान उनको आश्वासन देते हुए बोले—साथियो! घबराओ मत। मैं इसका उपाय करता हूँ यह कह कर भगवान् ने सर्प को पकड़ा और ज़ोर से खींच कर दूर फेंक दिया। लड़के फिर खेल में लग गये देव ने अपना सर्प का रूप बदला और एक बालक का रूप बनाया। वह बाल रूप धारी देव उन बालकों के साथ खेलने लगा।

लड़कों ने तिंदूसक नामका नया खेल खेलना शुरू किया। इसमें यह नियम था कि अमुक वृक्ष को लक्ष्य करके लड़के दौड़े जो लड़का सबसे पहले उस वृक्ष को छू ले वह विजयी घोषित होता था, शेष पराजित, इस बार वह देव रूप धारी लड़का वर्द्धमान कुमार के साथ दौड़ा। कुमार वर्द्धमान ने दौड़ लगा कर वृक्ष को छू लिया। देव हार गया। नियमानुसार भगवान् देव बालक पर चढ़े। बस देव तो इतना ही चाहता था। उसने बात ही बात में ७ ताड़ जितना उँचा शरीर अपना बना लिया और अपने भयंकर विकराल रूप से भगवान् को डराने लगा। भगवान् उस देव की नियत समझ गये। तत्काल उन्होंने देव पर मुष्टि प्रहार किया। मुष्टि प्रहार की वेदना से देव नीचे बैठ गया। वह भगवान् के प्रहार को सह नहीं सका। भगवान् अनन्तबली हैं, यह इन्द्र का कथन अब उसकी समझ में आया। उसने तत्काल अपना असली रूप प्रकट किया और कहा—भगवन्! इन्द्र ने आपकी वीरता की जैसी प्रशंसा की थी आप उससे भी बढ़ कर वीर हैं। आप सचमुच 'महावीर' हैं। इस प्रकार कह कर और भगवान् को वन्दन कर वह अपने स्थान को चला गया। तब से वर्द्धमान 'महावीर' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

पाठशाला में प्रवेश

आठ वर्ष से कुछ अधिक उम्र के होने पर माता पिता ने शुभ मुहूर्त में बालक महावीर को पाठशाला में भेजा। अध्यापक को विविध उपहार भी भेजे गये। अभ्यास के लिए उपयोगी सामग्री भी भेजी गई। जब महावीर पाठशाला में पहुँचे तो पण्डित ने भगवान् को बैठने के लिए सुन्दर आसन दिया।

इतने में इन्द्र का आसन चलायमान हुआ। अवधिज्ञान से इन्द्र ने भगवान् को पाठशाला में देखा। इन्द्र सोचने लगा–माता पिता का मोह तो देखिये। तीन ज्ञान के धारक असाधारण ज्ञानी भगवान् को पढ़ने के लिए एक सामान्य अध्यापक के पास भेजा है। इन्द्र तत्काल ब्राह्मण का रूप बना कर अध्यापक के पास आया। भगवान् को प्रणाम कर भगवान् से व्याकरण विषयक प्रश्न पूछने लगा। भगवान् इन्द्र के प्रश्नों का विशद रूप से जबाब देने लगे। बाल भगवान् के मुख से प्रश्न के उत्तर पाण्डित्य पूर्ण सुन कर अध्यापक स्तब्ध रह गया, उसे लगा–यह बालक नहीं किन्तु असाधारण ज्ञानी है। अध्यापक के मन में अनेक शंकाएँ थीं। भगवान् ने उनका भी समाधान कर दिया। ब्राह्मण रूपधारी इन्द्र बोला–अध्यापक! यह बालक कोई साधारण छात्र नहीं है किन्तु मति श्रुत और अवधिज्ञान का धारक चरम तीर्थंकर भगवान महावीर है। यह सुन कर अध्यापक बड़ा प्रसन्न हुआ और भगवान् के दर्शन कर अपने भाग्य को सराहने लगा। भगवान् के मुख से निकले वचन को सुन कर ब्राह्मण ने इस नये व्याकरण को 'ऐन्द्र व्याकरण' बताया।

[तप्पभितिं च णं ऐंद्रं व्याकरणं संवृत्तं]

(आवश्यक चूर्णि पृ० २४८)

बाल्यकाल को पार करके भगवान् युवा हुए। माता पिता ने वसन्तपुर नगर के महा सामंत समरवीर की पत्नी पद्मावती से उत्पन्न यशोदा नामकी सुन्दर राजकुमारी के साथ उनका विवाह भगवान् की इच्छा न होते हुए भी कर दिया।

कुछ लोग भगवान् को अविवाहित मानते हैं किन्तु भगवान् के विवाह की चर्चा प्रायः सभी ग्रन्थों में मिलती है। पाठकों की जानकारी के लिये कुछ प्रमाण भी उपस्थित करते हैं:–

बाल भावातिक्रमाणुक्रमेणावाप्तयौवनोऽयं भोगसमर्थ इति विज्ञातभगवत्स्वरूपाभ्यां मातापितृभ्यां प्रशस्ततिथि नक्षत्र–मुहूर्तेषु समरवीरनृपति सुतायाः यशोदायाः पाणिग्रहणं कारितम्।

कल्पसूत्र किरणावली पत्र १२–२

समणस्स णं भग० भज्जा जसोया कोडिण्णा गुत्तेणं समणस्स णं० धूया कासवगोत्तेणं तीसे णं दो नामधिज्जा।

आचारांग द्वि. श्रु. सू. ४०० पृ. ३८९

राजकुमारी यशोदा के साथ विवाह कर भगवान् सुखपूर्वक अपना काल यापन करने लगे। यशोदा ने एक पुत्री को जन्म दिया उसका नाम अनवद्या-अपर नाम प्रियदर्शना था। प्रियदर्शना का विवाह क्षत्रियकुण्ड ग्राम नगर के राजकुमार जमालि के साथ हुआ। भगवान् महावीर २८ वर्ष के हुए।

समणे भगवं महावीरे कासवगुत्तेणं तस्स णं इमे तिन्नि नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा-अम्मापिउसंतिए वद्धमाणे १ सहसंमुइयाए समणे २ भीमं भयभेरवं उरालं अचलयं परीसहसहत्तिकट्टु देवेहिं से नामं कयं समणे भगवं महावीरे ३। समणस्स णं भगवओ महा-वीरस्स पिया कासव गुत्तेणं। तस्स णं तिन्नि नाम० तं० सिद्धत्थे इ वा सिज्जंसे इ वा जसं-से इ वा समणस्स णं अम्मा वासिट्ठस्स गुत्ता तीसे णं तिन्नि नाम धेज्जा तंजहा तिसला इ वा, विदेहदिन्ना इ वा पियकारिणी इ वा, समणस्स णं भग० पित्तिअए सुपासे कासव गुत्तेणं, समणस्स जिट्ठे भाया नंदिवद्धणे कासवगुत्तेणं, समणस्स णं जेट्ठा भइणी सुदंसणा कासवगुत्तेणं समणस्स णं भगवओ० भज्जा जसोया कोडिण्णा गुत्तेणं, समणस्स णं धूया कासवगुत्तेणं तीसेणं दो नामधिज्जा एवमा० अणुज्जा इ वा पियदंसणा इ वा। समणस्स णं भ० नत्तूई कोसियागुत्तेणं तीसेणं दो नाम० तंजहा सेसवई इ वा जसवई इ वा॥

आचा. द्वि. श्रु. अ. १५ सू. १७७

काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान महावीर के इस प्रकार से तीन नाम कहे गये हैं हैं-माता पिता का दिया हुआ वर्द्धमान, स्वाभाविक समभाव होने से श्रमण और अत्यन्त भयोत्पादक परीषहों के समय अचल रहने एवं उन्हें समभाव पूर्वक सहन करने से देवों के द्वारा प्रतिष्ठित महावीर नाम। श्रमण भगवान् महावीर के काश्यप गोत्रीय पिता के सिद्धार्थ, श्रेयांस और यशस्वी ये तीन नाम थे। श्रमण भगवान् महावीर की वासिष्ठ गोत्र वाली माता के त्रिशला, विदेहदत्ता और प्रियकारिणी ये तीन नाम थे। श्रमण भगवान महावीर के पितृव्य-पिता के भाई का नाम सुपार्श्व था। श्रमण भग-

नन्दिवर्द्धन ने कहा–भाई, कम से कम दो वर्ष तक तो तुम्हें गृहवास में रहना ही होगा।

भगवान् ने कहा–अच्छा, पर आज से मेरे लिए कुछ भी आरंभ सारंभ मत करना।

नन्दिवर्द्धन ने भगवान की बात–मानली। भगवान महावीर गृहवास में रह कर भी मुनि जैसा जीवन बिताने लगे। वे अचित्त–या गरम पानी पीते थे। निर्दोष आहार लेते थे। रात्रि भोजन नहीं करते थे। जमीन पर सोते थे और ब्रह्मचर्य का पालन करते थे।

भगवान् की दीक्षा की बात जान कर सारस्वतादि नौ लौकान्तिक देव भगवान् के पास आये और उन्हें प्रणाम कर निवेदन करने लगे–हे क्षत्रियवर–वृषभ ! आपकी जय हो, विजय हो ! हे भगवान् आप दीक्षा ग्रहण करें ! लोकहित के लिए धर्मचक्र का प्रवर्तन करें।' ऐसा कह कर वे स्वस्थान चले गये। कहा भी है–

वेसमण कुंडधारी देवा लोगंतिया महिड्ढिया।
बोहिंति य तित्थयरं पन्नरससु कम्मभूमीसु ॥
बंभंमि य कप्पम्मि बोधव्वा कण्हराइणो मज्झे।
लोगंतिया विमाणा अट्ठसु वत्था असंखिज्जा ॥
एए देवनिकाया भगवं बोहिंति जिणवरं वीरं।
सव्वजगज्जीवहियं अरिहं ! तित्थं पवत्तेहि ॥ ६ ॥

अर्थ–कुण्डल के धारक वैश्रमण देव और महाऋद्धि वाले लौकान्तिक देव १५ कर्म भूमियों में होने वाले तीर्थंकर भगवंतों को प्रतिबोधित करते हैं।

ब्रह्मकल्प में कृष्णराजियों के मध्य में आठ प्रकार के लौकान्तिक विमान असंख्यात विस्तार वाले जानने चाहिए।

यह सब देवों का समूह जिनेश्वर भगवान् महावीर को बोध देने के लिए सविनय निवेदन करता है कि–हे अर्हन् देव ! आप जगत् वासी जीवों के हितकारी धर्म रूप तीर्थ की स्थापना कीजिए।

लोकान्तिक देवों के निवेदन के बाद भगवान् तीर्थंकरों की परम्परा के अनुसार वार्षिक दान देते हैं। कहा भी है–

संवच्छरेण होहिइ अभिनिक्खमणं तु जिणवरिंदस्स।
तो अत्थसंपया णं, पवत्तइ पुव्वसूराओ ॥
एगा हिरण्णकोडी अट्ठेव अणूणगा सयसहस्सा।
सूरोदयमाईयं दिज्जइ जा पायरासुत्ति ॥
तिण्णेव य कोडिसया अट्ठासीइं च हुंति कोडीओ।
असीइं च सयसहस्सा एयं संवच्छरे दिन्नं ॥

श्रमण भगवान् महावीर दीक्षा लेने से एक वर्ष पहले सांवत्सरिक दान–वर्षीदान देना आरम्भ कर देते हैं और वे प्रतिदिन सूर्योदय से लेकर एक प्रहर दिन चढ़ने तक दान देते हैं।

एक करोड़ आठ लाख मुद्रा का दान सूर्योदय से लेकर एक प्रहर पर्यन्त दिया जाता है। भगवान ने एक वर्ष में ३८८ करोड़ ७० लाख मुद्रा का दान दिया।

(आचारांग द्वि. श्रु. अ. १५)

तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अभिनिक्खमणाभिप्पायं जाणित्ता भवणवइ–वाणमंतरजोइसियविमाणवासिणो देवा य देवीओ य सएहिं सएहिं रूवेहिं सएहिं सएहिं नेवत्थेहिं सएहिं सएहिं चिंधेहिं सव्विड्ढीए सव्व जुईए सव्व बल समुदएणं सयाइं सयाइं जाण–विमाणाहिं दुरुहंति दुरुहित्ता अहाबायराइं पुग्गलाइं परिसाडंति, परिसाडित्ता अहा सुहुमाइं पुग्गलाइं परियाइंति, परियाइत्ता उड्ढं उप्पयंति, उड्ढं उप्पइत्ता ताए उक्किट्ठाए सिग्घाए चवलाए तुरियाए दिव्वाए देवगईए अहे णं ओवयमाणा ओवयमाणा तिरिएणं असंखिज्जाइं दीव समुद्दाइं वीइक्कममाणा २ जेणेव जंबुद्दीवे दीवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता जेणेव उत्तरखत्तिय कुंडपुर संनिवेसे तेणेव उवागच्छंति, उत्तरखत्तियकुंडपुर संनिवेसस्स उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए तेणेव झत्ति वेगेण ओवइया ॥

(आचा. द्वि. श्रु. अ. १५)

तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के दीक्षा लेने के अभिप्राय को जानकर भवनपति, वाणव्यंतर ज्योतिष्क और वैमानिक देव और देवियाँ अपने अपने रूप वेष और चिन्हों से युक्त होकर तथा अपनी अपनी सर्व प्रकार की ऋद्धि द्युति और बल समुदाय से युक्त होकर अपने अपने विमानों पर चढ़ते हैं और उनमें चढ़कर बादर पुद्गलों को छोड़कर सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण करके ऊंचे होकर उत्कृष्ट, शीघ्र, चपल, त्वरिता और दिव्य प्रधान देवगति से नीचे उतरते हुए तिर्यग् लोक में स्थित असंख्यात द्वीप समुद्रों को उल्लंघन करते हुए जहाँ पर जम्बू द्वीप नामक द्वीप है वहाँ पर आते हैं। जम्बूद्वीप में भी उत्तर क्षत्रियकुण्डपुर सन्निवेश में आकर उसके ईशान कोन में जो स्थान है वहाँ पर बड़ी शीघ्रता से उतरते हैं।

तओ णं सक्के देविंदे देवराया सणियं सणियं जाण विमाणं पट्ठवेति, सणियं सणियं जाण विमाणं पट्ठवेत्ता सणियं २ जाणविमाणाओ पच्चोरुहति, सणियं एगंतमवक्कमइ, एगंतमवक्कमित्ता महया वेउव्विएणं समुग्घाएणं समोहणइ, एगं महं णाणामणिकणगरयण भत्तिचित्तं सुभं चारुकंतरूवं, देवच्छंदयं विउव्वइ, तस्स णं देवच्छंदयस्स बहुमज्झदेसभाए एगं महं सपायपीढं णाणामणिकणयरणय भत्तिचित्तं सुभं चारुकंतरूवं सीहासणं विउव्वइ २ त्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ २ त्ता समणं भगवं महावीरं गहाय जेणेव देवच्छंदए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सणियं २ पुरत्थाभिमुहं सीहासणे निसीयावेइ, सणियं २ निसीयावित्ता सयपाग सहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भंगेइ गंधकासाईएहिं उल्लोलेइ २ सुद्धोदएण मज्जावेइ २ जस्स ण मुल्लं सयसहस्सेणं तिपडोलतित्तिएणं साहिएणं सीतेण गोसीसरत्तचंदणेणं अणुलिंपइ २ ईसिं निस्सासवायवोज्झं वरणयर पट्टणुग्गयं कुसलनरपसंसियं अस्सलालापेलवं छेयारिय कणग खइयंतकम्मं हंस लक्खणं पट्टजुयलं नियंसावेइ २ त्ता हारं अद्धहारं उरत्थं नेवत्थं एगावलिं पालंबसुत्तं पट्टमउडरयणमालाउ आविंधावेइ आविंधावित्ता गंथिमवेढिम पूरिमसंघाइमेणं मल्लेणं कप्परुक्खमिव समलंकरेइ २ त्ता दुच्चंपि महया वेउव्विय समुग्घाएणं समोहणइ, एगं महं चंदप्पहं सिवियं सहस्सवाहणियं विउव्वति, तं जहा—ईहा मिग उसभ तुरग नरमकर विहग वानर कुंजर रुरु सरभ चमर सद्दूलसीह वणलय भत्तिचित्तलय विज्जाहर मिहुण जुयलजंतजोगजुत्तं अच्चीसहस्समालिणीयं सुनिरूवियं मिसिमिसित रूवगसहस्स-

कलियं ईसिं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुलोयणलेसं मुक्ताहलमुत्ताजालंतरोवियं तवणीय पवर लंबूसग पलंबंतमुत्तदामं हारद्धहार भूसणसमोणयं अहिय पिच्छणिज्जं पउमलयभत्तिचित्तं असोगवण भत्तिचित्तं कुंदलय भत्तिचित्तं नानालयभत्तिचित्तं विरइयं सुभं चारुकंतरूवं नाणामणि पंचवण्णघंटा पडाय पडिमण्डियग्गसिहरं पासाइयं दरिसणिज्जं सुरूवं ।।

तत्पश्चात् देवों का इन्द्र देवराज शक्र शनैः शनैः अपने विमान को स्थापित करता है। फिर शनैः शनै विमान से नीचे उतरता है और एकान्त में जाकर वैक्रिय समुद्घात करता है। उससे नाना प्रकार की मणियों तथा कनक रत्नादि से जटित एक बहुत बडे कान्त मनोहर रूप वाले देवछंदक का निर्माण करता है। उस देव छंदक के मध्यभाग में नाना विध मणि कनक रत्नादि से खचित, शुभचारु और कांत रूप एक विस्तृत पादपीठ युक्त सिंहासन का निर्माण किया। उसके पश्चात् जहाँ पर श्रमण भगवान महावीर थे वहाँ वह आया और आकर भगवान को वन्दन नमस्कार किया और श्रमण भगवान महावीर को लेकर देव छंदक के पास आया। धीरे धीरे भगवान् को उस देवछंदक में स्थित सिंहासन पर बैठाया और उनका मुख पूर्व दिशा की ओर रखा। शतपाक और सहस्त्रपाक तैलों से उनके शरीर की मालिश की और सुगंधित द्रव्यों से शरीर का उद्वर्तन करके शुद्ध निर्मल जल से भगवान् को स्नान कराया। उसके बाद एक लाख की कीमत वाले विशिष्ट गोशीर्ष चन्दनादि का उनके शरीर पर अनुलेपन किया। उसके बाद भगवान् को नासिका की वायु से हिलने वाले, तथा विशिष्ट नगरों में निर्मित प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा प्रशंसित और कुशल कारीगरों के द्वारा स्वर्णतार से विभूषित, हंस के समान श्वेत वस्त्र-युगल को पहनाया। फिर हार अर्द्धहार पहनाए तथा एकावली हार लटकती हुई मालाएँ कटिसूत्र मुकुट और रत्नों की मालाएँ पहनाईं।

तदनन्तर ग्रन्थिम वेष्टिम पुरिम और संघातिम इन चार प्रकार की पुष्पमालाओं से कल्पवृक्ष की भान्ति भगवान को अलंकृत किया।

इस प्रकार अलंकृत करने के पश्चात् इन्द्र ने पुनः वैक्रिय समुद्घात किया और उससे चन्द्रप्रभा नाम की एक विराट् सहस्रवाहिनी शिबिका (पालकी) का निर्माण किया। वह शिबिका ईहामृग वृषभ, अश्व, मगरमच्छ पक्षी बन्दर हाथी, रुरु, शरभ, चमरी, गाय, शार्दूल और सिंह आदि जीवों तथा वनलताओं तथा अनेक विद्याधरों के युगल यंत्र योग आदि से चित्रित थी, सूर्य की

ज्योति के समान तेजवाली तथा रमणीय जगमगाती हुई, हजारों चित्रों से युक्त और देदीप्यमान होने के कारण मनुष्य उसकी ओर देख नहीं सकता था। वह स्वर्णमय शिविका मोतियों के हारों से सुशोभित थी। उस पर मोतियों की सुन्दर मालाएँ झूल रही थी, तथा पद्मलता, अशोकलता, कुन्दनलता एवं नाना प्रकार की अन्य वनलताओं से चित्रित थी। पांच प्रकार के वर्णों वाली मणियों घंटियों और ध्वजा पताकाओं से उसका शिखर भाग सुशोभित हो रहा था। इस प्रकार वह शिबिका दर्शनीय और परम सुन्दर थी।

सीया उवणीया जिनवरस्स, जरामरणविप्पमुक्कस्स।
ओसत्त मल्लदामा, जल थलयदिव्वकुसुमेहिं ॥ १ ॥

जरा मरण से विप्रमुक्त जिनवर के लिये शिबिका लाई गई जो कि जल और स्थल में पैदा होने वाले श्रेष्ठ फूलों और वैक्रियलब्धि से निर्मित पुष्पमालाओं से अलंकृत थी।

सिवियाइ मज्झयारे, दिव्वं वररयण रूवचिंचइयं।
सीहासणं महारिहं, सपायपीढं जिनवरस्स ॥ २ ॥

उस शिविका के मध्य में प्रधान रत्नों से अलंकृत यथायोग्य पाद पीठिकादि से युक्त, जिनेन्द्र देव के लिये सिंहासन का निर्माण किया गया था।

आलइय माल मउडो, भासुरबोंदीवराभरणधारी।
खोमियवत्थ नियत्थो, जस्स य मुल्लं सय सहस्सं ॥३॥

जिनेन्द्र भगवान् महावीर एक लाख रुपये की कीमत वाले क्षोम युगल (कार्पास) के वस्त्र को धारण किए हुए थे और आभूपणों, मालाओं तथा मुकुट से अलंकृत थे।

छट्ठेण उ भत्तेणं, अज्झवसाणेण सुंदरेण जिणो।
लेसाहिं विसुज्झंतो, आरुहइ उत्तमं सीयं ॥ ४ ॥

उस समय प्रशस्त अध्यवसाय एवं लेश्याओं से युक्त भगवान् षष्ठ भक्त (बेले) की तपश्चर्या ग्रहण करके उस शिविका में बैठे।

सीहासणे निविट्ठो, सक्कीसाणा य दोहि पासेहिं।
वीयंति चामराइं, मणिरयण विचित्तदंडाहिं ॥ ५ ॥

जब श्रमण भगवान् महावीर शिविका पर आरूढ हुए तो शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र शिविका के दोनों तरफ खड़े होकर मणियों से जटित डंडे वाले चामरों को भगवान् के ऊपर ढोरने लगे।

पुव्विं उक्खित्ता, माणुसेहिं साहट्टु रोमकूवेहिं।
पच्छा वहंति देवा, सुरअसुरगरुल नागिंदा ॥ ६ ॥

सबसे पहले मनुष्यों ने हर्ष एवं उल्लास के साथ भगवान् की शिविका उठाई। उसके पश्चात् देव सुर असुर गरुड और नागेन्द्र आदि देवों ने उसे उठाया।

पुरओ सुरा वहंति असुरा पुण दाहिणंमि पासंमि।
अवरे वहंति गरुला नागा पुण उत्तरे पासे ॥ ७ ॥

शिविका को पूर्व दिशा से सुर (वैमानिक) उठाते हैं, दक्षिण से असुर कुमार, पश्चिम से गरुडकुमार और उत्तर दिशा से नागकुमार उठाते हैं।

वणसंडं व कुसुमियं, पउमसरो वा जहा सरयकाले।
सोहइ कुसुमभरेणं इय गगणयलं सुरगणेहिं ॥ ८ ॥

उस समय देवों के आगमन से आकश मंडल वैसा ही सुशोभित हो रहा था जैसे खिले हुए पुष्पों से युक्त उद्यान या शरदऋतु में कमलों से भरा हुआ पद्मसरोवर शोभित होता है।

सिद्धत्थवणं व जहा, कणयारवणं व चंपयवणं वा।
सोहइ कुसुमभरेणं इयगगणयलं सुरगणेहिं ॥ ९ ॥

जैसे सरसों का, कचनार का तथा चम्पक का वन फूलों से सुहावना प्रतीत होता है, उसी तरह उस समय आकाश-मंडल देवों से सुशोभित हो रहा था।

वरपडहभेरिझल्लरि-संखसयसहस्सिएहिं तूरेहिं।
गगणयले धरणियले, तूरनिनाओ परमरम्मो ॥१०॥

उस समय पटह, भेरी झांझ, शंख, आदि श्रेष्ठ वादित्रो से गुंजायमान आकाश एवं भूभाग बड़ा ही मनोहर एवं रमणीय प्रतीत हो रहा था।

तत विततं घणज्झुसिरं आउज्जं चउव्विहं बहुविहियं।
वाइंति तत्थ देवा बहूहिं आनट्टग सएहिं ॥ ११॥

उस समय देव तत वितत घन और शुषिर इत्यादि अनेक तरह के बाजे बजा रहे थे तथा तथा विभिन्न प्रकार के नृत्य कर रहे थे एवं नाटक दिखा रहे थे।

तेणं कालेणं तेणं समएणं जे से हेमंताणं पढमे मासे पढमे पक्खे मग्गसिर बहुले तस्स णं मग्गसिर बहुलस्स दसमी पक्खेणं सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं हत्थुत्तरानक्खत्ते णं जोगोवगएणं पाईणगामिणीए छायाए विइयाए पोरिसीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं एग-साडगमायाए चंदप्पभाए सिवियाए सहस्सवाहिणीयाए सदेव मणुया सुराए परिसाए सम-णिज्जमाणे उत्तर खत्तिय कुंडपुर संनिवेसस्स मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ २ त्ता जेणेव णायसंडे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता ईसिंरयणिप्पमाणं अच्छोप्पेणं भूमि भाएणं सणियं २ चंदप्पभं सिवियं सहस्सवाहिणिं ठवेइ २ त्ता सणियं २ चंदप्पभाओ सीयाओ सहस्स वाहिणीओ पच्चो-यरइ २ त्ता सणियं २ पुरत्थाभिमुहे सीहासणे निसीयइ, आभरणालंकारं ओमुअइ, तओ णं वेसमणे देवे जन्नुव्वाय पडिओ भगवओ महावीरस्स हंसलक्खणेणं पडेणं आभरणालंकारं पडिच्छइ, तओणं समणे भगवं महावीरे दाहिणेणं दाहिणं वामेणं वामं पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, तओणं सक्के देविंदे देवराया समणस्स भगवओ महावीरस्स जन्नुवाय-पडियाए वइरामएणं थालेणं केसाइं पडिच्छइ २ अणुजाणेसि भंते त्तिकट्टु खीरोयसागरं साहरइ, तओ णं समणे जाव लोयं करित्ता सिद्धाणं नमुक्कारं करेइ २ सव्वं मे अकरणिज्जं पावकम्मंति कट्टु सामाइयं चरित्तं पडिवज्जइ २ देवपरिसं च मणुयपरिसं च आलिक्ख चित्त भूयमिव ठवेइ।

(आ. द्वि. अ. १५)

उस काल और उस समय में जब हेमन्त ऋतु का प्रथम मास प्रथम पक्ष अर्थात् मार्गशीर्ष मास का कृष्णपक्ष था, उसकी दशमी तिथि के सुव्रतदिवस, विजय मुहूर्त में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग आने पर पूर्वगामिनी छाया और द्वितीय प्रहर के बीतने पर निर्जल-बिना

पानी के षष्ठ भक्त (दो उपवासों) के साथ एक मात्र देवदूष्य वस्त्र को लेकर चन्द्रप्रभा नाम को सहस्र वाहिनी शिबिका में बैठे। उसमें बैठ कर वे देव मनुष्य तथा असुर कुमारों की परिषद् के साथ उत्तर क्षत्रिय कुण्ड पुर सन्निवेश के मध्य में से होते हुए जहाँ ज्ञात खण्ड नामक उद्यान था वहाँ पर आते हैं। वहाँ आकर देव थोड़ी सी-हाथ प्रमाण ऊँची भूमि पर भगवान् की शिबिका को ठहरा देते हैं। तब भगवान् उसमें से शनैः शनैः नीचे उतरते हैं और पूर्वाभिमुख होकर सिंहासन पर बैठ जाते हैं। उसके पश्चात् भगवान् अपने आभरणालंकारों को उतारते हैं। तब वैश्रमण देव भक्ति पूर्वक भगवान् के चरणों में बैठ कर उनके आभरण और अलंकारों को हंस के समान श्वेत वस्त्र में ग्रहण करता है। तत्पश्चात् भगवान् ने दाहिने हाथ से दक्षिण की ओर के केशों का और वाम कर से बायें पार्श्व के केशों का पांच मुष्ठिक लोच किया। तब देवराज शक्रेन्द्र श्रमण भगवान महावीर के चरणों में पड़ कर घुटनों को नीचे टेक कर वज्रमय थाल में उन केशों को ग्रहण करता है और 'हे भगवन्! आपकी आज्ञा है' ऐसा कह कर उन केशों को क्षीरोदधि-क्षीर समुद्र में प्रवाहित कर देता है। इसके पश्चात् भगवान् सिद्धों को नमस्कार करके सर्व प्रकार के सावद्य कर्म का परित्याग करते हुए सामायिक चारित्र ग्रहण करते हैं। उस समय देव और मनुष्य दोनों भींत पर लिखे हुए चित्र की भांति स्तब्ध हो गये। अर्थात् चित्रवत् निश्चेष्ट हो गये।

दिव्वो मणुस्सघोसो, तुरियनिनाओ य सक्कवयणेणं।
खिप्पामेव निलुक्को, जाहे पडिवज्जइ चरित्तं ॥ १ ॥

पडिवज्जितु चरित्तं अहोनिसं सव्वपाण भूयहियं।
साहट्टु लोमपुलया सव्वे देवा निसामिंति ॥ २ ॥

(भगवान् की दीक्षा के समय वातावरण को शान्त बनाए रखने के लिए इन्द्र के द्वारा सभी वादित्रों को बंद करने का आदेश देने का उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते है-)

जिस समय भगवान् सामायिक-चारित्र ग्रहण करने लगे उस समय शक्रेन्द्र की आज्ञा से सभी वादित्रों आदि से होने वाले शब्द बंद कर दिए गए ॥१॥

सामायिक चारित्र ग्रहण करके भगवान् रात दिन सब प्राणियों के हित में संलग्न हुए अर्थात्

वे सभी प्राणियों की रक्षा करने लगे। सभी देवों ने हर्षित भाव से यह सुना कि भगवान् ने संयम स्वीकार कर लिया है।

तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स सामाइयं खओवसमियं चरित्तं पडिवरणस्स मणपज्जवणाणे नामं नाणे समुप्पराणे, अड्ढाइज्जेहिं दीवेहिं दोहि य समुद्देहिं सन्नीणं पंचिदियाणं पज्जत्ताणं वियत्तमणसाणं मणोगयाइं भावाइं जाणेइ ॥

(आ. द्वि. श्रु. अ. १५)

क्षायोपशमिक सामायिक चारित्र ग्रहण करते ही श्रमण भगवान् महावीर को मनः पर्याय ज्ञान उत्पन्न हुआ। जिसके द्वारा वे अढ़ाई द्वीप और दो समुद्रों में स्थित संज्ञी पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को स्पष्ट जानने लगे।

तओ णं समणे भगवं महावीरे पव्वइए समाणे मित्तनाइसयण संबंधि वग्गं पडिविसज्जेइ, २ इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ-बारस वासाइं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा समुपज्जंति तं जहा-दिव्वा वा माणुया वा तेरिच्छिया वा, ते सव्वे उवसग्गे समुप्पराणे समाणे सम्मं सहिस्सामि खमिस्सामि अहियासइस्सामि ॥

श्रमण भगवान् महावीर ने प्रव्रजित होने के पश्चात् अपने मित्र ज्ञाति और स्वजन सम्बन्धी वर्ग को विसर्जित किया और उन सबके चले जाने पर भगवान् ने इस प्रकार का अभिग्रह (प्रतिज्ञा) ग्रहण किया कि "मैं आज से लेकर बारह वर्ष तक अपने शरीर पर ममत्व भाव नहीं रखूंगा। और देव मनुष्य तथा तिर्यंच संबंधी जो भी उपसर्ग उत्पन्न होंगे उन सभी को समभाव पूर्वक सहन करूंगा, सदा क्षमाभाव रखूंगा और स्थिरता पूर्वक उन कष्टों पर विजय प्राप्त करूंगा। अर्थात् उनके सहन करने में किसी प्रकार से खिन्न एवं अप्रसन्न नहीं होऊंगा।

प्रथम वर्षावास—

तओ णं समणे भगवं महावीरे इमे एयारूवे अभिग्गहे अभिगिण्हित्ता वोसिट्ठचत्तदेहे दिवसे मुहुत्त सेसे कुमार गामं समणुपत्ते ॥

(आचा. द्वि. श्र. १५)

इस प्रकार शरीर पर से ममत्व त्याग कर अभिग्रह से युक्त श्रमण भगवान् महावीर ने जिस दिन दीक्षा ग्रहण की उसी दिन शाम को एक मूहूर्त (४८ मिनिट) दिन रहते हुए कर्मार ग्राम पहुँचे।

कर्मार ग्राम आने के लिए दो रास्ते थे। एक जल का रास्ता और दूसरा स्थल का। भगवान् स्थल मार्ग से आये और रात्रि वहीं व्यतीत करने के विचार से ध्यान में स्थिर हो गये।

नासाग्रन्यस्तनयनः प्रलम्बित भुजद्वयः ।
प्रभुः प्रतिमया तत्र तस्थौ स्थाणुरिव स्थिरः ॥

उस समय नासिका के अग्रभाग पर जिनकी दृष्टि स्थिर है, दोनों हाथ जिनके लम्बे किये हुए हैं, ऐसे भगवान् स्थाणु की तरह ध्यान में स्थिर हुए।

(त्रिषष्ठि. पर्व. १० स० ३ श्लो० १६)

जिस समय भगवान् ध्यान में स्थित थे उस समय एक ग्वाला सारे दिन हल चला कर संध्या के समय अपने बैलों के साथ वापिस घर लौट रहा था। उसने मार्ग में भगवान् को ध्यानावस्थित देखा और कहा–'मैं इन बैलों को तुम्हारे पास छोड़ रहा हूँ। तुम इनका ध्यान रखना।' ऐसा कह कर वह गांव में गायें दुहने के लिए चला गया। बैल चरते–चरते जंगल में दूर चले गये। ग्वाला जब गायें दुहकर वापस लौटा तो उसने बैलों को भगवान् के पास नहीं देखा। उसने भगवान् से पूछा–आर्य ! मेरे बैल कहाँ हैं ? भगवान् ने इसका कुछ भी जबाव नहीं दिया। भगवान् को मौन देख कर वह समझा कि इसे मेरे बैलों के बारे में कुछ भी मालूम नहीं है। वह जंगल में बैलों की खोज करने के लिए निकला। बैल इधर उधर चर कर थोड़ी सी रात्रि रहने पर प्रभु के पास आ बैठे। ग्वाला रात भर जंगल में बैलों की खोज करता रहा। जब वापस लौटा तो बैलों को भगवान् के पास बैठे हुए देखा। देखते ही वह भगवान् पर बड़ा क्रुद्ध हुआ और बोला–तूने जानबूझ कर बैलों को नहीं देने की नियत से छुपाये हैं। ले तुझे इसकी सजा देता हूँ। यह कह कर वह बैलों की रस्सी से भगवान् को मारने के लिए दौड़ा।

उस समय इन्द्र अपनी सभा में बैठा हुआ विचार कर रहा था कि–जरा देखूं तो सही कि भगवान् प्रथम दिन क्या कर रहे हैं ? उसने अवधि ज्ञान से भगवान् को ग्वाले के द्वारा पीटे जाते हुए देखा। उसने तत्काल ग्वाले को वहीं पर स्तंभित कर दिया।

इन्द्र ग्वाले के पास आया और बोला—अरे ग्वाले ! यह तू क्या कर रहा है ? तुझे नहीं यह महापुरुष कौन है ? यह महाराजा सिद्धार्थ के पुत्र वर्द्धमान कुमार हैं। ये राज्य वै त्याग कर महामुनि बने हैं। इन्हें तेरे बैलों से क्या मतलब है ! यह सुनते ही ग्वाला लज्जित और चला गया।

तदनन्तर इन्द्र ने भगवान् को वन्दन कर कहा—भगवन् ! आपके इस साधना काल में लोग अज्ञान वश आप को कष्ट देंगे। देव मनुष्य और तिर्यंचों से आपको अनेकानेक उपसर्ग अतः मैं आपकी सेवा में रहना चाहता हूँ। भगवान् ने उत्तर में कहा—इन्द्र !

"नो खलु सक्का ! एवं भूअं वा भविस्सं वा जं णं अरिहंता देविंदाण वा अरु दाण वा निस्साए केवलणाणं उप्पाडेंति, उपाडेंसु वा ३ तवं वा करेंसु वा ३, सद्धिं वा वर्चि वा णएणत्थ सएणं उट्ठाणकम्मबलविरिय पुरिसक्कारपरक्कमेणं,"

(आव० पृ० २७०

हे शक्र ! न कभी ऐसा हुआ है और न होगा कि देवेन्द्र या असुरेन्द्र की सहायता से अ केवलज्ञान और सिद्धि प्राप्त करें। अर्हंत अपने ही बल एवं पराक्रम से केवल ज्ञान प्राप्त करके सि को प्राप्त करते हैं।

भगवान् के मुख से यह सुन कर इन्द्र ने मरणान्त कष्ट टालने के लिए भगवान् की मौसी पुत्र सिद्धार्थ नामक व्यंतर को प्रभु की सेवा में रख दिया और उसे कहा—जब भगवान् को को मरणांत कष्ट दे तो तुम उसे रोकना" यह कह कर इन्द्र ने भगवान् को वन्दन किया और वह अपने स्थान चला गया।

भगवान् ने दूसरे दिन कोल्लाग नामके सन्निवेश में 'बल' नाम के ब्राह्मण के घर परमान्न से पारणा किया। वहाँ पांच दिव्य प्रकट हुए।

(आव. चू. पृ. २७०)

कोल्लाग सन्निवेश से विहार कर भगवान् विचरते हुए मोराक नामक सन्निवेश में पधारे। वहाँ दुइज्जतक नाम के पासंडस्थों का आश्रम था। भगवान् उस आश्रम में गये। उस आश्रम का

कुलपति भगवान् के पिता राजा सिद्धार्थ का मित्र था। भगवान् को आश्रम की ओर आता देख कुलपति बड़ा प्रसन्न हुआ। वह उनके सम्मान के लिए उनके सामने गया। कुलपति ने बड़े आग्रह पूर्वक अपने आश्रम में भगवान् को ठहराया। भगवान् ने कुलपति के आग्रह से एक रात आश्रम में ही व्यतीत की। दूसरे दिन जब भगवान् विहार करने लगे तो कुलपति ने प्रार्थना की कि–हे कुमारवर! इस आश्रम को आप अपना ही आश्रम समझें। आप कुछ काल के लिए यही निवास करें और चातुर्मास भी इसी आश्रम में व्यतीत करें। ऐसी मेरी हार्दिक भावना है। भगवान् ने कुलपति की प्रार्थना को स्वीकार कर और कुछ काल ठहर कर अन्यत्र विहार कर दिया। आस पास के स्थलों में विचरण कर भगवान् चातुर्मास काल व्यतीत करने के लिए आश्रम में पधारे। कुलपति ने उन्हें एक घास की पर्णकुटी में ठहराया। भगवान् पर्णकुटी में रह कर अपना सारा समय ध्यान में व्यतीत करने लगे।

यद्यपि कुलपति के आग्रह से ही भगवान् ने आश्रम में चातुर्मास व्यतीत करने का निश्चय किया था किन्तु कुछ समय रहने के बाद भगवान् को लगा कि यहाँ रहने से शान्ति नहीं मिल सकती। आश्रम वासियों के विपरीत व्यवहार से भगवान् को शान्ति में विक्षेप होने लगा।

प्रारम्भिक वर्षा के कारण अभी जंगलों में खाने योग्य घास नहीं उगी थी अत: घास के अभाव में गायें आश्रम में आ–आ कर झौंपड़ियों का घास खाने लगीं। आश्रमवासी तापस लकड़ियों से गायों को मारते और आश्रम से भगाते थे। भगवान् को तो अपने देह पर भी ममत्व नही था। उन्हें आश्रमवासियों की झौंपड़ियों से क्या मतलब? वे सदैव ध्यान में ही लीन रहते थे। वे आश्रम वासियों की इस प्रवृत्ति में जरा भी भाग नहीं लेते थे। आश्रम के भीतर या बाहर कौन क्या करता है, इस बात पर ध्यान देने के बजाय वे आत्मचिंतन को ही विशेष महत्व देते थे। परिणाम स्वरूप भगवान् की झौंपड़ी का घास गायें खा जाती थीं। भगवान् उन गायों को जरा भी नहीं रोकते थे। भगवान् की इस अपूर्व समता से तापस जल उठे। वे कुलपति के पास आकर कहने लगे–आप कैसे अतिथि को लाये हैं। वह तो बड़ा अकृतज्ञ उदासीन और आलसी है। झौंपड़ी का घास गायें खा जाती हैं और वह चुपचाप उन्हें देखता रहता है। न वह गायों को भगाता है, न उन्हें मारता ही है। परिणाम स्वरूप गायें हमारी झौंपड़ी का भी घास खा जाती हैं। तापसों की इस शिकायत पर

कुलपति भगवान् के पास आया और बोला–

कुमारवर ! सउणीवि ताव णेड्डं रक्खति, तुमंपि वारेज्जासित्ति सप्पिवासं भणति, ताहे सामी अचित्तत्तोग्गहोत्ति निग्गतो, इमे य तेण पंच अभिग्गहा गहिता, तंजहा–अचियत्तोग्गहे ण वासितव्वं, निच्चं वोसट्ठे काए, मोणं च, पाणीसु भोत्तव्वं, गिहत्थो न वंदियव्वो न अब्भुट्ठेयव्वोत्ति ॥

हे कुमारवर ! पक्षी भी अपने घोंसले की रक्षा करता है और आपतो राजकुमार हैं। एक राजकुमार होते हुए भी अपने आश्रम की रक्षा नहीं कर सकते, यह आश्चर्य है।

भगवान ने कुलपति की बात को सुन कर विचार किया–मेरे यहाँ रहने से आश्रमवासियों को कष्ट होता है। क्योंकि मैं आश्रम वासियों की प्रवृत्ति में सहयोग नहीं दे सकता। परिणाम स्वरूप मैं उनके लिए अप्रीति का कारण बनूंगा। अतः मुझे यहाँ नहीं रहना चाहिए। यह विचार कर आषाढ शुक्ला पूर्णिमा से लेकर १५ दिन बीतने पर वर्षाकाल में ही भगवान ने वहाँ से विहार कर दिया। उस समय भगवान ने निम्न पांच अभिग्रह किये–

१–अब से अप्रीतिकर स्थानों में नहीं रहूंगा।

२–नित्य ध्यान में लीन रहूँगा।

३–सदा मौन रखूंगा–बोलूंगा नहीं।

४–हाथ में भोजन करूंगा।

५–गृहस्थों का विनय नहीं करूंगा।

(आव० चू० पृ० २७१)

इस प्रकार की प्रतिज्ञा कर भगवान् अस्थियग्राम में पहुँचे। वहाँ शूलपाणि नामक यक्ष का मंदिर था। भगवान् यक्ष मन्दिर के पास आये और गांव वालों से मन्दिर में ठहरने की आज्ञा मांगी। गांव वालों ने कहा–यह यक्ष महादुष्ट है। यह किसी को भी रात में ठहरने नहीं देता। जो ठहरता है यक्ष उसे मार डालता है। अतः आपका यहाँ ठहरना उचित नहीं। भगवान् ने कहा–मुझे मृत्यु का भय नहीं है। यदि गांव वाले मुझे यहाँ ठहरने की आज्ञा दें तो मैं यहीं रात्रि निवास करना

चाहता हूँ। निरुपाय हो गांव वालों ने भगवान् को ठहरने की आज्ञा दे दी। भगवान् उसी मन्दिर में ठहर गये। शाम को जब पुजारी जाने लगा तो उसने जाते समय भगवान् से कहा–यहाँ रात में ठहरना अपनी जान गंवाना है, अतः तुम्हारा यहाँ से जाना ही उचित है। भगवान् ने पुजारी की बात पर ध्यान नही दिया और वे मन्दिर के एक कोने में ध्यान करने लगे।

भगवान् महावीर को अपने स्थान पर ठहरा देख शूलपाणि यक्ष सोचने लगा–यह पुरुष बड़ा धृष्ट है, गांव वालों और पुजारी के द्वारा बार बार चेताने पर भी अपनी जान की परवाह किये विना यहाँ ठहर गया है। रात होने पर मैं इसकी अच्छी तरह खबर लूंगा।

सूर्यास्त हो गया। ज्यों ज्यों अंधेरा बढ़ने लगा त्यों त्यों यक्ष ने अपने पराक्रम दिखाने प्रारंभ कर दिये। सबसे पहले उसने भयंकर अट्टहास किया। उस अट्टहास और भयंकर चीत्कार से सारी दिशाएँ गूंज उठीं। शूलपाणि की भयंकर आवाज सुनकर गांव वाले सोचने लगे–इस मन्दिर में ठहरे भिक्षुक की आवनी है। यह भयंकर दुष्ट यक्ष अब उसे जीवित नहीं छोड़ेगा, उसे अवश्य मार डालेगा। यक्ष की भयंकर चीत्कार का प्रभु पर जरा भी असर नहीं हुआ। भगवान् यथावत् ध्यान करते ही रहे। उसके बाद यक्ष ने एक भयंकर हाथी का रूप बनाया भगवान् को सूंढ से पकड़ कर आकाश में उछाला और उन्हें अपने तीखे दंत शूल पर झेल कर नीचे फेंका। फिर पैरों से खूब रौंधा। जब इसका भी भगवान् पर असर नहीं हुआ तो उसने एक भयंकर ताड़ पिशाच का रूप धारण किया और तीक्ष्ण नखों से दांतों से भगवान् को काटने लगा। किन्तु इस मारणांतिक कष्ट से भी भगवान् विचलित नहीं हुए। तब यक्ष और भी क्रुद्ध हुआ। उसने भयंकर विषधर सर्प का रूप बनाया और भगवान् को डंसने लगा। भगवान् पर इसका भी कुछ असर नहीं हुआ। वे अवि-चल ही रहे। तब उसने आंख, कान, नाक, शिर, दांत नख और पीठ में ऐसी भयंकर वेदना उत्पन्न की कि जिससे साधारण मनुष्य तो तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जाता किन्तु क्षमाशील भगवान् उन समस्त वेदनाओं को समभाव पूर्वक सह गये।

एकापि वेदना मृत्युकारणं प्राकृते नरे
अधिसेहे तु ताः स्वामी सप्तापि युगपद् भवाः॥

त्रिषष्टि. पु. पर्व. १० सर्ग ३ पृ. २३

इस प्रकार रात भर शूलपाणि यक्ष भगवान् को कष्ट देता रहा। लेकिन जब भगवान् को एसे कष्टों में भी अविचल देखा तो उसने अपनी पराजय स्वीकार करली। वह भगवान् के चरणों में गिर पड़ा और अपने अपराध की क्षमा मांगने लगा। इधर सिद्धार्थ व्यंतर ने भी शूलपाणि से कहा–अरे दुष्ट ! तू ने जिस व्यक्ति को कष्ट दिया है वह साधारण पुरुष नहीं किन्तु शक्रेन्द्र द्वारा पूजित सिद्धार्थनन्दन भगवान् महावीर हैं। यदि शक्रेन्द्र को तेरी दुष्ट प्रवृत्ति का पता लग जाय तो तेरी खैर नहीं। सिद्धार्थ व्यंतर के मुख से यह सुन शूलपाणि और भी घबरा गया और भगवान् के चरणों में अपना मस्तक रख कर वार वार अपने अपराध की क्षमा मांगने लगा और भगवान की अपूव क्षमाशीलता की प्रशंसा करने लगा। वह भगवान् की भक्ति में ओतप्रोत होकर नृत्य व गान करने लगा। यक्ष के नृत्य और गान को सुनकर गांव वाले सोचने लगे–दुष्ट यक्ष ने भिक्षुक को मार डाला है जिसकी खुशी में अब वह गीत गा रहा है।

उसी रात्रि के पिछले प्रहर में जब एक मुहूर्त शेष था तब भगवान् को रात्रि के परीषह के कारण नींद आ गई। भगवान ने उस समय दस स्वप्न देखे–

१–अपने हाथ से बढ़ते हुए ताल पिशाच को मारना।

२–अपनी सेवा करता हुआ श्वेतपक्षी

३–चित्रकोकिल पक्षी को अपनी सेवा करते हुए देखना।

४–सुगन्धित पुष्पों की दो मालाएँ।

५–सेवार्मे उपस्थित दो गोवर्ग।

६–पुष्पित–कमलों वाला पद्मसरोवर।

७–समुद्र को अपनी भुजा से पार करना।

८–उदीयमान सूर्य की किरणों का फैलना।

९–अपनी आंतों से मानुषोत्तर पर्वत को लपेटना।

१०–मेरु पर्वत पर चढ़ना।

अस्थिक ग्राम में उत्पल नामका एक निमित्त वेत्ता रहता था। वह किसी समय पार्श्वनाथ की परम्परा का साधु था। बाद में गृहस्थ होकर ज्योतिष निमित्त आदि से अपनी आजीविका चलाता था।

जब उत्पल ज्योतिषी को यह मालूम हुआ कि भगवान् महावीर शूलपाणि यक्ष के मन्दिर में ठहरे हुए हैं तो उसे बड़ी चिन्ता हुई। वह रात भर अनिष्ट की आशंकाओं से व्यथित रहा। प्रातः होते ही इन्द्र शर्मा पुजारी के साथ भगवान् महावीर को देखने मन्दिर पहुँचा। वहाँ जाकर उसने देखा कि भगवान् महावीर के चरणों में पुष्प गन्ध आदि सुगन्धित द्रव्य चढ़े हुए है। यह दृश्य देख कर उसके आनन्द और आश्चर्य की सीमा न रहीं। सारा गांव इस आश्चर्य जनक घटना को देखने के लिए एकत्र हुआ। भगवान् के अपूर्व तप से प्रभावित होवे। भगवान् के चरणों में गिर पड़े और भगवान् की जय जयकार करने लगे। इधर शूलपाणि ने सदा के लिए अपनी क्रूरता छोड़ दी। सारा गांव शूलपाणि के उपद्रव से मुक्त हो गया। इस बात को लेकर लोगों में अपार हर्ष हुआ। वे भगवान् से कहने लगे–हे देवार्य ! आपने अपनी तपस्या के बल से क्रूर यक्ष को शान्त कर दिया। हम आपके चिरऋणी हैं।

भगवान् के स्वप्नों का फल बताते हुए उत्पल बोला-भगवान् ! यद्यपि आप स्वयं निमित्त आदि शास्त्रों के ज्ञाता हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धि के अनुसार स्वप्नों का फल कहता हूँ।

१ आपने अपने हाथ से ताड़ पिशाच को मारा है, इसका अर्थ यह है कि आप अल्पकाल में ही महामोहनीय रूपी पिशाच को नष्ट करेंगे।

२ आपने श्वेतपक्षी को अपनी सेवा करते हुए देखा है, इसका अर्थ यह है कि आप का शुक्लध्यान कभी साथ नहीं छोड़ेगा।

३ तीसरे स्वप्न में आपने चित्र कोकिल पक्षी को अपनी सेवा करते हुए देखा है, इसका मतलब यह है कि आप विविध ज्ञानमय द्वादशांग श्रुत की प्ररूपणा करेंगे।

४ मालायुगल को आपने देखा है, इसका फल यह है कि आप श्रमण धर्म और श्रावक धर्म के भेद से दो प्रकार के धर्म की प्ररूपणा करेंगे।

५ आपने गायों को अपने पास देखा है, इसका अर्थ यह है कि साधु साध्वी श्रावक एवं श्राविका रूप चतुर्विध संघ आपकी सेवा करेगा।

६ आपने अपने स्वप्नों में विकसित कमल वाला पद्मसरोवर देखा है, इसका अर्थ यह है कि आपकी चार प्रकार के देव सेवा करेंगे।

७ आपने अपनी भुजाओं से तैर कर समुद्र को पार किया है, इसका अर्थ है आप संसार रूपी समुद्र को पार कर जन्मजरा और मृत्यु के बन्धनों से मुक्त होंगे ।

८ आपने स्वप्न में उगते हुए सूर्य की किरणों को फैलते हुए देखा है, इसका अर्थ यह है कि आप केवलज्ञान प्राप्त करेंगे ।

९ अपनी आंतों से आपने मानुषोत्तर पर्वत को स्वप्न में लपेटा है, इससे आपकी तीन लोक में कीर्ति फैलेगी ।

१० आपने अपने को मेरु पर्वत पर चढ़ते हुए देखा है, जिसका अर्थ यह है कि आप समवसरण के बीच दिव्य सिंहासन पर विराज कर देव मनुष्यों की सभा में धर्म की प्रस्थापना करेंगे । धर्मदेशना देंगे ।

इस प्रकार नौ स्वप्नों का फल तो मेरी समझ में आ गया किन्तु चौथे स्वप्न में आपने जो सुगन्धित पुष्पों की दो मालाएँ देखी हैं उसका फल मैं नहीं समझ पाया हूँ । उत्तर में भगवान ने कहा—उत्पल ! चौथे स्वप्न का अर्थ यह है कि मैं सर्व विरति और देशविरति रूप दो धर्म की प्ररूपणा करुंगा । इस प्रकार स्वप्न का फल कह कर और भगवान् के मुख से ४ थे स्वप्न का फल सुनकर उसने भगवान को वन्दन किया और वह अपने स्थान पर चला गया ।

भगवान ने अस्थिक ग्राम में ही १५-१५ उपवास के आठ २ अर्द्धमास तपश्चरण कर अपना प्रथम चातुर्मास समाप्त किया । चातुर्मास समाप्त कर भगवान् ने मोराक सन्निवेश की ओर विहार कर दिया । भगवान् मोराक सन्निवेश पधारे वहां से वाचाला की ओर पधारे !

वाचाला नामके दो सन्निवेश थे । एक दक्षिण वाचाला और दूसरा उत्तर वाचाला । दोनों सन्निवेशों के बीच सुवर्ण बालुका और रूप्य बालुका नाम की दो नदियां बहती थीं । भगवान् महावीर दक्षिण वाचाला होकर उत्तर वाचाला की ओर पधार रहे थे । उस समय उनके दीक्षा के समय का देव दूष्य वस्त्र सुवर्ण बालुका नामक नदी के किनारे कंटकों में फँस कर गिर पड़ा । भगवान् ने उसको ओर एक दृष्टि डाली और आगे बढ़ गये । तब से प्रभु यावज्जीवन अचेलक-वस्त्र रहित रहे ।

(आव. चूर्णि पृ. २७५-२७६)

उत्तर वाचाला की ओर जाने के दो मार्ग थे। एक मार्ग कनकखल आश्रमपद के भीतर होकर जाता था और दूसरा मार्ग आश्रम के बाहर होकर। जो मार्ग आश्रम पद के बाहर होकर जाता था वह यद्यपि लंबा था किन्तु निरूपद्रव होने से लोगों का आने जाने का वही प्रधान रास्ता बन गया था। भीतर का मार्ग छोटा था किन्तु मार्ग में चण्डकोशिक विषधर का उपद्रव होने से उस रास्ते से कोई नहीं जाता था। वह मार्ग प्राय: बन्द सा था।

भगवान् ने आश्रम पद के भीतर के ही मार्ग से जाने का विचार किया और वे आगे बढ़े कुछ दूर चलने पर मार्ग में ग्वाले मिले। भगवान् को उपद्रवी मार्ग से जाते देख ग्वाले बोले देवार्य ! आप इस मार्ग से न जाइए क्योंकि यह मार्ग बड़ा भयावह है। यहां से कुछ दूर पर एक बड़ा दृष्टि विष सर्प रहता है। जो कोई भी व्यक्ति इस मार्ग से निकलता हैं उसे वह अपनी दृष्टि से जलाकर भस्म कर देता है। आपका इस मार्ग से जाना खतरे से खाली नहीं है। आप वापस लौट जाइए और दूसरे रास्ते से निकलिये।

भगवान ने ग्वालों की बात पर जरा भी ध्यान नहीं दिया वे उसी मार्ग से आगे बढ़े। कुछ दूरी पर यक्ष का मन्दिर था। उस मन्दिर के मण्डप में भगवान पहुँचे और वहां खड़े होकर ध्यान-स्थ हो गए।

शान्त मुद्रा को देखकर उसका रहा सहा क्रोध भी जाता रहा। क्रोध मुक्त चण्ड कौशिक को देख-कर भगवान ने अपना ध्यान समाप्त किया और उसे सम्बोधित करते हुए कहने लगे—हे चण्ड कौशिक ! समझ "उवसम भो चंडकोसिया !" चण्डकौशिक शान्त हो।

भगवान के मुख से चण्डकौशिक शब्द सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह विचारने लगा 'चण्ड कौशिक' यह नाम मैंने कहीं सुना है। उहापोह करते करते उसे जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसने देखा मैं पूर्व जन्म में साधु था और बड़ी बड़ी तपस्या करता था। एक बार मैं अपने एक अविनीत शिष्य के साथ पारणा के लिए गांव में गया। बडी उम्र के कारण मेरी दृष्टि कुछ कमजोर थी। ईर्या समिति पूर्वक चलते हुए भी मेरा पैर एक मरी हुई मण्डूकी पर पड़ा। अविनीत शिष्य ने चिल्लाकर कहा 'अरे ! आपने एक मण्डूकी को पैर के नीचे कुचल कर मार डाला है।' मैंने ध्यान से देखा तो वह मण्डूकी पहले से ही मरी हुई थी। मैंने तुरन्त कहा- शिष्य ! यह मण्डूकी तो मरी हुई थी। मेरे पैर के नीचे कुचलकर नहीं मरी। शिष्य ने मेरी बात अनसुनी कर फिर कहा- आपने ही इस मण्डूकी को मारा है अतः आपको प्रायश्चित ग्रहण करना ही होगा आहार लेकर हम लोग अपने स्थान पहुचे। वहाँ भी उसने वही बात दुहराई। सायंकाल का प्रति-क्रमण समाप्त हुआ तो शिष्य ने पुन कहा- गुरु देव ! आपको आलोचना पूर्वक अपने पाप का प्राय-श्चित्त करना होगा। शिष्य के बार-बार ऐसा कहने पर मुझे बडा क्रोध आया। मैं शिष्य की उद्-ण्डता को सह नहीं सका मैंने एक डंडा उठाया और शिष्य को मारने के लिये दौडा। शिष्य तो भाग निकला किन्तु मेरा सिर एक खंभे से टकराकर फूट गया और मेरी वहीं मृत्यु हो गई। मैं मर कर ज्योतिष्क देव में उत्पन्न हुआ। ज्योतिष्क देवलोक का आयुष्य पूरा कर मैं कनकखल नामक आश्रमपद के कुलपति की पत्नी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। जन्म ने पर मेरा नाम कौशिक रखा। मेरा स्वभाव अत्यन्त क्रोधी था, अतः मुझे आश्रमवासी चण्डकौशिक के नाम से पुकारने लगे। मेरे पिता का स्वर्गवास हो गया। मैं अपने आश्रम का कुलपति बना। मेरे क्रोधी स्वभाव के कारण आश्रम के सभी तपस्वी मुझे छोड़ कर चले गये। मैं अब अकेले ही आश्रम में रहने लगा।

एक बार कुछ राजकुमार मेरे आश्रम के बाग में पहुँचे। उन्हें फूल पत्ती तोड़ते देख मुझे बड़ा क्रोध आया। मैं परशु लेकर उन्हें मारने के लिए दौड़ा। राजकुमार तो भाग गये किन्तु असावधानी

के कारण मेरा पैर फिसल गया और मैं एक गहरे गड्ढे में गिर पड़ा। फरशु के कारण मेरा सिर फट गया और मेरी मृत्यु हो गई। मैं क्रोधवश मर कर इसी आश्रम के पास दृष्टि विष सर्प बना हूँ। इस प्रकार उसने पूर्व जन्म की अपनी समस्त घटनाओं को जान लिया और क्रोध के फल को भी साक्षात् देखा। वह अत्यन्त नम्र होकर भगवान् के चरणों में गिर पड़ा। उसको पापों का बड़ा पश्चात्ताप होने लगा। पापों के प्रायश्चित्त स्वरूप उसने अनशन ग्रहण कर लिया और अहिंसक बन गया। उसने अपने देह को एक स्थल पर स्थिर कर दिया और धर्म चिंतन पूर्वक समय बिताने लगा। भगवान् ने सर्प को अहिंसक बना दिया और आगे विहार कर दिया।

भगवान् के विहार कर जाने के बाद ग्वाले सर्प को स्थिर देख कर पत्थर मारने लगे। पत्थर की मार खाकर भी सर्प को अत्यन्त शांत देख कर ग्वालों को बड़ा आश्चर्य हुआ। ग्वाले कहने लगे–भगवान् ने अपने सौम्य परिणाम से सर्प को भी सौम्य बना दिया है। यह सर्प सचमुच देव बन गया है। ग्वाले निर्भीक बन कर सर्प के पास आये और उसकी दही दूध से पूजा करने लगे। घी बेचने वाली ग्वालिनें भी उधर से जाती उस सर्प पर भक्ति से घी चढ़ाती थीं। परिणाम स्वरूप घी–दूध की चिकनाहट से हजारों चीटियाँ सर्प के पास आने लगी और सर्प को चूसने लगीं। चीटियों के काटने से सर्प को बड़ी वेदना होने लगी। असंख्य चीटियों को अपने आस पास देख सर्प सोचने लगा–यदि मैं इस स्थान को छोड़ कर अन्यत्र जाऊँ तो मेरे विशाल शरीर से दब कर असंख्य चीटियां मर जाएँगी। एक देह की रक्षा के लिए असंख्य जीवों को मारना बड़ा पाप है। यह विचार कर सर्पराज उसी स्थान पर समभाव से वेदना सहता हुआ स्थिर रहा। इस प्रकार सारी वेदनाओं को सहते हुए उसने अपने प्राण त्याग दिये और मर कर आठवें सहस्त्रार नामक देवलोक में महर्द्धिक देव रूप से उत्पन्न हुआ।

विहार करते हुए भगवान् उत्तरवाचाला में पधारे। वहाँ नागसेन नामक गृहपति के घर जाकर पंद्रह उपवास के तप का परमान्न खीर से पारणा किया। वहाँ पंच दिव्य प्रकट हुए। नाग–सेन गृहपति का लड़का १२ वर्षों के बाद अकस्मात् घर आ गया था। पुत्र को सकुशल घर आया जान कर नागसेन को बड़ी खुशी हुई। इसके उपलक्ष में उसने खीर का भोजन बनाया था। इस अवसर पर भगवान् का भी घर पर आगमन हुआ जान कर उसे बड़ी खुशी हुई। उसने परम श्रद्धा

से भगवान् को खीर का दान दिया ।

उत्तरवाचाला से भगवान ने विहार कर दिया और वे श्वेताम्बी नगरी पधारे । श्वेताम्बी नगरी के राजा प्रदेशी थे । वे श्रमणोपासक थे । राजा प्रदेशी ने भगवान् का बड़ा सत्कार किया । वहाँ से भगवान् ने सुरभिपुर नगर की ओर विहार कर दिया । सुरभिपुर जाते हुए भगवान् को मार्ग में रथों पर जाते हुए पांच नैयक राजा मिले । ये राजा महाराजा प्रदेशी के पास जा रहे थे । भगवान् को देखकर ये रथ से नीचे उतरे और उन्होंने भगवान् को वन्दन किया और कुशलता के समाचार पूछे । भगवान् ने आगे विहार कर दिया । भगवान् सुरभिपुर नगर पधारे । वहाँ मार्ग में गंगा नदी आयी । गंगा का पाट विशाल था । वह समुद्र की तरह हिलारें लेती हुई बह रही थी । सिद्धदत्त नाविक की नाव में अन्य यात्रियों के साथ भगवान् भी गंगा को पार करने के लिये विराजे । नौका में खेमिल नामका एक नैमित्तिक भी बैठा था । नौका के आगे बढ़ते ही दाहिनी ओर एक उल्लू बोला- उल्लू का शब्द सुनते ही खेमिल बोला- यह तो बड़ा अपशकुन है । यह यात्रा हमारे लिये विघ्न पैदा करने वाली होगी । किन्तु हमारी नाव में जो महापुरुष बैठे हैं उनके कारण हम प्राणान्त संकट से अवश्य बचेंगे । नौका आगे बढ़ी । अचानक ही आकाश बादलों से घिर गया और तूफानी हवा चलने लगी । तूफान से नौका इधर उधर हिलने लगी । यात्री लोग अपने अपने प्राणों की रक्षा के लिए अपने अपने इष्ट देवों का स्मरण करने लगे । बात यह थी कि भगवान् को नौका में जाते देख सुदंष्ट्र नामक देव को अपने पूर्व जन्म का वैर स्मरण हो आया । उसे याद आया कि जब मैं सिंह था और यह त्रिपृष्ठ नाम का वासुदेव था तब इसने मुझे चीर डाला था । अपने पूर्वभव के वैरी को देख कर उसका क्रोध बढ़ गया और उसने बदला लेने की भावना से तूफान खड़ा कर दिया । भगवान् मेरु पर्वत की तरह अचल थे । इस तूफान का असर भगवान् पर कुछ भी नहीं पड़ा । कम्बल शम्बल नाम के दो नागकुमार देवों ने सुदंष्ट्र की इस उपद्रवी प्रवृत्ति को देखा । वे देव सुदंष्ट्र के पास आये और उससे युद्ध कर उसे भगा दिया । उपद्रव शांत हो गया । नौका किनारे पहुँच गई । नागकुमार देवों ने भगवान् की महिमा की । गीत गाकर भगवान् की स्तुति की । अन्य यात्रियों ने भी भगवान की भक्ति की । देवों ने सुगन्धित जल की वृष्टि की और वे भगवान् को वन्दन कर अपने स्थान चले गये । भगवान् वहां से थूनाक सन्निवेश में पधारे और वहां निर्जन स्थान में रहकर ध्यान करने लगे ।

कुछ समय के बाद पुष्प नामका एक सामुद्रिक वहाँ से निकला। गंगा के तट पर पड़े हुए पद चिन्हों को देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा अवश्य ही इस मार्ग से चक्रवर्ती निकला है। क्यों कि ये तो पद चिन्ह चक्रवर्ती के हीं दृष्टि गोचर होते हैं। मालूम होता है वह अकेला ही है। वह इस समय चक्रवर्ती नहीं होगा किन्तु इसके चिन्हों से पता लगता है कि यह अवश्य ही चक्रवर्ती होने वाला है। चलूँ इसकी सेवा करूँ। जब वह चक्रवर्ती बनेगा तब मुझे अवश्य दान देगा। ऐसा सोचकर वह पद चिन्हों का अनुसरण करता हुआ आगे चला। वह थूनाक सन्निवेश में पहुंचा। अशोक वृक्ष के नीचे भगवान् को ध्यान करते हुए देखा। भगवान् के सारे शरीर में चक्रवर्ती के चिन्ह थे। चक्रवर्ती के चिन्हों से युक्त अपरिग्रही भगवान् को देखकर विचार करने लगा इस व्यक्ति के समस्त शरीर पर चक्रवर्ती होने के चिन्ह दृष्टि गोचर हो रहे हैं। फिर यह जंगलों में तापस की तरह अकेला क्यों घूम रहा है। क्या मेरा सामुद्रिक शास्त्र झूठा है? उसे अपने सामुद्रिक शास्त्र पर अविश्वास हो गया। उसने अपने पास के ग्रन्थों को पानी में फेंक देने का विचार किया। ज्यों ही वह अपने ग्रन्थों को पानी में प्रवाहित करने के लिए उद्यत हुआ त्यों ही सौधर्मेन्द्र उपस्थित हुआ और बोला—पुष्प ! ये देवाधिदेव धर्म चक्रवर्ती २४ वें तीर्थंकर भगवान् महावीर है। ये चारों गति का अन्त करने वाले धर्म तीर्थ के प्रवर्तक हैं। तुम्हारा ज्योतिष शास्त्र असत्य नहीं है। किन्तु तुम सामुद्रिक शास्त्र को ठीक रूप से नहीं समझे हो। ये महापुरुष इन्द्रों को भी पूज्य और वन्दनीय है। यह सुन कर पुष्य बड़ा प्रसन्न हुआ और भगवान् को वन्दन कर चला गया।

कुछ समय थूणाग सन्निवेश में ठहर कर भगवान् ने अन्यत्र विहार कर दिया, ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भगवान् राजगृह पधारे। राजगृह के समीप नालंदा नाम का सन्निवेश था। वहाँ अर्जुन नाम का बुनकर रहता था। उसकी एक बड़ी बुनकर—शाला थी। उसमें सैंकड़ों नोकर काम करते थ। भगवान् तन्तुवाय शाला में पधारे। चातुर्मास का समय आ गया था, अतः भगवान् ने अर्जुन बुनकर की आज्ञा प्राप्त कर वहीं तन्तुवाय शाला में चातुर्मास प्रारंभ कर दिया। तन्तुवाय शाला के एक कोने में एक मास का उपवास कर भगवान् ध्यानस्थ रहने लगे।

उस समय मंखलिमंख का पुत्र गोशालक चित्रफलक से अपनी आजीविका करता हुआ अर्जुन की तन्तुवाय शाला में आ पहुँचा और वहीं रहने लगा।

प्रथम मासखमन पूरा कर भगवान् आहार के लिए नगर में पधारे। ऊँच नीच और मध्यम कुलों में आहार के लिए परिभ्रमण करते हुए भगवान् ने विजय सेठ के घर में प्रवेश किया। भगवान् को देख कर विजयसेठ बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने बड़ी श्रद्धा से विविध भोजन सामग्री से भगवान् का पारणा कराया। उस समय पांच दिव्य प्रकट हुए। आकाश देव दुदुभियों से गूंज उठा। देवों ने 'अहोदान अहोदान' की घोषणा की। आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई। इस देवकृत महिमा की नगर भर में सर्वत्र चर्चा फैल गई। गोशालक जब भिक्षा के लिए निकला तो उसने भी भगवान् की महिमा लोगों के मुख से सुनी। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह मन में सोचने लगा-अहो! ये देवार्य सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। ये देवों से भी पूजित महा-महिम हैं। अतः चित्रफलक के पाखण्ड को छोड़कर मुझे इनका शिष्य बनना चाहिये यह सोचकर वह भगवान् के पास आया और वन्दन कर बोला-भगवान्! आप मुझे शिष्य के रूप में स्वीकार कीजिए। मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूँ। भगवान् ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। वे मौन रहे। उसने दो तीन बार आग्रह किया फिर भी भगवान् मौन रहे। 'मौन' सम्मति लक्षणम्।' भगवान् के मौन भाव को देख कर उसने यह अभिप्राय निकाला कि भगवान् ने मुझे मौन भाव से शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया है। अब वह अपने को भगवान् का शिष्य मानकर उनके साथ रहने लगा।

द्वितीय मासखमण पारणे के लिए भगवान् आनन्द नामके गृहपति के घर गये। आनन्द ने बड़ी श्रद्धा पूर्वक विविध खाद्य पदार्थों से भगवान् को पारणा कराया। वहाँ भी पांच दिव्य प्रकट हुए। तीसरे मास खमण का पारणा भगवान् ने सुनन्द नाम के गृहपति के घर किया। चतुर्थ मास खमन की समाप्ति के समय कार्तिकी पूर्णिमा के दिन गोशालक ने भगवान् से पूछा-भगवन्! मुझे आज किस प्रकार का भोजन प्राप्त होगा! सिद्धार्थ व्यन्तर ने भगवान् के शरीर में प्रवेश कर कहा-गोशालक! आज तुझ आम्ल मिश्रित कोद्रव का भोजन और दक्षिणा में खोटा रुपया मिलेगा। यह सुनकर गोशालक भिक्षा के लिए निकला। उसने खूब प्रयत्न किया कि उसे आम्ल कोद्रव के सिवाय दूसरा भोजन मिले। किन्तु दुर्भाग्यवश वह जहाँ भी जाता था उसे आम्ल मिश्रित कोद्रव ही मिलता था। सारे दिन परिश्रम किया। उसे बड़ी तेज भूख लगी वह भिक्षा के लिये घूम रहा था। इतने में उसे एक कारीगर मिला वह गोशालक को भोजन के लिये घर ले गया। वहां उसे

ग्राम्ल मिश्रित कोद्रव का भोजन कराया और उसे एक रुपया दक्षिणा में दिया। एक रुपया लेकर वह बाजार में गया। किन्तु रुपया खोटा होने से उसे किसी ने भी नहीं लिया। निराश होकर वह वापस आया। इस घटना से निश्चय किया कि—जो होना होता है वही होता है, अन्यथा नहीं होता।

कार्तिकी पूर्णिमा के दिन भगवान् नालंदा से निकले और कोल्लाग सन्निवेश में पधारे। वहाँ बहुल नामका ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणों को भोजन करा रहा था। उस अवसर पर भगवान् भी बहुल के घर गये। भगवान् को उसने श्रद्धा से खीर दी। भगवान् ने चौथे मासखमण का पारणा खीर से किया। वहां पाँच दिव्य प्रकट हुए।

निराश गोशालक सायंकाल तन्तुवाय शाला में लौट आया। उसने तन्तु वायशाला में भगवान् की खोज की किन्तु उसे भगवान् नहीं मिले। रात उसने वहीं व्यतीत की, दूसरे दिन प्रातः वह भगवान् की खोज के लिए निकल पड़ा। खोजते खोजते वह कोल्लाग सन्निवेश में आया। वहां उसने लोगों के मुख से सुना धन्य है उस बहुल ब्राह्मण को जिसने भगवान् को दान देकर अपने जीवन को धन्य बनाया हैं। इस दान के प्रभाव से उसके घर पांच दिव्य प्रकट हुए है। लोगों के मुख से यह बात सुनकर गोसालक बड़ा प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगा—ये लोग जिस महामुनि की बात करते है वे मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान् महावीर ही हो सकते है। क्योंकि एसी ऋद्धि सत्कार और पराक्रम अन्य किसी भी धर्माचार्य को प्राप्त नहीं हैं। ऐसा सोचता हुआ वह भगवान् को कोल्लाग सन्निवेश में खोजने लगा। खोजते खोजते वह जहां भगवान् ध्यान कर रहे थे वहाँ पहुँचा और भगवान् को वन्दन कर बोला—भगवान्! मैंने पूर्व वेश का परित्याग कर सन्यास-जीवन को स्वीकार कर लिया है। अतः आप कृपा कर मुझे अपना शिष्य बना लीजिए। भगवान् ने मौन भाव से उसे अपना शिष्य बना लिया।

शिष्य भाव से गोशालक को स्वीकार कर भगवान ने सुवर्णखल नामक सन्निवेश की ओर विहार कर दिया। मार्ग में ग्वाले एक बड़ी थाली में दूध और चावल भर कर खीर पका रहे थे। खीर को देखकर उसने भगवान् से कहा—भगवान्! मुझे बड़ी भूख लगी है, अतः चलें। और इन ग्वालों से खीर की याचना करे इतने में सिद्धार्थ व्यन्तर भगवान् के शरीर में प्रवेश कर बोला—हे भद्र! तुझे खीर नहीं मिल सकती क्योंकि यह खीर की थाली खीर पकाते समय टूट जायगी।

उसने भगवान् की इस वाणी को मिथ्या करने के उद्देश्य से ग्वालों से कहा—अरें ! ग्वालो ! भूत भविष्य को जानने वाले ये देवार्य कह रहे हैं तुम्हारी थाली खीर पकाते समय टूट जायगी।

यह सुनकर ग्वालों ने थाली को वासों के पत्तों में लपेट कर चूल्हे पर चढ़ाया। थाली में चावल खूब भरे थे अतः आग के वढ़ते ही थाली टूट गई और सारी खीर चूल्हें में गिर गई। निराश होकर गोशालक भगवान् के साथ हो गया। खीर की घटना से उसका नियतिवाद का सिद्धान्त उसके मन में और भी दृढ़ हो गया।

भगवान् विहार करते हुए ब्राह्मण गांव में पहुँचे।

ब्राह्मण गांव से भगवान् ने गोशालक के साथ विहार कर दिया और चंपा नगरी पधारे। तृतीय चातुर्मास भगवान् ने चंपा में ही व्यतीत किया। चातुर्मास काल में प्रथम द्विमासी तप का पारणा भगवान् ने चंपा के बाहर किया। तपस्या के समय भगवान् उत्कुटुकादि आसन पूर्वक ध्यान करते थे।

चातुर्मास का समय पूरा कर भगवान् ने वहाँ से विहार कर दिया और वे कोलाक नाम के सन्निवेश में पधारे।

प्रातः भगवान् ने वहाँ से विहार कर दिया और पत्रालक नामके गांव में पधारे। वहां रात्रि में एक शून्यगृह में प्रतिमा स्थित हो गये।

पत्रालक सन्निवेश से निकलकर भगवान् कुमार सन्निवेश पधारे। वहां चंपक रमण नामके उद्यान में ऊंची भुजाकर ध्यान करने लगे।

उस गांव में कूपनम नामका एक धनाढ्य कुम्भकार रहता था। उसकी शाला में पार्श्वनाथ की परम्परा के आर्चाय मुनिचन्द्र अपने शिष्यसमूह के साथ ठहरे हुए थे अपने पाट पर वर्द्धन नामके विद्वान शिष्य को स्थापित कर मुनिचन्द्र ने जिनकल्प ग्रहण किया।

मध्याह्न के समय गोशालक ने भगवान् महावीर से कहा- भगवन् ! भिक्षा का समय हो गया है। अतः भिक्षा के लिये हम गांव में चलें। भगवान् ने उत्तर दिया— मुझे आज उपवास है, अतः मैं

भिक्षा के लिये नहीं जाऊंगा यह सुनकर गोशालक अकेला ही आहार के लिये चल पड़ा। भिक्षा के लिये गांव में परिभ्रमण करते हुए उसने विचित्र कपड़ों में मुनिचन्द्र के साधुओं को देखा। गोशालक ने उनसे पूछा आप कौन हैं ? उत्तर में उन साधुओं ने कहा—हम निर्ग्रन्थ है। भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के साधु है। गोशालक ने कहा—आप लोगों के पास इतने वस्त्र पात्र आदि है, फिर भी आप निर्ग्रन्थ कहलाते हैं। सच्चे निर्ग्रन्थ तो मेरे धर्माचार्य धर्मगुरु है जो अपने पास एक धागा भी नहीं रखते हैं। पार्श्वापित्य साधुओं ने कहा "जैसा तू है वैसे तेरे धर्माचार्य भी स्वयं गृहीत लिंग होंगे।" यह सुनकर गोशालक उन पर बड़ा क्रुद्ध हुआ और बोला यदि मेरे धर्माचार्य का कुछ भी तप तेज हो तो इन लोगों का उपाश्रय जलकर भस्म हो जाय यह श्राप सुनकर उन निर्ग्रन्थों ने कहा-तेरे कहने से कुछ भी नहीं होने वाला हैं। गोशालक उनसे कुछ समय तक वाद विवाद कर वापस लौटा और भगवान् से बोला अपने आपको निर्ग्रन्थ कहने वाले कुछ परिग्रही साधुओं से भेंट हुई और उनसे विवाद भी हुआ। मैंने उन्हें श्राप दिया किन्तु उसका उन पर कोई असर नहीं हुआ गोशालक की बात सुनकर भगवान बोले ये सचमुच भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के साधु थे।

भगवान् ने चोराक सन्निवेश से विहार कर दिया। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान् पृष्ठ चम्पा में पधारे और चौथा चातुर्मास वहीं व्यतीत किया। इस चातुर्मास में भगवान् ने चार महीने की तपश्चर्या की। उपवास काल में वे वीरासन लगुडासन आदि विविध आसनों से ध्यान करते रहे। चातुर्मास समाप्त कर भगवान् ने पृष्ठ चंपा से विहार कर दिया। नगर के बाहर पारणा कर भगवान् कयंगला में पधारे।

इस प्रकार के अनार्य देश में श्रमण भगवान् महावीर ने पुनः पुनः विहार किया था। उस वज्र भूमि में रहने वाले क्रोधी मनुष्य भिक्षुओं के पीछे कुत्ते छोड़ देते थे। अतः बौद्ध भिक्षु या दूसरे परिव्राजक आदि साधु अपने शरीर से अंगुल अधिक लंबी लाठीं या नालिका लेकर उस देश मे विचरते थे, जिससे कुत्ते उन पर प्रहार न कर सकें।

(इस प्रकार के भगवान् महावीर के परिषह के वर्णन के लिए देखिए आचारांग नौवा अ० उद्देशक तीसरा)

भगवान् ने अनार्य देश में रहकर अनेक कष्टों और परिषहों को शान्ति पूर्वक सहन किया। कुछ समय तक लाढ प्रदेश में रहकर भगवान् ने आर्य प्रदेश की ओर विहार कर दिया। रास्ते में भगवान् को चोर मिले। वे चोरी करने के लिए कहीं जा रहे थे। भगवान् का सामने से मिलना उन्होंने अपशकुन समझा और उनको मारने दौड़े। उस समय इन्द्र ने चोरों को भगवान को मारते हुए देखा। तत्काल वह भगवान के पास आया और चोरों के आक्रमण को निष्फल कर दिया।

भगवान विहार करते हुए आर्य देश में पधारे। आर्य देश में पधार कर पांचवा चातुर्मास भद्दिया नाम के नगरी में किया। इस चातुर्मास मे भगवान ने चातुर्मासिक तप कर विविध आसनों से ध्यान किया। चातुर्मास काल भद्दिया नगरी में व्यतीत कर प्रभु ने वहां से विहार कर दिया। गांव के बाहर आकर चातुर्मासिक तप का पारणा किया और वहाँ से चलकर कदलीसमागम नामक गाँव मे पधारे। कदली समागम से जम्बूसंड होते हुए भगवान् तम्बाय सन्निवेश में पधारे।

तम्बाय सन्निवेश से विहार कर भगवान् कूपिय सन्निवेश में पधारे। वहां से वैशाली पधारे।

वैशाली से विहार कर भगवान् ग्रामाक सन्निवेश में आये। वहाँ उद्यान के यक्ष मन्दिर में ध्यान करने लगे। यह यक्ष सम्यक्त्वी थी। उसने भगवान् की स्तुति कर वन्दना की।

ग्रामाक सन्निवेश से निकल कर भगवान् शालीशीर्ष नाम के गांव में पधारे। वहाँ ग्राम के बाहर उद्यान में ध्यान करने लगे। माघ का महीना था। भयंकर ठंड के कारण पानी भी बर्फ बन गया था। पक्षीगण अपने अपने घोंसलों में कड़ाके की सर्दी का सामना करते हुए ठिठुर रहे थे। ऐसी

अवस्था में रात्रि के समय वृक्ष के नीचे खुले बदन प्रभु खड़े खड़े ध्यान कर रहे थे। कठपुतना नामकी एक व्यन्तरी की दृष्टि ध्यान करते हुए प्रभु पर पड़ी। भगवान् को देखते ही उसका कोप आसमान पर चढ़ गया। उसने तत्काल एक परिव्राजिका का रूप धारण किया और अट्टहास करती हुई भगवान् के पास आई अपनी जटाओं में जल भर भर कर उसे भगवान के ऊपर छिड़कने लगी और भगवान् के कंधे पर चढ़ कर उन्हीं जटाओं से हवा करने लगी। भयंकर ठंडी में शीतल जल की बूंदें भगवान् के शरीर पर कांटे की तरह चुभती थी। भगवान् को उन बूंदों से असह्य वेदना हो रही थी। भगवान् ने अत्यन्त समभाव से इस शीत परीषह को सहन किया। कठपूतना के उपसर्ग को अत्यन्त क्षमाभाव से सहन करने के कारण भगवान को लोकावधि ज्ञान उत्पन्न हुआ। उससे लोकवर्ती समस्त पदार्थों को अपने ज्ञान से देखने लगे। भगवान् के इस महान् समत्व से कठपूतना हार गई और वह भगवान् के चरणों में गिर कर अपने अपराध की क्षमा मांगने लगी। शालशीर्ष से भगवान् ने विहार किया और वे भद्दिया नगरी में पधारे। अपना छठा चातुर्मास भद्दिया में ही व्यतीत किया, इस चातुर्मास में भगवान् ने चार महीने का कठोर तप किया और विविध आसनों के साथ ध्यान करते हुए चातुर्मास काल पूर्ण किया।

सातवां चातुर्मास

आठ मास तक विविध कष्टों को समभाव से सहते हुए भगवान् विचरते रहे। चातु[र्मास] का समय नजदीक आने पर भगवान् आलंभिया नगरी में पधारे। यहीं सातवां चातुर्मास प्रारंभ किया इस चातुर्मास में भी भगवान् ने चार महीने का कठोर तप किया। चातुर्मास समाप्ति के बाद चा[तुर्]मासिक तप का पारणा नगरी के बाहर किया। यहाँ से भगवान् ने कुण्डाक सन्निवेश की ओर विहा[र] किया। कुण्डाक सन्निवेश में पधार कर भगवान् वासुदेव के मन्दिर में ठहरे। वहाँ से निकल [कर] मदन्न सन्निवेश में बलदेव के मन्दिर में पधारे और वहाँ ध्यान करने लगे। प्रातःकाल मदन्न सन्नि[वेश] से निकल कर भगवान् बहुसालग नाम के गांव के बाहर शालवन उद्यान में पधार करे। [व] ध्यानस्थ हो गये। इस उद्यान में 'शालार्य' नाम की व्यंतरी रहती थी। उसने रात्रि में भगवान् [को] विविध उपसर्गों से त्रासित करने का प्रयत्न किया किन्तु भगवान् की अपूर्व समता से वह स[र्वथा] पराजित होकर चली गई। वहाँ से भगवान् लोहार्गला नाम की नगरी में पधारे। उस नगरी

राजा जितशत्रु था । जितशत्रु राजा की पड़ोसी राज्य के साथ लम्बे समय से शत्रुता चलती थी। दोनों एक दूसरे के आक्रमण से बचने के लिए सतर्क थे । कोई भी नया व्यक्ति नगरी में प्रवेश करता तो राज्याधिकारी उससे पूछताछ करते थे । योग्य समाधान न मिलने पर उसे पकड़ कर राजा के पास उपस्थित करते थे । भगवान् महावीर और गोशालक को नगरी में घूमते देख राज्याधिकारी ने उन्हें पकड़ा और उनसे विविध प्रश्न किये । भगवान् ने उनकी बातों का कोई जवाब नहीं दिया । तब अधिकारी ने उन्हें बन्दी बना कर राजा के पास उपस्थित किया । उस समय राजसभा में उत्पल नाम का ज्योतिषी भी बैठा हुआ था । उसने भगवान् को तुरत पहचान लिया और खड़े होकर राजा से निवेदन करने लगा-राजन् ! आपके अधिकारी ने जिन महापुरुष को बन्दी बना कर आपके सन्मुख खड़ा किया है वे किसी राज्य के गुप्तचर नहीं है किन्तु महाराजा सिद्धार्थ के पुत्र श्रमण भगवान महावीर हैं । ये तो चक्रवर्ती के भी चक्रवर्ती धर्म तीर्थ के प्रवर्तक है । इनके चिह्न चक्रवर्ती को भी मात करने वाले हैं । यह सुनते ही जितशत्रु राजा ने उन्हें बन्धनों से मुक्त करवा दिया और अपने अपराध की बार बार क्षमा मांगी ।

भगवान् ने लोहार्गला से विहार कर दिया और वे पुरिमताल नगर में पधारे । वहाँ शकटमुख उद्यान में ध्यान करने लगे । पुरिमताल नगर में वग्गुर नामका श्रेष्ठी रहता था । उसकी पत्नी का नाम भद्रा था । उसे पुत्र नहीं था । भगवान् मल्लीनाथ की उपासना से उसे पुत्र की प्राप्ति हुई । वह भगवान मल्लीनाथ का परम उपासक बन गया था । उस समय ईशानेन्द्र अपनी समस्त ऋद्धि के साथ भगवान् के दर्शन के लिए आया । ईशानेन्द्र से प्रभावित होकर वग्गुर सेठ ने भी भगवान् की भक्ति की । भगवान् उन्नाग और गोभूमि होते हुए राजगृह पधारे । भगवान ने आठवाँ चातुर्मास राजगृह में प्रारंभ किया । चातुर्मास काल में भगवान् ने चौमासी तप किया और विविध आसनों से ध्यान किया । चातुर्मास समाप्त कर भगवान् ने तप का पारणा नगरी के बाहर किया और अन्यत्र विहार कर दिया ।

नवां चातुर्मास—

विहार करते हुए भगवान् सोचने लगे–अभी तो मेरे बहुत कर्म खपाने शेष है अत: मुझे अपने अवशेष कर्मों को शीघ्र खपाने के लिए अनार्य देश में विचरना चाहिए यह सोच भगवान ने अनार्य

प्रदेश की ओर विहार कर दिया। वे लाढदेश की वज्रभूमि और शुभ्रभूमि में पधारे और वहीं विचरने लगे। भगवान को इस प्रदेश में घोर कष्ट सहन करने पड़े। अनार्य लोग भगवान को विविध ढंग से पीड़ा पहुँचाते थे। कुत्तों से कटवाते थे। मुष्टि प्रहार करते थे। धूल फेंकते थे। कोई कोई असभ्य गालियों से भगवान् का स्वागत करते थे। आहार के स्थान में कभी कभी अनार्य लोग उनके हाथों पर मिट्टी और कंकर रखते थे। भगवान इन सब कष्टों को बड़े समभाव पूर्वक सहते थे। उन अनार्यों पर किंचित भी क्रोध नहीं करते थे। किन्तु अपने कर्म के पटल नष्ट होते देख अपूर्व सुख का अनुभव करते थे। अनार्य भूमि में भगवान् को ठहरने के लिए कहीं भी स्थान नहीं मिला। वे प्रायः वृक्ष के नीचे ही अपना रात्रि निवास व्यतीत करते थे। भगवान ने यह चातुर्मास वृक्ष और खण्डहरों में व्यतीत किया। चातुर्मास समाप्त कर भगवान ने आर्य देश की ओर विहार किया। भगवान छह माह तक अनार्य देश में विचरे। अनार्य प्रदेश से निकल कर भगवान आर्य देश में आये। सिद्धार्थपुर से निकल कर भगवान् वैशाली पधारे तथा नगरी के बाहर ध्यान करने लगे। वैशाली से भगवान् ने वाणिज्य ग्राम की ओर विहार किया।

दसवां चातुर्मासः—

वाणिज्य ग्राम से भगवान श्रावस्ती पधारे और वहीं दसवां चातुर्मास व्यतीत किया। चातुर्मास की समाप्ति के बाद भगवान् सानुअट्ठिय ग्राम में पधारे। वहां सोलह की तपस्या तथा महाभद्र और सर्वतोभद्र तप की आराधना की। वहां से भगवान् पेढाल नाम के गांव में पधारे। वहां भगवान् ने महाप्रतिमा तप को आराधना की तथा ध्यान मग्न रहे। इन्द्र ने अपनी सभा में भगवान् महावीर के अपूर्व ध्यान की प्रशंसा करते हुए कहा कि 'भगवान् महावीर के समान कोई ध्यानी और वीर नहीं है। कोई भी शक्ति उन्हें ध्यान से विचलित नहीं कर सकती। संगम नामक देव को यह प्रशंसा सहन नहीं हुई। वह भगवान् को ध्यान से विचलित करने के लिए आया और रात्रि में विविध उपसर्ग करने लगा। उसने भगवान् को उस रात्रि में वीस प्रकार के भयंकर से भयंकर उपसर्ग किये। परन्तु भगवान् मेरु की तरह अडोल और अकंप रहे।

संगम अपने समस्त प्रयत्नों में विफल रहा। अन्त में भगवान से क्षमा याचना करते हुए कहा भगवन्! इन्द्र ने आपके मनोबल की जैसी प्रशंसा की थी उससे कहीं अधिक आप में मनोबल धैर्य

और परीषह सहन करने की क्षमता है। आप सत्य प्रतिज्ञ है और मैं भ्रष्ट प्रतिज्ञ हूँ : मेरे अपराध को आप क्षमा करेंगे ऐसा मेरा विश्वास है। भगवान ने कहा–संगमक ! मैंने अपने लिए जो मार्ग निश्चित किया हैं मैं उसी पर बिना किसी की निन्दा-प्रशंसा की अपेक्षा के चलता हूँ। मैंने तो तुझे अपने कर्म खपाने में सहायक ही माना है। भगवान की अपूर्व क्षमाशीलता से पराजित हो संगम भगवान को वन्दन कर चला गया।

भगवान सुयोग, सुच्छता, मलय, हस्तिशीर्ष, तोसलि, मोसली, सिद्धार्थपुर होते हुए वज्रगांव में पधारे। वज्रगांव से विहार कर भगवान् श्रावस्ती पधारे।

ग्यारहवां चातुर्मास—

कौशाम्बी, वाराणसी, राजगृह, मिथिला आदि नगरों में विचरण करते हुए भगवान् वैशाली पधारे और यहीं ग्यारहवां चातुर्मास व्यतीत किया। चातुर्मास की समाप्ति पर भगवान् विचरण करते हुए कौशाम्बी पधारे और पौष वदी एकम के दिन भगवान् ने भिक्षा सम्बन्धी तेरह बोल का कठिन अभिग्रह ग्रहण किया। वे तेरह बोल ये थे–राजकन्या हो, अविवाहित हो, सदाचारिणी हो, निरपराध होने पर भी जिसके पावों में बेड़ियां तथा हाथों में हथकड़ियां पड़ी हुई हों, सिर मुण्डा हुआ हो, शरीर पर काछ लगी हुई हो, तीन दिन का उपवास किये हो, पारणा के लिए उड़द के बाकले सूप में लिए हो, न घर में हो, न बाहर हो, एक पैर देहली के भीतर तथा दूसरा बाहर हो: दान देने की भावना से अतिथि की प्रतीक्षा कर रही हो, प्रसन्न मुख हो, और आंखों में आंसू भी हों, इन तेरह बातों से युक्त कोई स्त्री मुझे आहार दे तो मैं उसी से आहार ग्रहण करूँगा।

उक्त प्रतिज्ञा करके भगवान प्रतिदिन कोशाम्बी में आहार के लिये जाते परन्तु कहीं भी अभिग्रह पूर्ण नहीं होता था। इस प्रकार भ० महावीर को भ्रमण करते–करते चार मास बीत गये। परन्तु उन्हें आहार का लाभ न हुआ। वे नन्दा के घर आये। नन्दा कौशांबी के महामान्य सुगुप्त की पत्नी थी। नंदा बड़े आदर के साथ आहार लेकर उपस्थित हुई। परन्तु महावीर का अभिग्रह पूर्ण न होने से वे वापिस लौट गये नंदा को बहुत दुःख हुआ। उसने मन्त्री से कहा–"इतने दिन हो गये, भगवान को भिक्षा नहीं मिल रही है, अवश्य हीं कोई कारण होना चाहिये कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे उन्हें आहार मिले।" उस समय नन्दा के घर मृगावती की प्रतिहारी आई हुई थी। उसने जो कुछ सुना अपनी रानी से कह सुनाया। रानी ने राजा से कहा कि ऐसे राज्य से क्या लाभ कि भगवान

को आहार तक नहीं मिलता ? राजा ने मन्त्री को बुला कर इस बात चर्चा की । राजा ने अपने धर्मगुरु से सब भिक्षुओं के आचार-व्यवहार पूछ कर उनका अपनी प्रजा में प्रचार किया, परन्तु फिर भी महावीर को भिक्षा-लाभ नहीं हुआ ।

भगवान के अभिग्रह को पांच महीने हो चुके थे और छठा महीना पूरा होने में सिर्फ पांच दिन शेष रह गये थे । भगवान नियमानुसार इस दिन भी कौशाम्बी में भिक्षा-चर्या के लिये निकले और फिरते हुए सेठ धनावह के घर पहुँचे । यहाँ आपका अभिग्रह पूर्ण हुआ और आपने चन्दना राजकुमारी के हाथों भिक्षा ग्रहण की ।

अभिग्रह के पूर्ण होने पर भगवान ने कौशाम्बी से विहार कर दिया और सुमंगल, सुच्छेत्ता पालक आदि गांवों में विचरते हुए चम्पा नगरी पधारे । यहाँ स्वातिदत्त नामक ब्राह्मण की यज्ञशाला में ठहर कर वारहवाँ चातुर्मास प्रारंभ किया, इस चातुर्मास में भी भगवान ने चार महीने का लम्बा तप किया और विविध आसनों से ध्यान किया ।

चातुर्मास की समाप्ति के बाद भगवान ने जृंभिक गांव की ओर विहार किया । जृंभिक गांव में कुछ समय विराज कर आप मेढिय गांव में पधारे । वहाँ से छम्माणि गांव में पधार कर एक वृक्ष के नीचे ध्यान करने लगे । उस समय एक ग्वाला अपने बैलों को भगवान के पास छोड़कर गांव में चला गया । गांव में जाकर जब वापिस लौट आया तो बैल भगवान के पास नहीं मिले । उसने भगवान से पूछा-देवार्य ! मेरे बैल कहाँ हैं ? भगवान अपने ध्यान में लीन थे अतः ग्वाले के सवाल का उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया । वार वार पूछने पर भी जब भगवान की ओर से जवाब नहीं मिला तो ग्वाला भगवान पर बड़ा क्रुद्ध हुआ । उसने क्रोध में आकर काष्ठ की कीलें भगवान के कानों में ठोंक दी । उससे भगवान के शरीर में असह्य वेदना होने लगी । भगवान छम्माणि से निकल कर पावा में पधारे । आहार की गवेषणा करते हुए वे सिद्धार्थ नामके एक वणिक् के घर पहुँचे । वहाँ खरक नामका वैद्य बैठा हुआ था । सिद्धार्थ उसके साथ बात कर रहा था । भगवान को देखते ही वह उठा और भगवान को वन्दन किया । खरक बड़ा चतुर वैद्य था । भगवान के शरीर को देखते ही उसे मालूम हुआ कि भगवान शल्य से पीड़ित है । भगवान के शरीर को अच्छी तरह देखने के बाद उसे भगवान के कानों में शल्य नजर आये । भगवान के कानों से शल्य निकालने के लिए खरक जब उद्यत आ तो भगवान ने उसे मना कर दिया । भगवान वहाँ से चल दिये और

नगर के बाहर एक वृक्ष के नीचे ध्यान करने लगे। खरक वैद्य और सिद्धार्थ वणिक औषधि आदि सामग्री के साथ भगवान का खोजते–खोजते भगवान के निकट आये। उन्होंने भगवान को तेल को द्रोणी में बिठाकर तेल की खूब मालिश को और संडासी से पकड़ कर कानों से शलाका खींच डाली। जब शलाका खींच कर निकाली गई तब भगवान के मुख से वेदना के कारण चीत्कार निकली। शलाका को निकालने के बाद कान के घाव को संरोहण औषधि से भर दिया और भगवान को वन्दन कर वे चले गये। ग्वाला मर कर सातवीं नरक में गया और सिद्धार्थ तथा खरक देवलोक में। इस प्रकार भगवान महावीर का साधनाकाल ग्वाले के उपसर्ग से प्रारम्भ हुआ और उपसर्गों का अंत भी ग्वाले से ही हुआ।

आवश्यक चूर्णि प्रथम भाग पृ. ३२२ में कहा भी है–कि

सव्वेसु किर उवसग्गेसु दुव्विसहा कतरे ? कडपूयणासीयं कालचक्कं एतं चेव सल्लं कड्ढिज्जंतं।

अहवा जहन्नगाण उवरि कडपूयणासीतं मज्झिमाण कालचक्कं उक्कोसगाण उवरि-सल्लुद्धरणं।

जघन्य उपसर्गों में सबसे अधिक कठ पूतना राक्षसी का शीत उपसर्ग था। मध्यम उपसर्गों में सबसे ज्यादा कठिन संगमक का कालचक्र उपसर्ग था और उत्कृष्ट उपसर्गों में सबसे ज्यादा कठिन कानों में से कीलों का निकालना था।

इस प्रकार घोरातिघोर उपसर्गों एवं परीषहों को सहन करते हुए भगवान को साढ़े बारह वर्ष से भी कुछ अधिक समय हो गया था। इस अवधि में आपने विविध प्रकार की तपस्या की। घोर अभिग्रह किये विविध आसनों से ध्यान कर कर्मों का क्षय करने का निरन्तर प्रयत्न किया। आपकी साधना काल की तपस्या इस प्रकार थी:–

छमासी तप

५ दिन कम छमासी

चउमासी

त्रिमासी	२
ढाइमासी	२
दो मासी	६
डेढमासी	२
मासखमण	१२
पक्ष खमण	७२
भद्र प्रतिमा २ दिन	१
महाभद्र प्रतिमा ४ दिन	१
सर्वतोभद्र प्रतिमा १० दिन	१
छठ	२२९
अट्ठम	१२
पारणा के दिन	३४९
दीक्षा का दिन	१

इस १२ वर्ष ६ मास १५ दिन की तपश्चर्या में भगवान ने केवल ३४९ दिन भोजन किया और शेष दिनों में चौविहार तप किये।

भगवान् मध्यम पावा से विहार कर जंभियग्राम के समीप ऋजुवालुगा नदी के उत्तर में ध्यान में लीन हुए।

तस्स णं भगवंतस्स अणुत्तरेणं नाणेणं अणुत्तरेणं दंसणेणं अणुत्तरेणं चरित्तेणं अणुत्तरेणं आलएणं अणुत्तरेणं विहारेणं अणुत्तरेणं वीरिएणं अणुत्तरेणं अज्जवेणं अणुत्तरेणं मद्दवेणं अणुत्तरेणं लाघवेणं अणुत्तराए खंतीए अणुत्तराए मुत्तीए अणुत्तराए गुत्तीए, अणुत्तराए तुट्ठीए अणुत्तरेणं सच्च संजम तवसुचरियसोवचइयफल परिनिव्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स दुवालस संवच्छराइं विइक्कंताइं। तेरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दोच्चेमासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे तस्सेणं वइसाह सुद्धस्स दसमीए पक्खेणं पाईण-गामिणीए छायाए पोरीसीए अभिनिवट्टाए पमाणपत्ताए सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं

जंभियगामस्स नगरस्स बहिया उजुवालियाए नईए तीरे वियावत्तस्स चेईयस्स अदूरसामन्ते सामागस्स गाहावइस्स कट्ठकरणंसि सालपायवस्स अहे गोदोहियाए उक्कुडुक निसिज्जाए आयावणाए आयावेमाणस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवर-नाणदंसणे समुप्पण्णे (कप्पसुत्त १२०)

इस प्रकार आत्म ध्यान में विचरण करते करते अनुपम उत्तम ज्ञान, अनुपम दर्शन, अनुपम संयम, अनुपम निर्दोष वसति, अनुपम विहार, अनुपम वीर्य, अनुपम सरलता, अनुपम कोमलता, अनुपम अपरिग्रह भाव, अनुपम क्षमा, अनुपम अलोभ, अनुपम गुप्ति, अनुपम प्रसन्नता, अनुपम सत्य संयम तप आदि सद्गुणों का सम्यग् आचरण करने से जिनसे कि निर्वाण का मार्ग अर्थात् सम्यग् दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यग् चारित्र पुष्ट बनते हैं तथा जिन सद्गुणों से मुक्ति का लाभ अत्यंत सन्निकट आता है, उन सभी सद्गुणों से आत्मा को भावित करते हुए भगवान को बारह वर्ष व्यतीत हो गए तेरहवें वर्ष का मध्यम भाग अर्थात् ग्रीष्म ऋतु का द्वितीय मास और चतुर्थ पक्ष चलता है चतुर्थ पक्ष, अर्थात् वैशाखमास का शुक्लपक्ष, उस वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन जब छाया पूर्व की ओर ढल रही थी, पिछली पौरुषी पूर्ण हुई, जब सुव्रत नामक दिन था, विजय नामक मुहूर्त था, तब भगवान जृंभिका ग्राम के बाहर ऋजुवालिका नदी के किनारे एक खण्डहर जैसे पुराने चैत्य से न अत्यधिक सन्निकट और न अत्यधिक दूर ही, श्यामक नामक गृहपति के खेत में शालवृक्ष के नीचे गोदोहिका आसान में अवस्थित थे। आतापना द्वारा तप कर रहे थे। छट्ठम तप था। जिस समय उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र का योग आया, भगवान ध्यानान्तरिका में मग्न थे, उस समय भगवान को अन्तरहित उत्तमोत्तम, व्याघातरहित, आवरणरहित समग्र व परिपूर्ण केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ।

तए णं से भगवं अरहा जाए जिणे केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स परियायं जाणइ पासइ, सव्वलोए सव्वजीवाणं आगइं गइं ठिइं चवणं उववायं तक्कं मणोमाणसियं भुत्तं कडं पडिसेवियं आविकम्मं रहोकम्मं अरहा अरहस्स भागी तं तं कालं मणवयणकाय जोगे वट्टमाणाणं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावे जाणमाणे पासमाणे विहरइ (कप्पसुत्त १२१)

उसके बाद भगवान अर्हत् हुए जिन, केवली, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हुए। अब भगवान देव मानव और असुर सहित लोक में सम्पूर्ण पर्यायों को जानते हैं, देखते हैं। सम्पूर्ण लाक में सभी जीवों के आगमन गमन स्थिति, च्यवन, उपपात, उनका मानसिक संकल्प, भोजन, प्रभृति सभी श्रेष्ठ और कनिष्ठ प्रवृत्तियाँ, चाहे वे प्रकट हैं या अप्रकट हैं, उन्हें भगवान जानते हैं। भगवान अर्हत् हुए अतः इनसे अब कोई भी रहस्य छिपा हुआ नहीं है। अरहस्य के भागी हुए—उनके समीप करोड़ों देव सेवा में सलग्न रहने के कारण अब एकान्त में रहने की स्थिति नहीं रही। इस प्रकार अर्हत् हुए, भगवान उस काल में मानसिक वाचिक और कायिक प्रवृत्तियों में रहते हुए समग्रलोक के, समस्त जीवों के सम्पूर्ण भावों को जानते हुए देखते हुए विचरते हैं।

केवलज्ञान प्राप्ति के बाद भगवान एक मूहूर्त तक वहीं ठहरे। इन्द्रादि देवों ने आकर भगवान का केवलज्ञान उत्सव मनाया। देवों ने समवसरण की रचना की। समवसरण में बैठ कर भगवान ने देशना दी। इस प्रथम समवशरण में केवल देवता ही उपस्थित थे अतः विरति रूप संयम का लाभ किसी भी जीव को नहीं हुआ यह आश्चर्य जनक घटना मानी जाती है। इस अवसर्पिणी काल में ऐसे दस आश्चर्य हुए वे इस प्रकार है—१ उपसर्ग २ गर्भहरण, ३ स्त्री तीर्थंकर ४ अभाव्या परिषद् ५ कृष्ण का अपरकंका गमन ६ चन्द्र सूर्य अवतरण ७ हरिवंश कुलोत्पत्ति ८ चमरोत्पात ९ अष्ट शत सिद्ध १० असंयत पूजा।

तीर्थ स्थापना:—

उस समय मध्यमा पावापुरी में सोमिल नामका एक धनाढ्य ब्राह्मण विशाल यज्ञ का आयोजन कर रहा था। उसने हजारों विद्वानो को यज्ञ में आने के लिए निमंत्रण भेजा था। सोमिल ब्राह्मण का निमंत्रण पाकर दूर दूर से बहुत बड़ी सख्या में ब्राह्मणगण पावापुरी में आये। इन ब्राह्मणों मे प्रतिष्ठित इन्द्रभूति आदि मुख्य ग्यारह ब्राह्मण थे।

केवल ज्ञान प्राप्त भगवान महावीर ने अपने ज्ञान में देखा कि मध्यमा नगरी के यज्ञ प्रसंग पर मेरा जाना अतीव लाभ प्रद होगा। यज्ञ में सम्मिलित ब्राह्मण मेरे उपदेश से बोध प्राप्त करेंगे। और मेरे शासन के आधार स्तंभ बनेंगे। यह सोचकर भगवान वहाँ से विहार कर पावापुरी के महासेन उद्यान में पधारे। देवों ने समवसरण की रचना की। बत्तीस धनुष ऊँचे चैत्य वृक्ष के नीचे

देव निर्मित रत्न सिंहासन पर विराज कर अपनी देशना प्रारंभ करदी। भगवान का आगमन सुनकर नगरी के हजारों स्त्री पुरुष उपदेश सुनने के लिए समवशरण में उपस्थित हुए। असंख्य देवतागण भी आकाश मार्ग से समवशरण की ओर आने लगे। आकाश से असंख्य देव समूह को यज्ञ मण्डप की ओर आते देख इन्द्र भूति आदि ब्राह्मणों को एसा लगा कि ये सब देव यज्ञ से आकर्षित होकर यज्ञ मे आ रहे है। किन्तु यज्ञ मण्डप को लांघ लांघ कर जब देवता भगवान के समवशरण में पहुँचे तो गौतम आदि विद्वान ब्राह्मण उदास हो गये। उन्होंने समवशरण की ओर जाने वाले जन समूह से पूछा कि आप इतनी बड़ी संख्या में किधर जा रहे है? उत्तर मिला सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान महावीर का आगमन हुआ है। हम लोग उन्हीं का उपदेश सुनने के लिए महासेन उद्यान में जा रहे हैं। लोगों के मुख से यह बात सुनकर इन्द्रभूति मन में विचारने लगा-मेरे सिवा दूसरा कौन सर्वज्ञ हो सकता है? उन्हें अपने ज्ञान का गर्व था। वे सोचने लग मुझे स्वयं महावीर के पास जाकर उसकी सर्वज्ञता की परीक्षा करनी चाहिए। उसके साथ शास्त्रार्थ कर उसे पराजित करना चाहिए। यह सोच वे अपने पांच सौ शिष्यों के साथ भगवान महावीर के समवशरण में पहुँचे समवशरण की अपूर्व रचना देखकर उनका गर्व चूर हो गया। इन्द्रभूति ने अपने जीवन काल में अनेक धुरन्धर विद्वानों से शास्त्रार्थ कर उन्हें वाद में पराजित किया था, अनेक विद्वान उनकी विद्वत्ता का लोहा मान कर उल्टे पैर चले गय थे, किन्तु यहाँ तो भगवान के समवशरण को देखते ही वे स्तब्ध हो गये। उनकी विजय कामना शान्त हो गई। फिर भी मन में सोचने लगे-मैंने अपने जीवन में अनेक पंडितों और योगीजनों को देखा है किन्तु यह दिव्य पुरुष कोई और ही है। यदि ये मेरी शंकाओं को बिना पूछे ही निर्मूल कर दें तो मैं इन्हें सर्वज्ञ मान सकता हूँ।

इन्द्र भूति यह विचार कर ही रहे थे कि भगवान ने उन्हें संबोधित करते हुए कहा-हे गौतम! तुम आत्मा के अस्तित्व के विषय में शंका रखते हो, क्या यह बात ठीक हैं?

इन्द्र भूति हां भगवन्! मुझे आत्मा के अस्तित्व के विषय में शंका है क्यों कि विज्ञान घन एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविशंति न प्रेत्य संज्ञास्ति' इत्यादि वेद वाक्य भी इसी बात की पुष्टि करते हैं।

भगवान ने कहा-गौतम! स वै अयमात्मा इत्यादि श्रुति वाक्यों से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध

होता है। भगवान ने विविध तर्कों से एवं श्रुति वाक्यों से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध किया। भगवान से अपनी सम्पूर्ण शंकाओं का समाधान पाकर अपने पांच सौ शिष्यों के साथ उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की। इन्द्रभूति के प्रव्रजित होने की बात शेष दस विद्वानों तक पहुँची। दसों विद्वान अपने-अपने शिष्य परिवार के साथ समवशरण में पहुँचे और भगवान से प्रश्नोत्तर कर अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त किया। वे भी अपने अपने छात्र समूह के साथ प्रव्रजित हो गये। इन ग्यारहों गणधरों की मुख्य शकाएँ ये थी–

१–इन्द्रभूति–जीव हैं या नहीं ?

२–अग्नि भूति–ज्ञानावरण आदि कर्म है या नहीं ?

३–वायु भूति–शरीर और जीव एक है या भिन्न २ ?

४–व्यक्त–पृथ्वी आदि भूत है या नहीं ?

५–सुधर्मा–इस लोक में जो जैसा है परलोक में भी वह वैसा ही रहता है ?

६–मण्डिक–बन्ध और मोक्ष है या नहीं ?

७–मौर्य पुत्र–देवता है या नहीं ?

८–अकम्पित–नारकी हैं या नहीं ?

९–अचल भ्राता–पुण्य ही बढ़ने पर सुख और घटने पर दुःख का कारण हो जाता हैं या दुःख का कारण पाप, पुण्य से अलग है ?

१०–मेतार्य–आत्मा की सत्ता होने पर भी परलोक है या नहीं !

११–प्रभास–मोक्ष है या नहीं !

इस प्रकार मध्यमा के समवशरण में एक ही दिन में ४४११ ब्राह्मणों ने भगवान महावीर का प्रवचन सुनकर श्रमण धर्म को स्वीकार किया। भगवान महावीर के जीवन काल में यह एक बड़ी सफलता थी।

इन्द्रभूति आदि ग्यारह विद्वान मुनिराजों ने त्रिपदी पूर्वक द्वादशांगी की रचना की। अतः उन्हें गणधर पद से सुशोभित किया गया।

इस प्रकार भगवान महावीर ने वैशाख शुक्ला दसमी के दिन चतुर्विध संघ की स्थापना की मुनि समुदाय में गौतम गणधर मुख्य थे और साध्वी समुदाय में चन्दन बाला मुख्य थी। इस प्रकार चतुर्विध संघ की स्थापना कर भगवान ने विशाल शिष्य परिवार के साथ मध्यमा से राजगृह की ओर विहार कर दिया। वे राजगृह पहुँच कर गुणशील उद्यान में ठहरे। उस समय राजगृह नगर में महाराजा श्रेणिक राज्य करते थे। भगवान का आगमन सुनकर वह बड़ी सजधज के साथ भगवान के दर्शन के लिये गये। देव निर्मित समवशरण में बैठकर राजगृह के हजारों स्त्री पुरुषों ने भगवान का उपदेश सुना और बोध प्राप्त किया। भगवान का प्रवचन सुनकर मेघकुमार नंदिषेण आदि राजकुमारों के साथ अन्य कई स्त्री पुरुषों ने भगवान से प्रव्रज्या ग्रहण की। भगवान ने १३वां वर्षावास राजगृह में ही व्यतीत किया।

१४ वां वर्षावास—

राजगृह का चातुर्मास समाप्त कर भगवान ने अपने संघ के साथ विदेह की ओर विहार किया। वे अनेक ग्राम–नगरों को पावन करते हुए ब्राह्मणकुण्ड नगर में पहुँचे और बहुसाल उद्यान में उतरे। यह भगवान का जन्मस्थल था। भगवान का आगमन सुन हजारों स्त्री–पुरुष भगवान् के दर्शनार्थ आये और उन्होंने प्रवचन सुन अपने जीवन को धन्य बनाया। भगवान के गर्भ संहरण के पूर्व के माता पिता, जिनका नाम ऋषभदत्त और देवानन्दा था, वे भी दर्शन के लिये आये और भगवान का प्रवचन सुन प्रव्रजित हो गये। भगवान के जामाता क्षत्रियकुण्ड के निवासी क्षत्रियकुमार जमालि ने प्रवचन सुन कर अपने पांचसौ साथियों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की भगवान महावीर की पुत्री भी हजार स्त्रियों के साथ भगवान से प्रव्रज्या ग्रहण कर आर्या चन्दना के संघ में मिल गई। इस प्रकार अनेक भव्यों को प्रतिबोधित करते हुए भगवान एक वर्ष तक विदेह भूमि में विहार करते रहे। अन्त में १४ वां वर्षावास विदेह की राजधानी वैशाली में किया।

१५ वां चातुर्मास—

वैशाली का चातुर्मास समाप्त कर भगवान् कोशाम्बी पधारे और नगर के बाहर चन्द्रावतरण चैत्य (उद्यान) में ठहरे। भगवान का आगमन सुन कर महारानी मृगावती (शतानीक की पत्नी)

ने और जयन्ती श्राविका ने भगवान के दर्शन किये। इस अवसर पर जयन्ती ने भगवान से अनेक प्रश्नोत्तर किये (प्रश्नोत्तरों के लिए देखिए भगवती सूत्र) अपने प्रश्नों का समाधान पाकर जयन्ती ने भगवान से प्रव्रज्या ग्रहण की। इस वर्ष का चातुर्मास भगवान् ने वाणिज्य ग्राम में व्यतीत किया। भगवान के शेष चातुर्मासों की सूची कल्पसूत्र में इस प्रकार हैं—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे अट्ठियगामं नीसाए पढमं अंतरावासं वासावासं उवागए। चंपं च पिट्ठिचंपं च निस्साए तओ अन्तरावासे वासावासं उवागए। वेसालिं नगरिं वाणिय गामं च निस्साए दुवालस अंतरावासे वासावासं उवागए। रायगिहं नगरं नालंदं च बाहरियं निस्साए चोद्दस अंतरावासे वासावासं उवागए। छम्मिहिलाए दो भद्दियाए एगं आलंभियाए एगं सावत्थीए एगं पणीय भूमिए एगं पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रन्नो रज्जुगसहाए अपच्छिमं अंतरावासं वासावासं उवागए (कप्पसुत्त १२२)

उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर ने अस्थिक ग्राम की निश्राय में वर्षावास किया। अर्थात् भगवान ने प्रथम चातुर्मास अस्थिक ग्राम में किया। चंपा नगरी में और पृष्ठ चंपा में भगवान् ने तीन चातुर्मास किये। वैशाली नगरी में और वाणिज्य ग्राम में भगवान् बारह बार चातुर्मास करने के लिए पधारे। राजगृह और उसके बाहर नालंदापाड़ा में भगवान् नें चोदह चातुर्मास किये। मिथिला नगरी में भगवान् छह बार चातुर्मास करने के लिए पधारे। भद्दिया नगरी में दो बार, श्रावस्ती में एक बार, प्रणीत भूमि अर्थात् वज्रभूमि में एक बार, चातुर्मास करने के लिए आये। और अन्तिम चातुर्मास करने के लिए भगवान् मध्यम पावा के राजा हस्तिपाल की रज्जुक सभा में पधारे। इस प्रकार भगवान महावीर ने ४२ चातुर्मासों में बारह चातुर्मास तीर्थंकर काल में व्यतीत किये। तीर्थंकर अवस्था के चातुर्मास में आपने अनेक राजाओं राजकुमारों ब्राह्मणों क्षत्रियों वेश्यों शूद्रों को प्रतिबोधित कर उन्हें प्रव्रजित किया और मोक्ष मार्ग का दर्शन करवाया।

परिनिर्वाण—

तत्थ णं जे से पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रन्नो रज्जुग सभाए अपच्छिमं अंतरावासं वासावासं उवागए, तस्स णं अंतरावासस्स जे से वासा णं चउत्थेमासे सत्तमे पक्खे कत्तियबहुले तस्स णं कत्तियबहुलस्स पन्नरसीपक्खेणं जा सा चरिमा रयणि तं रयणिं च णं

समणे भगवं महावीरे कालगए विइक्कंते समुज्जाए छिन्नजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे चंदे नामं से दोच्चे संवच्छरे पीतिवद्धणे पक्खे सुव्वयग्गी नामं से दिवसे उवसमि त्ति पवुच्चइ देवाणंदा नामं सा रयणी निरइ त्ति पवुच्चइ अच्चे लवे मुहुत्ते पाणू थोवे सिद्धे नागे करणे सव्वट्ठसिद्धे मुहुत्ते साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं कालगए विइक्कंते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे । १२३ ॥ (कप्पसुत्त)

भगवान् अन्तिम वर्षावास के लिए मध्यमा पावा नगरी के राजा हस्तिपाल की रज्जुक सभा में पधारे । चातुर्मास का चतुर्थ मास और वर्षाऋतु का सातवाँ पक्ष चल रहा था । अर्थात् वह दिन कार्तिक कृष्णा अमावस्या का था । उस दिन की अन्तिम रात्रि के समय श्रमण भगवान महावीर काल धर्म को प्राप्त हुए । संसार का त्याग कर चले गये । जन्म ग्रहण की परम्परा का उच्छेद कर चले गये । उनके जन्म जरा और मरण के सभी बन्धन नष्ट हो गये । भगवान सिद्ध हुए, बुद्ध हुए, मुक्त हुए, सब दुःखों का अन्त कर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए । श्रमण भगवान् महावीर जिस समय परिनिर्वाण को प्राप्त हुए उस समय चन्द्र नामक द्वितीय संवत्सर चल रहा था । प्रीतिवर्धन नाम का मास था । नन्दिवर्धन नामक पक्ष था । अग्निवेश्म नामक दिन था जिसका दूसरा नाम उवसम (उपशम) भी कहा जाता है देवानन्दा नामक रात्रि थी जिसका द्वितीय नाम 'निरइ' कहा जाता है। उस रात्रि को अर्च नामक लव था । मुहूर्त नामक प्राण था । सिद्ध नामक स्तोक था । नाग नामक करण था । सर्वार्थ सिद्ध नामक मुहूर्त था और बराबर स्वाति नामक नक्षत्र का योग आया हुआ था । ऐसे समय में भगवान कालधर्म को प्राप्त हुए । संसार को छोड़ कर चले गए । उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये ।

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे सा णं रयणी बहूहिं देवेहि य देवीहि य ओवयमाणेहि य उप्पयमाणेहि य उज्जोविया यावि होत्था ॥१२४॥

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे सा णं रयणी बहूहिं देवेहिं य देवीहि य ओवयमाणेहि य उप्पयमाणेहि य उप्पिंजलगमाणभूया कहकहग-भूया या वि होत्था ॥१२५॥

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं च णं

जेट्ठस्स गोयमस्स इंदभूइस्स अणगारस्स अंतेवासिस्स नायए पेज्जबन्धणे वोच्छिण्णे अणन्ते अणुत्तरे जाव केवलणाणदंसणे समुप्पण्णे ॥१२६॥ (कप्प सुत्त

जिस रात्रि में श्रमण भगवान महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए यावत् उनके सम्पूर्ण दुःख पूर्ण रूप से नष्ट हो गये, उसी रात्रि में बहुत से देवों और देवियों के नीचे आने और ऊपर जाने से वह रात्रि खूब उद्योत मयी हो गई थी। तथा देव देवियों के आगमन से अत्यधिक कोलाहल और शब्द हो रहा था।

जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए यावत् उनके समस्त दुःख नष्ट हुए, उस रात्रि में उनके पट्टधर शिष्य गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति अनगार का भगवान के प्रति जो प्रेम बन्धन था वह विच्छिन्न हो गया और उन्हें अन्त रहित उत्तमोत्तम यावत् केवलज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ।

भगवान का शिष्य परिवार—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स इंदभूइपामोक्खाओ चोद्दस समण साहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था। समणस्स भगवओ महावीरस्स अज्जचंदणा पामोक्खाओ छत्तीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था। समणस्स भगवओ महावीरस्स संखसयग पामोक्खाण समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सी अउणट्ठि च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासगाणं संपया होत्था। समणस्स भगवओ महावीरस्स सुलसारेवइ पामोक्खाणं समणोवासियाणं तिण्णि सयसाहस्सीओ अट्ठारस य सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया होत्था। समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तिन्नि सया चोद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिण संकासाणं सव्वक्खर सन्निवाईणं जिणो विव अवितहं वागरमाणाणं उक्कोसिया चोद्दसपुव्वीणं संपया होत्था। समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तेरस सया अतिसेसपत्ताणं उक्कोसिया ओहि-नाणीणं संपया होत्था समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्तसया केवलनाणीणं संभिन्नवरणाण-दंसणधराणं उक्कोसिया केवलनाणि संपया होत्था। समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्तसया वेउव्वीणं अदेवाणं देविड्ढिपत्ताणं उक्कोसिया वेउव्विय संपया होत्था। समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पंचसया विउलमईणं अड्ढाइज्जेसु दीवेसु दोसु य समुद्देसु सण्णीणं पंचिंदियाणं

पज्जत्तगाणं जीवा णं मणोगए भावे जाणमाणाणं उक्कोसिया विउलमई संपया होत्था । समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारिसया वाईणं सदेवमणुयासुराए परिसाए वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था। समणस्स भगवओ महावीरस्स सत्त अन्तेवासिसयाइं सिद्धाइं जाव सव्वदुक्खप्पहीणाइं चउद्दस अज्जियासयाइं सिद्धाइं । समणस्स भगवओ महावीरस्स अट्ठसया अणुत्तरोववाइयाणं संपया होत्था । समणस्स णं भगवओ महावीरस्स दुविहा अंतकडभूमी होत्था तं जहा जुगंतकडभूमी य परियायंतकडभूमी य । जाव तच्चाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकडभूमी चउवास परियाए अंतमकासी ॥ (कप्पसुत्त १३३–१४५)

उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर के इन्द्रभूति आदि चौदह हजार श्रमणों की उत्कृष्ट सम्पदा थी । आर्या चन्दना आदि छत्तीस हजार आर्यिकाओं को उत्कृष्ट श्रमणी संपदा थी । शंख शतक आदि एक लाख उनसठ हजार श्रावकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक सम्पदा थी । सुलसा रेवती आदि तीन लाख अठारह हजार श्रमणोपासिकाओं की उत्कृष्ट श्राविका सम्पदा थी । जिन नहीं किन्तु जिन के समान सर्वाक्षर संन्निपाती जिन के समान यथार्थ प्रतिपादन करने वाले तीन सौ चतुर्दश पूर्वधरों की उत्कृष्ट सम्पदा थी । विशेष प्रकार की लब्धि वाले तेरहसौ अवधिज्ञानियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी । सम्पूर्ण उत्तम केवलज्ञान और केवल दर्शन को प्राप्त ऐसे सातसौ केवलज्ञानियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी । देव नहीं किन्तु देवों की ऋद्धि को प्राप्त ऐसे सात सौ वैक्रियलब्धि वाले श्रमणों की उत्कृष्ट सम्पदा थी । अढाई द्वीप में और दो समुद्रों में रहने वाले मन वाले पर्याप्त पंचेन्द्रिय प्राणियों के मन के भावों को जानने वाले पांचसौ विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी श्रमणों की उत्कृष्ट संपदा थी । देव मानव और असुरों वाली सभाओं में वाद करते हुए पराजित न हों, ऐसे चारसौ वादियों की उत्कृष्ट श्रमण सम्पदा थी । श्रमण भगवान् महावीर के सातसौ शिष्य सिद्ध हुए यावत् उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये । निर्वाण को प्राप्त हुए । श्रमण भगवान् महावीर की चौदह सौ शिष्याएं निर्वाण को प्राप्त हुई । श्रमण भगवान् महावीर के भविष्य गति में कल्याण प्राप्त करने वाले वर्तमान स्थिति में कल्याण अनुभव करने वाले और भविष्य में भद्र प्राप्त करने वाले, ऐसे आठसौ अनुत्तरोपपातिक मुनियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी ।

श्रमण भगवान् महावीर के समय में मोक्ष प्राप्त करने वाले साधकों की दो प्रकार की भूमिका थी । एक युगान्तकृत भूमिका और दूसरी पर्यायान्तकृत् भूमिका । भगवान् से तीसरे पुरुष तक युगान्तकृत् भूमिका थी । कहने का तात्पर्य यह है कि प्रथम भगवान् मोक्ष में गए, उसके बाद उनके शिष्य और उनके पश्चात् उनके प्रशिष्य जम्बू स्वामी मोक्ष में गये । यह युगान्तकृत भूमिका अर्थात् मोक्ष जाने की परम्परा जम्बूस्वामी के पश्चात् बन्द हो गई ।

तेणं कालेणं तेणं समएण समणे भगवं महावीरे तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता साइरेगाइं दुवालस वासाइं छउमत्थ परियागं पाउणित्ता, देसूणाइं तीसं वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता, बायालीसं वासाइ सामण्ण परियायं पाउणित्ता बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दूसम सुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहिं सेसएहिं पावाए मज्झिमाए हत्थिपालगस्स रन्नो रज्जुग सभाए एगे अवीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पच्चूसकालसमयंसि सपलियंक निसण्णे पणपण्णं अज्झयणाइं कल्लाणफल विवागाइं पणपण्णं अज्झयणाई पावफलविवागाइं छत्तीसं च अपुट्ठवागरणाइं वागरित्ता पहाणं नाम अज्झयणं विभावेमाणे २ कालगए, वितिक्कंते समुज्जाए छिन्नजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतकडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे ॥ (कप्पसुत्त १४६)

उसकाल उस समय श्रमण भगवान महावीर तीस वर्ष तक गृहवास में रहकर बारह वर्ष से भी अधिक समय तक छद्मस्थ श्रमण पर्याय में रहकर, उसके बाद तीस वर्ष से कुछ कम समय तक केवल पर्याय को प्राप्त कर कुल बयालीस वर्ष तक श्रमण पर्याय को पालन कर, बहत्तर वर्ष की आयु पूर्णकर, वेदनीय आयु नाम और गोत्र कर्म क्षीण होने के बाद इस अवसर्पिणी काल का दुषम सुषम नामका चतुर्थ आरा बहुत कुछ व्यतीत होने पर तथा उस चतुर्थ आरे के तीन वर्ष और साढ़े आठ महीना शेष रहने पर मध्यमपावा नगरी में हस्तिपाल राजा की रज्जुक सभा में एकाकी षष्ठ तप के साथ स्वाति नक्षत्र का योग होते ही प्रत्यूषकाल के समय पद्मासन से बैठे हुए भगवान् कल्याण फल विपाक के पचपन अध्ययन, और पाप-फल विपाक के दूसरे पचपन अध्ययन और अपृष्ठ-बिना पूछे प्रश्नों का समाधान करने वाले छत्तीस अध्ययनों को कहते कहते कालधर्म को प्राप्त हुए। संसार को त्याग कर चले गये। ऊर्ध्वगति को प्राप्त हुए। उनके जन्म, जरा मरण के बन्धन विच्छिन्न हो गये। वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, सम्पूर्ण कर्मों का नाश करने वाले एवं सभी प्रकार के संतापों से मुक्त हुए। उनके सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो गये।

उदयमुनिना कृतं, कल्याणदं जिनस्तुतिम् ।
श्रद्धया पठति नित्यं यो, स प्राप्नोति सदा सुखम् ॥

उदय मुनि द्वारा बनाई हुई कल्याणप्रद जिन स्तुति तथा आगमों में तीर्थंकर चरित्र को श्रद्धा पूर्वक नित्य जो पढ़ता है, वह सदा सुख की प्राप्ति करता है।।